

श्रीवादिदेवसूरिविरचितः

प्रमाणनयतत्वालोकालङ्कारः।

पं० यशोधरशर्म्मविरचितभाषाटीकासहितया रत्नप्रभाचार्य्य
विरचितया रत्नाकरावतारिकाख्यलघुटीकया सवलित ।

अथ उँझानिवासिना सेठ नगीनदास छगनलाल वैद्येन बालकृष्ण रामचन्द्र घाणेकरद्वारा
मुम्बय्यां निर्णयसागराख्यमुद्रणालये मुद्रापयित्वा प्रसिद्धिं नीत ।

शाक १८३१ संवत् १९६६

प्रस्तावना

कालके प्रभावसे हमारी मातृभाषा संस्कृतकी जो दशा हुई, वह किसीसे छिपी नहीं है यदि विचारसे देखा जाय तो मालूम होगा कि मातृभाषाकी अवनति भी हमारी अवनतिका प्रधान कारण है हमारे पूर्वजोंने संस्कृतमें सहस्रों ग्रन्थ बनाकर अपनी असाधारण बुद्धिका परिचय दिया है जिनके साहित्य न्याय ज्योतिष वैद्यक आदि विविध विषयोंके ग्रन्थोंका संग्रह कर विदेशीय विद्वान् हरतरहसे लाभ उठा रहे हैं खेर! समय एकसा ही नहीं रहता अब यहाँके लोगोंकी भी आँखें खुल रही है, धीरे २ वे अपने बचे बचाये ग्रन्थोंके सँरक्षणमें प्रयत्न कर रहे है यों तो हमारे असङ्ख्य ग्रन्थ के एक कारणोंसे नष्टभ्रष्ट हो चुके तो भी आजदिन जितने उपलब्ध हैं यदि उनसे ठीक काम लिया जायगा तो जातीय जीवन पुन प्रबल हो उठेगा प्राचीन साहित्यका यथार्थ परिशीलन न होनेसे आत्मविश्वास घट गया और आत्मविश्वासका अभाव ही हमारी उन्नतिके मार्गको रोकनेवाला है इस अवस्थामें विज्ञ एवं धनिक महाशयोंका कर्तव्य है कि वे अपने पूर्वाचार्योंके महान् परिश्रमका ख्याल करे, पुस्तक प्रकाशनमें अपने धनका सदुपयोग कर कृतार्थ बने लाखो रुपये बे समझसे खर्च किये जाते है यदि वह द्रव्य, ज्ञानप्रचारमें लगाया जाय तो निःसन्देह बडा ही लाभ हो निर्णयसागर प्रेससे निकली हुई काव्यमालामें जैनमतके कतिपय ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं जिन्हें देख जैनविद्वानोंका पाण्डित्य हृदयपर अङ्कित हो जाता है कई अन्यदर्शनी विद्वानोंने उचित समालोचना कर अपनी उदारताका परिचय भी दिया है

उक्त प्रेसमें यह "प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार" नामक जैनमतका अति प्रसिद्ध न्यायग्रन्थ छपवाया गया है, इसके प्रणेता श्रीवादिदेवसूरि है इनका जन्म विक्रम संवत् ११३४ में गुजरात देशमें हुआ इनके पिताका नाम नागदेव और माताका नाम जिनदेवी था गृहस्थावस्थामें इनका नाम पूर्णचन्द्र था विक्रमसंवत ११५२ में जैनाचार्य श्रीमुनिचन्द्र सूरिने इनके मातापिताकी आज्ञासे इन्हे दीक्षा दी और "रामचन्द्र" नाम रक्खा दीक्षाके बाद न्याय व्याकरण साहित्य आदि शास्त्रोंका अध्ययन कर जब पूर्ण विद्वान् हुए तब इन्हें विक्रमसंवत ११७४ में आचार्य पदवी दी गई और देवसूरि नाम रक्खा गया इनके जीवन कालमें बहुतसी ऐसी घटनाएँ हुई जिनका उल्लेख करना उचित है पर लेख बढ जानेके भयसे एक घटना लिखता हूँ जिससे प्राचीन समयके विद्याव्यसनकी अपूर्व झलक मालूम देगी जब श्रीदेवसूरिकी कीर्ति देशदेशान्तरोंमें फैली तब कर्नाटक देशके

प्रसिद्ध दिगंबर जैन विद्वान, कुमुदचन्द्र, देवसूरिके साथ शास्त्रार्थ करनेके लिये गुजरात पहुँचे और अपने भाटद्वारा निम्नलिखित श्लोक सुनानेके लिये देवसूरिके पास भेजा.

हंहो श्वेतपटाः किमेष कपटाटोपोक्तिसन्टङ्कितैः । संसारार्णवकोटरेऽति विकटे मुग्धोजनः पात्यते ॥
तत्वातत्वविचारणासु यदि वो हेवाकलेशस्तदा । सत्यं कौमुदचन्द्रमङ्घ्रियुगलं रात्रिन्दिवं ध्यायत ॥ १ ॥

भावार्थ—हे श्वेतांबरियो ! कपटमय वचनोंसे अज्ञ लोंगोंको क्यों भयङ्कर संसारमें फसाते हो? यदि तत्वातत्वका विचार करना हो, तो कुमुदचन्द्रकेचरणयुगलकी रातदिन सेवा करो.

भाटका श्लोक सुनकर देवसूरिके शिष्य माणिक्यचन्द्र सूरिने यह उत्तर दिया.

"कः कण्ठीरवकण्ठकेसरसटाभारं स्पृशत्यङ्घ्रिणा । कः कुन्तेन सितेन नेत्रकुहरे कण्डूयनं काङ्क्षति ॥
कः सन्नह्यति पन्नगेश्वरशिरोरत्नावतंसः श्रिये । स श्वेतांबरदर्शनस्य कुरुते वन्द्यस्य निन्दामिमाम्" ॥ १ ॥

भावार्थ—जो श्वेतांबर मतकी निदा करता है वह मानों सिहकी सटा (कन्धेपरके केश) को हाथसे उखाडता है, तीक्ष्ण भालेकी नोकसे ऑखकी खुजली मिटाता है और अपनी सम्पत्तिके लिये सर्पसे मणि छीनता है.

यह सुनकर देवसूरिने अपने शिष्य माणिक्यचन्द्र सूरिको समझाया कि "वह क्रोध न करें, समय आनेपर आप ही सत्यासत्यका निर्णय हो जायगा" इस अवसरमें गुजरातके अणहिल्लपुर पाटणमें सिद्धराज नामक इतिहासप्रसिद्ध राजा राज्य करता था, दोनों वादियोंकी ओरसे महाराजको इस विषयकी सूचना दी गई कि वे मध्यस्थ होकर शास्त्रार्थमें जयपराजयका निर्णय करें, इस सूचनाको सिद्धराजने सादर स्वीकार किया और विक्रम संवत ११८१ को वैशाख शुक्ल पूर्णिमाके दिन विशाल सभा कराई उसमें दिगंबर कुमुदचन्द्रका पक्ष था कि "स्त्रियोंका मोक्ष जाना शास्त्र सम्मत नही है" और देवसूरिका पक्ष इसके विरुद्ध था. "शास्त्रार्थमें जिसका पराजय हो उसे देशपार किया जायगा" यह शर्त दोनों वादियोंने मंजूर की. शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ कुमुदचन्द्र पराजित हुए सिद्धराजने देवसूरिको विजयपत्र अर्पण किया और सन्तुष्ट होकर एक लक्ष स्वर्णमुद्रा देने लगे पर निःस्पृह आचार्यने यह स्वीकार नही किया. उक्त सभामें हेमचन्द्राचार्य भी विद्यमान थे शास्त्रार्थमें दिगंबरोंका पराजित होना-रत्नाकरावतारिका नामक टीकाके कर्ता रत्नप्रभाचार्यने भी स्वकृत मङ्गलमें लिखा है.

"येरत्र स्वप्रभया दिगंबरस्यार्पितापराभूति ॥ प्रत्यक्ष विबुधानां जयन्तु ते देवसूरयोनव्याः ॥ १ ॥

भावार्थ—जिन्होंने बडे २ विद्वानोंके समक्ष अपनी मतिभासे दिगम्बरोंको पराजित किया ऐसे देवसूरिकी जय हो" देवसूरिने अपने बनाये "प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कार" पर ८४००० हजार श्लोक प्रमाण स्याद्वादरत्नाकर नामक टीका बनाई है पर वह सम्पूर्ण कहीं नहीं मिलती सुना है कि इसका कुछ भाग बनारस किस कॉलेजकी लायब्रेरीमें है

उक्त ग्रन्थपर दूसरी टीका रत्नप्रभाचार्यने की है वही इस ग्रन्थके साथ दी गई लगभग ५००० हजार श्लोक प्रमाण है इसीका नाम "रत्नाकरावतारिका" है इस टीकाके देखनेसे ही कर्ताकी विद्वत्ताका परिचय हो सकता है इनका गम्भीर व प्रौढ, गद्य पद्य, चित्तको आनन्द समुद्रमें डुबा देता है रत्नप्रभाचार्य विक्रम संवत १२३८ में विद्यमान थे इनके गुरुका नाम "भद्रेश्वरसूरि" खेद है कि इनका विशेष चरित्र प्रस्तावना लिखते समय उपलब्ध नहीं हुआ

रत्नाकरावतारिका क्लिष्ट ग्रन्थ है जिन्होंने दर्शनोंका ठीक अभ्यास किया हो वे ही इसका आनन्द ले सकते थे पर उक्त गुजरातके सद्गृहस्थ वैद्य नगीनदास छगनलालने योग्य धन देकर पद्मनदीय प० वंशीधर शर्म्माद्वारा हिन्दी भाषानुवाद कराके साधारण न्यायका अभ्यास करनेवालोंपर बडा उपकार किया है प्रकाशक महाशयने केवल उपकार बुद्धिसे और अपनी मातुश्री सौभाग्यवती बाई अमरत तथा अपने सहोदर भ्राता सीतलप्रसादके स्मरणार्थ यह काम उठाया है, आशा है ग्राहकगण उनका उत्साह बढावेंगे, जिससे ऐसे २ ग्रन्थ रत्न देखनेका सौभाग्य मिले अनुवाद सरल और शुद्ध हुआ है

इस ग्रन्थमें आठ परिच्छेद है

ॐ प्रमाणस्वरूपनिर्णय नामक प्रथम परिच्छेदमें आदिमें ग्रन्थकारने मंगलाचरणानंतर महत्त्व ग्रन्थरचनामें प्रयोजन कहा है, फिर शब्दका अर्थके साथ कोई संबन्ध न होनेसे आदिवाक्य प्रयोजनको साक्षात् नहीं कहता ऐसा कहनेवाले बौद्धके मतको दिखाकर स्वमतमें शब्द और अर्थका वाच्यवाचकभावसंबन्ध युक्तिसिद्ध है अत एव आदिवाक्य प्रयोजनको साक्षात् ही कह देता है ऐसा स्थापन किया है, आगे स्वाभिमत प्रमाण लक्षणको दिखाकर नैयायिक मीमांसक आदिकोंने किए हुए प्रमाण लक्षणोंका खण्डन, स्वलक्षणमें दूषणोद्धार, सविकल्पज्ञान ही प्रमाण है परन्तु नैयायिक व बौद्ध कल्पित सन्निकर्ष अथवा निर्विकल्पज्ञान नहीं कहा है, आगे स्वाभिमत समारोपज्ञानके लक्षणादिको दिखाकर समारोपको नहीं माननेवाले विवेकाख्यातिवादीका खंडन किया है,

आगे प्रमाणलक्षणप्रविष्ट पर शब्दका अर्थ कहकर शून्यवादीके मतका खंडन ब्रह्माद्वैतवादी (वेदान्ति) मतप्रतिपादन तथा खंडन यह (मीमांसकभेद) मत खंडनपूर्वक ज्ञानको स्वसंवेद्यत्व स्थापन वैयायिकाभिमत ज्ञानको ज्ञानान्तरवेद्यत्वका खण्डन जैमनी (मीमांसक) ने माना हुआ ज्ञानको स्वत एव प्रामाण्य और अप्रामाण्य परतः ही उसका खण्डन किया है आगे स्वमतमें प्रामाण्य तथा अप्रामाण्य उत्पत्तिमें परतः ही और ज्ञप्तिमें स्वतः भी और परतः भी का प्रतिपादन किया है, ततः परिच्छेद समाप्ति । प्रत्यक्षस्वरूप निर्णयनामक द्वितीय परिच्छेदमें मूलोक्त प्रत्यक्षके लक्षणादिको स्पष्ट करके मीमांसकादिकोंने पृथक्कृतया माने हुए उपमान अर्थापत्यादि प्रमाणोंका पृथक्त्वेन खंडन, नैयायिकादिकल्पित चक्षुको प्राप्यकारित्वका खंडन, एवं श्रोत्रको प्राप्यकारित्व-का खंडन, तम (अन्धकार) तथा छायाको तेजोऽभाव स्वरूपता निरास पूर्वक द्रव्यरूपतासिद्धि की है, आगे मीमांसकने किये हुए सर्वज्ञके निषेधका खंडन, जगत् कर्ताका खंडन, दिगंबरने किये हुए केवलीको कवलहार निषेधका खंडन किया है। स्मरण प्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानस्वरूपनिर्णय नामक तृतीय परिच्छेदमें मूलकारने किए हुए परोक्षके लक्षणादिकी व्याख्या, यौग (नैयायिक) ने माना हुआ स्मृतिको अप्रामाण्यका खण्डन, नैयायिकने माने हुए उपमान प्रमाणका खण्डन, प्रत्यभिज्ञाको प्रमाण न मानने-वालोंके मतके खण्डनपूर्वक प्रत्यभिज्ञानको प्रामाण्य स्थापन, ऊहाको प्रामाण्य न माननेसे शून्यताकी आपत्ति दिखाकर प्रामाण्य प्रतिपादन, अनुमान प्रमाणको न माननेवाले चार्वाकके मतका प्रतिपादन तथा खण्डन, बौद्धाभिमत हेतुलक्षणका खण्डन, मूलकार कथित दो प्रकारके हेतुका विवेचन ।

आगमस्वरूपनिर्णय नामक चतुर्थ परिच्छेदमें मूलकार कथित शब्दप्रमाणके लक्षणादिकी व्याख्या, शब्द प्रमाणको अनुमान स्वरूप माननेवाले काणादके मतका खण्डन, मूलकार कथित आप्तके लक्षणादिकी व्याख्या, मीमांसकने माने हुए वेदको अपौरु-षेयत्वका खण्डन मीमांसकोंने कथित वर्णोको नित्यत्वका खण्डन, संकेतमात्रसे शब्द अर्थको कहता है ऐसा कह रहे नैयायिकका खण्डन, शक्ति पदार्थप्रतिपादन, शब्द अर्थको कहता ही नहीं किंतु अपोह ही शब्दका विषय है ऐसा कहरहे बौद्धका खण्डन, आगे सप्तभङ्गीका सविस्तर वर्णन किया है, पञ्चमादि परिच्छेदोंका विषय उत्तरार्द्धमें दिया जायगा ।

पं. वंशीधर शर्म्मा.

पञ्चम परिच्छेदमें—विषयस्वरूप निर्णय

षष्ठ परिच्छेदमें—फलप्रमाण स्वरूपाद्याभास निर्णय

सप्तम परिच्छेदमें—नयात्मस्वरूप निर्णय

अष्टम परिच्छेदमें—वादिप्रवादि न्याय निर्णय

इन आठों परिच्छेदोंमेंसे प्रथमके चार परिच्छेद छप चुके, सज्जनोंसे निवेदन है कि, इस ग्रन्थमें मूल या भाषानुवादमें जो त्रुटियाँ मालूम दें उन्हें कृपाकर प्रकाशकके पास लिख भेज जिससे पीछेके चार परिच्छेदोंके साथ शुद्धिपत्रमें सुधारी जाँय

प्रस्तावना लिखनेमें मेरे मित्र सुखलाल संघजीने मदत दी है अतएव मै उनका कृतज्ञ हूँ

निर्दोषशासनानुरागी,

व्रजलाल.

भाषान्तरकारकी विज्ञ महात्माओंसे प्रार्थना ।

मैं जब मेशाणा जशोविजयसंस्कृत पाठशालामें मोहन विजय महाराजको न्यायशास्त्र पढाताथा तब ऊँझानिवासी मेरे मित्र सेठ नगीनदास छगनलालजी वैद्यने मुझे इस (रत्नाकरावतारिका)के भाषान्तर करनेको कहा, मैंने भी अनेक कारणोंसे विशेषकर स्याद्वादन्यायके यथार्थ स्वरूपको न जाननेसे कै एक मनुष्योंके चित्तमें उत्पन्न होते हुए अनेक तर्क वितर्कोंको दूर करनेके लिये पूर्वोक्त वैद्यजीका कथन स्वीकार कर (पहिले पहिल) इसका भाषान्तर किया है, सो इसके ७२ पत्रकी २ पंक्तिमें मन पर्यायज्ञानके लक्षणसूत्रकी व्याख्यामें बुद्धिदोषसे मनसागृहीत द्रव्यके पर्यायोंको ऐसा लिखा गया है सो ऐसा न समझ कर मनोरूप द्रव्यके पर्यायोंको ऐसा अर्थ समझना, एवं ७४ पत्र १० संस्कृत पंक्तिका दृष्टि दोषसे भाषान्तर नहीं लिखा गया सो उसका ऐसा अर्थ जानना कि द्वितीय (केवलालोकानाकलित) पक्षमें तो वह पुरुष केवलालोकसे विकल पुरुषोंकी सब सभाओंको देखता है कि नहीं । प्रथम पक्षमें तो केवलज्ञानका निषेध कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं होसकता क्योंकि वही पुरुष केवलज्ञानवान् सिद्ध होगया, द्वितीय पक्षमें भी केवलज्ञानका निषेध नहीं होसकता क्योंकि उसने कहे हुए शब्दको हाली(खेडूत)के

शब्दकी तरह प्रमाणत्वका असंभव है अर्थात् उसका शब्द प्रमाण ही नही है । एवं और भी यत्र तत्र बुद्धिमानोंको दोष प्रतीत होय सो 'धावतो पतन कापि' इस न्यायको स्मरणमें रखकर गुणग्राहित्वरूप महात्माओंके धर्मको अनुसरण करते हुए बुद्धिमानोंने शुद्ध कर लेने, और यदि इसमें कुच्छ मेरेसे पूछनेकी किसी महाशयको आवश्यकता होय तो नीचे लिखे दो स्थानोंमेंसे किसी एक स्थानमें पत्र भेजकर पूछनेसे पत्र मिलनेपर शीघ्र यथोचित उत्तर दिया जायगा इति ।

(पता) **पं०वंशीधर शर्म्मा** अध्यापकवीरबाई पाठशाला.
मु० पालीताणा, जि० काठियावाड ।
(दूसरा पता) **पं० वंशीधर शर्म्मा** जिला हुश्यारपुर, पोष्ट खड्ड,
मु० पंजौर (पंजाब प्रांत)

ॐ

श्रीसर्वज्ञायनम

अर्हम् ।

प्रमाणनयत्वालोकालङ्कारस्यपञ्चनदीय पण्डितवशीधरशर्म्मणा विरचितया भाषाटीकया सहिता

रत्नाकरावतारिकाख्या लघुटीका ।

सिद्धये वर्द्धमान स्तास्ताम्रा यन्नखमण्डली । प्रत्यूहशलभक्षेपे दीप्रदीपाङ्कुरायते ॥ १ ॥
यैरत्र स्वप्रभया दिगम्बरस्थापिता पराभूति' । प्रत्यक्ष विबुधाना जयन्तु ते देवगुरयो नव्याः ॥ २ ॥
स्याद्वादमुद्रामपनिद्रभक्त्या क्षमाभृता स्तौमिजिनेश्वराणा ।
सन्न्यायमार्गानुगतस्य यस्यां मा श्रीस्तदन्यस्य पुन॰ सदण्डः ॥ ३ ॥

श्रीगुरुभ्यो नम । इस ग्रथकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये किये हुए मङ्गलका शिष्योको शिक्षा करनेके लिये ग्रथकार ग्रथानुपूर्व कोटीमें प्रवेश करते हैं । सिद्धये इति । जिनकी ताम्रवरणकी नखमण्डली विघ्नरूपी (शलभ) पतगके नाशमें देदीप्यमान दीपाङ्कुर (दीपककी लाट) की तरह विद्यमान है वैसे (जन्मकालसे ही पिताके घरमें सब प्रकारकी समृद्धिको बढानेसे अथवा स्वय चोतीस अतिशयोंसे युक्त होनेसे यथार्थ नामको धारण करनेवाले) जो श्रीवर्द्धमान भगवान है सो हमारे इस ग्रथकी सिद्धिके लिये अथवा मोक्षके लिये होवें ॥ १ ॥ जिन्होने अपनी निरुपम बुद्धिसे क्षपणककुमुदचन्द्र नामक प्रचण्ड दिगबरोंके आचार्यका विद्वानोंके सामने पराभव किया था वैसे नव्या नाम स्तुति करनेके लायक जो देवसूरि नामक आचार्य्य अथवा नव्या नाम नवीन अर्थात् मनुष्य जो देवसूरि नाम अति बुद्धिमान होनेसे देवगुरु बृहस्पति ही मानो देवसूरिनामक आचार्य सो जयशाली होवें ॥ २ ॥ क्षमाको धारण करनेवाले जो जिनेश्वर उनकी स्याद्वादरूपी मुद्राको निश्चल भक्तिसे मैं स्तुत करताहूँ जिस स्याद्वाद मुद्रामें सच्चे

अर्थात् जानने योग्य महान् अर्थसे भरे हुए जो अक्षर वही भया क्षीर नाम दुग्ध अथवा उत्तम मधुर जल उससे परिपूर्ण और चारों तरफ देरे जा रहे जो स्याद्वादरूपी महामुद्रासे चिह्नित नाम स्याद्वादन्यायसे सिद्ध (अनिद्र) नाम कुतर्कोंसे अबाधित प्रमेयसहस्र उनका बड़ा भारी तरङ्गरूपी जो सप्तभङ्गी उसके सङ्गसे सौभाग्यका भाजन और अप्रतिम जो फल (मोक्ष) उससे सुशोभित जो अनेक शाल उनसे मनोहर जो बडे बडे परिच्छेदोंका समूह तद्रूप है (साद्धलास नीलवर्णका नजदीक वननिकुञ्ज जिसमें ऐसा और निरुपम बुद्धिरूप जो महान् (यानपात्र) जहाज उसमें व्यापार परायण (व्यापारमें तत्पर पुरुषको ही मिलनेके लायक है । अप्राप्यपूर्व रत्नविशेष अर्थात् मोक्षरूप रत्न जिसमें और कहीक वचन रचनासे दोषरहित गद्यपरम्परारूप (प्रवाल जाल) मूंगेके समूहसे व्याप्त और कहीक सुकुमार स्त्रियोंकी तरह देखनेके योग्य अनेक श्लोकरूप मोतियोंके समूहसे व्याप्त और कहीक अनेकान्त वादसे कल्पित जो अनेक विकल्परूपी तरङ्ग उनसे उल्लासित अर्थात् प्रकटित दूषणरूप पर्वतोंसे भागा है अनेक दर्शनकाररूप नक्र चक्र जलजन्तु विशेषोंका समूह जिसमें ऐसा और कहीक पक्षदोष आदि दोषोंसे रहित अनुमानोंके कथनसे उद्वर्तमान जो असमान पाठीन नाम अपरिमित अन्यदर्शनकार उनके पुच्छ छटा छोटनसे अर्थात् अनुमान प्रयोगसे पूर्व हाथआदिके चलानेसे (उच्छलदतुच्छ शीकर) साहङ्कार वाक्यसे निकल रहे थूकके बिन्दुओंके सम्बन्धसे हो रहा है महान् विद्वानोंके सभामण्डपमें प्रचण्ड चमत्कार जिसमें ऐसा और कहीक दर्शनकारोंके ग्रन्थोंमें जो वादस्थान उनके यथार्थ खण्डनसे सिद्ध किया गया जो अर्थ तद्रूप महान् दीपककी तरह दौड़ रहे देदीप्यमान मणियोंको धारण करनेवाले सर्पोंसे भयङ्कर और (सहृदय) अच्छे हृदयवाले अर्थात गुणज्ञ दयावान् जो सिद्धान्तकर्ता तार्किक वैयाकरण और कवियोंके समूहमें चक्रवर्ति अर्थात् सर्वोपरि–विराजमान पण्डितोंने विधान किया है यथार्थ नाम जिनका ऐसे जो हमारे गुरु श्रीदेवसूरि उन्होंने रचे हुए स्याद्वाद रत्नाकरमें कुछ न्यायशास्त्ररूपी तीर्थको न जाननेवाले और सूक्ष्मबुद्धिसे हीन जो पुरुष सो प्रवेश करनेमें समर्थ नहीं हो सकते इसलिये उनको प्रवेश मार्ग बतलाना युक्तियुक्त है सो अवतार दर्शन संक्षेपत शास्त्रके स्वरूप जानसे विना नहीं हो सकता, और शास्त्र स्वरूपका ज्ञान भी संक्षेपत सूत्रके वाच्यके निश्चयसे विना नहीं होता इसलिये प्रमाणनय तत्त्वालोक नामक रत्नाकरके मूल सूत्रोंके अर्थ मात्रको प्रकट करनेवाली रत्नाकरावतारिका नामकी स्फुटीकाको मैं प्रकट करता हूँ । तत्र च इस जगतमें जिस किसी भी कार्यमें प्रवर्तमान और तत्तद्गुण तथा दोषोंके दर्शनसे दृढतर संस्कारवाले पुरुषत्वाभिमानी पुरुषको अवश्य जो

जहापर यथार्थ पदार्थके निश्चायक होनेसे पूजनीय उपकारी तथा अपकारीने कहे हुए दोषके खण्डनसे तिरस्करणीय अपकारी यह दोनों ही सारण करने चाहिये । पूर्वोक्त उपकारी तथा अपकारीपर और अपर तथा बाह्य और अन्तरङ्ग इन भेदोसे दो दो प्रकारके होते है इसलिये इस प्रमाणनय तत्वालोकाख्य सूत्रोके प्रारम्भमें कृतज्ञ और पूज्यपाद श्रीदेवसूरि नामक आचार्य्य पूर्वोक्त उपकारी और अपकारियोके सारणार्थ ग्रंथारम्भमें ही इस एक श्लोकको रचते भये ॥ इस गद्यकी समुद्रपक्षमें भी व्याख्या बुद्धिमानोने स्वयं जान लेनी ॥

रागद्वेषविजेतारं ज्ञातारं विश्ववस्तुनः
शक्रपूज्यं गिरामीशं तीर्थेशं स्मृतिमानये ॥ १ ॥

जिह्नोंने सर्वथा राग द्वेषको जीता है और जो जगतके सर्व पदार्थोंको जानते है । अर्थात् जो सर्वज्ञ है, और जो इन्द्रोंके भी पूज्य है अर्थात् इन्द्रादिदेव भी जिनका पूजन करते है और जो वाणियोंके प्रवर्तक है । ऐसे चतुर्विध संघके स्वामी श्रीमहावीर भगवानका मै सरण करता हुँ ॥

तीर्थस्य चतुर्वर्णस्य श्रीश्रमणसंघस्येशं स्वामिनमासन्नोपकारित्वेनात्र श्रीमहावीरमहमिह प्रक्रमे स्मृतिमानये इति संटङ्कः । रागद्वेषयोः प्रतीतयोर्विशेषेणापुनर्जेयतारूपेण जयनशीलमिति ताच्छीलिकस्तृन् ततो "कर्तृ तृजकाभ्यामिति" तृचा षष्ठीसमासप्रतिषेधात् कथमत्राऽयमिति नाशङ्कनीयम् । तथा विश्ववस्तुनः कालत्रयवर्तिसामान्यविशेषात्मकपदार्थस्य ज्ञातारममलकेवलालोकेन शक्राणामिन्द्राणां पूज्यं अर्चनीयम्—जन्मस्नात्राष्टमहाप्रातिहार्य्यादिसंपादनेन । गिरां वाचामीशमीशितारमवितथवस्तुव्रातविषयत्वेन तासां प्रयोक्तृत्वात् । अनेन च विशेषणचतुष्टयेनामी यथाक्रमं भगवतो मूलाऽतिशयाश्चत्वारः प्ररूपितास्तद्यथा अपायापगमातिशयो ज्ञानातिशयः पूजातिशयो वागतिशयश्चेति । एतेनैवच, समस्तेन गणधरादेः स्वगुरुपर्यन्तस्य स्मृतिः कृतैव द्रष्टव्या तस्याप्येकदेशेन तीर्थेशत्वान्निगदितातिशयचतुष्टयाधारत्वाच्चेति परापरप्रकारेण द्विविधस्याप्युपकारिणः सूत्रकाराः सस्मरुः ।

चार प्रकारका जो श्रीश्रमणरूप संघ है उसके स्वामी यद्यपि यहांपर किसीका विशेषनाम नहीं लिखा है तो भी आसन्नोपकारी अर्थात् ऋषभादिक २३ त्रेवीशतीर्थङ्करोंकी अपेक्षासे आसन्नोपकारी नाम उपकार करनेवाला होनेसे श्रीमहावीर भगवानको इस

रणन मैं स्मरण करता हु वैसा सबध जानना ॥ क्यसे महावीरका मै सरण करता हु कि जगत्प्रसिद्ध अर्थात् जिनको गर लोग जानते है वयसे जो राग द्वेष, उनको विशेपरूपेण फिर नितनेकी आवश्यकता (जरूरत) ना रखकर नीतनेका है सभार जिसका (जेतार) इस जगहमें ताच्छीलिक, तृन्, प्रत्यय हे इसलिये कर्तृतृजकाभ्या, इस सूत्र करके तृज तके साथ षष्ठी समासका निषेध होनेसे इस जगहम किस रीतिसे पूर्वोक्त समास क्रिया यह शका नहीं करनी । तथा कालत्रय (नाम) भूत भविष्यद्वर्तमान, रूपकालत्रयमें होनेवाला जो सामान्य विशेष उभय स्वरूप पदार्थ उसको अमलकेवलालोक (केवल ज्ञान)से जो जानता है। और जो जन्म स्नानादि महामातिहार्यादि सपादन करके इन्द्रोंका पूज्य है यथार्थ पदार्थ समूहको विषय करके वाणियोंका प्रवर्तक होनेसे जो वाणिओंका स्वामी है। इन चार विशेपणोंकरके भगवानके वक्ष्यमाण चार मूलातिशय यथाक्रमसे कहे गये अर्थात् इन चार विशेपणोंमेंसे एक एक विशेषण करके एक एक मूलातिशयका यथाक्रमसे बोध होता है इसलिये ही यह विशेषण भी सार्थ है, चार, अतिशयोंका नाम लिखते है ॥ अपायापगमातिशय, ज्ञानातिशय पूजातिशय, और वागतिशय इस ही समग्र श्लोकसे गणधरसे आदि लेकर अपने गुरुपर्यंत सबकी (स्मृति) ग्रथ कारने करी ही ऐसा बुद्धिमानोंने जानना क्योंकि गणधर आदि जो है सो भी एक देशसे तीर्थश ही है और पूर्वोक्त चार अतिशयोंका आश्रय भी है इस प्रकारसे पर और अपर भेदसे दोनो ही प्रकारके उपकारियोंका सूत्रकार स्मरण करते भए (इस जगहमें पूज्य होनेसे ग्रथकार बहुवचन देते हैं, एव अन्यत्रापि

अपकारिणस्तु तथाभूतस्येत्थमनेनैव श्लोकेन स्मृतिमकुर्वन् । तीर्थस्य प्रागुक्तस्य तदाधेयस्यागमस्य वा ई लक्ष्मीं महिमान वा श्यति तत्तदसद्भूतदूषणोद्घोषणे. स्वाभिप्रायेण तनूकरोति यः सः तीर्थेशस्तीर्थांतरीयः बहिरङ्गापकारी त किं–भूत शक्र' पूज्यो यागादौ हविर्दानादिना यस्य स तथा त एतावता वेदानुसारिणो भट्ट प्रभाकर कणभक्षाक्ष-पादकपिला. शून्याचत्रिरे पुन किंभूत तीर्थेश गिरामीश वाचस्पतिमिति नास्तिकमतप्रवर्तयितुर्बृहस्पते' सूचा तथा गिरां वाचामीं लक्ष्मी शोभां वा श्यति यस्त परमार्थत पदार्थप्रतिपादन, हि वाचां शोभा तां च तासामपोहमात्र-गो रतामाचक्षाणस्तथागतस्तनुकरोत्येवेति विशेषणावृत्त्या सुगतोपक्षेपः । पुन' कीदृश त ज्ञातार विश्ववस्तुनः नोऽसाक श्वेतभिक्षूणां सनधि विश्ववस्तु समस्तजीवादितत्त्व कर्मतापन्न समानतन्त्रत्वात् ज्ञातारमिति दिगबरावमर्शः ज्ञातारमिति

च तृन्नन्तमिति (तृन्नदन्तेत्यादिना) कर्म्मणिपष्ठी प्रतिषेधः । नन्वेकस्मिन्नेव वक्तरि स्वात्मानं निर्दिशति कथमानये इत्येकवचनं न इति च बहुवचनं समगंसातामिति नैतद्वचनीयं वचनीयम् ॥

पर और अपर भेदसे दो प्रकारके जो अपकारी है उनका भी आगे कही रीतिसे इसी श्लोक करके सूत्रकार स्मरण करते भए, पूर्व कहा हुआ जो चार प्रकारका संघ अथवा संघमें आरोप्य अर्थात् संघका मंतव्य जो शास्त्र उसकी "ई" नाम लक्ष्मी अथवा महिमाको जो अनेक प्रकारके झूठे दूषणोंका उद्भावन करके अर्थात् कथन करके अपने अपने अभिप्रायसे दूर करे अर्थात् नाश करे उसको कहिये तीर्थेश वैसा कौन है कि वहि रंगापकारी तीर्थांतरीय, उसका मै स्मरण करताहुं,

कयसे तीर्थांतरीयका मै स्मरण करता हुँ जिसका यागादिकोंमें (यज्ञादिकोंमें) हवि, चरु वगेराके देनेसे शक्र (इन्द्र) पूज्य है, इतना कहनेसे वेदको माननेवाले जो भट्ट प्रभाकर (मीमासाकार) कणभक्ष (कणाद) अक्षपाद (गौतम) कपिल, (साख्याचार्य्य) यह सर्व सूचन करवाये गये नाम सवजाने गये । फिर किस प्रकारके तीर्थेशका मै स्मरण करता हुं (गिरामीशं) जो कि वाचस्पति है इस विशेषणके कहनेसे नास्तिक मतको प्रवृत्त करनेवाले बृहस्पतिका सूचन (ज्ञान) करवा या (तथा) गिरां, नाम वाणिगोंकी (ई) नाम लक्ष्मी अर्थात् शोभाको जो दूर करे उसको कहिये ईश तत्वरूपसे (यथार्थरूपसे, पदार्थोका प्रतिपादन (कथन) करना ही वाणियोंकी शोभा है उस शोभाका वाणिगोंको अपोहमान (अभावमात्र) विपयक कहता हुआ तथागत (बौद्धाचार्य) दूर करता ही है इस प्रकार इस विशेषणकी (आवृत्ति) नाम एकके दो प्रकारके अर्थ करनेसे (सुगत) बौद्धाचार्य्यका लाभ होता है फिर कयसे तीर्थेशको मे, स्मरण करताहुं जो कि हम जो श्वेतभिक्षु श्वेतांवर, है हमारे मन्तव्य जो जगतके सर्व जीवाजीवादि पदार्थ है उनको समानतंत्र नाम एक दर्शनाश्रित होनेसे जानता है।

इस विशेषणसे दिगवराचार्य्यका बोध होता है (ज्ञातारं) यह तृन्प्रत्ययांत है इसलिये (तृन्नदन्तेत्यादि) सूत्र करके पष्ठीका निषेध हुआ है । प्रश्न करते है कि अपने बोधको करा रहे एक वक्तामें आनये यह एक वचन और (नः) यह बहुवचन किस रीतिसे संगत हो सकता है उत्तर देते है कि यह दूषण कहने लायक नहीं है.

न इत्यत्रापि वक्ता स्वस्यैकत्वेनैव निर्देशाद्बहुवचनं त्वेकशेषवशात् तथाहि ते चान्ये सर्वे श्वेतवाससोऽहं च प्रतिचिक्रंसितशास्त्र सूत्रधारो वयं तेषां नः । त्यदादिरित्यनेनास्मच्छब्दोऽवशिष्यते बहुवचनं च भवति ततोस्माकं श्वेतवासो दर्श-

नाश्रिताना सर्वेषां तत्व यो जानाति त च स्मरामीत्युक्त भवति । इत्थ चैकशेषशालिविशेषणं कुर्वाणैस्तच्छन्दोपदिष्ट-मार्गस्याशेषश्वेताम्बर पारतन्त्र्य स्वस्याविष्कृत पुनः कीदृश त रागद्वेषविजेतार इत प्राप्तसव-धमार सांसारिकानेकक्लेश स्वरूपशत्रुसमूहो यस्मिंस्तीर्थेशे स तथा त च कथमेतादृश तमित्याह । रागद्वेषविजा रागद्वेषाभ्यां कृत्वा यासौ निरु श्रीमदर्हत्प्रतिपादितात्तत्वात्पृथग्भाव. तया भगवदर्हत्प्रतिपादित तत्वमनुभवन्तोऽपि हि रागद्वेषकालुष्यकलङ्काक्रान्त-स्वांततया परे अपरथैव प्रलपन्तः सांसारिकक्लेशशात्रवगोचरता गच्छन्त्येव अनेन चाशेषाणामपि सभवैतिह्यप्रमाण वादिचरकप्रमुखानामाविष्करणम् । न खलु मोहमहाशैलषस्यैको नर्तनप्रकारो यदशेषतीर्थिकानां प्रत्येक स्मृति' कर्तु शक्येत ॥

क्यों कि (न) इस जगहमें भी ग्रथकारने अपनेको एक वचनसे ही कहा है यहु वचन तो एक शेष—समास होनेसे भया है समासका आकार कहते है (ते चान्ये सर्वे श्वेतवाससोऽहं च) जैन दर्शनमे रहनेवाले सपूर्ण श्वेताम्बर और प्रारभ करनेके लिये इच्छित जो शास्त्र उसका कर्ता मैं ऐसा समास करनेसे (यत) हुआ (षष्ठी) का (न) भया यहापर (त्यदादि) इस सूत्रसे (असद्) शब्द बाकी (शेष) रहता है और बहु वचन भी इसी सूत्रसे होता है इस विशेषणसे श्वेताम्बरोंके दर्शनमें आश्रित (स्थित) जितने हम लोग है हमारे सर्वके तत्वको जो जानता है उसका भी मै स्मरण करताहु यह बात कही जाती है । इस प्रकार एक शेष समासघटित विशेषणको करते हुये आचार्यने श्वेताम्बर (जैनभेद) दर्शनमें स्थित जितने श्वेताम्बर है उनके अधीन अपनेको प्रगट किया फिर किस प्रकारके तीर्थेशका मै स्मरण करताहु (रागद्वेषविजेतार) इस जगामे राग द्वेष विजा और (इतार) इसमें भी (इत) और आर इस प्रकारसे भग निकालकर अर्थ लिखते हैं कि जिसमें ससारके अनेक क्लेशरूपी शत्रुसमूहका सबध हुआ है अर्थात् जिसको ससारसबधी अनेक दु ख है (इतार) कायह अर्थ भया । अब (राग द्वेष विजा) का अर्थ लिखते है (राग और द्वेषसे उत्पन्न जो विट्) नाम श्री अर्हन्तके प्रतिपादित तत्वसे पृथग्भाव (जुदापना) उससे भगवान् अर्हन्तके कहे हुए तत्वको जानते हुए भी राग द्वेष रूपी जो (कालुष्य) कालक उससे भया जो कलक उस करके आच्छादित अत करण होनेसे तीर्थांतरीय जो है (बौद्धादिक) (अपरथैव) सो उलटा ही कहते हुए ससारके क्लेशरूपी शत्रुओंके सामने होते ही है अर्थात् ससारके अनेक दु खोंको पाते ही है । इस कहनेसे सभव ऐतिह्यादि प्रमाणोंको माननेवाले चरक (आयुर्वेद प्रवर्तक) से आदि लेकर

जितने वाकीके तीर्थातरीय है उन सभोंका आविष्करण नाम प्रगटपणा अर्थात् वोध होता है गोह (अज्ञान) रूपी जो महान् (शैलूष) नटोआ (नट) है उसके नर्तनका (नाचका) एक प्रकार नही है कि जिससे सर्व तीर्थारीगोंमें एक एकका सरण करनेको सामर्थ्य होय सके। इसलिये सामान्यसे कहा है.

नन्वेतान् प्रति–क्षेपार्थमुपक्षिपतोऽस्य रागद्वेषकालुष्यवृद्धिः स्यादिति श्रेयोविशेषार्थ मुपस्थितस्यास्याऽश्रेयसि प्रवृत्तिरापन्नेति शंकां निरसितुं रागद्वेषेति विशेषणं श्लिष्टमजीघटन् अरमत्यर्थं रागद्वेषयोर्विजयनशीलस्तेषां स्मृतिमसि करोमि नत्वन्यथेति तत्रभवदभिप्रायः। प्रमाणनयतत्वं खल्वत्र शुचिविचार चातुरीपूर्वमालोकनीयम्। न च रागद्वेषकषायितांतःकरणैर्विरच्यमानो विचारश्चारुतामञ्चतीत्यन्तरंगापकारि सरणम्। ननु तथापि कथमेतैर्दिव्यदृग्भिरर्वागदृशोऽस्य तत्वविचारः साधीयानित्यारेकामपाकर्तुं श्लेषेणैव व्यशीशिपन्। ज्ञातारं विश्ववस्तुनः। निमलकेवलालोकालोकित लोकालोकश्रीमदर्हत्प्रतिपादितागमवशात् खल्वहमपि कामं विश्वस्तुनो ज्ञातेति। बृहद्वृत्तौ तु स्वकर्तृकत्वा त्वामीषामपकारिणां निराचिकीर्षितत्वेन सरणं व्याख्यायि। न खलु महता–मीदृशमर्थमित्थं प्रकटगता मौचिती नाति वर्त्तते फलानुमेयप्रारंभत्वात्तेषां सूचामात्रन्तु सूत्रे कतिपयात्यंतसहृदयहृदयसंवेद्यमनिरुद्धमिति। ननु यदिह ज्वरप्रसरापसारिशेषशिरोरत्नोपदेशवदशक्यानुष्ठानाभिधेयं जननीपाणिपीडनोपदेशवदनभिमतप्रयोजनम्। दशदाडिमादिवाक्यवत्संबन्धवंध्यं च न तत्र प्रज्ञाचक्षुषः क्षोदिष्टामपि प्रवृत्तिं प्रारभन्ते तद्वदीदमपि तथा न तर्हि तेषां प्रवृत्तौ निमितं स्यादित्यारेकामधरीकर्तुमचीकृतन्।

शंका करते है, कि पूर्वोक्त रीतिसे पर तीर्थिकोंका खंडन करनेके लिये (उपन्यास) अंशानुपूर्व कोटीमें प्रवेश करते हुए आचार्यको राग द्वेषरूपी कालुष्य (कालक) की वृद्धि होवेगी इससे कल्याण विशेषके लिये प्रवृत्त आचार्यकी अकल्याणकारक (दोषकारक) प्रवृत्ति होगई इस शंकाको दूर करनेके लिये (रागद्वेषविजेतारं) यह (श्लिष्ट) अनेकार्थक विशेषणको आचार्य करते भये (रागद्वेषविजेता) और (अरं) इस प्रकार छेद निकालकर अर्थ लिखते हैं (अरं) अत्यंत अर्थात् सर्वथा रागद्वेषको जीतनेके स्वभाववालेका मै स्मरण करताहुँ। परन्तु रागद्वेष विशिष्टका, मैं स्मरण नहीं करता इस प्रकार पूज्य आचार्यका अभिप्राय है। प्रमाण और नयका स्वरूप इस शास्त्रमें युक्ति युक्त विचारसे (आलोचनीय) ज्ञातव्य है रागद्वेषसे कलंकित है, अंत करण

निाका वैसे पुरुषोंने रचित जो विचार सो (चारुता) सौंदर्यताको धारण नहीं करता है अर्थात् राग द्वेषवाले पुरुषोंके विचारसे यथार्थ पदार्थकी सिद्धि कभी नहीं हो सकती इसलिये (अतरग) अपकारियोंका स्मरण भी आचार्यने करा । शका करते हैं, कि यह बात तो हमने जानी परतु दिव्यदृष्टि (ज्ञानदृष्टि) वाले कणाद आदि आचार्योंके विचारसे (अर्वाग्दृष्टि) चरमदृष्टिवाले प्रकृत आचार्यका विचार श्रेष्ठ (अच्छा) किस रीतिसे हो सकता है अर्थात् नहीं होय सकता इस शकाको दूर (नाश) करनेके लिये अपना विशेषणकर व्याख्या करते हैं अर्थात् (ज्ञातार विश्ववस्तुन) इसको अपना भी किसी तरहसे विशेषण करके व्याख्या करते हैं, विमलकेवलालोक (ज्ञान) से देखा है लोकालोक अर्थात् सर्व जगत जिन्होंने वैसे जो श्रीमान् अर्हत उन्होंने रचित (रचा) जो शास्त्र उससे मैं भी यथार्थ रीतिसे जगतके सर्व पदार्थोंका ज्ञाता ही हूँ। इस ग्रथकी बडी टीका ग्रथकारने स्वय करी है इसलिये पूर्वोक्त अपकारियोंका खडन करनेके लिये स्मरणकी व्याख्या आचार्यने नहीं ही करी है क्योंकि जो बडे पुरुष कार्य किये पहिले ही दूसरोंके कार्योंको बुरा कहते हैं उनकी अवश्य लघुता (छुटाई) होती ही है क्योंकि महान पुरुषोंका कार्यारभ, फल (समाप्ति) सेही जाना जाता है, और सूत्रमें तीर्थांतरीय पुरुषोंका सूचन मात्र तो कितनेक सुहृद पुरुषोंके हृदयको अच्छा लगनेसे विरुद्ध नहीं है वैसा जानना प्रश्न करते हैं कि जो (शास्त्रादिक) इस जगतमें ज्वरप्रसरके नाश करनेके लिये शेषनागके शिरमें स्थित जो रत्न (मणी) उसके उपदेशकी तरह अशक्यानुष्ठानाविधेय होता है अर्थात् जिस तरहसे किसी ज्वर (ताप) वाले पुरुषको किसीने कहा कि यदि शेषनागके शिरका रत्न आवे तो ज्वर जा सकता है उस रत्नका ले आना जिस प्रकार अशक्य, कठिन, है इस रीतिसे जिस शास्त्रके अभिधेयका ज्ञान अशक्य होता है और माताके पाणिपीडन, विवाहके उपदेशकी तरहसे जो अनभिमत, अनिष्ट, प्रयोजन वाला होता है और जो दशदाडिमादि वाक्योंकी तरहसे सबधशून्य होता है उस शास्त्रमें पडित पुरुष थोडीभी प्रवृत्तिको नहीं करतेहैं सो जेकर प्रकृत शास्त्र भी अशक्यानुष्ठान प्रयोजनादि युक्त होवे अर्थात् यदि प्रकृत शास्त्रसे अभिमत प्रयोजनादिकोंका सिद्ध होना असभावित होवे तो यह शास्त्र भी पडितोंकी प्रवृत्तिका निमित्त न होवे अर्थात् पडित लोग इसमेंभी प्रवृत्ति न करेंगे इस शकाको दूर करनेके लिये ग्रथकार सूत्र रचते हैं।

प्रमाणनयतत्वव्यवस्थापनार्थमिदमुपक्रम्यते इति ।

प्रमाण और नयका जो तत्व, यथार्थ स्वरूप, उसके व्यवस्थापन (ठराव) के लिये प्रकृत शास्त्रका आरभ किया जाता है ।

प्रकर्षेण संशयाद्यभावस्वभावेन मीयते परिच्छिद्यते वस्तु येन तत्प्रमाणं नीयते गम्यते श्रुतप्रमाणपरिच्छिन्नार्थैकदेशोऽनेनेति नयस्ततो द्वयोरपि द्वन्द्वे बह्वच्त्वेपि प्रमाणस्याभ्यर्हितत्वेन लक्षणहेत्वोरित्यादिवदल्पाच्तरादपि नयशब्दात्प्रागुपादानं ततः प्रमाणनययोस्तत्वमसाधारणं स्वरूपं तस्य व्यवस्थापनं यथावस्थिततत्वनिष्टङ्कनं तदेवार्थः प्रयोजनं यत्रोपक्रमणे तत्तदर्थमिति क्रियाविशेषणमेतत् न पुनरिदमितिनिर्दिष्टस्य शास्त्रस्य आचार्यो हि शास्त्रेण कृत्वा प्रमाणनयतत्वं व्यवस्थापयतीत्याचार्यव्यापारस्यैवोपक्रमस्य तद्विशेषणमनुगुणम् ॥

जिस करके पदार्थका परिच्छेद (बोध) यथार्थ रूपसे होता है सो प्रमाण कहाता है और शास्त्ररूप प्रमाणसे परिच्छिन्न, ज्ञात, जाने गए, पदार्थका एक देश जिससे जाना जावे उसको (नय) कहते हैं । इस सूत्रमें प्रमाण, और नय, इन दोनोंका (द्वन्द्व समास) किया है द्वंद्व समासमें अल्प स्वरवाले शब्दका (अल्पाच्तरं) इस सूत्र करके पूर्व निपात होता है इसलिये यहांपर प्रमाण शब्दका पूर्व निपात ठीक नहीं है । इस शंकाको दूर करनेके लिये (बह्वच्त्वेपि । इत्यादि लिखते है) जिस तरहसे (लक्षणहेत्वोः) इस जगामें हेतु शब्दसे अधिक (बहुत) स्वरवाले भी लक्षण शब्दका पूर्व निपात भया है इसी तरहसे नय शब्दसे अधिक स्वरवाले भी प्रमाण शब्दका, अभ्यर्हित, पूजित होनेसे पूर्व निपात किया है तब क्या अर्थ भया कि प्रमाण और नयका जो (असाधारण) सब पदार्थोंसे अतिरिक्त, स्वरूप उसकी सिद्धि ही है प्रयोजन जिस उपक्रम (क्रियाविशेष)में उसको मै करता हू इस रीतिसे यह क्रियाका विशेषण है परन्तु शास्त्रका यह विशेषण नहीं क्योंकि आचार्य ही शास्त्र करके प्रमाण और नयका व्यवस्थापन करता है इसलिये आचार्यका व्यापार जो उपक्रम है उसका विशेषण करना ही (प्रमाणनयतत्व व्यवस्थापनार्थको) ठीक है ।

नतु शास्त्रस्य तस्य करणतयैव तत्रोपयोगात् कर्तृत्वस्य तत्रौपचारिकत्वात् । इदं स्वसंवेदनप्रत्यक्षेणान्तस्तत्वरूपतया प्रतिभासमानं प्रकृतं शास्त्रमुपक्रम्यते बहिः शब्दरूपतया प्रारभ्यते इदं च वाक्यं मुख्यतया प्रयोजनमेव प्रतिपादयितुमुपन्यस्तं तस्यैव प्राधान्येन प्रवृत्त्यङ्गत्वात् । अभिधेयसंबन्धौ तु सामर्थ्याद्गमयति तथाहि प्रमाणनयतत्वमभिधेयं प्रमाणनयतत्वेत्यवयवेन लक्षितं सुखानुष्ठेयं चैतदित्यशक्यानुष्ठानाभिधेयाशंका निराकारि प्रयोजनं द्वेधा कर्तुः श्रोतुश्च तत्र कर्तुः प्रयोजनं प्रमाणनयतत्वनिश्चयव्यवस्थापनं प्रमाणेत्यादि सूत्रावयवेन ण्यंतेन साक्षादाचचक्षे श्रोतृप्रयोजनं च

न्यवस्थेत्युपसर्गधातुसमुदायेनैव तदन्तरगत प्रत्याय्यते । प्रमाणनयतत्वनिश्चयमिच्छवोहि श्रोतारोऽह्नप्रथमिकयात्र शास्त्रे प्रवर्तेरन् अभिमत चैतत् प्रयोजन द्वयोरपीत्यनभिमतप्रयोजनत्वाशंका निरस्ता । सबधस्त्वभिधेयेन सह वाच्यवाचकभावलक्षण' शास्त्रस्यावश्यभावीत्यनुक्तोप्यर्थाद्गम्यते इति सबन्धरहितत्वाशंकानुत्थानोपहतैवेति ।

शास्त्रका विशेषण करना ठीक नहीं है क्योंकि शास्त्रका, करणता, असाधारण–कारणता करके ही व्यवस्थापनमें (उपयोग) जरूरत है, शास्त्रको कर्तृत्व, कर्ता पणा तो उपचार मात्रसे हे (अन्यत्र स्थित धर्मको किसी कारणसे अन्यत्र कहना ही) उपचार, कहलाता है। इद, स्वसवेदन स्वरूप प्रत्यक्षसे, अत , भीतर, अर्थरूपता करके प्रकाश हो रहा जो प्रकृत शास्त्र उसका मैं, बहि , बाहर, शब्दरूपसे प्रारभ करता हू अर्थात् शास्त्र दो प्रकारका होता हे एक, अर्थस्वरूप और द्वितीय शब्दस्वरूप, अर्थस्वरूप, शास्त्र भीतर रहता है और शब्दस्वरूप बाहर रहता है अर्थरूप शास्त्रका, भान होनेसे ही शब्दरूप शास्त्र हो सकता है, प्रधानरूपसे प्रयोजन ही प्रवृत्तिका अग है इसलिये प्रमाणनय, इत्यादि जो वाक्य है सो मुख्यसे प्रयोजनको ही कहनेके लिये शास्त्रारभमें कहा है अर्थात् श्रोता (जिज्ञासु) लोग अपने, अभीष्ट प्रयोजनको जानने मात्रसे ही प्राय शास्त्र पढ़नेमें प्रवृत्त हो जातेहैं इसलिये मुख्यसे प्रयोजन कहनेके लिये ही प्रथम वाक्य रचा हे अभिधेय और सबधका तो आदिवाक्य अर्थात् बोध, करवा देता है किस रीतिसे इन सभोंका बोध कराता है सो कहते हैं प्रमाण और नयका यथार्थ स्वरूप इस शास्त्रका अभिधेय (वाच्य) है (सो प्रमाणनयतत्व) यह जो सूत्रका एक देश इससे जाना जाता हे और सुखपूर्वक ही यह जाना जाता हे इससे (काठिन्य) की जो पूर्व शका करीथी सो भी हटाई गई। प्रयोजन दो प्रकारका होता है एक कर्ताका और दूसरा श्रोताका प्रमाण और नयके स्वरूपका व्यवस्थापन (ठराव) कर्ताका प्रयोजन होता है सो प्रमाणेत्यादि जो पूर्वोक्त सूत्रका एकतावयव है उस करके साक्षात् ही कहा गया (अर्थात् प्रमाणनयतत्व व्यवस्थापन रूप जो सूत्रका एक देश उस करके साक्षात्, मुख्यवृत्तिसे ही कहा जाता हे) और श्रोताका प्रयोजन, व्यवस्था है सो (वि अव) उपसर्ग विशिष्ट जो (स्था) धातुरूप समुदाय उस करके वक्ताके प्रयोजनके अतर (भीतर) गत जाना जाता है क्योंकि प्रमाण और नयके तत्वके निश्चय करनेकी इच्छावाले श्रोतालोग मैं सबसे पहिले इस शास्त्रमें प्रवृत्त हो जाना ऐसी इच्छावाले होते हैं।

पूर्वोक्त प्रयोजन वक्ता और श्रोता दोनोंको अभीष्ट है। इसलिये अनभिमत प्रयोजनत्वकी जो पूर्व शका करी थी सो हट गई

शास्त्रका वाच्यके साथ वाच्यवाचक भावरूप संबंध (अवश्यंभावी) अवश्य होता ही है इसलिये न कहा हुआ भी अर्थात् जान जाता है इसलिये संबंधरहित-त्वकी आशंका तो उठ ही नहीं सकती।

अत्र धर्म्मोत्तरानुसारी प्राह। प्रयोजनमादिवाक्येन साक्षादाख्यायत इति न क्षमे यतः संबद्धमसम्बद्धं वा तत्तदभिदधीत यद्यसम्बद्धमेव तदादिवाक्यादेव समस्तशास्त्रार्थसंदर्भगर्भाविर्भावसंभवात् किं प्रकृतशास्त्रोपक्रमक्लेशेन। सम्बद्धं चेत्तदसम्बद्धशब्दार्थयोः संबन्धासंभवात् तथाह्ययमनयोर्भवं-स्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वाच्यवाचकभावो वा भवेत्। प्राचीनपक्षे सएवात्मा यस्येति विग्रहे किं, तच्छब्दस्य शब्द एव तदर्थो वा वाच्यतया त्वच्चित्ते चकास्यात् यदि शब्दस्तर्हि समस्ताप्यर्थाः स्वस्ववाचकस्वभावा बभूवांस इति युगपदशेषाणां तेषां निःशेषकालं यावत् गुमगुमायमानतापत्ते-रयत्नोपनतपणववेणुवीणामृदंगसङ्गसङ्गीतकारंभनिभृतमिव त्रिभुवनं भवेत्। अथ तदर्थस्तर्हि तुरगतरङ्गशृङ्गारभृङ्गारादि-शब्दोच्चारणे चूरणप्लावनसम्भोगघट्टनादिप्रसक्तिः। किञ्चातीतानागतवर्द्धमान पद्मनाभादिकल्पितकथादिवचसामुच्चा-रणमचतुरस्रं स्यात्। नहि वृक्षात्मा शिंशपा तमन्तरेणापि क्वापि संपद्यते तथात्वेहि स्वरूपमेवासौ जह्यात् कुम्भस्तम्भा-म्भोरुहादिवत्। प्रत्यक्षमपि चैतयोस्तादात्म्यं न क्षमते कर्णकोटरकुटुम्बी खल्वभिलापः प्रत्यक्षेण लक्ष्यते क्षितितलाव-लम्बी तु कलशकुलिशादिर्भावराशिरिति कथमनयोरैक्यं शक्येत वक्तुं तन्न तादात्म्यपक्षोपक्षेपः सूक्ष्मः।

यहापर (धर्म्मोत्तरानुसारी) बौद्ध विशेष, कहता है कि आदिवाक्यसे प्रयोजन साक्षात् कहा जाता है यह मैं नहीं मानता हूं क्योंकि आदिवाक्य प्रयोजनके साथ (सम्बद्ध) संबंधवाला, होकर प्रयोजनको कहता है किंवा विना सम्बद्ध होकर कहता है यदि असम्बद्ध होकर ही कह देता है तो संपूर्ण जो न्याय व्याकरणादि शास्त्र उनके जो अर्थ तत्व उनका जो, संदर्भ (रचना-विशेष) उसका (गर्भ) क्या मर्म, उसका बोध आदि वाक्यसे ही होय सकेगा तो फिर प्रकृत शास्त्रके उपक्रम क्लेशसे क्या सिद्ध होगा अर्थात् जिस प्रकार असंबद्ध प्रयोजनका आदि वाक्यसे बोध हो जाता है इसी तरहसे (असम्बद्धत्वाविशेषात्) संपूर्ण शास्त्रोंके तत्वका बोध होजावेगा तो फिर शास्त्र करनेकी क्या आवश्यकता है (अर्थात् नहीं है) इसलिये असंबद्ध ही आदिवाक्य प्रयोजनको कह देता है यह नहीं कह सकते प्रयोजनके साथ संबन्धको पाकर आदिवाक्य प्रयोजनको कहता है वैसा भी नहीं कह सकते क्योंकि घटपटादिरूप शब्द और अर्थ (घटपटादि पदार्थ) जो है इनको परस्पर, आपसमें, असंबद्ध होनेसे

सम्बन्धका अभाव है अर्थात् इनका संबंध कदाचित् भी नहीं हो सकता क्यों नहीं हो सकता सो कहते है यदि (जेकर) शब्द और अर्थका सम्बन्ध होवे तो तादात्म्य अथवा तदुत्पत्ति अथवा, वाच्यवाचक भाव ही होय सकेगा तादात्म्य पक्षमें सचासौ आत्मा तदात्मा इस समासमें तत् शब्दका अर्थ (बोध्य) शब्द तुमारे मतमें प्रकाशमान होता है किंवा अर्थ, वाच्य, होता है अर्थात् पूर्वोक्त समासमें तत् शब्द करके, दोनोंमेसे एकका ज्ञान हो सकता है शब्दका अथवा अर्थका इन दोनोंमेसे तुम तत् शब्दका अर्थ शब्दको कहते हो अथवा अर्थको कहते हो। यदि तत् शब्दका अर्थ शब्द है कहोगे तो फिर संपूर्ण घटपटादि पदार्थ स्वस्ववाचक स्वभाव हो जायेंगे । अर्थात् आपही अपनेको कहने लग जावेंगे तब एक ही कालमें संपूर्ण पदार्थोंको सर्व कालमें गुमगमायमानताकी आपत्ति, दोष, आजावेगा अर्थात् पदार्थों—को शब्दस्वरूप होनेसे सर्व पदार्थ संपूर्ण कालमें अपनेको कहते रहेंगे तो (गुमगुम) सा होने लग जावेगा तब अयत्नसिद्ध पणव वेणु तथा वीणा मृदङ्ग आदि वाद्य विशेषोंसे उत्पन्न भए सङ्गीतसे भरे हुएकी तरह तीनों भुवन हो जायेंगे (तथा च प्रत्यक्षबाध)। यदि तत् शब्दसे अर्थका बोध कहोगे तब तुरग तरङ्ग शृङ्गार भृङ्गार आदि शब्दोंके उच्चारण करनेसे (यथासङ्ख्येन) चूरण स्नावन संभोग संघट्टनकी प्राप्तिरूप आपत्ति आ जावेगी अर्थात् अर्थको शब्दरूप माननेपर जिस पदार्थसे जो अर्थक्रिया होती है। सो अर्थक्रिया उस पदार्थ—के वाचक शब्द मात्रसे भी होनी चाहिये। एक दोष कहकर दूसरा और कहते हैं, कि यदि तत् शब्दका अर्थ वाच्य ही करोगे तब अतीत, गत, अनागत, भविष्यत्, वर्द्धमान, पद्मनाभ आदिकोंने कल्पित (रचित) कथा आदि वचनोंका उच्चारण अयुक्त हो जावेगा। क्योंकि वृक्षस्वरूप जो शिंशपा है सो वृक्षसे विना कभी भी किसी जगहमें नहीं रह सकता है। यदि रह जावे तो कुम्भस्तम्भ अम्भोरुहादिकोंकी तरह अपने स्वरूप—को ही शिंशपा छोड देवे। प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी इनका तादात्म्य बाधित है क्योंकि शब्द तो कर्ण कोटरमें—मिला हुआ प्रत्यक्ष (श्रोत्र) से जाना जाता है और पृथवीपर रहते हुए घट कुलिश, वज्रादि पदार्थ मालम होते हैं तब इनका ऐक्य किस रीतिसे कह सकते हैं इसलिये तादात्म्य पक्षका कथन युक्तिसिद्ध नहीं है ॥

तदुत्पत्तिपक्षेपि किम् शब्दादर्थ उन्मज्जेदर्थाद्वा शब्द' प्राचिकविकल्पे कलशादि शब्दादेव तदर्थोत्पत्तेर्न कोऽपि कुम्भकारः दण्डचक्रचीवरादिकारणकलापमीलनक्लेशमाश्रयेत्। प्रयोजनवाक्यमात्रादेव च तत्प्रसिद्धे' प्रकृतशास्त्रारम्भाभियोगोऽपि निरुपयोग. स्यात्। द्वितीये पुनरनुभवबाधन, अधररदनरसनादिभ्यः शब्दोत्पत्तिसंवेदनात्। वाच्यवाचक-

भावपक्षोऽपि नक्षेमकारः । यतोऽसौ वाच्यवाचकयोः स्वभावभूतस्तदतिरिक्तो वा भवेत् । आद्यभिदायां वाच्यवाचकावेव न कश्चिद्वाच्यवाचकभावोनाम संबन्धः द्वितीयभिदायां तु वाच्यवाचकाभ्यामेकान्तेनभिन्नोऽसौस्यात् । कथञ्चिद्वा । आद्य- भेदे भेदत्रयं त्रौकते । किमयं नित्योऽनित्यो नित्यानित्यो वेति । नित्यश्चेत् सम्बन्धिनोरपि नित्यतापत्तिः अन्यथा सम्बन्धस्याप्यनित्यत्वानुषङ्गात् तत्सम्बन्धिसम्बद्धसम्बन्धस्वभावप्रच्युतेः । अथानित्यस्तदा सर्ववाच्यवाचकेष्वेकः प्रति वाच्यवाचकम् भिन्नोवा एकश्चेत्तर्ह्येकस्मादेव शब्दादशेषपदार्थप्रतिपत्तिप्रसङ्गः । द्वितीयपक्षेतु किमसौ तत्र सम्बद्धोऽसंबद्धो वा भवेत् । असम्बद्धश्चेत्तर्हि घटशब्दादपि पटप्रतीतिः स्यात् पटशब्दाच्च घटप्रतीतिर्द्वयोरपि वाच्यवाचकभावयोरु- भयत्राविशेषात् । अथ संबद्धस्तादात्म्येन तदुत्पत्त्या वा । नतावत्तादात्म्येन भेदपक्षकक्षीकारात् । नापि तदुत्पत्त्या । यतः किमयं वाच्योत्पत्तिकाले जायेत १ वाचकोत्पत्तिकाले २ युगपदुभयोरुत्पत्तिकाले ३ एकस्य प्रथममुत्पादेपि यदैव च द्वितीय उत्पद्यते तदैव वा ४ नाद्यौ पक्षावक्षुण्णौ द्वयाधारत्वेनास्यान्यतरस्याप्यसत्तायामुत्पत्तिविरोधात् । तार्तीयीक- विकल्पे तु क्रमेणोत्पदिष्णवः पदार्थाः शब्दाश्च अवाच्या अवाचकाश्च भवेयुः । तुरीयपक्षेतु किमसौ वाच्यवाचका- भ्यामेव सकाशादुल्लसेदन्यतएवान्यतोऽपि वा । आद्यकल्पनायामनाकलितसंकेतस्यापि नालिकेरद्वीपवासिनः शब्दो- च्चारणानन्तरमेव पदार्थप्रतीतिः स्यात्तदानीमेव तस्योत्पादात् ॥

तदुत्पत्तिपक्षमें भी क्या शब्दसे अर्थ, पदार्थ, उत्पन्न होता है अथवा अर्थसे शब्द होता है यदि शब्दसे अर्थ उत्पन्न होता है कहोगे तब घट आदि शब्दोंसे ही घटपटादि पदार्थोंकी उत्पत्ति होय सकेगी तब कोई भी पुरुष सूत्रखंड दंड चक्र चीवर आदि कारणोंके इकठ्ठा करनेमें क्लेश ना पावे अर्थात् घटादि शब्दोंसे ही घटादि पदार्थ उत्पन्न हो जायेंगे तब घट पद करनेवाला पुरुष दंड चक्र चीवर आदि कारणोंको इकठ्ठा करनेमें क्यों दुःखको पाते है । और भी दोष है कि आदि वाक्य- मात्रसे ही प्रयोजनकी सिद्धि हो जावेगी तब प्रकृत शास्त्रके प्रारंभका कुछ भी उपयोग नही रहेगा । इसलिये शब्दसे अर्थ उत्पन्न होता है वयसा नही कह सकते अर्थसे शब्द उत्पन्न होता है इस पक्षमें तो अनुभवका बाध, नाम विरोध, है, क्योंकि ओष्ठ दंत जिव्हा आदिकोंसे शब्द उत्पन्न होता हुआ मालूम होता है । वाच्यवाचकभाव पक्षभी कल्याणकारक नहीं है । क्योंकि वाच्यवाचकभाव जो संबंध है सो वाच्य और वाचकका स्वभाव (स्वरूपभूत) है किंवा उससे भिन्न है । स्वरूप पक्षमें वाच्य

वाचकभाव नामक कोई संबध सिद्ध नहीं हुआ किंतु वाच्य वाचक ही हुए भेद, पक्षमें भी क्या वाच्य वाचकसे संबंध सर्वथा भिन्न है अथवा कथञ्चिद्भिन्न है सर्वथा भेद पक्षमें भी क्या यह संबध नित्य है ? अथवा अनित्य है अथवा नित्यानित्य है इस प्रकारसे तीन भेद प्राप्त होते है यदि नित्य कहोंगे तब संबधियोंको भी नित्यत्व मानना रूप दोष आ जावेगा क्योंकि सम्बंधियोंको अनित्य माननेसे संबंधको भी अनित्यत्वकी प्राप्ति होती है संबधियोंको अनित्य मानकर संबधको नित्य माननेसे (अपने संबधियोंके साथ, सम्बद्ध संबंधवाला होकर नाम मिलकर ही) रहना जो संबंधका स्वभाव है उसकी हानि हो जावेगी। इसलिये वाच्यवाचकसे अत्यंत भिन्न जो उनका संबंध तुमने कहा है उसको नित्य नहीं कह सकते यदि संबंधको अनित्य है कहोगे तब क्या संपूर्ण वाच्यवाचकोंमें एक ही है अथवा प्रति, एक एक, वाच्यवाचकमें भिन्न भिन्न है यदि सभोंमें एक ही है तब एक ही शब्दसे संपूर्ण पदार्थोंके बोधका प्रसङ्ग हो जावेगा। अर्थात् जब एक घट शब्दका वाच्यवाचक भावरूप संबंध संपूर्ण पदार्थोंके साथ मान लिया जावेगा तो घट शब्दसे केवल घट पदार्थका ही बोध न होना चाहिये। किंतु (सम्बद्धत्वाविशेषात्) जगतके संपूर्ण पदार्थोंका बोध होना चाहिये इसलिये संपूर्ण वाच्यवाचकोंमें एक ही संबंध नहीं कह सकते हैं। प्रति वाच्यवाचकमें भिन्न पक्षमें भी क्या वह जो सम्बन्ध है सो वाच्यवाचकमें, संबद्ध, मिला हुआ है अथवा असम्बद्ध है। यदि असम्बद्ध है तब घट शब्दसे भी पटकी और पट शब्दसे घटकी प्रतीति होनी चाहिये। क्योंकि दोनों ही वाच्यवाचक भावरूप संबंधोंको घट और पटमें असंबद्धत्वका अविशेष है॥ यदि सम्बद्ध है। तो क्या (तादात्म्य) से है अथवा (तदुत्पत्ति) रूप संबंधसे है। वाच्यवाचकसे भिन्न पक्ष तुमने माना हुआ है इसलिये (तादात्म्य) से तो नहीं कह सके हे। तदुत्पत्तिरूप संबंधसे भी सम्बद्ध नहीं कह सके क्योंकि क्या यह संबंध वाच्यकी उत्पत्ति कालमें उत्पन्न होता है ? अथवा वाचककी उत्पत्ति कालमें होता है ? वा एक कालमें दोनोंकी उत्पत्ति कालमें होता है (पहिले) एक वाच्य अथवा वाचकके उत्पन्न हो जानेपर भी जिस समयपर द्वितीय उत्पन्न भया उसी समयपर होता है। इस रीतिसे चार विकल्प भए इनमेंसे आद्य, पहिले दो पक्ष तो खंडित ही है अर्थात् ठीक नहीं हैं क्योंकि संबंधके आधार, आश्रय वाच्यवाचक दोनों हैं तब एकके होनेपर भी एकके न होनेसे इसकी उत्पत्ति कथञ्चिद् भी नहीं होय सकती। तृतीय विकल्प पक्षभी ठीक नहीं क्योंकि क्रमसे उत्पन्न होनेवाले जो पदार्थ और शब्द है सो अवाच्य और अवाचक हो जावेंगे। चतुर्थ विकल्पमें

भी क्या यह जों संबन्ध है सो वाच्य और वाचकसे ही उत्पन्न होता है अथवा किसी दूसरेसे ही होता है अथवा वाच्य वाचक सहित जो अन्य, संकेत, उससे होता है । आद्य पक्ष मानेंगे तब सङ्केतके न जाननेवाले नालिकेर द्वीपवासी पुरुषको भी शब्दोच्चारणके बाद ही पदार्थका ज्ञान होजाना चाहिये क्योंकि तवमते पदार्थके दर्शन समयमें ही वाच्य वाचक भावरूप संवन्धकी उत्पत्ति हो गई है ॥

अथोत्पन्नोप्यसौ सङ्केताभिव्यक्त एव वाच्यप्रतिपत्तिनिमित्तं ननु कार्य्यकारणभावविशेष एवाभिव्यंग्याभिव्यञ्जक-भावस्तत्र चान्यतोऽपीति विकल्पप्रतिविधानमेव समाधानं । अथान्यतः सङ्केतादेवायमुत्पद्यते । तदप्यवद्यम् तदाधारस्य धर्म्मस्यान्यत एवोत्पत्तिविरोधात् न चैवं वाच्यवाचकयोस्तदुत्पत्तिसंबन्धोऽस्य कथितः स्यात् । अथ सङ्केतसहकृताभ्यां वाच्यवाचकाभ्यामेष जायत इत्यर्थवानन्यतोऽपीति तृतीयः पक्षः कक्षीक्रियते। नन्वसौ सङ्केतः प्रतीते वस्तुनि विधीयेता-प्रतीते वा । नतावदप्रतीतेऽतिप्रसङ्गसङ्गतेः । नापि प्रतीते यतस्ततक्षणिकत्वेन तदानीमेव खरसमीरसमीरिताम्भोधरध्वं-समध्वंसिष्टेति कुत्र सङ्केतः क्रियेत । अथ तत्समानजातीयक्षणपरंपराया विद्यमानत्वात् कथं न सङ्केतगोचरता तस्य तदसन्नखल्वप्रतीतं विद्यमानमपि शब्दगोचरीभूयमुपनेतुं शक्यमतिप्रसक्तेः । यच्च प्रथमं प्रतीतं तत्तदानीमेव व्यतीतं । एवं शब्दोपि गवादिः प्रतीतोऽप्रतीतो वा तत्र सङ्केत्येतेति प्राग्व–दोषाः सङ्केताभावे च कथम् वाच्यवाचकभावोत्पादः। स्तां वा, ते शब्दार्थव्यक्ती क्षणिकत्वपराङ्मुखे उत्पादयताश्च सङ्केतसहकृते वाच्यवाचकभावम् किन्तु न ते एव व्यव-हारकालमनुगच्छतः इत्यर्थान्तरे शब्दान्तरे च वाच्यवाचकभावोत्पत्तये सङ्केतान्तरं कर्तव्यम् । तथा च व्यवहाराभाव एव भवेत् । प्रतिवाच्यवाचकविशेषं सङ्केतकर्तुरवश्यम्भावाभावात् ।

यदि उत्पन्न भी संवन्ध संकेतसे अभिव्यक्त होकर ही वाच्यके निश्चयमें कारण होता है ऐसा कहते हो तब हम कहते हैं कि अभिव्यंग्याभिव्यञ्जकभाव कार्यकारणभाव विशेष ही है उसमें अन्यतोपि इस विकल्पका ही उत्तर है । सकेत मात्रसे वाच्य वाचकभाव संवन्ध उत्पन्न होता है यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि वाच्य और वाचकमें रहनेवाले धर्म्म, संबन्ध, की अन्य, सङ्केत, मात्रसे उत्पत्तिका विरोध है अर्थात् जो धर्म्म (जिसमें) कथञ्चित् अभेद संवन्धसे रहता है उसमें वह आधार द्रव्य भी अवश्य कारण होता है । जैसेकि घटमें रहनेवाले रूपमें घट कारण है इसलिये वाच्य वाचकमें रहनेवाले संवन्धमें वाच्य

वाचक कारण ही नहीं हैं किंतु सङ्केत मात्र ही कारण है यह कथन ठीक नहीं है। और सङ्केत मात्रसे सबन्धकी उत्पत्ति मानलेनेपर वाच्य और वाचकका तदुत्पत्ति सबन्ध है वैसा भी सबन्धको नहीं कह सकते है। यदि सङ्केत सहकृत जो वाच्य और वाचक उनसे यह सबन्ध उत्पन्न होता है इस अर्थवाले तृतीय, अन्यतोऽपि पक्षको स्वीकार करोंगे तो हम पूछतें है कि यह जो सङ्केत है सो तुम प्रतीत, ज्ञात, पदार्थमें करते हो अथवा अज्ञातमें करते हो। अप्रतीत वस्तुविषयक तो सङ्केत तुम नहीं कह सकते क्योंकि (देशादि विप्रकृष्ट) दूरवर्ती, पदार्थमें भी सङ्केतकी प्राप्ति होजावेगी। प्रतीतमें भी नहीं कह–सकते क्योंकि सर्व पदार्थ क्षणिक होनेसे उत्पत्ति कालमें ही प्रचड वायुसे कपित मेघकी तरहसे नाश हो जावेंगे तब सङ्केत किसमें करोंगे। यदि प्रतीत क्षण, (पदार्थ) समान जातिवाले क्षणोंकी परपरा (धारा) के विद्यमान होनेसे पदार्थोंको क्यों नहीं सङ्केत गोचरता, विषयता, हो सकती अर्थात् अवश्य हो सकेगी वैसा कहते हो तब यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि विद्यमान भी अप्रतीत पदार्थ पूर्वोक्त अतिप्रसङ्ग दोषसे शब्दका विषय नहीं हो सकता। और जो पहिले प्रतीत हुआ था सो प्रतीति कालमें ही व्यतीत, नाश, हो चुका है। इसी रीतिसे शब्द भी प्रतीत अथवा अप्रतीत क्षणिक पदार्थमें सङ्केतित होता है प्रतीत अप्रतीत उभय विकल्पमें पूर्ववत् ही दोष होते हैं। जब पूर्वोक्त रीतिसे सङ्केत ही नहीं हुआ तब वाच्य वाचक भावरूप सबन्धकी उत्पत्ति किस रीतिसे होय सकती है अर्थात् नहीं हो सकती। तुष्यतु दुर्जन न्यायसे कहते है कि पूर्वोक्त शब्द और अर्थ व्यक्तियें (क्षणिकत्व पराङ्मुख) स्थिर, रहें और सङ्केतके साथ मिलकर वाच्य वाचक भावरूप सबन्धको उत्पन्न भी करें परन्तु जिस शब्द व्यक्तीका जिस अर्थ व्यक्तीमें सङ्केत किया था वही शब्दार्थ व्यक्ती व्यवहारकालपर्यंत नहीं रहती है, (इत्यनुभवसिद्ध) इसलिये अर्थान्तरमें और शब्दान्तरमें सङ्केतान्तर करना चाहिये यह सिद्धान्त हुआ तब इस सिद्धातसे तो ससारमें व्यवहारके अभावका ही सभव हो जावेगा। क्योंकि प्रतिवाच्यवाचकमें सङ्केतकर्ताके (अवश्यम्भाव) जरूर होनेका अभाव है अर्थात् जरूर नहीं है।

अथ सामान्यगोचर एव सङ्केतः क्रियते। तदेव च वाच्यवाचकभावाधिकरणम् कालान्तरव्यक्त्यन्तरानुसरणनैपुण्यधर च नित्यत्वाद् व्यक्तिनिष्ठत्वाच्चेति चेतन्नमनीषिमान्य सामान्यस्याभावात्। कथ प्रतिभासभाजनमपितन्नास्तीति चेन्न तत्प्रतिभासासिद्धेः। तथाहि दर्शने परिस्फुटत्वेनासाधारणमेव रूप प्रथते न साधारणम्। अथ साधारणमपि रूपमनुभूयते। गौगौरिति तदसाधीयः शावलेयबाहुलेयादि तीव्रतीव्रतरगोशब्दादिरूपविवेकेन तस्याप्रतिभासनात्।

प्रमातारश्च प्रायः प्रयोजनविशेपार्थिन एवेति तद्विपय संशयोत्पादनाय युक्तमेवेदमिति चेन्नास्यापि प्रागेव भावात् (तथाहि) प्रमाता शास्त्रमात्रमप्यालोक्यानुभूतप्रयोजनविशेषेण शास्त्रेणास्य वर्णपदवाक्यकृतसाधर्म्यमवधार्य्य च किमिदमपि सप्रयोजनमप्रयोजनंवा । सप्रयोजनमपि किमस्मदभिमतेन तेन तद्वर्तिकवान्येनेत्यादि वाक्यालोकनं विनापि संदिग्धे । अपि च, त्वन्मते न ध्वनिरर्थाभिधानधुरान्दधाति । तत्कथं प्रयोजनविशेपविपयसन्देहोत्पादनेपि प्रत्यलः स्यात् ॥

क्योंकि इसप्रकार कथन कर रहे जो तुम हो तुह्मारेको क्या आदिवाक्यका जो (उपदेश) नाम ग्रंथानुपूर्व कोटीमें प्रवेश उसका जो (प्रतिक्षेप) खंडन अर्थात् ग्रंथानुपूर्व कोटीमें आदिवाक्यके प्रवेशका न करना अभीष्ट है अथवा प्रकृत आचार्य्य कलिपत प्रयोजनसे अतिरिक्त कोई प्रयोजन आदि वाक्य करनेमें तुह्मारेको अभीष्ट है इन दोनोंमेंसे आदिम पक्ष ठीक नहीं क्योंकि तुमारे मतानुयायी आचार्योंने भी तत्तद्ग्रन्थोंमें आदि वाक्यका उपक्षेप किया है । द्वितीय पक्षभी ठीक नहीं है क्योंकि आचार्य कलिपत प्रयोजनसे अतिरिक्त कोईभी प्रयोजन आदि वाक्यका नहीं है ॥ वौद्ध वोलते है कि प्रयोजनांतर क्यों नही है प्रयोजनार्थी पुरुपकी प्रवृत्तिमें निमित्त जो अर्थसंदेह (प्रयोजनसंशय) उसकी उत्पत्तिरूप प्रयोजनांतर जो विद्यमान है । अर्थसंदेह किस रीतिसे होता है सो कहते है । शास्त्रांतरोंमें प्रयोजनवाक्य जिह्नोंने देखे है वयसे प्रयोजनार्थि पुरुपोंको (शास्त्रांतरीय) आदि वाक्योपदर्शित आदिवाक्यसे जानागया जो प्रयोजन उसका जो (भावाभाव) अस्तित्व नास्तित्व उसको विपय करनेवाला तत्प्रयोजनमत्राप्यस्ति नवा इत्याकारक संशय उत्पन्न होता है जिसप्रकार सस्य संपत्त्यादि है फल जिसका वयसे कृष्णादिमें (कृपीवल) करशान, पूर्वोक्ति फलके सन्देहमात्रसे प्रवृत्त होते है इस प्रकारसे ही जिन पुरुपोंको प्रयोजनका सन्देह भयाहै सो पुरुप भी अर्थसन्देह मात्रसे शास्त्रमें प्रवृत्त हो जावेंगे । जैन कहते है कि यदि तुम वैसा कहते हो तव यह कथन तो ठीक नहीं है क्योंकि प्रयोजन वाक्यके उपन्याससे पहिले भी प्रयोजनके (साधक) सिद्ध करनेवाले (वाधक) खंडन करनेवाले प्रमाणोंके न होनेसे अर्थविपयक संशय हो ही सकता है । अव यदि आदि वाक्यसे पहिले तो प्रयोजन सामान्यविपयक सन्देह होता है और प्रमाता जो पुरुप हैं सो बहुधा प्रयोजन विशेपकी इच्छावाले ही होते है इसलिये प्रयोजन विशेपविपयक संशयके उत्पन्न करनेके लिये आदिवाक्यका करना ठीक है ऐसा तुम कहते हो तो अव जैन कहते हैं कि यह पूर्वोक्त कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रयोजन विशेपविपयक संदेह भी आदिवाक्यसे पहिलेही हो सकता है । तथाहि । प्रमाता जो है सो शास्त्रमात्रको देख करके और जिस शास्त्रमें प्रयोजनविशेप अनुभूत है उसके साथ

प्रकृत शास्त्रके वर्णकृत पदकृत और वाक्यकृत साधर्म्यको जानकर क्या यह जो प्रकृत शास्त्र है सो भी प्रयोजनवाला है या नहीं। प्रयोजनवाला भी प्रकृत शास्त्र हमारेको अभीष्ट जो प्रयोजन है उसकरके प्रयोजनवाला है अथवा और किसी प्रयोजन करके प्रयोजनवाला है इस प्रकार आदिवाक्यके देखनेसे पहिलेभी संदेहवान् हो सकता है॥ और भी बात है कि तुम जो बौद्ध तुमारे मतमें ध्वनि जो शब्द है सो अर्थ जो पदार्थ है उसके अवधान नाम कथनकी धुराको नहीं धारण करती है अर्थात् शब्दसे अर्थ नहीं कहा जाता है तब प्रयोजनविशेषविषयक सन्देहको उत्पन्न करनेमें भी किस रीतिसे समर्थ हो सकता है अर्थात् नहीं होय सकता॥

अर्चटश्चर्चचतुरः पुनराह इह प्रेक्षावतां प्रवृत्तिः प्रयोजनवत्तया व्याप्ता ततो यन्निष्प्रयोजनं नतत्तैरारम्भणीयम्। यथा काकदन्तपरीक्षा। तथा चैतदिति शास्त्रारम्भप्रतिषेधाय प्रयुज्यमानाया व्यापकानुपलब्धेरसिद्धतोद्भावनार्थमादिवाक्यं कर्तव्यमिति तदप्ययुक्तम् वाक्यस्य प्रमाणत्वेनानवस्थिततया प्रयोजनविशेषसद्भावप्रकाशनसामर्थ्यशून्यत्वात्तदसिद्धिमुद्भावयितुमपर्याप्तत्वात्॥

चर्चा करनेमें चतुर जो (अर्चट) बौद्धविशेष सो फिर कहता है क्या कि इस जगत्में बुद्धिमानोंकी प्रवृत्ति प्रयोजनवत्तासे व्याप्त है इसलिये जो निष्प्रयोजन है उसका आरंभ बुद्धिमान पुरुष कदाचित् भी नहीं करते है जिस तरहसे काकदन्तपरीक्षाके लिये बुद्धिमान नहीं प्रवृत्त होते। इस प्रकारसे ही प्रकृत शास्त्र भी यदि है तो कोईभी बुद्धिमान पुरुष इसमें प्रवृत्त न होवेंगे। इस प्रकारसे शास्त्रके आरंभका निषेध करनेके लिये वादियों करके कथन करी गई जो व्यापक (प्रयोजनवत्ता) की अनुपलब्धि नाम अज्ञान उसकी असिद्धता नाम शास्त्ररूप पक्षमें अभाव उसके उद्भावन नाम कथन करनेके लिये आदिवाक्य अवश्य करना चाहिये इस प्रकारके बौद्ध विशेषके वचनको सुनकर जैनसम्प्रदायवाले कहते हैं कि यह जो तुमारा कथन है सो युक्ति युक्त नहीं। क्यों कि वाक्यको प्रमाणत्वेन अनवस्थित होनेसे प्रयोजनविशेषके सद्भावके प्रकाश करनेकी शक्तिसे शून्यता है अर्थात् तादात्म्य और तदुत्पत्तिरूप सम्बधोंसे शून्य होनेसे आदिवाक्य प्रमाण नहीं है वैसा बौद्धोंको संमत है और आदिवाक्य प्रमाण है ऐसा जैनोंका कथन है तब जबतक प्रबल युक्तिसे एकतर पक्षकी सिद्धि न होवेगी तबतक मध्यस्थको आदिवाक्यमें प्रामाण्यका सन्देह रहनेसे प्रामाण्यका निश्चय न हो सकेगा तब व्यापकानुपलब्धिरूप हेतुकी असिद्धिके उद्भावनमें भी आदि वाक्य समर्थ नहीं होसकेगा॥

रामटस्तु प्रकटयति। यद्यपीदं वाक्यमप्रमाणत्वात् प्रयोजनोपस्थापनाद्वारेणनिष्प्रयोजनत्वसाधनमसिद्धं विधातुम-

धीरं । तथापि विदग्धं संदिग्धकर्तुं संदिग्धासिद्धमपि च साधनमगमकमेव । यथा समुच्छलद्धवलधूलिपटलं धूमत्वेन सन्दिह्यमानं धनञ्जयस्येति । तदप्यशस्तम् । अनुपन्यस्तेपि प्रयोजनवाक्येरनुभूतपूर्वप्रयोजनविशेषशास्त्रांतरसाधर्म्यदर्शनेन शास्त्रमात्रादपि निष्प्रयोजनत्वगोचरसन्देहस्य सद्भावात् । ननु यद्येवमादिवाक्यं पराक्रियते न तर्हीदम्भवद्भिरपि कर्तव्यमितिचेन्नैवं । कर्तव्यश्च तं प्रति यो नान्यथा प्रयोजनं विदाञ्चकार । वाच्यवाचकोत्पत्तिसमयसम्भूष्णुशक्तिस्वभावस्याबाधिततथानुभवेन चित्रज्ञानरूपस्पष्टदृष्टान्तावष्टम्भेन च कृतविरोधपरिहारत्वान्नित्यानित्यस्य वाच्यवाचकाभ्यां कथञ्चिद्भिन्नस्य सामान्यविशेषोभयस्वभाववस्तुगोचरोपरचितसङ्केताभिव्यक्तस्य वाच्यवाचकभावसंबन्धस्य बलेन शब्दानामर्थस्य प्रतिपादकत्वं प्रतिपद्य प्रामाण्यञ्चाङ्गीचकार । एतच्च यथास्थानं समर्थयिष्यते । यः पुनरन्यथापि प्रयोजनमजानाद्यश्च न शब्दविशेषं प्रमाणत्वेनामंस्त तांप्रति न कर्तव्यश्चेत्यनेकान्तो विजयते ॥

रामट नामक बौद्ध संप्रदायका कोईएक प्रसिद्ध आचार्य है सो कहता है कि यद्यपि आदिवाक्य अप्रमाण होनेसे प्रयोजनकी उपस्थितिद्वारा निष्प्रयोजनत्वरूप हेतुको असिद्ध करनेके लिये असमर्थ है तो भी बुद्धिमान पुरुषोंको सन्दिग्ध करनेके लिये समर्थ है सन्दिग्धासिद्ध भी हेतु साध्यका अनुमापक नही होता जैसे आकाशमें उड रही जो श्वेत धूलीहै सो धूमत्वेन संदिग्ध होई हुई अग्निका अनुमान नही कराती है ॥ जैन कहते है कि पूर्वोक्त जो रामटाचार्य्यका कथन है सो ठीक नहीं है क्योंकि आदिवाक्यके उपन्यास न करनेसे भी जिस शास्त्रमें प्रयोजनविशेष अनुभूत है उस शास्त्रान्तरके साधर्म्य प्रकृतशास्त्रमें देखकर शास्त्रमात्रसेही निष्प्रयोजनत्वविषयक संदेह हो सकता है। वादि प्रश्न करता हैं कि यदि इस प्रकार आदिवाक्यका तुम लोग खण्डन करते हो तब आप लोगोंने भी आदिवाक्य न करना चाहिये जैन कहते हैं कि वैसा नही कहना क्योंकि जो पुरुष आदि वाक्यसे विना प्रयोजनको नहीं जानता उसके लिये आदिवाक्य अवश्य करना चाहिये। वाच्य और वाचककी उत्पत्तिकालमें उत्पन्न होनेवाली शक्ति विशेष रूप और प्रमाणोंसे अबाधित जो तादृश अनुभव उस करके तथा चित्रज्ञानरूप जो स्पष्ट दृष्टान्तरूप अवष्टम्भ उस करके विरोधका परिहार कर देनेसे नित्यानित्य वाच्य और वाचकसे कथञ्चिद्भिन्न तथा सामान्यविशेष उभय स्वभाववस्तुविषयक कल्पित जो सङ्केत उससे अभिव्यक्त जो वाच्यवाचकभावरूप संबन्ध उसको और शब्दोंको अर्थ प्रतिपादकत्व सीकार करके शब्दोंको प्रामाण्य भी बौद्ध अङ्गीकार करता भया। यह सर्व वार्ता आगे कहेंगे। जो पुरुष आदिवाक्यकेविना भी प्रयोजनको जानता है और

जो पुरुष शब्दविशेषको प्रमाण नहीं मानते हैं उन दोनोंके लिये आदिवाक्य नहीं करना चाहिये इस प्रकार अनेकान्तवाद जयशाली होता है ॥

अथ प्रमाणस्यादौ लक्षणं व्याचक्षते । (भा०) अब पहिले सूत्रकार प्रमाणके लक्षणको कहते हैं ।

स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणमिति ।

स्वस्वरूपका ओर पर नाम घट पटादि पदार्थोंका जो निश्चय करे वयसा जो ज्ञान उसको प्रमाण कहते है ।

अत्रचादग्धदहनन्यायेन यावदप्राप्त तावद्विधेयमिति विप्रतिपन्नानाश्रित्य स्वपरेत्यादिकमव्युत्पन्नान्प्रति प्रमाण प्रमाणप्रमेयापलापिनस्तूद्दिश्य द्वयमपि विधेय । शेष पुनरनुवाद्य । तत्र प्रमाणमिति प्राग्वत् स्व आत्मा ज्ञानस्य स्वरूप परः स्वस्मादन्योऽर्थ इति यावत् तौ विशेषेण यथावस्थितस्वरूपेणावस्यति निश्चिनोतीत्येव शील यत्तत् स्वपरव्यवसायि ज्ञायते प्राधान्येन विशेषो गृह्यतऽनेनेति ज्ञान एतच्च विशेषणमज्ञानरूपस्य व्यवहारधुराधौरेयतामनादधानस्य सन्मात्रगोचरस्य स्वसमयप्रसिद्धस्य दर्शनस्य सन्निकर्षादेश्चाचेतनस्य नैयायिकादिकल्पितस्य प्रामाण्यपराकरणार्थं । तस्यापि च प्रत्यक्षरूपस्य शाक्यैर्निर्विकल्पकतया प्रामाण्येन जल्पितस्य संशयविपर्ययानध्यवसायानाञ्च प्रमाणत्वव्यवच्छेदार्थं व्यवसायीति । स्पष्टनिष्टङ्क्यमानपारमार्थिक पदार्थ सार्थ लुण्ठाकज्ञानाद्वैतादि वादिमतमत्यसितु परेति नित्यपरोक्षबुद्धिवादिनां मीमांसकानामेकात्मसमवायि ज्ञानान्तरप्रत्यक्षज्ञानवादिना यौगानां अचेतनज्ञानवादिना कापिलानां च कदाग्रहग्रह निग्रहीतु स्वेति। समग्रलक्षणवाक्यन्तु परपरिकल्पितस्यार्थोपलब्धिहेतुत्वादेः प्रमाणलक्षणत्व प्रतिक्षेपार्थम् ।

इस जगामें अदग्ध दहन न्यायसे जितनाक अप्राप्त नाम अग्रहीत हे उतनाक विधेय हे किसको कितना विधेय हे सो कहते हैं (विप्रतिपन्न) वादी जो पुरुष हैं उनके लिये स्वपर व्यवसायि विधेय हैं ओर (अव्युत्पन्न) शिष्योंको प्रमाण विधेय है ओर प्रमाण प्रमेय व्यवस्था का अपलाप नाम प्रमाण प्रमेय व्यवस्थाको नहीं हे कहनेवाले जो लोग है उनको उद्देश्य रखकर पूर्वोक्त दोनोही विधेय है जिसको जो विधेयहे उसको विधेयसे बाकी बचा हुआ जो हे सो अनुवाद मात्र जानना अबसूत्रकी व्याख्या लिखते हें तत्र प्रमाणमिति प्राग्वत् उनमेंसे प्रमाण शब्दकी व्याख्या (प्रमाणनयेत्यादि प्रथमसूत्रांतरगत प्रमाण शब्दकी रीतिसे जाननी (स्वपरव्यवसायि)

की व्याख्या लिखते है स्वशब्दसे ज्ञानका स्वरूप और पर शब्दसे अन्य घटपटादि पदार्थ उन दोनोंको यथावत् स्वरूपसे निश्चय करनेका है स्वभाव जिसका उसको कहिये स्वपर व्यवसायि और जिस करके प्रधानरूपसे पदार्थनिष्ठ विशेष ग्रहण किया जावे उसको कहिये ज्ञान। ज्ञानरूप जो विशेषण है सो ज्ञानसे भिन्न व्यवहार धुराकी धौरेयतासे पराङ्मुख सत्तामात्र विषयक जैनशास्त्रमें प्रसिद्ध सामान्य ग्राही होनेसे दर्शन है नाम जिसका उसको और नैयायिकादिकोंने प्रमाणत्वेन कल्पित जड़ स्वरूप जो सन्निकर्षादिक उनको प्रामाण्यके खंडनार्थ दिया है। बौद्धोंने निर्विकल्पक प्रत्यक्षज्ञानको प्रमाण माना है उसको और संशय १ विपर्यय २ और अनध्यवसाय ३ को प्रमाणत्व हटानेके लिये व्यवसायि पदका विशेषण कुक्षिमें प्रवेश किया है ॥ प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध जगतके पदार्थोंको नहीं माननेवाले ब्रह्मवादियोंके मतको खण्डन करनेके लिये विशेषण कुक्षिमें परपदका प्रवेश किया है। नित्यं परोक्ष बुद्धिवादि जो मीमांसक है और अनुव्यवसाय करके प्रथम ज्ञानका बोध होता है परंतु ज्ञान स्वयप्रकाश नहीं है वैसा कहनेवाले जो नैयायिक हैं और अचेतन (जड़) ज्ञानवादि जो सांख्याचार्य्य हैं उनके झूठे आग्रहके निग्रह करनेके लिये विशेषण कुक्षिमें स्वपदका प्रवेश किया है ॥ पूर्वोक्त सम्पूर्ण लक्षण वाक्य तो नैयायिकादिकोंने किये हुए जो (अर्थोपलब्धिहेतुः प्रमाणं) इत्यादि प्रमाणके लक्षण हैं उनके खण्डनार्थ जानना ॥

तथाह्यर्थोपलब्धेरनन्तरहेतुः परम्पराहेतुर्वा विवक्षाञ्चक्रे परम्पराहेतुश्चेत्तर्हीन्द्रियवद् अनादेरपि प्रामाण्यप्रसङ्गः अथानन्तरहेतुरिन्द्रियमेव प्रमाणं। तत्किं द्रव्येन्द्रियम् भावेन्द्रियं वा। द्रव्येन्द्रियमप्युपकरणरूपं निर्वृत्तिरूपं वा। न प्रथमं तस्य निर्वृत्तीन्द्रियोपष्टम्भमात्रे चरितार्थत्वात्। नापि द्वितीयं तस्य भावेन्द्रियेणार्थोपलब्धौ व्यवधानादानन्तर्य्याऽसिद्धेः। भावेन्द्रियमपि लब्धिलक्षणम् उपयोगलक्षणं वा। न पौरस्त्यं तस्यार्थग्रहणशक्तिरूपस्यार्थग्रहणव्यापाररूपेण तेन व्यवधानात्। उदीचीनस्य तु प्रमाणत्वेऽस्मल्लक्षितमेव लक्षणमक्षरान्तरैराख्यातं स्यान्नच नास्त्येवामूदृशमिन्द्रियमिति भौतिकमेवतत्त्त्रानन्तरो हेतुरिति वक्तव्यं। व्यापारमन्तरेणात्मनः स्वार्थसंवित्फलस्यानुपपत्तेः। नह्यव्यापृत आत्मा स्पर्शादिप्रकाशकः सुषुप्तावस्थायामपि प्रकाशप्रसङ्गान्नच तदानीमिन्द्रियं नास्ति यतस्तद्भावः स्यात्। अथ नेन्द्रियं सत्तामात्रेण तद्धेतुः किंतु मनसाऽर्थेन च सन्निकृष्टमिति चेत्। ननु सुषुप्तावस्थायामपि तत्तादृशमस्त्येव मनसः शरीरव्यापिनः स्पर्शनादीन्द्रियेण स्पर्शनादेश्च तूलिकादिना सन्निकर्षसद्भावात्। नचाणुपरिमाणत्वात् मनसः शरीरव्यापित्वमसिद्धमिति वाच्यं तत्र तस्य प्रमाणेन प्रतिहतत्वात्। तथाहि। मनोणुपरिमाणं न भवतीन्द्रियत्वान्नयनवत् नच शरीर-

व्यापित्वे युगपत् ज्ञानोत्पत्तिप्रसङ्ग तादृक्क्षयोपशमविशेषेणैव तस्य ह्युवोत्तरत्वादिति नैतत्प्रमाणलक्षणमक्षूण । आचक्ष्महि च मतपरीक्षापञ्चाशति । अर्थस्य प्रमितौ प्रसाधनपटु प्रोचु. प्रमाण परे तेषामञ्जनभोजनाद्यपि भवेद्वस्तु प्रमाण स्फुट ॥ आसन्नस्य तु मानता यदि तदा संवेदनस्यैव सा स्यादित्यन्धभुजङ्गरन्ध्रगमवत् तीर्थ्य. श्रित त्वन्मतमिति

जिस प्रकार अर्थोपलब्धिहेतु प्रमाण यह प्रमाणका लक्षण पूर्वोक्त जैनके प्रमाण लक्षणसे खण्डित होता है सो कहते हैं पदार्थके ज्ञानमें जो कारण होता है उसको प्रमाण जानना ऐसा अर्थोपलब्धिहेतु प्रमाण इसका अर्थ भया इसमें जैन पूछते हैं कि अर्थज्ञानमें साक्षात् कारणको अथवा परम्परा कारणको तुम लोग प्रमाण कहते हो यदि परम्परा हेतुको कहते हो तब इद्रियोंकी तरह अञ्जन (सुरमा) आदिकोंको भी प्रमाणत्वकी प्राप्ति होवेगी क्योंकि अञ्जन भी परम्परया अर्थज्ञानमें कारण है ॥ यदि साक्षात् कारण इन्द्रियोंको ही प्रमाण कहते हो तब इन्द्रिय दो प्रकारके होते हैं एक द्रव्येन्द्रिय और एक भावेन्द्रिय द्रव्येन्द्रियभी दो प्रकारके हैं एक उपकरणरूप और एक निर्वृत्तिरूप इनमेंसे उपकरणेन्द्रिय तो केवल निर्वृत्तीन्द्रियके उपष्टम्भ मात्रमें ही चरितार्थ है और कुछ भी ज्ञानमें उनका प्रयोजन नहीं है इसलिये उपकरणरूपेन्द्रियोंको तो प्रमाण नहीं कह सकते और निर्वृत्तीन्द्रियको भी प्रमाण नहीं कह सकते । क्योंकि अर्थज्ञानमें भावेन्द्रियका बीचमें व्यवधान होनेसे निर्वृत्तीन्द्रियको साक्षात् हेतुताकी सिद्धि नहीं होती इसलिये दोनों प्रकारके द्रव्येन्द्रियोंको तो प्रमाण नहीं कह सकते है ॥ भावेन्द्रिय भी दो प्रकारके होते है एक लब्धि लक्षण और एक उपयोग लक्षण इन दोनोंमेंसे लब्धिलक्षण को प्रमाण नहीं कह सकते क्योंकि अर्थग्रहण शक्तिस्वरूप (क्षयोपशमरूप) जो लब्धिलक्षण इन्द्रिय है उसमें अर्थग्रहण व्यापाररूप जो उपयोग लक्षणेन्द्रिय है उसका व्यवधान है ॥

यदि उपयोगलक्षणइन्द्रियको प्रमाण कहते हो तब तो जैन कहते हैं कि हमारा किया हुआ ही लक्षण अक्षरान्तरोंसे तुम लोगोंने लिया ॥ इस लिये अर्थोपलब्धिमें साक्षात् कारणको तो तुमलोग प्रमाण नहीं कह सकते ॥ नैयायिक कहते हैं कि तुमने जो इन्द्रियोंके भेद कहे हैं सो तो है ही नहीं किंतु पञ्च भूतोंसेही बने हुए पाँचों इन्द्रिय अर्थोपलब्धिमें साक्षात्कारण है जैन कहते ह कि ऐसा नहीं कहना क्योंकि आत्माके व्यापारसे विना (स्वार्थसवित्) स्वपदेन ज्ञान और अर्थ घटपटादि पदार्थ एतद्विषयक ज्ञानरूप फलकी असिद्धि होती है अर्थात् भोतिक भी इन्द्रिय पदार्थ ज्ञानमें साक्षात् कारण नहीं है क्योंकि आत्मव्यापारका बीचमें व्यवधान है ।

अव्यापृत (नाव्यापारवाला) आत्मा अर्थ प्रकाशक नहीं होता है यदि अव्यापृत ही आत्मा अर्थप्रकाशक मान लिया जावेगा

ऐसा तो तुम नहीं कहसकते
तब तो सुषुप्तिकालमें भी अर्थप्रकाशकी प्राप्ति होवेगी सुषुप्ति कालमें इन्द्रियोंके न होनेसे प्रकाश नहीं होता क्योंकि इन्द्रिय तो सुषुप्तिकालमें भी विद्यमान ही है। नैयायिक कहते है कि इन्द्रिय केवल खसत्तामात्रसे ज्ञानमें कारण नहीं है किंतु मन और विषयके साथ मिलेहुए ही ज्ञानमें कारणहैं जैन कहते हैं कि यदि तुम वैसा कहते हो तब हम कहते है कि सुषुप्तिकालमें भी इन्द्रिय जो है सो मन और विषयके साथ सन्निकृष्ट ही है क्योंकि मन है शरीरव्यापी उसका स्पर्शनादि इन्द्रियोंके साथ और स्पर्शनादिकोका तूलिकादि विषयोंके साथ सन्निकर्षका सद्भाव ही है ॥ नैयायिक कहते हैं कि मनको अणुपरिमाणवाला होनेसे शरीरव्यापित्व की असिद्धि है जैन कहते है कि वैसा नहीं कहना क्यों कि मनमें अणुपरिमाण अनुमानप्रमाणसे बाधित है अनुमानका स्वरूप कहते हैं कि चक्षुरिन्द्रियकी तरहसे इन्द्रिय होनेसे मन अणुपरिमाणवाला नही है नैयायिक बोलते है कि मनको शरीरव्यापी होनेसे एक कालमें रासन चाक्षुषआदि ज्ञानोंकी उत्पत्ति होनी चाहिये जैन कहते है कि वैसा नहीं कहना क्योंकि तादृश क्षयोपशम विशेष करके ही इसका उत्तर कर दिया है इसलिये पूर्वोक्त जो तुम्हारा लक्षण है सो अखण्डित नहीं है अर्थात् खण्डित ही है। इस बातमें ही मतपरीक्षापञ्चाशति नामक ग्रंथका प्रमाणभी देते है। नैयायिकादिक जो है सो पदार्थज्ञानमें जो साधकतम है उसको प्रमाण कहते है उनके मतमे अञ्जन और भोजनादिक जो पदार्थ है उनको भी प्रमाणत्व स्फुट रीतिसे हो जावेगा ॥ और यदि वह साक्षात् कारणको प्रमाण कहते हैं तब तो केवल ज्ञानको ही प्रमाणता सिद्ध होती है इस रीतिसे अन्धभुजङ्ग रन्ध्रगम न्यायकी तरह स्तुति प्रसङ्गमें कहते है कि हे भगवन् नैयायिकादिकोंने तुम्हारे ही मतको आश्रित किया ॥

अनधिगतार्थाधिगन्तृप्रमाणमित्यपि प्रमाणलक्षणं न मीमांसकस्य मीमांसा मांसलतां सूचयति । प्रत्यभिज्ञानस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात्। अथात्रापूर्वोऽप्यर्थः प्रथते। इदानीन्तनमस्तित्वं नहि पूर्वधियाधिगतमितिचेत्। इदमन्यत्रापि तुल्यं। उत्तरक्षणसत्त्वस्य प्राक्क्षणवर्ति संवेदनेनावेदनात्। पूर्वोत्तरक्षणयोः सत्त्वस्यैक्यात् कथं तेन तस्यावेदनमिति चेत् प्रत्यभिज्ञागोचरेऽपि तुल्यमेतत् ॥ रजतं गृह्यमाणं हि चिरस्थायीति गृह्यते इति वचनात् प्रागेव तद्वेदने च तदिदानीमस्ति नवा कीदृग्वास्तीति तदनन्तरं न कोऽपि संदिहीत । ततोऽपार्थकमेवानधिगतेति विशेषणं व्यवच्छेद्याभावात्। नचाव्यापकत्वदोषः प्रकृतलक्षणे प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणव्यक्तिव्यापकत्वात् । नाप्यतिव्यापकत्वकलङ्कः । संशयाद्यप्रमाणविशेषेष्ववर्तनात्।

= ।_नाप्यसम्भवसम्भवः प्रमाणं स्वपरव्यवसायिज्ञानं प्रमाणत्वान्यथानुपपत्तेरित्यतस्तत्र स्वपरव्यवसायिज्ञानत्वसिद्धेः॥

नाभिमताभिमताप्रकरण वेदान्तीमांसकोंने प्रमाणका लक्षण किया है ते कहते हैं कि यहभी प्रमाणका लक्षण मीमांसक की भीत पाने नहाईं न गोरह है यो युक्त नहीं करनाहै क्योंकि यथभि गाको अप्राप्यतो प्राप्ति होनावेगी। अर्थात् अव्याप्ति होवेगी। सविकल्पक प्रत्यक्षमें भी दोष होता है क्योंकि प्रत्यभिज्ञानमें जो अभिमत विषय है सो पूर्व कालमें विषय नहीं भयाथा इस लिये इसमें अव्याप्ति नहीं जैन मीमांसकको कहते हैं कि यदि ऐसा तुम लोग बोलोगे तब यह बात जो भाषाखिलामेंभी पुस्तकहै अथवा पूर्वोक्तलक्षणमें अनधिगत जो विशेषण है सो धारावाहि ज्ञानमें अतिव्याप्ति वारणार्थ तुमने कहा है सो अतिव्याप्ति भासिताकि लिये हुये हैं रहस्य है क्यों कि उत्तरकालको पूर्वक्षणवृत्तिज्ञानने विषय नहीं किया है तब अनधिगतानधिगता धारावाहि ज्ञान भी होगया। पूर्व और उत्तर क्षणमें वृत्तिताको भेद होनेसे उत्तर क्षण वृत्ति घटको पूर्व ज्ञानने क्यों नहीं विषय किया है इसका किया ही है इस मीमांसक प्रति कहते हैं कि यदि तुमलोग ऐसा कहते हो तब तो प्रत्यभिज्ञामें अव्याप्ति तदवस्थ है क्यों कि सविकल्पज्ञान का विषय तत्तत्कालविशिष्ट और इदानींतन अभिमत पूर्व कालमें भी विषय हो ही चुका है॥ प्रत्यभिज्ञामें सूक्ष्मता लेकर भी और भी दोष कहते हैं। इसमान कालीनताविशिष्टभूत जो इत्त है सो निरूपार्थ होनेसे ग्रहण किया गया है इसप्रकार प्रमाणसे पूर्वोक्तलक्षणवृत्ति गलको प्रत्यभिज्ञा ज्ञानका विषय यदि मान लिया जावेगा तब पूर्वज्ञानके भार परिणामिकृ न था इत्यादि तत्तद् किसी पुरुष को नहीं चाहिये क्योंकि तुम्हारे मतके अनुसार इदानींतन अभिमत भी पूर्व कालमें विषित होही चुका है॥ इसलिये व्यवच्छेदक न होनेसे पूर्वोक्त मीमांसक लक्षणमें अनधिगत जो विशेषण है सो व्यर्थही है॥ ऐसे कहते हैं कि हमारा जो प्रकृत लक्षण है उसमें अव्याप्तिरूप दोष नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप जो लक्ष्य व्यक्तियें हैं उनमें प्रकृत लक्षण विद्यमानही है और संशयादिक जो अप्रमाण हैं उनमें प्रकृतलक्षण के न होनेसे अतिव्याप्तिरूप दोष भी नहीं है और असंभव दोष भी यहां पर नहीं है क्योंकि प्रमाणान्यथानुपपत्ति रूप हेतु से प्रमाणमें स्वपरव्यवसायित्व की सिद्धि होती है। इसलिये हमारा लक्षण जो है सो निर्दुष्ट है॥

अथ धारो रूप्कोद्धारप्रकारस्ताथाहि। न तावदत्र पक्षप्रतिक्षेपदक्षदोषसंश्लेष। अत्र हि भवन् कि प्रतीतसाध्यधर्मविशेषणत्वमनभीप्सितसाध्यधर्मविशेषणता निराकृतसाध्यधर्मविशेषणत्वं वा भवेदिति भेदत्रयी निरलीन तरला भीनायुमीलति। गत न तावत् प्रतीतसाध्यधर्मविशेषणत्वमत्राख्यायमान सख्यातना ख्यातये यतः प्रसिद्धमेव साध्य

साधयतामधीमतामेतदुन्मज्जति।आपोद्रवाइत्यादिवत्। नचैतत्प्रमाणलक्षणमद्यापि परेषां प्रसिद्धिकोटिमाटीकिष्ट नाप्यत्रान-भीप्सितसाध्यधर्म्मविशेषणता भापणीया सा हि स्वानभिप्रेतं साध्यं साधयतामधीमतां धावति शौद्धोदनस्य नित्यत्वसाधन-वत्। न चार्हतानामेतत् प्रमाणलक्षणमनाकाङ्क्षितं। नापि निराकृतसाध्यधर्म्मविशेषणत्वमत्रोपपत्तिपद्धतिप्रतिबद्धतां दधाति। तद्धि प्रत्यक्षेण अनुमानेनागमेन वा साध्यस्य निराकरणाद् भवेत्। न चैतदनुष्णस्तेजोऽवयवी नास्ति सर्वज्ञो जैनेन रजनीभोजनं भजनीयमित्यादिवत् प्रत्यक्षानुमानागमादिभिर्वाधासंबन्धवैधुर्य्यं दधानमीक्षते। तस्मान्नात्र दोषः पक्षस्य सूक्ष्मोप्युत्प्रेक्षितुं पार्यते। नापि हेतोः स खल्वसिद्धता विरुद्धता व्यभिचारो वा भवेद् यदि तावद-सिद्धता तदापि किमन्यतरासिद्धिरुभयासिद्धिर्वा भवेत् अन्यतरासिद्धिश्चेत् तदापि वादिनः प्रतिवादिनो वान्यतरस्येयम-सिद्धिः स्यात् यदि वादिनस्तदा किं स्वरूपद्वारेणाश्रयद्वारेण भिन्नाधिकरणद्वारेण पक्षैकदेशद्वारेण प्रतिज्ञातार्थैकदेशद्वा-रेण वासौ स्याद् स्वरूपद्वारेण चेत् तत्किं हेतुस्वरूपे विप्रतिपत्तेरप्रतिपत्तेः सन्देहाद्वा। न प्राच्यः प्रकारः सारः प्रमाण-त्वाख्यहेतुस्वरूपे समस्तप्रामाणिकपरिषदामविवादात्। नापि द्वितीयः प्रमाणस्वरूपमप्रतिपद्यमानस्य वादिनोऽप्र-माणिकत्वप्रसङ्गात्। नापि तृतीयः सर्वथैवानिर्णीतप्रमाणस्वरूपस्य प्रतिपत्तुस्तत्र सन्देहानुत्पादात्। नखलु सकलकाल-मनाकलितस्थाणुत्वस्य स्थाणुत्वपुरुपत्वोल्लेखी सन्देहः कस्यापि सम्पद्यते तत् स्वरूपप्रतिपत्तौ वा क्वचित्कथं सर्वथा प्रमाणस्वरूपे संशयः स्यात्। आश्रयासिद्धिव्यधिकरणासिद्धी तु वादिनो जैनस्य दोषावेव न सम्मतौ अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासम्भवद्बाधकप्रमाणत्वादुदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयादित्यादेर्गमकत्वेन स्वीकृतत्वात्। सम्मतत्वे वा न तयो-रत्रावकाशशङ्काशङ्कुसङ्कथा। प्रमाणस्य धर्म्मिणः सकलवादिनामविवादास्पदत्वात् प्रमाणत्वहेतोस्तत्र वृत्तिनिर्णयाच्च। पक्षैकदेशासिद्धतापि नात्रसाधीयस्तां दधाति। सा हि सम्पूर्णपक्षाव्यापकत्वे सति सम्भविनी सचेतनास्तरवः स्वापादि-त्यादिवत् नचैतदत्रास्ति नाप्यनित्यः शब्दो नित्यत्वादित्यादिवत् प्रतिज्ञार्थैकदेशासिद्धताभिधानीया। तस्यास्तत्त्वतः-स्वरूपासिद्धिरूपत्वादन्यथा धर्म्मिणोऽपि हेतुत्वे तत्प्रसङ्गात्। स्वरूपासिद्धिश्चात्र न यथा स्थेमानमास्तिघ्नुते तथानन्तर-मेव न्यरूपीति न वादिनः साधनमसिद्धमेतन्नापि प्रतिवादिनस्तत्राप्येवं प्रकारकल्पनाप्रबन्धस्य प्रायः समानत्वा-

प्रमाणपक्षकस्वपरव्यवसायिज्ञानत्वसाध्यकप्रमाणत्वहेतुकानुमानमें दूषणोद्धारका वक्ष्यमाण प्रकारहै सो कहतेहैं जैनमतमें सामान्यत अनुमितिके प्रतिबन्धक तीन दोषों का ज्ञानहै उनमेंसे एकका नाम पक्षदोषहै और दूसरेका नाम हेतु दोषहै तीसरेका नाम दृष्टान्तदोषहै अनुमान निरूपणके वखत ग्रंथकार इनके स्वरूपादिकोंको स्वय विस्तारपूर्वक कहेंगे सो दोष इस जगहमें नहीं हैं इस वातको ग्रंथकार कहते है (नतावदित्यादि) इस पूर्वोक्त अनुमानस्थलमें पक्षप्रतिक्षेपमें पक्षदोषका सवन्ध नहीं है क्योंकि यह दोष तीन प्रकार का है उन तीनोंमेंसे यहाँपर यदि कोई दोष है तो कोन है क्या प्रतीत साध्यधर्म्मविशेषणत्व है अथवा अनाभीप्सितसाध्यधर्म्मविशेषणता है । वा निराकृतसाध्यधर्म्मविशेषणता है यह भेदत्रयस्त्रियोंकी त्रिवलीकी न्याई प्रकाश हो रहा है । इन दोषोंमेंसे पूर्वोक्तानुमानमें प्रतीतसाध्यधर्म्मविशेषणत्वरूपदोष विद्वानोंकी सभामें कहा हुआ पण्डित नेयायिकोंकी ख्यातिके लिये नहीं है क्योंकि यह जो दोषहै सो जो पुरुष प्रसिद्ध साध्यको सिद्ध करतेहैं उनको ही प्राप्त होता है। जैसे कोई पुरुष जलमें सर्वानुभवसिद्ध द्रवत्वको सिद्ध करने लगे तब उसको यह दोष प्राप्त होता है। सूत्रोक्त जो प्रकृत प्रमाणका-लक्षण है सो अभी तक भी वादी नेयायिकआदिकों की प्रसिद्धि कोटीमें नहीं आया है। अनभीप्सित साध्य धर्म्मविशेषणता भी यहाँपर नहीं कहना क्योंकि बौद्धोंको नित्यत्व साधन की तरहसे अनिष्ट साध्यके सिद्ध कर रहे मूर्ख पुरुषोंकोही पूर्वोक्त दूषण प्राप्त होता है जैनोंको तो पूर्वोक्त प्रकृतलक्षण अनाकांक्षित नहीं है किन्तु आकांक्षित ही है। निराकृतसाध्य धर्म्म विशेषणतारूप दोष भी इस जगहमें युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि उपरोक्त जो दूषणहै सो प्रत्यक्ष अनुमान अथवा आगम प्रमाणसे साध्यके निराकरण, खण्डनसे होता है। जिसप्रकार तेजोऽवयवी उष्ण नहीं है १ जगत्में सर्वज्ञ कोई नहीं है २ जैनने रात्रिको भोजन करना चाहिये ३ यह तीन अनुमान यथाक्रमेण प्रत्यक्ष अनुमान और आगमप्रमाणोंमे बाधके असम्बन्धकी विधुरता को धारणकरते हुए देखे जातेहैं इस प्रकार प्रकृतानुमान प्रमाणोंसे, बाधके असम्बन्धकी विधुरता नाम बाधके सम्बन्धको धारण करता हुआ नहीं देखा जाता। इस लिये पक्षदोष प्रकृतानुमानमें देखनेमें भी नहीं आता है॥ हेतुदोष भी असिद्धता विरुद्धता और व्यभिचार इन भेदोंसे तीन प्रकारका ही है सो भी प्रकृत अनुमानमें नहीं है क्योंकि इनतीनोंमेंसे यदि असिद्धतारूप दोष होव तो भी क्या अन्यतरासिद्धि होवे अथवा उभयासिद्धि होवे यदि अन्यतरासिद्धि होवे तो भी वादीकी अथवा प्रतिवादीकी एककी असिद्धि हो सके यदि तुम वादीकी कहोगे तव क्या स्वरूपद्वारेण अथवा आश्रयद्वारा वा भिन्नाधिकरणद्वारा अथवा पक्षेकदेशद्वारा

अथवा प्रतिज्ञातार्थैकदेशद्वारा बाधसिद्धि हो सके यदि स्वरूपद्वारा है तब भी क्या हेतुस्वरूपमें विपर्यय होनेसे अथवा अनिश्चय
होनेसे अथवा संशय होनेसे है प्रथम पक्षतो ठीक नही है क्योंकि प्रमाणत्व नामक हेतुमें समस्त विद्वानोंकी सभाओंको
विवाद नही है। प्रमाणके स्वरूमें अविप्रतिपत्ति होनेसे भी पूर्वोक्त दूषण नहीं है क्योंकि प्रमाणके स्वरूपको अप्रतिपन्न जो वादी
है उसको अप्रमाणिकत्व की प्राप्ति होती है। हेतुके स्वरूपमें सशय होनेसे भी पूर्वोक्त दोष नहीं कह सकते क्योंकि जिस पुरुपको
प्रमाणके स्वरूपका सर्वथा निर्णय नही भया है उसको प्रमाणस्वरूपमें सन्देह भी नही हो सकता। अनुभवरूप दृष्टांत कहते है
कि जिस पुरुषने किसी भी कालमें स्थाणुत्वको नही निश्चय किया है उसको स्थाणुत्व और पुरुपत्वोलेखी सन्देह कवी भी भया
अनुभवमें नही आताहे इसलिये हेतुस्वरूपका सन्देह ही नही हो सकता है। और यदि हेतुस्वरूप किसी जगहमें ज्ञातहै तब
प्रमाणके स्वरूपमे सर्वथा सन्देह किसरीतिसे हो सकताहै अर्थात् नही हो सकता इस लिये प्रमाणके स्वरूपमें सन्देह होनेसे
पूर्वोक्त दोष है वयसा भी नही कह सकते है। आश्रयासिद्धि और व्यधिकरणासिद्धि रूप जो दोप कैएक वादियोंने माने है सो तो
जैनको सम्मत ही नही है क्योंकि अस्ति सर्वज्ञ. सर्वज्ञमें अस्तित्व साध्य है सुनिश्चितं बाधक प्रमाणके न होनेसे यह हेतु है यहाँ-
पर सर्वज्ञरूप आश्रयकी असिद्धि है तो भी यह अनुमान जैनोंने निर्दुष्ट माना है इस तरहसेही कृत्तिकानामक नक्षत्रके उदय
होनेसे शकट नामक तारे उदय होवेंगे यहॉपर परपरिकल्पितव्यधिकरणासिद्धि नामक दोप होनेसे भी इस अनुमानको साध्यसाधक
माना है इसलिये जैनको यह दोप सम्मतही नही। अथवा इन दोपोंको मान भी लिया जाय तो भी प्रकृतानुमानमें इन दोनों
दोषोंकी अवकाश शंकारूपशङ्कु (किले) की कथा नही है अर्थात् यह दोष यहॉपर नही है क्योंकि प्रमाणरूप धर्म्मिमें किसी
भी वादीको विवाद नही है और प्रमाणत्व हेतुकी वृत्तिता भी उसमें सर्वको निर्णीत है। पक्षैकदेशासिद्धतारूप दोष भी यहांपर
सिद्ध नही होताहै क्योंकि यह दोप तब होता है यदि हेतु सम्पूर्ण पक्षोंमे न रहे जैसे सचेतनस्तरव. स्वापात् इत्यादि अनुमानोंमे
पूर्वोक्त दोपहै इसप्रकार प्रकृतानुमानमें नही है। अनित्यः शब्दः नित्यत्वात् इत्यादिकोंकी तरहसे प्रकृतानुमानमें प्रतिज्ञातार्थैकदेशा-
सिद्धतारूपदोप भी नही कहना क्योंकि वह दोप तो वस्तुत: स्वरूपासिद्धिरूपही है अन्यथा धर्म्मिको हेतु करनेसे भी पूर्वोक्त
दोप प्राप्त हो जावेगा। और स्वरूपासिद्धिरूप दोप इस जगहमें जिसप्रकार नही है सो तो हम अबी कह चुके हे इसलिये
बाधसिद्ध यह हेतु नही है। और प्रतिवाधसिद्ध भी यह नहीं ही है क्योंकि वहाँ भी इसप्रकारकी ही कल्पना प्रायः समान है।

एवञ्च कथमिद साधनमसिद्धिसनन्धदधीत । नापि विरुद्धतानन्धकीसम्पर्ककलङ्कितमेतत् । विपक्षादव्यावृत्तत्वात् । नापि व्यभिचारपिशानसञ्चारदु सञ्चर । यतो निर्णीतविपक्षवृत्तित्वेन सन्दिग्धविपक्षवृत्तित्वेन वात्र व्यभिचार. प्रोच्यते । न तावदाद्येन । अनित्य शब्द प्रमेयत्वादित्यादिवत् विपक्षे वृत्तिनिर्णयाभावात् । स्वपरव्यवसायिज्ञानस्य हि विपक्ष सशयादिर्घटादिश्च । नच तत्र कदाचन प्रमाणता वरिवर्ति । नापि द्वितीयेन । विवादापन्न' पुमान्सर्वज्ञो न भवति वक्तृत्वादित्यादिवद्विपक्षे वृत्तिसन्देहस्यासम्भवात् । सशयघटादिभ्य' प्रमाणत्वव्यावृत्तेर्निर्णीतत्वात् । तन्नानैकान्तिकत्वलक्षणमपि दूषणमत्रोपन्यैकत इति न हेतोरपि कलङ्ककलिकापि प्रोन्मीलति । 'निदर्शन पुनर्नोपदर्शितमेवात्रेति न तद्दोपोद्धारसरम्भो भवतु वा तदपि व्यतिरेकरूप सशयघटादि च नात्र कश्चिद्दूषणकण' । स खल्वसिद्धसाध्यव्यतिरेकोऽसिद्धसाधनव्यतिरेकोऽसिद्धोभयव्यतिरेकः सदिग्धसाध्यव्यतिरेकः सन्दिग्धसाधनव्यतिरेक सन्दिग्धोभयव्यतिरेकोऽव्यतिरेकोऽप्रदर्शितव्यतिरेको विपरीतव्यतिरेको वा स्यात् तत्र न तावदाद्या पट् घटादौ साध्यसाधनव्यतिरेकस्य स्पष्टनिष्टङ्कनात् । नापि सप्तम' व्यास्यात्र व्यतिरेकनिर्णयात् । नाप्यष्टमनवमौ यत्र न स्वपरव्यवसायिज्ञानत्व न तत्र प्रमाणत्वमिति व्यतिरेकोपदर्शनादित्यतो निष्कलङ्कादनुमानात् तल्लक्षणसिद्धेरनवद्यमिद लक्षणम् ॥

इसलिये पूर्वोक्त रीतिसे प्रमाणत्वरूप जो हेतु है सो असिद्धिके सम्बधको कैसे धारणकरे अर्थात् नहीं करसकता । विरुद्धतारूप जो बधकी स्त्रीविशेष उसके सम्बधसे कलङ्कित भी यह हेतु नहीं है क्योंकि यह विपक्षमे नहीं रहता है । व्यभिचारही भया पिशाच उसके प्रवेशसे दु सञ्चरभी यह नहीं है अर्थात् व्यभिचारभी यहाँपर नहीं है क्योंकि तुम लोग यहाँपर निर्णीत विपक्षवृत्तित्वेन व्यभिचार कहते हो अथवा सन्दिग्ध विपक्षवृत्तित्वेन कहते हो । निर्णीतविपक्षवृत्तित्वेन तो नहीं कह सकते क्योंकि नित्य शब्द प्रमेयत्वात् इत्यादिकोंकी तरह हेतुकी विपक्षमें वृत्तिताका निर्णय नहीं है । क्योंकि स्वपरव्यवसायि ज्ञानका विपक्षसशयादि और घटादिहै उनमें प्रमाणता कभी भी नहीं रहतीहै । सन्दिग्धविपक्ष वृत्तित्वेन भी व्यभिचार नहीं कहसकते क्योंकि विवादापन्न जो पुरुष है सो सर्वज्ञ नहीं है वक्ता होनेसे इत्यादिकोंकी तरहसे हेतुकी वृत्तिताका विपक्षमें सन्देह नहीं है क्योंकि विपक्ष जो सशय और घटादिक हैं उनसे प्रमाणत्वकी व्यावृत्ति निर्णीत है। इसलिये व्यभिचाररूप

अभिमत ग्राह्य पदार्थको कहते है और अनभिमत त्याज्य पदार्थको कहतेहै सो यह दोनों ही दो दो प्रकारके होतेहे एक मुख्य और एक गोण। सुख और दु ख जो हैं सो मुख्य है और सुख दु खके जो कारण कुसुमकुङ्कुम स्त्रीकटाक्ष आदिक और मूर्ख कलह विष और कण्टकआदि हैं सो यथा क्रमेण गोण अभिमतानभिमत कहे जाते हैं ॥ इस रीतिसे दो प्रकारके जो अभिमतानभिमत है उनके जो स्वीकार और तिरस्कार उनके जो समर्थ नाम प्रापक और परिहारक होवें उसको कहिये अभिमतानभिमतवस्तु स्वीकारतिरस्कारक्षम इन दोनोंको उपलक्षण होनेसे एतदुभयाभाव स्वभाववाला जो उपेक्षणीय पदार्थ है सो भी जानलेना। जो पदार्थ राग वा द्वेषका विषय होवे सो पदार्थ क्रमेण अभिमत वा अनभिमत कहा जाता है इन दोनोंमेसे जो तृणादि पदार्थ किसीका भी विषय नहीं है सो पदार्थ उपेक्षणीय कहलाता है। उसकी उपेक्षामें भी समर्थ प्रमाण ही है । सूत्रमें जो हि शब्दहे सो यस्मात् शब्दके अर्थमे है (तत्र क्या अर्थ भया सो लिखते हैं) जिसवास्ते अभिमत और अनभिमत वस्तुके स्वीकार और तिरस्कारमें समर्थ प्रमाण होता है इसलिये प्रमाण ज्ञानस्वरूप ही हो सकता हे परन्तु अज्ञानस्वरूप जो सन्निकर्ष आदिक हैं सो तो प्रमाण नहीं हो सकते । अनुमान प्रयोग लिखते है । प्रमाण ज्ञानही है क्योंकि अभिमतानभिमत वस्तुके स्वीकार तिरस्कारमें समर्थ होनेसे। जो प्रमाण नहीं है सो अभिमतानभिमतवस्तु स्वीकार तिरस्कार क्षम भी नहीं है जेसे स्तम्भ नहीं है। प्रमाणतो अभिमतानभिमतवस्तु स्वीकार तिरस्कार क्षम है इसलिये ज्ञानस्वरूप ही है ॥

उपपत्त्यन्तर प्रकटयन्ति ॥

प्रमाण ज्ञानस्वरूप ही हे परन्तु अज्ञानस्वरूप नहीं इस बातमें एक युक्ति कहकर अब युक्त्यन्तर (दूसरी युक्ति) कहते है ॥

न वै सन्निकर्षादेरज्ञानस्य प्रामाण्यमुपपन्नं । तस्यार्थान्तरस्येव स्वार्थव्यवसितौ साधकतमत्वाभावात् ॥

जिसप्रकार अज्ञानस्वरूप जो घटादि पदार्थ हैं उनको स्वपरके व्यवसाय (निश्चय) में साधकतम न होनेसे प्रामाण्य किसी भी वादीको सम्मत नहीं हे इसी तरह अज्ञानरूप जो सन्निकर्षादिक है उनको भी प्रामाण्य उपपन्न नाम युक्तिसिद्ध नहीं है ॥

अयमर्थः । यथा सम्प्रतिपन्नस्य घटादेरर्थान्तरस्याज्ञानरूपस्य स्वार्थव्यवसितौ साधकतमत्वाभावात् प्रामाण्यं नोपपत्तिश्रियमशिश्रियत्तथा सन्निकर्षादेरपि । प्रयोग. सन्निकर्षादिर्न प्रमाणव्यवहारभाक् स्वार्थव्यवसितावसाधकतमत्वाद्यदेवं तदेवं यथा पटस्तथा चायं तस्मात्तथा ।

इससूत्रका यह अर्थ है, जैसे उभयवादी सिद्ध अज्ञान स्वरूप पटआदि पदार्थान्तरको स्वार्थ व्यवसायमें साधकतम न होनेसे प्रामाण्य जो है सो युक्तिकी श्रीय (शोभा) को नही धारण करता इसी तरह सन्निकर्षादिक भी प्रामाण्यको युक्तिसे नही धारण करते है । अनुमान प्रयोग लिखते है । स्वार्थ व्यवसायमे साधकतम न होनेसे सन्निकर्ष आदिक जो है सो प्रमाण व्यवहारभाक् नही है जो प्रकृत हेतुमान् है सो प्रकृत साध्यवान् अवश्य है । जैसे पट । व्याप्तिविशिष्ट प्रकृत हेतुमान सन्निकर्षआदिक है इसलिये प्रकृत साध्यवान भी है ॥

अथास्य साधनस्यासिद्धिसम्बन्धवैधुर्य्यं व्यञ्जयन्तः सूत्रद्वयं ब्रुवते ।

अब स्वार्थव्यवसिता व साधकतमत्वरूप जो हेतु है उसको असिद्धिरूप दोषके सम्बन्धकी विधुरताको प्रगट करते हुए अर्थात् पूर्वोक्त हेतुमे असिद्धिरूप दोष नही है इस वार्ताको कहते हुए आचार्य्य अगाढीके दो सूत्र कहते हैं ॥

न खल्वस्य स्वनिर्णीतौ करणत्वं स्तम्भादेरिवाचेतनत्वात् ।
नाप्यर्थनिश्चितौ स्वनिश्चितावकरणस्य कुम्भादेरिव तत्राप्यकरणत्वादिति ॥

जिसप्रकार अचेतन होनेसे स्तम्भादिक जो है सो स्वनिश्चयमें करण नही है वयसेही सन्निकर्षादिक भी अचेतन होनेसे स्वनिश्चयमें करण नही है । और जिसप्रकार कुम्भादिक जो है सो स्वनिश्चयमें करण न होनेसे अर्थ निश्चयमे करण नहीं है इस प्रकार ही स्वनिश्चयमें करण न होनेसे सन्निकर्षादिक अर्थ निश्चयमे भी करण नहीं हैं ॥

अस्येति सन्निकर्षादेः करणत्वं साधकतमत्वं नाप्यर्थनिश्चिताविति अस्य करणत्वमिति योगः । तत्रापीत्यर्थनिश्चितावपीत्यर्थः । शेषमशेषमुत्तानार्थम् । प्रयोगौ तु । सन्निकर्षादिः स्वनिर्णीतौ करणं नभवत्यचेतनत्वाद्यदित्थंसदित्थं यथा स्तम्भः तथाचायं तस्मात्तथा । सन्निकर्षादिरर्थनिश्चितौ करणं न भवति स्वनिश्चितावकरणत्वाद्य एवं स एवं यथोक्तसाधनसम्पन्नश्चायं तस्माद्यथोक्तसाध्यः । अत्र केचिद्यौगाः सङ्गिरन्ते । सन्निकर्षादिर्न प्रमाणव्यवहार-भागित्यादि यदवादि तत्रादिशब्दसूचित कारकसाकल्यादेः काममप्रामाण्यमस्तु सन्निकर्षस्य तु प्रामाण्यापकर्षो नोमर्षप्रकर्षसिद्धये तस्यार्थोपलब्धौ साधकतमत्वावधारणेन स्वार्थव्यवसितावसाधकतमत्वादित्यत्र हेत्वेकदेशस्यासिद्धेः । यत्तु तत्सिद्धौ साधनमधु-

नैवाभ्युधुत्तदसाधीय प्रदीपेन व्यभिचारात् । तस्य स्वनिश्चितावकरणस्याप्यर्थनिश्चितौ करणत्वादिति । तदेतत्त्रपापात्र अर्थोपलब्धौ सन्निकर्षस्य साधकतमत्वासिद्धेः । यत्र हि प्रमात्राव्यापारिते सत्यवश्य कार्यस्योत्पत्तिरन्यथा पुनरनुत्पत्तिरेव तत्तत्र साधकतम यथा छिदाया दात्र न च नभसि नयनसन्निकर्षसद्भावेपि प्रमोत्पत्तिरूपस्य सहकारिणोऽभावात् तत्र तदनुत्पत्तिरितिचेत् । कथमसौ रूपेपि स्यात् । नहि रूपे रूपमस्ति निर्गुणत्वाद् गुणाना नापि तदाधारभूते द्रव्ये रूपान्तरमस्ति यावद्द्रव्यभाविसजातीयगुणद्वयस्य युगपदेकत्र त्वयानभ्युपगमात् अवयवगत रूपमवयविरूपोपलब्धौ सहकारि समस्तेवेति चेत् । कथ "यणुकावयविरूपोपलम्भो भवेत् न हि द्व्यणुकलक्षणावयवत्रयवर्ति रूपमुपलभ्यते । यत॰ सहकारि स्यात् । अनुपलभ्यमानमपि तत्तत्र सहकारीतिचेत् । तर्हि कथं न तमपाथसि पावकोपलम्भसम्भवस्तदवयवेष्वनुपलभ्यमानस्य रूपस्य भावात् यदिच रूप सहकारि कल्प्यते तदा समाकलितसकलनेत्रगोलकस्य दूरासन्नतिमिररोगावयविन' कथ नोपलब्धि ॥

सूत्रम अस्य पदसे सन्निकर्षआदिक लेने करणत्व नामसाधकतमत्व नाप्यर्थनिश्चिताविति अस्य करणत्व इसप्रकारसे सूत्र की योजना जाननी । तत्रापि नाम अथ ज्ञानमें भी । वाकीके जो सूत्रमे पद है सो सुगमार्थ ही हैं । अनुमान प्रयोग कहते है । अचेतन होनेसे सन्निकर्षादिक स्वनिश्चयम करण नहीं है जो प्रकृत हेतुमान् है सो प्रकृत साध्यवान् अवश्य है जेसे स्तम्भ प्रकृत हेतुवाला होनेसे प्रकृत साध्यवाला भी है सन्निकर्षादिक भी यथोक्त हेतुमान है इस लिये प्रकृत साध्यवाले अवश्य है । और सन्निकर्षादिक स्वनिश्चयमें करण न होनेसे अथ निश्चयमें करण नहीं है जो प्रकृत हेतुवाला है सो प्रकृत साध्यवाला जरूर है जैसेकि स्तम्भ । यथोक्त हेतुमान सन्निकर्षादि है इसलिये यथोक्त साध्यवान भी है । इस जगहमें कोईक नैयायिक जेनप्रति कहते है । कि सन्निकर्षादिर्न प्रमाणव्यवहारभाक् इत्यादिक जो तुमने कहा हे उसमें आदि शब्दसे समुचित जो कारक साकल्यआदि है उसको तो वेशक अप्रामाण्य रहो परन्तु सन्निकर्षको जो प्रामाण्यका अपकर्ष नाम निषेध हे सो शुद्धताके प्रकर्षकी सिद्धिके लिये नहीं हे क्यों कि सन्निकर्षादिकको अथ ज्ञानमें साधकतमका निश्चय होनेसे स्वार्थव्यवसितावसाधकतमत्वात् इस जगहमें हेत्वेकदेशकी असिद्धि हे । और अथज्ञानमें असाधकतमत्वसिध्यथ जो हेतु अभी तुमने कहा हे सो तो प्रदीपावच्छेदेन व्यभिचारी होनेसे साधु नहीं है । क्योंकि यद्यपि प्रदीप स्वनिश्चयमें करण नहीं है तो भी अर्थ निश्चयमें तो करण है इस रीतसे व्यभिचार भया । जैन कहते है कि यह जो

नैयायिकका कथन है सो कानके पान समान है क्योंकि अर्थोपलब्धिमें सन्निकर्षको साधकतमत्व सिद्ध नहीं है क्यों नहीं सो कहते है कि प्रमाताने जिस पदार्थके जहाँपर व्यापार करनेसे अवश्य कार्योत्पत्ति होती है और न करनेसे नहीं होती वह पदार्थ उसमें साधकतम कहलाता है। जिसप्रकार छेदनरूप क्रियामें दात्रसाधकतम है। और आकाशमें तो नेत्रका सन्निकर्ष (संयोग) होनेपर भी प्रमाकी उत्पत्ति नहीं होती इसलिये सन्निकर्षसाधकतम नहीं है। रूपस्वरूप सहकारी के न होनेसे आकाश विषयक बोध नहीं होता वैसा यदि तुम कहते हो तब तो भाई रूपविषयक बोधभी किस तरह होवेगा क्योंकि गुणोंको निर्गुण होनेसे रूपमें तो रूप नहीं है और रूपके आधारभूत द्रव्यमें रूपान्तर भी नहीं है क्योंकि समानकालभाविसजातीय गुणद्वय एककालावच्छेदेन एकाधिकरणमें तुमने (नैयायिकने) नहीं माने हैं। यदि कदाचित् तुम अवयवगत रूप अवयवीके रूप ज्ञानमें सहकारी कहोगे तब व्यणुकस्वरूप अवयवीके रूपका प्रत्यक्ष किस रीतिसे हो सकेगा अर्थात् नहीं होवेगा क्योंकि त्र्यणुकके जो अवयव द्व्यणुकरूप हैं उनमें रहनेवाला जो रूप है सो प्रत्यक्षका विषय नहीं है यदि वह स्वयं प्रत्यक्षका विषय होता तब सहकारि होय सकता। यदि कहोगे कि अनुपलभ्यमान भी द्व्यणुकका रूप त्र्यणुकके रूपके प्रत्यक्षमें सहकारि है तो तप्त जलमें अग्निके प्रत्यक्षका सम्भव क्यों नहीं है अर्थात् तप्त जलमें भी अग्निका प्रत्यक्ष होना चाहिये क्योंकि जलवृत्ति अग्निके अवयवोंमें अनुपलभ्यमानरूप विद्यमान है। और भी दूषण है कि यदि रूप सहकारी होवे तब आवेष्टित समय नेत्र नीलमणि कूपस्थ तिमिररोगादिकी उपलब्धि क्यों नहीं होती अर्थात् होनी चाहिये ॥

अथात्यन्तासत्त्वभावोपि सहकारी नचासौ तिमिरेऽस्तीतिचेत् नन्वियमासत्तिरात्मापेक्षया शरीरापेक्षया लोचनापेक्षया तदधिष्ठानापेक्षया वा विवक्षांचक्रे प्रेक्षादक्षेण। आद्ये कल्पे कथङ्कस्यापि पदार्थस्योपलब्धिः व्यापकस्यात्मनः सर्वभावै-रारात्तिसम्भवात्। द्वितीये कथं करतलतुलितमातुलिङ्गादेरुपलम्भः। तृतीये कथं कापि चाक्षुषप्रत्यक्षमुन्मज्जेत् चक्षुषः प्राप्यकारित्वकक्षीकारेण सर्वत्र स्वगोचरेणासत्तिसद्भावात्। तुरीये कथमधिष्ठानसंयुक्ताञ्जनशलाकायाः समुपलब्धिः। अथ येनांशेन तस्यास्तत्र संसर्गः सनोपलभ्यत एव नैवमवयविनो निरंशत्वेन स्वीकारात्। अपि च कथमुदीचीं प्रति व्यापारितनेत्रस्य प्रमातुर्न काञ्चनकाञ्चनाचलोपलब्धिमनुभवामः। नच दवीयस्त्वान्न तत्र नेत्ररश्मयः प्रसर्तुं शक्तास्तेषां शशाङ्केपि प्रसरणाभावापत्तेः। अथ तदालोकमिलितास्ते वर्द्धन्ते तर्हि खरतरकरनिकरनिरन्तरापूरितविष्टपोदरे मरीचि-

मालिनि सति सुतरां सुराद्रिमभिसर्पतां तेषामृद्धिर्भवेत् । न च दिनकरमरीचीनां नितरां कठोरत्वेन तैस्तेषां प्रतिघातस्तदालोककलापाकलितकलशकुलिशादि पदार्थानामप्यनुपलम्भापत्ते । ततो न सन्निकर्षसद्भावेऽप्यवश्यं संवेदनोदयोऽस्ति । नापि तदभावेऽभावएव । प्रातिभप्रत्यक्षाणामार्षसंवेदनविशेषाणां च तत्कालाविद्यमानवस्तुविषयतया सन्निकर्षाभावेपि समुद्भवात् । तत्र सन्निकर्षस्य साधकतमत्वं साधुत्वसौधाध्यासधैर्यमार्जिनत् । यत्र प्रदीपेन व्यभिचारमुदचीचर सोपि न चतुरचेतश्चमत्कारचञ्चु प्रदीपस्य मुख्यावृत्त्या करणत्वानुपपत्तेः नेत्रसहकारितया करणत्वोपचारात् । यथाचोपचारादर्थव्यवसितौ करणमयं तथा स्वव्यवसितावपि नहि प्रदीपोपलम्भे प्रदीपान्तरान्वेषणमस्ति । किं त्वात्मनैवात्मानमयम्प्रकाशयतीति क्व व्यभिचार । तत्र सन्निकर्षस्यार्थव्यवसितावसाधकतमत्वमसिद्धम् । अनयैव दिशा कारकसाकल्यादेरप्यर्थव्यवसितावसाधकतमत्वं समर्थनीयमिति न हेत्वेकदेशासिद्धिः ॥

यदि अत्यन्तासत्ति नाम अत्यन्त नजीकताका अभाव भी पदार्थोंकी उपलब्धिमें कारण है सो तिमिरमें नहीं है इसलिये तिमिरका प्रत्यक्ष नहीं होता वैसा कहते हो तब हम पूछते हैं कि प्रेक्षादक्षने तेने आसत्ति आत्मापेक्षया विवक्षित है अथवा शरीरापेक्षया किं वा लोचनापेक्षया अथवा तदधिष्ठानापेक्षया विवक्षित है । यदि आत्मापेक्षया कहते हो तब किसीभी पदार्थका बोध न होना चाहिये क्योंकि आत्माको व्यापक होनेसे सर्व पदार्थोंके साथ आसत्तिका सद्भाव है । और यदि शरीरापेक्षया कहते हो तब करतलमें विद्यमान जो रेखादिक है उनका ज्ञान न होना चाहिये । यदि लोचनापेक्षया कहोगे तब कहीं भी प्रत्यक्ष न होना चाहिये क्योंकि चक्षुको प्राप्यकारित्व तुमने माना हुआ है इसलिये सर्वत्र स्वविषयोंके साथ लोचनके सन्निकर्षका सद्भाव है । यदि तदधिष्ठानापेक्षया कहते हो तब अधिष्ठानसंयुक्त अञ्जनशलाकाका बोध किस रीतिसे होता है अर्थात् न होना चाहिये । यदि जिस अंशसे अञ्जन शलाकाका अधिष्ठानसे सम्बन्ध है सो अंश तो उपलभ्यमान नहीं ही होता है वैसा कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि तुमने अवयवीको निरंशमाना हुआ है । सन्निकर्ष आदिक साधकतम नहीं हैं इसकी पुष्टिके लिये और भी युक्ति कहते हैं क्योंकि उत्तरदिशामें व्यापारित हैं नेत्र जिसने वैसा जो प्रमाता है उसको सुवर्णका जो काञ्चनाचल है उसका ज्ञान हमारे अनुभवमें क्यों नहीं आता । दूर होनेसे काञ्चनाचलमें नेत्र रश्मिये प्रसर नहीं कर सकती वैसा नहीं कहना क्योंकि चन्द्रमामें भी उनके प्रसराभावकी आपत्ति आ जावेगी । यदि चन्द्रमाके आलोकसे मिलित नेत्ररश्मिये अधिक हो जाती है वैसा कहोगे तब

प्रचण्डतर किरणोंके समूहसे आपूरित है विष्टप, स्वर्ग, का उदर जिसने वैसे सूर्य्यके होनेसे नेत्ररश्मियोंकी वृद्धि होवे और अनायास सुराद्रि नाम काञ्चनाचलमें भी प्राप्त होवें। दिनकरकी किरणोंको अत्यन्त कठोर होनेसे दिनकरकिरणोंकरके नेत्रकी किरणोंका प्रतिघात होता है वैसा नही कहना क्योंकि सूर्य्यालोककलापसे मिलित कलशकुलिशादि पदार्थोके अनुपलम्भकी आपत्ति आजावेगी। इसलिये सन्निकर्षके सद्भावमें भी ज्ञानोत्पत्ति अवश्य नही है। केवलज्ञान और आर्षज्ञान आदिकोंको तत्कालमें अविद्यमान भी पदार्थोंको विषय करनेसे सन्निकर्षके न होनेसे भी उत्पत्तिका सद्भाव है इसलिये सन्निकर्षाभावसे ज्ञानाभाव भी सिद्ध नही है। तस्मात् सन्निकर्षको साधकतमत्व जो है सो साधुत्वरूपी किलेके अध्यासकी धैर्य्यताको धारण नहीं करता है अर्थात् साधु नहीं है। और जो तुमने प्रदीपके साथ व्यभिचार कहा है सो भी प्रदीपको नेत्र सहकारी होनेसे करणत्वका उपचार है परन्तु मुख्यतया करणत्व नही है इसलिये चतुर पुरुषके चित्तका चमत्कार करनेसे प्रसिद्ध नहिं है अर्थात् यह दृष्टान्त बुद्धिमानोंको संमत नही है और जिसप्रकार उपचारसे प्रदीप अर्थ निश्चयमें कारण है इसी तरह स्वनिश्चयमें भी करण हय ही। क्योंकि प्रदीपके ज्ञानमें प्रदीपान्तरके अन्वेषणकी आवश्यकता नही हो ती किन्तु स्वय ही स्वको प्रकाश करता है इसलिये व्यभिचार कहां है अर्थात् नही है। इसलिये सन्निकर्षको अर्थनिश्चयमें असाधकतमत्व असिद्ध नहीं है। इसी रीतिसे कारकसाकल्यादिकोंको भी अर्थ निश्चयमें असाधकतमत्वकी सिद्धि जाननी (इति) इस रीतिसे जो नैयायिकोंने हेत्वेकदेशासिद्धि कही थी सो नही है ॥

अथ व्यवसायीति विशेषणं समर्थयन्ते।

अव प्रमाणके लक्षणमे प्रविष्ट व्यवसायिपदका सूत्रकार समर्थन करते हे॥

तद् व्यवसायस्वभावं समारोपपरिपंथित्वात् प्रमाणत्वाद्वेति ॥

प्रमाणत्वेन समत जो ज्ञान है सो संशय आदिकोंका विरोधी होनेसे अथवा प्रमाणत्ववान् होनेसे निश्चयात्मक है ॥

तत् प्रमाणत्वेन सम्मतं ज्ञानं व्यवसायस्वभावं निश्चयात्मकत्वमित्यर्थः समारोपः संशयविपर्य्ययानध्यवसायस्वरूपोऽनन्तरमेव निरूपयिष्यमाणस्तत्परिपन्थित्वं तद् विरुद्धत्वं यथावस्थितवस्तुग्राहकत्वमिति यावत् प्रमाणत्वाद्वा तत्तथाविधं वा शब्दो विकल्पार्थः तेन प्रत्येकमेवामूहेतूप्रमाणत्वाभिमतज्ञानस्य व्यवसायस्वभावत्वसिद्धौ समर्थावित्यर्थः। प्रयोगौ तु

प्रमाणत्वाभिमत ज्ञान व्यवसायस्वभाव समारोपपरिपन्थित्वात्प्रमाणत्वाद्वा यत्पुनर्नैव न तदेव यथा घटः प्रोक्तसाधनद्वयाधिकरणश्चेद तस्माद्व्यवसायस्वभावमिति । अत्रैकदेशेन पक्षस्य प्रत्यक्षप्रतिक्षेपमाचक्षते भिक्षवस्तथाहि । सहतसकलनिकल्पावस्थायां नीलादिदर्शनस्य व्यवसायवन्ध्यस्यैवानुभवात्पक्षीकृतप्रमाणैकदेशस्य प्रत्यक्षस्य व्यवसायस्वभावत्वसाधनमसाधीयस्तदसाधिष्टं यत॰ केन प्रत्यक्षेण तादक्षस्य तस्यानुभवो विधीयते ऐंद्रियेण मानसेन योगिसत्केन स्वसवेदनेन वा नाद्येन तत्रेन्द्रियकुडुम्बस्य व्यापारपराङमुखत्वात् । न द्वितीयेन तस्येन्द्रियज्ञानपरिच्छिन्नपदार्थानन्तरक्षणसाक्षात्कारदक्षत्वात् । न तृतीयेन अस्मादृशा योगिप्रत्यक्षस्पर्शशून्यत्वात् । योगीनु तथा जानातीति कोशपानप्रत्यायनीयम् । नापि तुर्य्येण यतस्तत्स्वरूपोपदर्शनादेव प्रमाण स्यादनुरूपविकल्पोत्पादकत्वाद्वा । आद्ये पक्षे प्रत्यक्ष क्षणक्षयस्वर्गप्रापणसत्यादावपि प्रमाणतामास्कन्देत् । द्वितीयपक्षोप्यक्षम सहतसकलविकल्पावस्थाभावि नीलादिदर्शनानन्तर नीलादिरयमित्यर्थोल्लेखशेखरस्यैव विकल्पस्य प्रायेणानुभवात् । यत्रापि नीलादिज्ञान ममोत्पन्नमिति ज्ञानोल्लेखी विकल्पस्तत्रापि ज्ञानमात्रोल्लेखित्वादस्य तत्रैन दर्शनस्य प्रामाण्य स्यान्नतु तन्निर्विकल्पकत्वे । अपिच विकल्पस्यापि कथ सिद्धि स्वसवेदनप्रत्यक्षादिति चेत् । तस्यापि स्वरूपोपदर्शनमात्रात्प्रामाण्ये तदेव दूषण विकल्पान्तरोपजननात्पुनरनवस्था । तथाच कथ स्वसवेदस्य प्रामाण्यसिद्धिर्यतस्तेन बाधा पक्षांशे स्यात् ॥

सूत्रमें जो तत् शब्द है उसका अर्थ प्रमाणत्वेन सम्मत ज्ञान जानना व्यवसाय स्वभाव नाम निश्चयात्मक आगे निरूपण करना है स्वरूप जिनका वैसे जो संशय विपर्य्यय और अनध्यवसाय उनसे विरुद्धत्व नामयथावस्थित–वस्तु ग्राहकस्वरूप हेतुसे अथवा प्रमाणत्वरूप हेतुसे प्रमाणत्वेन सम्मत जो ज्ञान है सो तथाविध नाम व्यवसायस्वभाव है सूत्रमें जो वा शब्द है सो विकल्पार्थ है इसलिये प्रत्येकभी जो पूर्वोक्त हेतु है सो प्रमाणत्वाभिमत ज्ञानको व्यवसायस्वभावत्वकी सिद्धिमें समर्थ है ऐसा जानना जिस प्रकारसे अनुमान प्रयोग करना सो लिखते है । प्रमाणत्वाभिमत जो ज्ञान है सो समारोपपरिपन्थित्व हेतुसे अथवा प्रमाणत्व हेतुसे व्यवसाय स्वभाव है जो पदार्थ व्यवसायस्वभाव नहीं है सो पदार्थ पूर्वोक्त हेतुद्वयवालाभी नहीं है (जैसे घट) और प्रमाणत्वाभिमत जो ज्ञान है सो प्रोक्त साधनद्वयाधिकरण है इसलिये व्यवसाय स्वभाव है इति । यहांपर बौद्ध लोग ज्ञानरूप पक्षको एक देशमे प्रत्यक्षप्रतिक्षेप कहते हैं अर्थात् पूर्वोक्त अनुमानद्वयमे पक्ष जो ज्ञान है सो प्रत्यक्षप्रमाणसे बाधित है । तथाहि ।

संहृत सकलविकल्पावस्थामें नीलादिदर्शनका अर्थात् निर्विकल्पकप्रत्यक्षका व्यवसायशून्यका ही अनुभव होता है इसलिये पक्षीकृत प्रमाणैकदेश जो प्रत्यक्ष है उसको व्यवसायत्व साधन ठीक नही है। जैन कहते है कि वैसा जो बौद्धोंका कथन है सो अत्यन्त असङ्गत है क्योंकि उनको हम पूछते है कि। तुम किस प्रत्यक्षसे व्यवसायवन्ध्य नीलादि दर्शनका अनुभव होता है कहते हो क्या ऐन्द्रियसे अथवा मानससे वा योगि प्रत्यक्षसे अथवा स्वसंवेदनसे। ऐन्द्रियसे तो नही कह सकते क्योंकि निर्विकल्पक प्रत्यक्षमें इन्द्रिय कुटुम्ब जो है सो व्यापार पराङ्मुखही है अर्थात् निर्विकल्पकप्रत्यक्षका ऐन्द्रियप्रत्यक्ष युक्तिसिद्ध नही है। मानसप्रत्यक्षको इन्द्रियजन्य ज्ञानसे परिच्छिन्न–पदार्थानन्तर क्षण साक्षात्कारमें दक्ष होनेसे मानसप्रत्यक्षसे भी व्यवसायवन्ध्यत्वानुभव नही कह सकते । असदादि- कोंको योगिके प्रत्यक्षके संबन्धशून्य होनेसे योगि प्रत्यक्षसे भी नीलादि दर्शनमें व्यवसायबन्ध्यत्वानुभव नही कह सकते है । योगी पुरुष दर्शनमें व्यवसायबन्ध्यत्वको जानता है यह वात सौगन्द देकर मनानेके सदृश है ॥ स्वसंवेदनसे भी दर्शनमें व्यवसाय वन्ध्यत्वानुभव नही कह सकते क्योंकि जिसवास्ते स्वसवेदन जो है सों स्वरूपोपदर्शन मात्रसे प्रमाण है अथवा अनुरूप नाम इदं निर्विकल्पकं इत्याकारक विकल्पका उत्पादक होनेसे प्रमाण है यदि स्वरूपोपदर्शन मात्रसे कहोंगे तव प्रत्यक्ष जो है सों क्षणक्षय और स्वर्गप्रापण शक्त्यादिकोंमें भी प्रमाणताको धारण करे। (अर्थात् बौद्धमतमें स्वसंवेदन जो है सो स्वगत क्षणक्षयत्व और सत्व चेतनत्वादिकको विपय करता है परन्तु सत्व चेतनत्वादि विपयमें अनुरूप विकल्पोत्पादक होनेसे प्रमाण है और क्षण- क्षयत्व विपयमें अनुरूप विकल्पोत्पादक न होनेसे प्रमाण नहीं है। इस प्रकार ही बौद्धोंने हिंसा विरतिचित्त और दानचित्त जो है सों स्वर्गहेतु होनेसे स्वर्गप्रापणशक्तिविशिष्ट है वैसा माना हुआ है पूर्वोक्त चित्तका जो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है सो स्वगत सत्व चेतनत्वादिकोंकी तरह स्वर्ग प्रापण सामर्थ्यादिकोंको भी ग्रहण करता है परन्तु बौद्धोंने सत्व चेतनत्वादि विपयमें प्रमाण माना है और स्वर्ग प्रापण शक्त्यादिरूप विपयमें तो अनुरूप विकल्पका उत्पादक न होनेसे अप्रमाण माना है)। इस प्रकारकी बौद्धोंकी व्यवस्थाको जानकर जैन कहते हैं कि यदि स्वसवेदनप्रत्यक्षको स्वरूपोपदर्शनमात्रसे प्रामाण्य कहोंगे तव क्षणक्षयत्वविषयमें और स्वर्गप्रापण शक्त्यादि विपयमें भी प्रामाण्यकी प्राप्ति आवेगी क्योंकि स्वरूपोपदर्शन मात्रका वहांपर भी सद्भाव है और बौद्धोंको क्षणक्षयादि विपयमें स्वसंवेदन प्रत्यक्षको प्रामाण्य अभीष्ट तो नही है इसलिये स्वरूपोपदर्शनादेव प्रामाण्यं यह पक्ष युक्तियुक्त नही है) अनुरूपविकल्पोत्पादक होनेसे दर्शनको प्रामाण्य है यह पक्ष भी युक्तिको सहन नहीं करता क्योंकि निर्विकल्पक ज्ञानावस्थामें

होनेवाले नीलादि दर्शनकेवाद (नीलादिरय) इत्याकारक अर्थोल्लेख है प्रधान जिसमें वैसा ही विकल्प प्रायेण अनुभवम आता है। जहापर ज्ञानोल्लेखी नीलादिज्ञान ममोत्पन्न इत्याकारक भी विकल्प उत्पन्न होता है वहापर भी विकल्पको ज्ञान मात्रोल्लेखी होनेसे ज्ञानमात्रमें ही दर्शनको प्रामाण्य सिद्ध होता है परन्तु स्वसवेदन प्रत्यक्षके निर्विकल्पकत्वम प्रामाण्य सिद्ध नही होता। ओर भी दृपण कहते हैं कि विकल्पकी सिद्धि भी किससे होती है यदि तुम स्वसवेदन प्रत्यक्षसे कहोगे तब स्वरूपोपदर्शन मात्रसे कहते हो अथवा विकल्पान्तरोपजननसे प्रामाण्य कहते हो। प्रथम पक्षमें पूर्वोक्त ही दृपण है ओर द्वितीय पक्षमें तो अनवस्थारूप दोप आजाता है। जैन कहते है कि इस रीतिसे स्वसवेदनको प्रामाण्यकी सिद्धि नहीं है यदि होती तब प्रमाणत्वाभिमत ज्ञानपक्षक व्यवसायस्वभावत्व साध्यक अनुमानमें पक्षाशमें बाधा कह सकते सो न होनेसे पक्षाशमें बाधा भी नहीं है ॥

अथ यत्र निर्विकल्पक तत्रैव विकल्पेन सहोत्पद्यते। यथा विकल्पो विकल्पान्तरेण विकल्पेनापि च सहोत्पद्यते च प्रत्यक्ष। न चेद न निपेधसाधन गन्धर्वविकल्पदशायामपि गोः साक्षात्करणादन्यथा समयान्तरे तत्स्मरणानुपपत्ति प्रसङ्गादित्यनुमानवाधित' पक्षैकदेश इति चेत्तदपि कवलित कालेन कालान्तरे स्मरणसद्भावाद्व्यवसायात्मकस्यैव प्रत्यक्षस्य प्रसिद्धेर्निर्विकल्पकस्य सस्कारकारणत्वविरोधात् क्षणिकत्वादिवत्। अथाभ्यासप्रकरणबुद्धिपाटवार्थित्वेभ्योऽनिर्विकल्पकादपि प्रत्यक्षाद्गवादौ सस्कारः स्मरणं च समगस्त नतु क्षणक्षयादौ तदभावादितिचेत्तदप्यल्पीयो भूयोदर्शनलक्षणस्याभ्यासस्य क्षणक्षयादावक्षोदीयस• सद्भावात् पुन पुनर्विकल्पोत्पादरूपस्य चाभ्यासस्य परप्रत्यसिद्धत्वात्तत्रैव विवादात्। क्षणभिदेलिमभावाभिधानवेलाया क्षणिकप्रकरणस्यापि भावात्। बुद्धिपाटवस्य क्षणिकत्वादौ नीलादौ च समानत्वात्। तत्प्रत्यक्षस्य निरशत्वेन कक्षीकारादन्यथा विरुद्धधर्म्माध्यासेन तस्य भेदापत्तेः॥ अर्थित्वस्यापि जिज्ञासितत्वलक्षणस्य क्षणिकवादिनः क्षणिकत्वे सुतरा सद्भावात् नीलादिवत्। अभिलपितत्वरूपस्य तु तस्य व्यवसायजननप्रत्यनिमित्तत्वादनभिलपितेऽपि वस्तुनि कस्यापि व्यवसायसम्भवात् ततो नानन्तवस्तुवादिनः कचिदेव स्मरण समगत। तथाच। यद्व्यवसायशून्य ज्ञान न तत्स्मृतिहेतुर्यथा क्षणिकत्वादिदर्शनम्। तथाचाश्वविकल्पकाले गोदर्शनमितिप्रसङ्गः तथा च तत्स्मृतिहेतुर्नस्याद्। भवति च पुनर्विकल्पयतस्तदनुस्मरण तस्माद्व्यवसायात्मकमिति प्रसङ्गविपर्ययः। एवञ्चस्मरणात्तस्य व्यवसायात्मकस्यैवसिद्धेर्व्यवसायस्य च व्यवसायान्तरेण समानकालत्वाभावाद्विकल्पेनापि सहोत्पद्यमानत्वा-

दितिहेतुरसिद्धिवन्धकीसम्बन्धवाधित इतिसिद्धम् । अथ नन्व्यवसायस्वभावत्वेन समारोपपरिपन्थित्वप्रमाणत्वहेत्वोर्व्याप्तिरुपापादि तद्भावेपिव्यवसायजनकत्वमात्रेण तयोः कचिद्भावाविरोधात् अनुमानं हि व्यवसायस्वभावं सत्समारोपपरिपन्थि प्रमाणं च प्रत्यक्षन्तु व्यवसायजनकमिति को विरोध इति चेत् । इह तावत् प्रमाणत्वहेतोर्व्याप्तिरुपदर्श्यते । प्रमाणं खल्वविसंवादकमवादिषुः सौगताः अविसंवादकत्वं चार्थप्रापकत्वेन व्याप्तमर्थाप्रापकस्याविसंवादित्वाभावान्निर्विषयज्ञानवत्तदपि प्रवर्तकत्वेन व्यापि । अप्रवर्तकस्यार्थाप्रापकत्वात्तद्वदेव तदपि विषयोपदर्शकत्वेन व्यानशे स्वविषयमुपदर्शयतः प्रवर्तकत्वव्यवहारविषयत्वसिद्धेर्नहि पुरुषं हस्ते गृहीत्वा ज्ञानं प्रवर्तयति । स्वविषयन्तूपदर्शयत्प्रवर्तकमुच्यतेऽर्थप्रापकश्चेति ॥

बौद्ध कहते है कि जो निर्विकल्पक नही है सो विकल्पके साथ उत्पन्न नही होता । जैसे विकल्प विकल्पान्तरके साथ उत्पन्न नही होता है और प्रत्यक्ष जो है सो तो विकल्पके साथ भी उत्पन्न होता है इसलिये निर्विकल्पक ही है । यह हेतु असिद्ध नही है क्योंकि अश्वविकल्पावस्थामें भी गौका साक्षात्कार होता है यदि अश्वविकल्पावस्थामें गो साक्षात्कार न मानोंगे तब कालान्तरमें गौके स्मरणकी अनुपपत्ति होवेगी इस पूर्वोक्त अनुमानसे जैनकथित व्यवसायस्वभावत्वसाध्यक अनुमानमें पक्षैकदेशबाधित है । जैन कहते है कि यह भी तुम्हारा कथन कालसे कवलित है क्योंकि कालान्तरमें स्मरण होता है इसलिये व्यवसायात्मकही प्रत्यक्ष सिद्ध होता है (क्यों व्यवसायात्मक ही सिद्ध होता है सो कहते है) निर्विकल्पक जो है सो क्षणिकत्वादिकोंकी तरह संस्कारका जनक नही है अर्थात् जिसप्रकार क्षणिकत्वादिक विषयमें निर्विकल्पक होनेसे ज्ञानको सस्कारजनकत्व नही है इसी तरह गोरूपविषयमें भी निर्विकल्पक होनेसे संस्कारको उत्पन्न न करेगा उत्पन्न तो करता है इसलिये व्यवसायात्मक ही प्रत्यक्ष सिद्ध होता है ॥ यदि अभ्यास १ प्रकरण २ वुद्धिपाटव ३ और अर्थित्वादिकारणान्तर सहकृत निर्विकल्पक प्रत्यक्षसे भी गवादिकोंमें संस्कार और स्मरण हो सकता है परन्तु क्षणक्षय आदिकोंमें अभ्यास आदिकारणोंके न होनेसे संस्कार नहीं उत्पन्न होता वैसा तुम कहते हो तब यह तुम्हारा कथन तो तुच्छ है क्योंकि भूयोदर्शनरूप जो अभ्यास है सो तो क्षणक्षय आदिकोंमे वहुतर है और पुनः पुनः विकल्पोत्पादकत्वरूप जो अभ्यास है सो जैनके प्रति असिद्ध है क्योंकि विकल्पोत्पादकत्वमें ही तो विवाद है। क्षणक्षय भावपदार्थोंके कथन समयमें क्षणिक प्रकरणका भी सद्भाव है इसलिये प्रकरणाभाव भी नहीं है वुद्धिपाटव क्षणिकत्वादिकोंमें

ओर नीलादिकोंमें समान ही हे क्योंकि तुमने नीलआदि पदार्थोंके प्रत्यक्षको निरंशत्वेन स्वीकार किया है यदि सांश मानोगे तब विरुद्ध धर्म्मके अध्यास होनेसे नीलादि प्रत्यक्षके भेदकी आपत्ति होवेगी ॥ अर्थित्व भी दो प्रकारका हे उनमेंसे जिज्ञासितत्वरूप जो अर्थित्व है सो क्षणिकवादीके मतमें नीलादिकोंकी तरह क्षणिकादिकोंमें भी सुतरां विद्यमान है । ओर अभिलषितत्वरूप जो अर्थित्व हे सो तो व्यवसायजननमें कारण ही नहीं क्योंकि अनभिलषित पदार्थोंमें भी अनेक पुरुषोंको व्यवसाय उत्पन्न होता है । इसलिये अनशवस्तुवादीको स्मरण कहीं भी उत्पन्न न होवेगा । तथा च । जो ज्ञान व्यवसायशून्य हे सो ज्ञान स्मृतिका कारण नहीं होता जैसे क्षणिकत्वादि विषयकज्ञान निर्विकल्पक होनेसे स्मृतिका हेतु नही हे । एवं अश्वविकल्पकालमे गोदर्शन यह प्रसङ्ग भया। एवं सति गोदर्शन जो हे सो स्मृति हेतु नहीं हे परन्तु जिस पुरुषको विकल्प भया है उसको गोदर्शनानुगुण स्मरण होता तो हे इसलिये गोदर्शन जो है सो व्यवसायात्मक ही हे । इस रीतिसे प्रसङ्गका विपर्यय भया हे । स्मरण होनेसे व्यवसायात्मक ही गोदर्शन सिद्ध होता है ओर व्यवसायकी व्यवसायान्तरके साथ समानकालता कदाचिद् भी नहीं होती इसलिये विकल्पेनापि सहोत्पद्यमानत्वात् यह जो हेतु हे सो असिद्धिरूप कुट्टनीके सम्बन्धसे बाधित है । (यह बात सिद्ध भयी) यदि व्यवसायस्वभावत्वके साथ समारोपपरिपन्थित्व ओर प्रमाणत्वरूप हेतुद्वयकी व्याप्ति उपपन्न नहीं है क्योंकि व्यवसाय स्वभावत्व न होनेसे किंतु व्यवसायजनकत्वमात्रसे ही पूर्वोक्त हेतुद्वयका कहीक सद्भाव हे । जैसे अनुमान व्यवसाय स्वभाव है ओर समारोपपरिपन्थि तथा प्रमाण भी हे प्रत्यक्षतो व्यवसायजनक है इसवास्ते पूर्वोक्त हेतुद्वय तथा व्यवसायजनकत्वका क्या विरोध हे अर्थात् नहीं है। जैन पूछते हे कि तुम व्यवसा कहते हो तब यहांपर पहिले प्रमाणत्व हेतुकी व्याप्ति दिखाते है । बौद्ध लोग प्रमाणको अविसंवादक कहते है अविसंवादकत्व जो हे सो अर्थप्रापकत्वेन व्याप्त हे क्योंकि निर्विषयज्ञानकी तरह जो अर्थका अप्रापक हे सो अविसंवादी नहीं है ओर अर्थप्रापकत्व भी प्रवर्तकत्वकेसाथ व्याप्त हे क्योंकि अप्रवर्तक जो है सो निर्विकल्पक ज्ञानकी तरह ही अर्थका प्रापक नही हे प्रवर्तकत्व भी विषयोपदर्शकत्वके साथ व्याप्त है क्योंकि स्वविषयको दरसाते हुए ज्ञानमें प्रवर्तकत्वरूप व्यवहार विषयत्वकी सिद्धि हे । ज्ञान जो है सो पुरुषको हाथसे पकड़कर प्रवृत्त नहीं करता है किंतु स्वविषयको दरसाता हुआ ही प्रवर्तक तथा अर्थप्रापक कहा जाता है ॥

तत्रेदं चर्च्यते किं दर्शनस्य व्यवसायोत्पत्तौ सत्यां विषयोपदर्शकत्वं सञ्जायेत समुत्पन्नमात्रस्यैव वा सम्भवेत् प्राचि-

क विकल्पे विकल्पकाले दर्शनस्यैव विनाशात् कनामविषयोपदर्शकत्वं व्यवतिष्ठेत द्वितीयकल्पनायां पुनः किमनेन कृत क्षौरनक्षत्रपरीक्षाप्रायेण पश्चात्प्रोल्लसता नीलादिविकल्पेनापेक्षितेन कर्तव्यं तमन्तरेणापि विषयोपदर्शकत्वस्य सिद्धत्वात् । तथाच । यत्रैव जनयेदेनां तत्रैवास्य प्रमाणतेति सिद्धान्तविरोधः । व्यवसायं विनैव विषयोपदर्शकत्वसंभवे प्रामाण्यस्यापि तं विनैव भावात् । तन्मात्रनिमित्तत्वात्तस्य कथञ्चैवं क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्त्यादावपि दर्शनस्य विषयोपदर्शकत्वं न प्रसज्जते अथाध्यवसानपर्य्यवसानो व्यापारो दर्शनस्येत्यध्यवसायव्यापारवत एवास्य विषयोपदर्शकत्वमवतिष्ठते नपुनस्तमन्तरेणेति चेत् तदप्यल्पं निर्विकल्पककार्य्यत्वेन व्यवसायस्य ततो भिन्नकालत्वात्तेन तस्य व्यापारवत्वानुपपत्तेः । अस्तु वैतत्तथापि तद्व्यापारभूतोऽसौ व्यवसायो दर्शनगोचरस्योपदर्शकोऽनुपदर्शको वा स्यात् । यद्युपदर्शकस्तदा स एव तत्र प्रवर्तकः प्रापकश्च स्यात् ततोपि संवादकत्वात् प्रमाणं न पुनस्तत्कारणीभूयमाभेजानं दर्शनं । अथानुपदर्शकः कथं दर्शनं तज्जननात् स्वविषयोपदर्शकमतिप्रसङ्गात् संशयविपर्य्ययकारणस्यापि तस्य स्वविषयोपदर्शकत्वापत्तेः दर्शनविषयसामान्यव्यवसायित्वाद्विकल्पस्य तज्जनकं दर्शनं स्वविषयोपदर्शकं नेतरदिति चेत् तदशस्यं दर्शनविषयसामान्यस्यान्यापोहलक्षणस्यावस्तुत्वात् तद्विषयव्यवसायजनकस्य वस्तूपदर्शकत्वविरोधात् ॥

दर्शनके विषयोपदर्शकत्व विचारमें इस वातकी चर्चा करते है कि क्या व्यवसायकी उत्पत्तिके हो जानेसे दर्शनको विषयोपदर्शकत्वका प्रादुर्भाव होता है अथवा उत्पन्नमात्रको ही होय जाता है । प्रथम कल्पना ठीक नही है क्योंकि विकल्पकालमें क्षणिक होनेसे दर्शनका तो नाश ही होय जाता है तब विषयोपदर्शकत्व कहांपर ठहरेगा । उत्पन्नमात्रको ही विषयोपदर्शकत्व होता है यह जो द्वितीय कल्पना है उसके स्वीकार करनेसे तो क्षौरकरानेके वाद नक्षत्र परीक्षाप्राय (सदृश) विषयोपदर्शकत्वसे पीछे उत्पन्न होनेवाले नीलादि विकल्पकी विषयोपदर्शकत्वमें, अपेक्षा ही क्या है अर्थात् नही है क्योंकि उससे विना भी विषयोपदर्शकत्व तो सिद्ध ही है। एवं सति जिस जगहमें (एनां संवृतिं) विकल्पको दर्शन उत्पन्न करता है वहांपर ही दर्शनको प्रमाणता है इत्याकारक जो बौद्ध सिद्धान्त है उसका विरोधरूप दोष हो जावेगा । क्योंकि जब व्यवसायसे विना ही विषयोपदर्शकत्वका सद्भाव है तब प्रामाण्यका भी व्यवसायसे विना ही सद्भाव हो जावेगा क्योंकि प्रामाण्य जो है सो विषयोपदर्शकत्वमात्र निमित्तक है। एक दोष कहकर दूसरा और कहते है) कि यदि व्यवसायसे विना भी विषयोपदर्शकत्व

स्वीकार करेंगे तव क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्त्यादिकोंमें भी दर्शनको विपयोपदर्शकत्व क्यों नहीं प्राप्त होवेगा अर्थात् अवश्य होना चाहिये । यदि दर्शनका अध्यवसाय व्यापार है और अध्यवसाय व्यापारवालेही दर्शनको विपयोपदर्शकत्व है परन्तु व्यवसायसे विना विपयोपदर्शकत्व नहीं है वैसा तुम कहते हो तव यह कथन भी तुम्हारा अल्प है नाम तुच्छ है क्योंकि विकल्पको निर्विकल्पकका कार्य्य होनेसे निर्विकल्पकसे भिन्नकालता है इसलिये विकल्प जो है सो दर्शनका व्यापार नहीं हो सकता । तुष्यतु दुर्जन न्यायसे कहते हैं कि विकल्पको दर्शन व्यापारता रहो तो भी दर्शनका व्यापारभूत जो व्यवसाय है सो दर्शनके विषयका उपदर्शक है अथवा अनुपदर्शक है । यदि उपदर्शक है तव व्यवसाय ही दर्शनके विषयमें प्रवर्तक और प्रापक है ऐसा भया एव सति सवादक होनेसे विकल्पही प्रमाण है परन्तु विकल्पकी कारणताको प्राप्त जो दर्शन है सो तो प्रमाण नहीं है । यदि अनुपदर्शक है तव विकल्पको उत्पन्न करनेसे दर्शनको विपयोपदर्शकत्व किस रीतसे हो सकता है अर्थात् नहीं होय सकता क्योंकि संशय और विपर्य्ययका कारणीभूत जो दर्शन है उसको भी स्वविपयोपदर्शकत्वापत्तिरूप अतिप्रसङ्ग आ जावेगा । यदि विकल्पको दर्शनविषय सामान्यका व्यवसायी होनेसे विकल्पको उत्पन्न करनेवाले ही दर्शनको स्वविपयोपदर्शकत्व है परन्तु संशयादिकोंके कारणीभूत दर्शनको स्वविपयोपदर्शकत्व नहीं है वयसा कहते हो तव यह भी कथन ठीक नहीं क्योंकि दर्शन विपयसामान्यको अन्यापोहरूप होनेसे अवस्तुत्व है इसलिये सामान्य विषयक विकल्पोत्पादक दर्शनके विषयका व्यवसायी जो विकल्प है उसको वस्तूपदर्शकत्वका विरोध है ॥

अथ दृश्यविकल्पयोरेकीकरणाद्वस्तूपदर्शक एव व्यवसाय इति चेन्नन्वेकीकरणमेकरूपतापादनमेकत्वाध्यवसायो वा । प्राचिकपक्षेऽन्यतरस्यैव स तत्त्व स्यात् । द्वितीये तूपचरितमेवानयोरैक्य । तथा च कथमेष व्यवसायो विपयोपदर्शकः स्यान्नहि पण्ड॰ कुण्डोध्नीत्वेनोपचरितोपि पयसा पात्री पूरयति । किञ्च तदेकत्वाध्यवसायो दर्शनेन विकल्पेन ज्ञानान्तरेण वा भवेत् । नाद्येन दर्शनश्रोत्रियस्याध्यवसायश्वपाकसस्पर्शासम्भवात् । नच तस्य विकल्प्य विपयतामेति । नद्वितीयेन विकल्पकोणपस्य दृश्यदासरर्धि गोचरयितुमशक्यत्वात् । नापि तृतीयेन निर्विकल्पकसविकल्पकविकल्पयुगलानतिक्रमेण दृश्यविकल्प्यद्वयविपयत्वविरोधात् न च तदुभयागोचर ज्ञान तदुभयैक्यमाकलयितु कौशलमालम्बते । तथाहि । यद्यन्न गोचरयति न तत्तदैक्यमाकलयितु कुशल यथा कलशज्ञान वृक्षत्वशिंशपात्वयोस्तथा च प्रकृतमिति । तन्न व्यवसाय

जननात् प्रत्यक्षस्य प्रामाण्यमुपपादकं कथं चैतत्क्षणक्षयस्वर्गप्रापणशक्त्यादावप्यनुरूपं विकल्पं कदाचिन्नोत्पादयति । स-विकल्पवासनाबलसमुज्जृम्भमाणाक्षणिकत्वादि समारोपानुप्रवेशादिति चेत् तदपेशलं नीलादावपि तद्विपरीतसमारोप-प्रसक्तेः । कथमन्यथा विरुद्धधर्म्माध्यासात्तद्दर्शनभेदो न भवेत् नह्यनंशं दर्शनं कचित्समारोपाक्रान्तं कचिन्नेति वक्तुं युक्तं । अथ तत्तद्व्यावृत्तिवशादनंशस्यापि दर्शनस्य तथापरिकल्पनाददोषः । समारोपाक्रान्तेभ्यो हि व्यावृत्तमसमारोपाक्रान्तम-समारोपाक्रान्तेभ्यस्तु व्यावृत्तं समारोपाक्रान्तं तदुच्यत इति । तदप्यसूपपादं । यतो व्यावृत्तिरपि वस्त्वंशं कञ्चिदाश्रित्य कल्प्येतान्यथा वा । अन्यथाचेच्चित्रभानुरपि अचन्द्रव्यावृत्तिकल्पनया चन्द्रतामाद्रियेत । वस्त्वंशाश्रयणपक्षे तु सिद्धो-विरुद्धधर्म्माध्यासस्तथाहि । तद्दर्शनं येन स्वभावेन समारोपाक्रान्तेभ्यो व्यावर्त्तिष्ट न तेनैवासमारोपाक्रान्तेभ्योऽपि येन चामीभ्यो व्यावर्त्तेत न तेनैव तेभ्योपि तयोर्द्वयोरपि व्यावृत्तयोरैक्यापत्तेः । यदि पुनः स्वभावभेदोऽपि वस्तुनोऽतत्स्व-भावव्यावृत्त्या कल्पित एवेति मतं तदाकल्पितस्वभावान्तरकल्पनायामनवस्थास्थेमानमास्तिघ्नुवीत । ततो न व्यवसायज-ननादस्य प्रामाण्यमनुगुणं किंतु व्यवसायस्वभावत्वादेव एवं प्रामाण्यसहचरं समारोपपरिपन्थित्वमपि वाच्यम् ॥

यदि दृश्य नाम दर्शनका विषय और विकल्प्य नाम विकल्पका विषय इनको एकीकरणसे व्यवसाय जो है सो वस्तूका उपदर्शक ही है वैसा कहते हो तब एकीकरण दो प्रकारका है एकरूपतापादनरूप और एकत्वाध्यवसायरूप इनमेंसे यदि एकरूपता-पादनरूप एकीकरण कहोंगे तब एकका ही स्वरूप होवेगा परन्तु द्वितीयका न होगा । और यदि एकत्वाध्यवसायरूप एकीकरण कहोंगे तब दृश्य और विकल्प्यका ऐक्य उपचरित ही भया तब एकत्वाध्यवसाय जो है सो विषयोपदर्शक किस रीतिसे होवेगा अर्थात् नही होवेगा क्योंकि वैल जो है सो कुण्डोध्नीत्वेन उपचारित भी दूधके पात्रको पूरण नही करता है। और भी दोष है कि दृश्य और विकल्प्यका जो एकत्वाध्यवसायरूप एकीकरण है सो दर्शनसे होता है अथवा विकल्पसे होता है किंवा ज्ञानान्तरसे होता है। दर्शनसे तो नही कह सकते है क्योंकि दर्शन श्रोत्रिय (ब्राह्मणविशेष) का अध्यवसाय चांडालके साथ स्पर्शका असम्भव है विकल्प्य जो है सो दर्शनकी विषयताको नही प्राप्त होता । विकल्पसे भी नहीं कह सकते क्योंकि विकल्प कौणप (राक्षस) जो है सो दृश्य दाशरथि (रामचन्द्र) को विषय करनेमें असमर्थ है। ज्ञानान्त-रसे भी नही कह सकते है क्योंकि निर्विकल्पक और सविकल्पकरूप जो विकल्पद्वय उसको छोडकर दृश्य और विकल्प्य

एतद्द्वय विपयत्वका विरोध है। दृश्य ओर विकल्प्य एतदुभयको विपय न करनेवाला जो ज्ञान है सो एतदुभयकी ऐक्यता
करनेकी कुशलताको धारण नहीं करता है। इसमें सामान्यमुखी व्याप्ति कहते है। जो ज्ञान जिस वस्तुको विपय नहीं करता
हे सो ज्ञान उस वस्तुकी ऐक्यता करनेमें कुशल नहीं है। दृष्टान्त कहते है कि जैसे घटज्ञान जो हे सो वृक्षत्व ओर शिंश
पात्वकी ऐक्यता नहीं कर सकता। इस तरह ही दृश्य ओर विकल्प्यको न विषय करनेवाला जो ज्ञान हे सो तदुभयकी ऐक्यतामें
समर्थ नहीं हे। इसलिये व्यवसायको उत्पन्न करनेसे प्रत्यक्षको प्रामाण्य कहना ठीक नहीं है। और भी हम पूछतेहैं कि निर्विकल्पक
ज्ञान जो है सो क्षणक्षय ओर स्वर्गप्रापण शक्त्यादिकोंमें भी किसी वरत अनुरूप विकल्पको क्यों नहीं उत्पन्न करता। स्वविकल्पार्थ
अनादि अविद्या बलसे समुज्जृम्भमाण नाम उल्लसमान जो अक्षणिकत्व भ्रान्ति उसके अनुप्रवेशसे यदि कहोंगे तव यह कथन
तो ठीक नहीं है। क्योंकि नील आदिकोंमें भी तद्विपरीत समारोपकी प्रसक्ति होवेगी (अन्यथा) नाम नीलादिकोंमें ओर
क्षणक्षयादिकोंमें यदि समारोपानुप्रवेश तुल्य नहीं है तव विरुद्ध धर्माध्यास होनेसे दर्शनका भेद क्यों नहीं होता है अंशसे
शून्य जो दर्शन हे सो किसी जगहमें समारोपाक्रान्त है ओर किसी जगहमें समारोपाक्रान्त नहीं है यह वार्ता तो कथन करनेके
योग्य नहीं हे। यदि तद्व्यावृत्तिके वशसे अनश भी दर्शनकी सांशत्व कल्पना करते है इसलिये दोष नहीं हे। समारोपा
क्रान्तसे व्यावृत्त असमारोपाक्रान्त और असमारोपाक्रान्तसे व्यावृत्त जो हे सो समारोपाक्रान्त कहा जाता है। जैन कहते है, कि
यह कथन भी असूपपाद है अर्थात् ठीक नहीं। क्योंकि व्यावृत्ति भी जो हे सो किसी वस्त्वंशको कल्पना करके हे अथवा
वस्त्वंश कल्पनासे विना ही है। यदि कदाचित् वस्त्वंश कल्पनासे विना ही कहोगे तव चित्रभानु नाम अग्नि भी अचन्द्र
व्यावृत्तिकल्पनासे चन्द्रताको प्राप्त होवे। और वस्त्वंशाश्रयणपक्षमें तो विरुद्ध धर्माध्यास सिद्ध भया। किस रीतिसे सो
कहते है। नीलादि दर्शन जो हे सो जिस स्वभावसे समारोपाक्रान्तोंसे व्यावृत्त भया है उसी स्वभावसे असमारोपाक्रान्तसे भी
व्यावृत्त नहीं हो सकता ओर जिस स्वभावसे असमारोपाक्रान्तोंसे व्यावृत्त है उस स्वभावसे ही समारोपाक्रान्तोंसे भी व्यावृत्त नहीं
हो सकता है क्योंकि उन दोनो ही व्यावृत्त पदार्थोंकी ऐक्यतारूप आपत्ति होवेगी। यदि पुन स्वभावकी व्यावृत्ति (बदलना)
के न होनेसे स्वभाव भेद भी वस्तुका कल्पित ही है ऐसा मानते हो तव दूसरे कल्पित स्वभावकी कल्पनामें अनवस्था होवेगी
इसलिये व्यवसायको उत्पन्न करनेसे निर्विकल्पक प्रत्यक्षको प्रामाण्य है ऐसा कहना ठीक नहीं है किन्तु व्यवसाय स्वभाव होनेसे

ही ज्ञानको प्रामाण्य कहना ठीक है। इसप्रकारसे ही प्रामाण्य सहचर समारोप परिपथित्व भी व्यवसाय स्वभावसे ही कहना ठीक है।

समारोपपरिपन्थित्वमित्युक्तमिति समारोपं प्ररूपयन्ति।

पूर्व सूत्रमें समारोपपरिपन्थित्व हेतु कहा है इस प्रसङ्गसे सूत्रकार समारोपका निरूपण करते है ॥

अतस्मिंस्तदध्यवसायः समारोप इति

अन्य पदार्थमें अन्याध्यवसाय जो है उसको समारोप कहते है अर्थात् जिस पदार्थका जो स्वरूप नही है उसका वह स्वरूप जानना ही समारोप कहलाता है

अतत्प्रकारे पदार्थे तत्प्रकारता निर्णयः समारोप इत्यर्थः

जिसमें जो पदार्थ प्रकार नहीं है उसमें उस पदार्थकी प्रकारताका जो निर्णय है उसको समारोप कहते है ॥

अथैनं प्रकारतः प्ररूपयन्ति ॥

अब सूत्रकार समारोपके भेदोंको कहते है ॥

स विपर्ययसंशयानध्यवसायभेदात्त्रेधा ॥

विपर्यय संशय और अनध्यवसाय इन भेदोंसे समारोप जो है सो तीन प्रकारका है ॥

उत्तानार्थः। यह सूत्र स्पष्टार्थ है ॥

अथोद्देशानुसारेण विपर्य्ययस्वरूपं तावत्प्ररूपयन्ति ॥

अब उद्देशानुसारसे अर्थात् विभागसूत्रमें प्रथमोपस्थित विपर्ययके स्वरूपको सूत्रकार पहिले कहते है ॥

विपरीतैककोटिनिष्टङ्कनं विपर्य्यय इति ॥

विपरीत एक कोटीका जो निश्चय उसको विपर्यय कहते है ॥

विपरीताया अन्यथा स्थिताया एकस्याएव कोटेर्वस्त्वंशस्य निष्टङ्कनं विपर्यय इति।

अन्यथा स्थित (अयन्नरूप) एक ही कोटि नामवस्तुका जो निश्चय नाम निश्चय उसको विपर्यय कहते है ॥

अथोदाहरन्ति । अब सूत्रकार विपर्ययमें उदाहरण कहते हैं ॥

यथा शुक्तिकायामिदं रजतमितीति ॥

जैसे शुक्तिमें इद रजत यह जो ज्ञान है सो विपर्ययात्मक है ॥

यथेत्युदाहरणोपन्यासार्थोऽग्रेपि सर्वत्र शुक्तिकायामरजताकारायामिद रजतमिति रजताकारतया ज्ञान विपर्ययो विपरीतख्यातिरित्यर्थः । इतिशब्द उल्लेखार्थोऽग्रेपि उदाहरणसूत्र चेदमन्येषामपि प्रत्यक्षयोग्यविषयविपर्ययाणा पीतशङ्खज्ञानादीनां तदितरप्रमाणयोग्यविषयविपर्ययाणा हेत्वाभासादिसमुत्थज्ञानाना चोपलक्षणार्थम् ॥

सूत्रमें यथा शब्द जो है सो उदाहरणके उपन्यासार्थ है । इसी प्रकार अगाडी भी सवत्र सूत्रोंमें यथा शब्द उदाहरणार्थ जानना। अरजताकारा (नाम रजतत्वाभाववती) जो शुक्ति है उसमें इद रजत इत्याकारक रजताकारत्वेन नाम रजतरूपेन जो ज्ञान है उसको विपर्यय और विपरीत ख्याति कहते हैं। यह इस सूत्रका अर्थ भया । यहापर इति शब्द जो है सो उल्लेख नाम रीति बतलानेके लिये है आगे भी उदाहरण सूत्रोंमें इति शब्द उल्लेखार्थ ही जानना यह जो उदाहरण सूत्र है सो और भी प्रत्यक्ष योग्य है विषय जिनके वैसे जो विपर्यय पीत शङ्खादि ज्ञान, और प्रत्यक्षेतर जो अनुमान आदि प्रमाण उनके योग्य विषयोंका जो विपर्यय हेत्वाभासादिकोंसे समुत्थ ज्ञान उनके उपलक्षणार्थ है ऐसा बुद्धिमानोंने जानना ।

अत्र नियेकारख्यातिवादी वदति विवादास्पदमिद रजतमितिप्रत्ययो न वैपरीत्येन स्वीकर्त्तव्यस्तथाविचार्यमाणस्य तस्यानुपपद्यमानत्वाद्यद्यथाविचार्यमाण नोपपद्यते न तत्तथास्वीकर्त्तव्यं यथा स्तम्भः कुम्भरूपतयेति । नेद साधनमसिद्धिमधारयत् । तथाहि । किमिद प्रत्यक्षस्य वैपरीत्य स्यादर्थक्रियाकारिपदार्थाप्रत्यायकत्वमन्यथा प्रथन वा । आद्ये भेदे विवादास्पदप्रत्ययप्रत्यायिते पदार्थे किमर्थक्रियामात्रमपि नास्ति तद्विशेषसाध्यावा सा न विद्यते । नाद्यः पक्षः शुक्तिसाध्यायास्तस्याभावात् । द्वितीये तु ज्ञानकाले सा नास्ति कालान्तरेपि वा । ज्ञानकाले तावत् तथ्यकलधौतबोधेपि कापि सा नास्त्येव । कालान्तरे तु प्रचुरतरसमीरसमीरणाशुव्यपायिपयोबुद्बुदबोधेऽपि सा न विद्यत एव ॥ तत्रार्थक्रियेत्यादिपक्षः क्षेमकार । तत्पुरस्सरणपक्षे तु तथाविधवैपरीत्य तस्य स्वेनैव पूर्वज्ञानेनोत्तरज्ञानेन वाऽनसीयेत । न स्वेनैव तेन स्वस्य

वैपरीत्यावसाये प्रमातुः प्रवृत्त्यभावप्रसङ्गात् । अथ पूर्वज्ञानेन किं स्वकालस्थेन तत्कालस्थेन वा नाद्येन तत्काले वैपरीत्यास्पदसंवेदनस्यासत्वात् । नापि द्वितीयेन ज्ञानयोर्यौगपद्यासम्भवात् । अथोत्तरज्ञानेन तत्किं विजातीयं सजातीयं वा स्यात् । विजातीयमप्येकसन्तानं भिन्नसन्तानं वा भेदद्वयेपि घटज्ञानं पटज्ञानस्य वैपरीत्यावसायि भवेत् । सजातीयमप्येकविषयं भिन्नविषयं वा । एक विषयमप्येकसन्तानं भिन्नसन्तानं वा । द्वयमपीदं संवाददत्तहस्तावलम्बं कथं वैपरीत्याववोधधुराधौरेयतान्दधीत । भिन्नविषयमप्येकसन्तानं भिन्नसन्तानं वा । उभयत्रापि पटज्ञानं पटान्तरज्ञानस्य तथा भवेत् । अथ न सर्वमेवोत्तरज्ञानं प्राक्तनस्यान्यथात्वाववोधवद्धकक्षं किन्तुयदेव बाधकत्वेनोल्लसति । ननु किमिदन्तस्य तद्वाधकत्वं तदन्यत्वं तदुपमर्दकत्वं तस्य स्वविषये. प्रवर्त्तमानस्य प्रतिहन्तृत्वं प्रवृत्तस्यापि फलोत्पादप्रतिबन्धकत्वं वा । प्राचिपक्षे मिथ्याज्ञानमपि तस्य बाधकं स्यात् अन्यत्वस्योभयत्राविशेषात् द्वितीये घटज्ञानं पटज्ञानस्य बाधकं स्यात् तस्यापितदुपमर्देनोत्पादात् । तृतीये न प्रवृत्तिस्तस्य तेन प्रतिहन्तुं शक्या । यत्रक्वचन गोचरे प्रागेव प्रवृत्तत्वात् । तुरीयेपि न फलोत्पत्तिस्तस्य तेन प्रतिबद्धुं पार्यते । उपादानादिसंविदोपि प्रथममेव समुत्पन्नत्वात् । किञ्च विपरीतप्रत्यये रजतमसच्चास्ति सद्वा । असच्चेदसत्ख्यातिरेवेयं स्यात् । सचेत्तत्रैवान्यत्र वा यदि तत्रैव तदा तथ्यपदार्थख्यातिरेवेयं भवेत् । अन्यत्र तु सतः कथं तत्र प्रतीतिः पुरस्सरगोचर एव चक्षुरादेर्व्यापारात् दोषमाहात्म्यादिति चेन्न । दोषाणामिन्द्रियसामर्थ्यकदर्थनमात्रचरितार्थत्वेन विपरीतकार्य्योत्पत्तिं प्रत्यकिञ्चित्करत्वात् । ततस्तथा विचार्यमाणस्य तस्यानुपपद्यमानत्वमसिध्यदेव । नापि व्यभिचारि । विपक्षादत्यन्तं व्यावृत्तेरतएव न विरुद्धमपि । ततः सत्यमेवैतत्संवेदनद्वयमिदमिति प्रत्यक्षं रजतमिति तु स्मरणं करणोद्भूतदोषवशाच्छुक्तिरजतयोः प्रत्यक्षस्मरणयोश्च भेदाप्रतिभासाद्भेदाख्यातिरियमुच्यत इति ॥

यहांपर विवेकाख्याति वादी नाम प्रभाकर (मीमांसक) कहते हैं कि विवादास्पद जो शुक्तिमें इदंरजतं यह ज्ञान है सो विपरीतत्वेन स्वीकार नहीं करना चाहिये क्योंकि विचार करनेसे पूर्वोक्त जो ज्ञान है सो उस प्रकारका सिद्ध नहीं होता । जो पदार्थ विचार करनेसे जिस प्रकारका सिद्ध नहीं होता है सो पदार्थ उस प्रकारका मन्तव्य नहीं होता । जैसे स्तम्भ जो है सो कुम्भरूपत्वेन विचार्यमाणअनुपपन्न होनेसे कुम्भरूपत्वेन मन्तव्य नहीं है । यह पूर्वोक्त जो हेतु है सो असिद्धिको धारण नहीं करता है । तथाहि । ज्ञानमें वैपरीत्य क्या पदार्थ है । अर्थ क्रियाकारी पदार्थका अपरिच्छेदकत्व कहते हो अथवा अन्यथा प्रथन-

त्वरूप वैपरीत्य कहते हो। आद्य भेदमें हम पूछते है कि विवादास्पद ज्ञानसे ज्ञात जो (रजतरूप) पदार्थ हे उसमें क्या अर्थ क्रिया मात्र नहीं है अथवा रजतसाध्या नहीं है कहते हो। शुक्तिसाध्या अर्थक्रियाके विद्यमान होनेसे आद्य भेद तो नहीं कह सकते। द्वितीय भेदमें भी क्या ज्ञानकालमें रजतसाध्या अर्थक्रिया नहीं है अथवा कालान्तरमें भी नहीं है। यदि ज्ञानकालमें नहीं है कहते हो तब सत्यरजत स्थलमें भी तो ज्ञानकालमें अर्थक्रिया कहीं नहीं ही हे। यदि कालान्तरमें कहते हो तब प्रचुरतर जो वायुके समीरण नाम वेगसे शीघ्र नाश होनेवाला जलका बुद्बुद उसमें भी तो कालान्तरमें अर्थक्रिया नहीं ही है। इसलिये अर्थक्रियाकारिपदार्थाभत्यायस्त्वरूप पक्ष जो हे सो क्षेमकारी अर्थात् ठीक नहीं है। इससे आगेका जो पक्ष हे उसमें तो अन्यथा प्रथनरूप जो वैपरीत्य है सो स्वसे ही जाना जाता है अथवा पूर्वज्ञानसे जाना जाता हे किम्वा उत्तर ज्ञानसे जाना जाता है तुम कहते हो। यदि स्ववृत्ति वैपरीत्यका निश्चय स्वसे ही माना जावेगा तब प्रमाता पुरुषकी प्रवृत्तिके अभावका प्रसङ्ग होवेगा इसलिये स्वसे तो नहीं कह सकते। अब यदि पूर्वज्ञानसे वैपरीत्यका निश्चय तुम कहते हो तो भी क्या पूर्वकालस्थेन अथवा वैपरीत्य कालस्थसे कहते हो। पूर्वकालस्थसे तो नहीं कह सकते क्योंकि पूर्वकालमें वैपरीत्यका आश्रय ज्ञानही नहीं है। तत्कालस्थेन भी नहीं कह सक्ते क्योंकि दो ज्ञानोंका एक कालमें एकत्र असम्भव है। यदि उत्तर ज्ञानसे वैपरीत्यका निश्चय होता हे कहते हो तब उत्तरज्ञान जो है सो विपरीतज्ञानके सजातीय है अथवा विजातीय है। विजातीय भी एक सन्तान (एकप्रमातृगत) हे अथवा भिन्न सन्तान है भेदद्वयमें भी घट ज्ञान जो है सो पट ज्ञानके वैपरीत्यका निश्चायक होवें। यदि सजातीय है तो भी एक विषय है अथवा भिन्न विषय है। एक विषय भी एक सन्तान हे अथवा भिन्न सन्तान है। यह दोनों ही सवाद दत्तहस्तावलम्ब है तब वैपरीत्यावबोधकी धुराकी धौरयताको किस प्रकारसे धारण करें अर्थात् नहीं कर सकते। भिन्न विषय भी एक सन्तान हे अथवा भिन्न सतान है। दोनों ही पक्षोंमें पट ज्ञान जो है सो पटान्तर ज्ञानके वैपरीत्यका निश्चायक होवें। यदि सब ही उत्तरज्ञान पूर्ववृत्ति ज्ञानके वैपरीत्यका बोधक नहीं है किन्तु जो बाधकत्वेन प्रतीयमान होता है उसीको वैपरीत्यावसायि हम कहते हैं वेसा तुम कहते हो। तब हम पूछते हे कि उत्तर ज्ञानमें तद्बाधकत्व क्या पदार्थ है। तदन्यत्वरूप कहते हो अथवा तदुपमर्दकत्व कहते हो किम्वा स्वविषयमें प्रवृत्त पूर्वज्ञानका प्रतिहन्तृत्वरूप कहते हो अथवा स्वविषयमें प्रवृत्त भी पूर्वज्ञानके फलोत्पादप्रतिबन्धकत्वरूप बाधकत्व कहते हो इन चार भेदोंमेंसे यदि प्रथम भेद कहोगे तब मिथ्याज्ञान भी यथार्थ ज्ञानका प्रतिबन्धक होवे क्योंकि तदन्यत्व तो (उभयत्र) नाम सत्य ज्ञानमें

और मिथ्याज्ञानमें तुल्यही है। द्वितीय पक्षमें तो घट ज्ञान जो है सो पट ज्ञानका प्रतिबन्धक होवे क्योंकि घट ज्ञान भी पट ज्ञानके उपमर्दसे उत्पन्न भया है। तृतीय भेदमें, पूर्वज्ञानकी जो प्रवृत्ति है सो उत्तर ज्ञानसे प्रतिवद्धुं शक्य ही नही है क्योंकि जिस किसी भी विषयमें पूर्वज्ञान पहिले ही प्रवृत्त होय चुका है। पूर्वज्ञानकी फलोत्पत्ति भी उत्तर ज्ञानसे प्रतिवद्धु शक्य नहीं है। क्योंकि उपादानादि ज्ञान भी प्रथम ही उत्पन्न होय चुका है इसलिये चतुर्थभेद भी ठीक नहीं है विपरीतख्यातिके खडनार्थ ग्रथकार और भी युक्तिये कहते है कि विपरीत ज्ञानमें जो रजत प्रतीयमान होता है सो असत् है अथवा सत् है। यदि असत् है तब तो असत् ख्याति ही भई। और यदि सत् है तब उस जगहमें ही सत् है अथवा अन्यत्र सत् है। यदि तत्रैव सत् है तब तो वह यथार्थ ज्ञान ही भया। यदि अन्यत्र सत् है तब शुक्तिकामें उसकी प्रतीति किसरीतिसे होय सक्ति है क्योंकि (पुरस्सर) अगाडिमें रहनेवाले विषयमें ही चक्षुरादि इन्द्रियोंका व्यापार होता है। यदि दोपवशसे अन्यत्र स्थित भी रजत शुक्ति में प्रतीयमान हो जाता है वैसा कहते हो तब यह कथन तो तुम्हारा ठीक नहीं है। क्योंकि दोपोंको तो इन्द्रिय सामर्थ्यके नाशमें ही चरितार्थता है परन्तु विपरीतकार्य्योत्पत्तिमे तो अकिंचित्करत्व है। इसलिये तथा विचार्य्यमाणस्य तस्यानुपपद्यमानत्वरूप जो हेतु है सो सिद्धही है परंतु असिद्ध नही। और व्यभिचारी भी नहीं है क्योंकि विपक्षसे अत्यन्त व्यावृत्त है इसलिये ही विरुद्ध भी नहीं है। इसलिये शुक्तिकामे जो इद रजतं यह ज्ञान है सो प्रत्यक्ष और स्मरण उभय स्वरूप सत्यही है इदमांशमें प्रत्यक्ष है और रजतांशमें स्मरण है इन्द्रियोद्भूत दोपवशसे शुक्ति और रजत तथा प्रत्यक्ष और स्मरण इनके भेदाप्रतिभाससे भेदाख्याति यह कही जाती है ॥

अत्राभिदध्महे । ये तावत्साधनासिद्धिविध्वंसनाय व्यधायिषत विकल्पास्तत्र शुक्त्यादिरूपतयान्यथास्थितस्यान्यथा रजताद्यर्थप्रकारेण यत्प्रथनं तत्स्वरूपं वैपरीत्यं नेदं रजतमित्येतदुपमर्दतः पश्चादुज्जृम्भमाणेन बाधकेनावधार्य्यत इति ब्रूमः। तथा चान्यथा प्रथनोत्तरज्ञानतदुपमर्दकत्वविकल्पाभ्यां शेषं तु विकल्पनिकुरुम्बं तुण्डताण्डवाडंबरविडम्बनमात्रफलमेव। अथ विजातीयं सजातीयं वा तदित्यादि प्रकारेषु किमुत्तरं ते स्वान्नुवितीर्णमेन अस्तु यत्किञ्चिदुपमर्देन चेदुत्पद्यते तदा तदखिलं बाधकं सत् तस्य तथात्वमाविष्करोतीति उपमर्दश्च न प्रध्वंसो गतः पटज्ञानध्वंसेनोत्पद्यमानस्य घटज्ञानस्य बाधकत्वं स्यात् किन्तु तत्प्रतिभातवस्त्वसत्त्वख्यापनं। यन्मदीयवेदने रजतमिति प्रत्ययात् तद्रजतं

न भवत्येवेति । अपिच भेदाख्यातावपि प्रत्यक्षस्मरणयोर्भेदाख्यान किं स्वेनैव वेद्यत इत्यादि सकलविकल्पपेटकमाटीकत एनेति स्ववधाय कृत्योत्थापनमेतद्भवत ॥

जैन कहते हैं कि यहांपर हम कहते हैं । जो पहिले साधनासिद्धिके नाशार्थ विकल्प तुमने कहे हैं वहांपर हम वयसा कहते हैं कि अन्यथा नाम शुक्त्यादिरूपेण स्थितपदार्थका रजतादिरूपेण जो कथन तत्स्वरूप वैपरीत्य है सो वैपरीत्य नेद रजत इत्याकारक इद रजत इससे पश्चात्तदुपमर्द्दसे उत्पन्न होने वाला जो बाधक उससे जाना जाता है । एव स्थिते । अन्यथा प्रथनोत्तरज्ञान और तदुपमर्दकस्वरूप जो विकल्पद्वय उनसे वादीका जो विकल्प समूह है सो तुण्डताण्डव के आडम्बरसे जो विडम्बना तन्मात्र फलक ही है अर्थात् व्यर्थ है। यदि विजातीय सजातीय वा तत् इत्यादि विकल्पोम है समाधानवादिन् तुम्हारा क्या उत्तर है वैसा तुम कहते हो तब हम कहते हैं कि इसका उत्तर तो हम कह ही चुके हैं । विजातीय हो अथवा सजातीय हो जो तदुपमर्दन उत्पन्न होय सो सब बाधक होता हुआ इद रजत इस ज्ञानके वैपरीत्यको प्रगट करता है । और उपमर्द जो है सो प्रध्वसरूप नहीं है कि जिससे घट ज्ञानके ध्वससे उत्पन्न जो घट ज्ञान उसका बाधक होय सके किन्तु तत्प्रतिभात वस्तुके असत्वख्यापन (नाम असत्व बोधन) रूपही उपमर्द है । जो मेरे ज्ञानमें रजत इस प्रकारसे प्रतीयमान हुआ था सो रजत नहीं है इति। और भी दोष है कि भेदख्यातिमे भी प्रत्यक्ष स्मरणयो भेदाख्यान किं स्वेनैव वेद्यत इत्यादिक जो विकल्प समूह है सो तुम्हारे मतमें भी प्राप्त होवेगा ही । इस लिये तुमने स्ववधके लिये ही एतद्विकल्परूप कृत्या जादू अथवा मारीका उत्थापन किया है ॥

अथ पूर्वानुभूतरजतप्रतिभाने कथ तेन शुक्तिकापेक्ष्येत तत्र सधृतसाकाराया' शुक्तिकाया एवात्र प्रतिभानात् । वस्तु स्थित्या हि शुक्तिरेव सा त्रिकोणत्वादिविशेषग्रहणाभावात्तु सधृतसाकारा चाकचक्यादिसाधारणधर्म्मदर्शनोपजनितरू- प्यस्मरणारोपितरजताकारत्वाच्च समुपात्तरजताकारेत्यभिधीयते । यत् खलु यत्र कर्म्मतया चकास्ति तत्तदालम्बनमेतच्च रजतग्राहिकया निर्दिश्यमानायां शुक्तौ समस्त्येव । सैवहि दोषवशात् तथा प्रतिभाति । दृष्ट च दोषवशाद्विपरीतकार्य्यो- त्पादकत्व यथा क्षिप्तमन्दाक्षलक्ष्मीकाया' कुलपक्ष्मलाक्ष्यास्तत्तद्विरुद्धवीक्षणभाषणादि। त्वयापि चैतदङ्गीकृतमेव प्रकृतरजत देशानुसारिप्रवृत्तिजनकत्वौत्सर्गिककार्यपरिहारेण पुरोदेश एव प्रवृत्तिजनकत्वस्वीकारात् । भेदाग्रहण सहकारिणमपेक्ष्य प्रकृतरजतस्मरणस्य तदविरुद्धमितिचेत् दोषान् सहकारिणोपेक्ष्य हृषीकस्यापि तत् तथास्तु । किञ्च प्रत्यभिज्ञानेन रजतस-

वित्तेः शुक्तिगोचरत्वमवस्थाप्यते । यदेव मम रजतत्वेन पूर्वमचकात् तदेव शुक्तिशकलमित्येव तस्योत्पादात् । अनुमानेन च विवादपदं रजतज्ञानं रजतगोचरमिति विचारेण वैपरीत्यस्योपपत्तेरसिद्धिदुर्गन्धमेव त्वत्साधनमिति स्थितम् ॥

यदि पूर्वानुभूत रजत ज्ञानमें विवादास्पदप्रत्ययसे शुक्तिका (सीप) किस प्रकारसे अपेक्षित होती है अर्थात् शुक्तिकाकी अपेक्षा युक्त नहीं है विपर्य्ययज्ञानमें संवृतस्वाकारा और समुपात्त रजताकारा जो शुक्तिहै उसीका रजतज्ञान प्रदेशमें प्रतिभान होता है । वस्तुस्थित्या तो वह शुक्ति ही है शुक्तिमें रहनेवाले जो त्रिकोणत्वादि विशेष उनके ग्रहण न होनेसे तो संवृतस्वाकारा कही जाती है और चाकचिक्य आदि साधारण धर्म दर्शनसे जनित जो रूप्य स्मरण उससे आरोपित रजताकार होनेसे समुपात्त रजताकारा कही जाती है । जो पदार्थ जिस ज्ञानमें कर्मतया प्रतीयमान होता है सो पदार्थ उस ज्ञानमें (आलंबन) विषय होता है । सो (वस्त्वालंबन) तो अङ्गुली निर्देशेन निर्द्दिश्यमाना शुक्तिकामें विद्यमान ही है । क्योंकि शुक्तिका ही दोषबलसे रजतत्वेन प्रतीत हो रही है । दोष वशसे विपरीत कार्य्योत्पादकत्व संसार व्यवहारमें भी देखा जाता है जैसे क्षिप्तमन्दाक्षलक्ष्मीका नाम चचल नेत्रवाली कुलाङ्गनामें विरुद्ध वीक्षणभाषणादिक देखे जाते है । तुमने भी तो दोषवशसे विपरीत कार्य्योत्पादकत्व माना ही है क्योंकि भ्रमस्थलीयरजत स्मरण को अनुभूतरजतदेशानुसारिप्रवृतिजनकत्वरूप औत्सर्गिककार्य्यपरिहारपूर्वक पुरोदेशावच्छेदेन ही प्रवृति जनकत्व स्वीकार किया है। कदाचित् शुक्ति और रजतके तथा प्रत्यक्ष और स्मरणके भेदाग्रहणरूप सहकारी की अपेक्षा रखकर प्रकृत रजत स्मरणको पुरोदेशमें प्रवृत्तिजनकत्व विरुद्ध नहीं है वैसा कहोंगे तब इन्द्रियको दोषरूप सहकारीयोंकी अपेक्षा रखकर पुरोदेशमें प्रवृत्तिजनकत्व अविरुद्ध होवे ॥ और भी प्रमाण कहते है कि प्रत्यभिज्ञानसे भी प्रकृतस्थलीय रजतज्ञानको शुक्तिगोचरत्व नाम शुक्ति विषयत्व ही स्थापन होता है क्योंकि जो पदार्थ रजत्वेन पहिले मेरेको ज्ञात भयाथा वह पदार्थ ही शुक्ति शकल है इसप्रकारकी ही प्रत्यभिज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ विवादपद जो रजतज्ञान है सो शुक्ति(गोचर)विषयक है क्योंकि शुक्तिकामें ही प्रवर्तक होता है जो ज्ञान जिसमें प्रवर्तक होवे है सो ज्ञान तद्विषयक ही होता है जैसे सत्यरजतविषयकज्ञान रजतमे प्रवर्तक होनेसे रजत विषयक होता है । इस अनुमान विचारसेभी वैपरीत्यकी ही सिद्धि होती है इसलिये (तथा विचार्यमाणस्य तस्यानुपपद्यमानत्वात्) इत्याकारक जो पूर्वोक्त तुह्मारा हेतु है सो असिद्धिनामक दोषसे दुर्गन्धित ही हैं यह वार्ता सिद्ध हुई ॥

यच्चोक्तं शुक्तिरजतयोः प्रत्यक्षस्मरणयोश्च भेदाप्रतिभासादिति तत्र भेदाप्रतिभासस्तुच्छः कश्चिदुच्येत अभेदप्रतिभासो वा नाद्यः प्राभाकरैरभावानभ्युपगमात्। नापि द्वितीयो विपरीतख्यातिप्रसक्तेर्भिन्नयोरभेदेन प्रतिभासात्। अथ भेदो व्यावर्तकधर्म्मयोगस्तस्य चा प्रतिभासः साधारणधर्म्मप्रतिभास इति चेन्न। शुक्तिज्ञाने सत्यपि तस्य भावाद्दीप्रतादेस्तत्रापि प्रतिभासात् अथ न तत्र तस्यैव प्रतिभासस्त्रिकोणत्वादिव्यावर्तकधर्म्माणामपि प्रतिभासादिति चेत् तर्हि सावधारणः साधारणधर्म्मप्रतिभासः प्रकृतरजतबोधेपि नास्त्येव रजतगतस्य रजतत्वस्येव शुक्तिगतस्य त्वनियतदेशकालस्मर्यमाण-रजतासम्भविनियतदेशकालत्वस्य व्यावर्तकधर्म्मस्य प्रतिभानादिति। ग्रहणस्मरणसंवित्ती अपि स्वसंविदिते प्राभाकराणां ते च यदि स्वरूपेण प्रतिभासतस्तदा न रजतार्थिनस्तथा प्रवृत्तिः स्यात्। अथ ग्रहणं स्मरणरूपतया प्रतिभाति तदा विपरीतख्यातेरस्पष्टतया प्रतिभानमनुभूतरजतदेशे प्रवृत्तिश्च स्यात्। अथ स्मरणं ग्रहणरूपतया तदापि विपरीतख्यातिरेव प्रभूतं चात्र वक्तव्यं। तच्चोक्तमेव बृहद्वृत्तौ वितत्य श्रीपूज्यैः॥

जो तुमने शुक्ति और रजतके भेदाग्रहसे तथा प्रत्यक्ष और स्मरणके भेदाग्रहसे ऐसा कहा है उसमें भेदाप्रतिभासशब्दसे तुम किसी तुच्छ पदार्थको कहते हो अथवा अभेद प्रतिभासको कहतेहो। आद्य पक्ष तो नहीं कह सकेगे क्योंकि मीमांसकोंने अभाव अतिरिक्त पदार्थ नहीं माना है। द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि भिन्न पदार्थोंको अभेदेन नाम एक रूप प्रतीत होनेसे विपरीत ख्यातिकी प्राप्तिरूप दोष आवेगा। कदाचित् भेद पदार्थ क्या है कि व्यावर्तक धर्मका सम्बन्ध उसका अप्रतिभास नाम साधारण धर्म्मका प्रतिभास ऐसा कहोगे तब नहीं कहना। क्योंकि यथार्थ शुक्ति ज्ञानमें भी दीप्रतादिरूप साधारण धर्म्मका प्रतिभास होता है। यदि यथार्थ शुक्ति ज्ञानमें त्रिकोणतादि व्यावर्तक धर्म्मका भी भान होनेसे केवल दीप्रतादिरूप साधारण धर्म्मका ही प्रतिभास नहीं है ऐसा कहतेहो तब (सावधारण) केवल साधारण धर्म्मका प्रतिभास प्रकृत विवादास्पद ज्ञानमें भी तो नहीं ही है। क्योंकि रजतगत रजतत्वकी तरह अनियत देशकालवाले स्मर्यमाण रजतमें न रहनेवाले और शुक्तिमें रहनेवाले नियतदेशकालत्व रूप व्यावर्तक धर्म्मका भी प्रतिभास होता है॥ प्रत्यक्ष और स्मरण—रूप जो ज्ञान है सो भी मीमांसकोंके मतमें स्वसंविदित है वह यदि स्वरूपेण प्रतिभात है तब रजतार्थी पुरुषकी पुरोदेशमें प्रवृत्ति न होनी चाहिये। यदि कदाचित् प्रत्यक्ष जो है सो स्मरणरूपसे प्रतीयमान होता है कहोगे तब विपरीतख्यातिका अस्पष्टतासे प्रतिभान तथा अनुभूत रजत देशमें प्रवृत्ति भी होवे। यदि स्मरण

प्रत्यक्षरूपसे भासता है कहोंगे तब भी विपरीतख्यातिकी ही सिद्धि होती है। इस विषयमें बहुत वक्तव्य है सो बृहद्वृत्तिमें नाम इस ग्रंथकी वडी टीकामें श्री पूज्योंने कहा ही है इस लिये हम नहीं लिखते हैं ॥

अथ संशयं निरूपयन्ति ।

अब सूत्रकार संशयका निरूपण करते है ।

साधकबाधकप्रमाणाभावादनवस्थितानेककोटिसंस्पर्शि ज्ञानं संशय इति ॥

एक कोटीके साधक अथवा बाधक प्रमाणों के न होनेसे अनवस्थित अनेक कोटियोंको विषय करनेवाला जो ज्ञान है उसको बुद्धिमान संशय कहते है ॥

उल्लिख्यमानस्थाणुत्वपुरुषत्वाद्यनेकांशगोचरयोः साधकबाधकप्रमाणयोरनुपलम्भादनभिधारितनानांशावलम्बि विधिप्रतिषेधयोरसमर्थं संवेदनं संशय इत्यर्थः । समिति समन्तात्–सर्वप्रकारैः शेत इवेति व्युत्पत्तेः ॥

उल्लिख्यमान स्थाणुत्वपुरुषत्वादि अनेकांश गोचर (विषयक) साधक और बाधक प्रमाणोके न होनेसे अनिश्चित नानांशोंको विषय करनेवाला विधिप्रतिषेधमें असमर्थ जो ज्ञान उसको बुद्धिमान संशय कहते है इस सूत्रका यह अर्थ भया क्योंकि स उपसर्गका अर्थ है समन्तात् नाम सर्व प्रकारोंसे जो शयन करे हुएके सदृश होवे इस व्युत्पत्तिसे पूर्वोक्त अर्थ ही जाना जाता है ।

उदाहरन्ति ॥

अब सूत्रकार संशयका उदाहरण कहते है ।

यथायम् स्थाणुर्वा पुरुषो वेति ॥

जैसे स्थाणुर्वा पुरुषोवा यह ज्ञान संशय कहा जाता है ॥

व्यक्तमिदम् ।

यह सूत्र स्पष्टार्थ है इसलिये इसकी व्याख्या भी नही करी है ॥

अयञ्च प्रत्यक्षविषये संशयः । परोक्षविषये तु यथा क्वापि विपिनप्रदेशे शृङ्गमात्रदर्शनात्किङ्गौरयं स्याद्गवयो वेत्यादि ॥

सूत्रमें जो गवयका उदाहरण कहा है सो प्रत्यक्ष विषयमें संशय जानना । परोक्ष विषयमें तो जैसे किसीक वनमें शृङ्गमात्रके देखनेसे क्या यह शृङ्गवान् जीव गौ है अथवा गवय है इत्यादिक उदाहरण बुद्धिमानोंने स्वयं जान लेने ॥

(अथानध्यवसायस्वरूपम्प्ररूपयन्ति)

अब सूत्रकार अनध्यवसायके स्वरूपको कहते है ॥

किमित्यालोचनमात्रमनध्यवसाय इति ।

किम् इत्याकारक शब्द प्रयोगसे उत्पद्यमान ज्ञानमात्र अनध्यवसाय कहा जाता है ॥

अस्पृष्टविशिष्टविशेषं किमित्युल्लेखेनोत्पद्यमानं ज्ञानमात्रमनध्यवसायः प्रोच्यते समारोपरूपत्वं चास्यौपचारिकमतस्मिंस्तदध्यवसायस्य तल्लक्षणस्याभावात् समारोपनिमित्तं तु यथार्थापरिच्छेदकत्वम् ॥

किंचिद्धर्मावच्छिन्नपदार्थविशिष्टविषयताशून्य किम् इत्याकारक शब्दप्रयोगेन उत्पद्यमानज्ञानमात्रको बुद्धिमान पुरुष अनध्यवसाय कहते है । अनध्यवसायको समारोपरूपता तो औपचारिक है क्योंकि तद्धर्मसे शून्य पदार्थमें तद्धर्मका प्रकारतया निश्चय रूप जो समारोपका लक्षण है उसका अनध्यवसायमें अभाव है ॥ समारोपका निमित्त तो यथार्थापरिच्छेदकत्व नाम यथार्थरूपसे पदार्थका परिज्ञान न करनारूप धर्म इसमें है इस लिये इसमें औपचारिक समारोपत्व होय सकता है ॥

(उदाहरन्ति)

अब सूत्रकार पूर्वोक्तनाका उदाहरण कहते है ॥

यथा गच्छत्तृणस्पर्शज्ञानमिति ॥

जैसे शुत्रनिद्र गमन कर रहे पुरुषको तृणस्पर्शका जो ज्ञान होता है सो अनध्यवसायरूप होता है ॥

गच्छतः प्रमातुस्तृणस्पर्शविषयं ज्ञानमन्यत्रासक्तचित्तत्वादेवंजातीयकमेवंनामकमिदं वस्त्वित्यादिविशेषानुल्लेखि किमपि मया स्पृष्टमित्यालोचनमात्रमित्यर्थः प्रत्यक्षयोग्यविषयश्चायमनध्यवसायः एतदुदाहरणदिशा च परोक्षयोग्यविषयोप्य-

नध्यवसायोऽवसेयः । यथा कस्यचिदपरिज्ञातगोजातीयस्य पुंसः कचन वननिकुञ्जे सास्नामात्रदर्शनात् पिण्डमात्रमनुमाय को नु खल्वत्र प्रदेशे प्राणी स्यादित्यादि ॥

गमन कर रहे प्रमाता पुरुषको तृणस्पर्शविषयक जो ज्ञान है सो अन्यत्र सक्तचित्त होनेसे यह पदार्थ अमुक धर्म्मवान् है अथवा अमुक नामक है इत्यादि विशेषका अनुल्लेखि कुच्छ मैने स्पर्श किया है इत्यालोचनमात्र ऐसा इस सूत्रका अर्थ जानना । सूत्रमें जो अनध्यवसायका उदाहरण कहा है सो प्रत्यक्ष योग्य विषयविषयक अनध्यवसायका उदाहरण जानना इसकी तरह परोक्षयोग्य विषयानध्यवसाय भी बुद्धिमानोने स्वय जान लेना । परोक्षविषयानध्यवसायका भी एक उदाहरण कहते हैं कि जैसे गौके न जाननेवाले पुरुषको किसी वनप्रदेशमें सास्नामात्रके दर्शनसे पिण्डमात्रका अनुमान होकर इस जगहमें कौनसा प्राणी है इत्यादि अनेक और भी परोक्ष योग्यविषयानध्यवसायके उदाहरण है ॥

अथ प्रमाणलक्षणसूत्रोपात्तं परशब्दं व्याख्यान्ति ॥

अब सूत्रकार प्रमाणके लक्षणसूत्रमें उपात्त (गृहीत) पर शब्दकी व्याख्या करते है ॥

ज्ञानादन्योऽर्थः पर इति ॥

ज्ञानसे भिन्न जो पदार्थ है सो (सूत्रोपात्त) परशब्दका वाच्य है ॥

ज्ञानाद्ग्राहकात्सकाशादन्यो ग्राह्यतया पृथग्भूतोऽचेतनः सचेतनोवाऽर्थोऽर्थक्रियार्थिभिरर्थ्यमानः परः परशब्दवाच्यः

ज्ञानसे नाम ग्राहकसे अन्य नाम ग्राह्यतया पृथग्भूत अर्थक्रियार्थिक पुरुषोंसे प्रार्थ्यमान जो अचेतन घटादि सचेतन गवादि पदार्थ है, सो प्रमाण लक्षणसूत्रोपात्त (प्रमाणके लक्षणसूत्रमें कथित) परशब्दका वाच्य है ॥

अत्र शून्यवादिनः कतिपयविकल्पाटोपोच्चण्डतुण्डमुत्खमायन्ते । अहो आर्हताः किं ज्ञानं कश्चार्थः । ग्राहकमंतर्ज्ञानं ग्राह्यो वाह्योर्थः इति चेत्कस्य ज्ञानं ग्राहकमर्थस्य चेदर्थ एवानर्थमूलं तर्हि सएवोन्मूलनीयस्तथाहि ॥ किमयमणुरूपः स्थूलरूपस्त-
दुभयस्वभावोवा । अणुरूपश्चेत् कुतोऽणूनामवधारणं । प्रत्यक्षादनुमानाद्वा प्राचिपक्षे किं योगिप्रत्यक्षादस्मदादिप्रत्यक्षाद्वा धुर्यः श्रद्धामात्रावधार्य्यः द्वितीयस्त्वनुभूतिपराभूतः । न वयमयं हि परमाणुरयं परमाणुरिति स्वप्नेपि प्रतीमः स्तम्भोयं कुम्भोय-

मित्येवमेव न. सदैव सवेदनोदयात् अथानुमानात्परमाणुप्रवेदन किमनधृतसाध्यसाधनसम्बन्धात् तदितरस्माद्वा। नतावत्तदि-
तरस्मादतिप्रसङ्गसङ्गमात् प्राचिकप्रकारे तु सम्बन्धावधारण प्रत्यक्षेणानुमानेन वा । न तावत् प्रत्यक्षेण अणूनामतीद्रिय-
त्वेन तै. सहाविनाभावस्य क्वापि लिङ्गे ग्रहीतुमशक्यत्वात् । अनुमानेनापि तेनैवानुमानान्तरेण वा तदवधारण । न तावत्तेनैव
परस्पराश्रयापत्ते सतिसम्बन्धावधारणे तदनुमानोत्थान सतिचास्मिस्तदवधारणमिति । अनुमानान्तरमपि गृहीतप्रतिबन्ध
मगृहीतप्रतिबन्धमेव वा प्रवर्तेतेत्याद्यावृत्तावनवस्थादौस्थ्योपस्थापन तन्नानुमानादपि परमाणुप्रतीति । किञ्चामी
परमाणवो नित्या वास्युरनित्यावा नित्याश्चेत्किमर्थक्रियाकारिणोऽकिञ्चित्करावा उदीचीनस्तावत्पक्ष' न क्षोदीयोन्तरिक्षपुष्प-
वत्तेषामसत्वापत्ते' । अर्थक्रियाकारित्व तु तेषा क्रमेण युगपद्वा । क्रमेण चेत्किस्वभावाभेदेन तद्भेदेन वा । स्वभावाभेदभि-
दाया ते येनैव स्वभावेन प्राच्यं कार्यमर्जयन्ति तेनैवोत्तरमपि यद्वा येनैवोत्तर तेनैव प्राच्यमपि । प्रथमे प्रथमकार्य्यकाल
एवोत्तरस्याप्युत्पत्तिप्रसक्तिस्तद्वत् द्वितीये द्वितीयकार्य्यकाल एव प्रथमस्यापि प्रभवप्राप्तिः । तद्वदेव स्वभावभेदपक्षे क्षणिक
त्वापत्तिस्तल्लक्षणत्वात्क्षणभङ्गुरताया. । युगपत्पक्षे सकृदेव सकलस्वकार्यपुञ्जस्याजितत्वाद्द्वितीयादिक्षणे तेषामसत्व स्यात् ।
तन्नामी नित्या. । अनित्याश्चेत् क्षणिका. कालान्तरस्थायिनो वा । क्षणिकाश्चेत् किमकस्माद्भवन्ति कारणाद्वा कुतोऽपि अकस्मा
चेत् ननु किमिह कारणप्रतिषेधमात्र भवनप्रतिषेध स्वात्महेतुकत्व निरुपाख्यहेतुकत्व वा विवक्षित । आद्ये भवनस्यानपे
क्षत्वेन सदा सत्वस्यासत्वस्य वा प्रसक्ति नित्यसत्वमसत्व वा हेतोरन्यानपेक्षणादित्युक्ते. द्वितीये प्रागिव पश्चादपि नामी
भवेयु' । तृतीये कथमुत्पत्तिस्तेषा स्वयमसता स्वोत्पत्तौ व्यापारव्याहते । तुरीये प्रागपिसत्वापत्ते सनातनत्व स्यात् ।
कारणाद् भवनपक्षे तु स्थूल किञ्चित् तेषाङ्कारणं परमाणव एव वा न स्थूल परमाणुरूपार्थपक्षस्यैव स्वीकारात्। परमाणवश्चे
त्ते किंसन्तोऽसन्त' सदसद्रूपा अनुभयस्वभावा वा स्वकार्य्याणि कुर्य्यु सन्तश्चेत् किमुत्पत्तिक्षण एव द्वितीयादिक्षणेऽपि वा ।
नाद्य' तदानीमुत्पत्तिमात्रव्यग्रत्वात्तेषा । अथ भूतियषा क्रिया सैव कारणम् सैवचोच्यत इति वचनात् भवनमेव तेषा
मुत्तरोत्पत्तौ कारणमितिचेदेव तर्हि रूपाणवो रसाणूना तेच तेषामुपादान स्युरुभयत्र भवनाविशेषात् । नद्वितीय' क्षणक्ष-
यापत्ते. । अथासन्तस्ते तदुत्पादकास्तर्हि तदुत्पत्तिक्षणमेकमपहाय सर्वदा तदुत्पादप्रसङ्गस्तद्भवनस्य सर्वदाऽविशेषात् ।
सदसद्रूपपक्षस्तु दुर्निरोधविरोधानुबन्धदुर्द्धर । यदिहि ते सन्त' कथमसन्तस्तथाचेत् कथ सन्तः। अनुभयस्वभावभेदोप्य-

साधुर्विधिप्रतिषेधयोरेकतरप्रतिषेधेऽन्यतरस्यावश्यम्भावात् । तन्नाणवः क्षणिकाः सूक्ष्ममनीषामार्गमैयरुः । नापि कियत्कालस्थायिनः । क्षणिकपक्षोपक्षिप्तप्रतिकारस्यात्राप्यवतारात् । किंच । कियत्कालस्थायिनोप्यमी किमर्थक्रियापराङ्मुखास्तत्कारिणोवा भवेयुः प्रथमभिदायामंनरोद्भवाम्भोरुहसौरभवदसत्त्वापत्तिः । उदग्रविकल्पे । किमसद्रूपं सद्रूपमुभयरूपमनुभयरूपं वा ते कार्य्यं कुर्वीरन् असद्रूपश्चेत्कथं करिकेसरकलापादेरपि न करणं । सद्रूपश्चेत्कथन्तस्य करणं सतोपि करणे कथङ्कदाचित्क्रियाविरतिः । तृतीयतुरीयभेदौ तु प्राक्प्रोक्तसदसद्रूपादिभेदवद्भञ्जनीयौ । तन्नाणुरूपोऽर्थः सर्वथास्तेमानमातेनिवान् । नापि स्थूलरूपो यतः तादृशोप्यसौ नित्योऽनित्यो वा स्यात् । न तावन्नित्यः परमाणुनित्यतानिराकरणानुसारेणास्यापि व्यापादितुं शक्यत्वात् । नाप्यनित्यः यतस्तस्य समुत्पादे स्थूलमेव किञ्चित्कारणमणवो वा प्राच्यः पक्षःस्थवीयान् स्थूलाद्वैतवादस्य वावदूकानां वदितुमयुक्तत्वात् । सूक्ष्मापेक्षयैव स्थूलस्य व्यवस्थानात् कुवलापेक्षया कुवलयस्येव । अथाणवस्तत्कारणं तर्हि तदग्रेतनस्तदुभयाभावस्वभावार्थपक्षः कक्षीकृतः स्यात् । अस्त्वयमेवेतिचेत् । तर्हि ते निरतिशयाः सातिशया वा स्थूलमर्थं प्रथयेयुः । आद्ये भेदे भूर्भुवःस्वस्त्रयीकुहरकोणकुट्टितैकैकपरमाणुभिर्निशकलितैरपि सदैव तदुत्पादनप्रसङ्गः । द्वितीये तु कस्तेषामतिशयः एकदेशावस्थितिः संयोगः क्रियावा प्रथमपक्षे क्षोणिमण्डलालंविपरिमण्डलैः स्थूलैककार्य्यक्रियाप्रसक्तिस्तस्यैकदेशरूपत्वात् । अथ यावति प्रदेशे कतिपयेपि परमाणवः कार्य्यमेकमर्जयन्ति तावानेवैकः प्रदेशो न सकलमिलामण्डलमितिचेत्तर्हीतरेतराश्रयपिशाचप्रवेशः। सिद्धेहिकार्य्ये देशैकत्वसिद्धिस्तत् सिद्धौ च तत् सिद्धिरिति। संयोगश्चेदतिशयः सकिंनित्योऽनित्योवा यदि नित्यस्तदा सदापि तदुत्पाद्यकार्य्योत्पादप्रसङ्गः अनित्यश्चेत्किमन्यत्त एव तेभ्योपिवा प्रादुःष्यात्। नाद्यो भेदस्तदाधारधर्म्मस्यान्यत एवोत्पत्तिविरोधात् । द्वितीयेतु तदुत्पत्तावपि निरतिशयाः सातिशया वा ते व्याप्रियेरन् । प्राचि प्राचीन एव दोषः । द्वितीयेत्वतिशयोत्पत्तावप्यतिशयान्तरेण भाव्यं तत्रापि तेनेत्यनवस्थाकदर्थनं । किञ्चायं संयोगस्तत्स्वभावभूतस्तत्पृथग्भूतो वा । प्राच्ये परमाणव एव न कश्चित्संयोगो नाम द्वितीये तु सर्वथापृथग्भूतः कथञ्चिद्वा । कथञ्चित्पक्षस्तावद्विरोधबाधितः सर्वथापक्षे तु संबद्धोऽसंबद्धो वा तत्रासौ स्यात् । असम्बद्धविधायां तेषामेष इति संबन्धायोगः सम्बद्धस्तु संयोगेन समवायेन तादात्म्येन तदुत्पत्त्याऽविष्वग्भावेन वा । न संयोगेन तस्य गुणरूपे संयोगे सम्भवाभावात् । निर्गुणागुणा इतिवचनात् । न समवायेन यतोयावदगमेकं संयोगमेकत्र सम्बन्धयति

तावदन्यताप्येन किं न सम्बन्धयेदस्य सर्वैक्यात् । न तादात्म्येन भेदपक्षकक्षीकारात् नापितदुत्पत्त्या परमाणुभ्य' सयोगोत्पादस्य प्रागेव व्यपास्तत्वात् । नाप्यविष्वग्भावेन तस्य कथञ्चित्तादात्म्यरूपत्वात् तत्रच कथञ्चिदित्यनर्थपदं विरोधावरोधदुर्धरत्वात् । किञ्चाय सयोगः सर्वात्मनैकदेशेन वाणूनाम्प्रणिगद्येत प्रथमे पिण्डोऽणुमात्रः स्यात् द्वितीये षट्केन युगपद्योगात्परमाणो' षडंशतास्यादिति परमाणुकथाप्यस्तमियात् । तन्न सयोगोतिशय । एतेन क्रियारूपातिशयपक्षोपि प्रतिक्षिप्त किञ्चाय स्थूलोऽवयवी निराधार' साधारोवा । न तावन्निराधार' साधारप्रतीतिविरोधात् । साधारश्चेत् किमेकावयवाधारोऽनेकावयवाधारोवा प्रथमे प्रतीतिविरोधस्तथाहि प्रतीतिरिहावयवेष्ववयवीति न अवयवेऽवयवीति । अथानेकावयवाधारस्तथाप्यवरोध्यनेकावयवाधारो विरोध्यनेकावयवाधारोवा न प्रान्यश्चलाचलस्थूलास्थूलनीलादिरूपाणामवयवानां विरोधप्रतीते । अथ द्वितीयस्तर्हि नैकः स्थूलोऽवयवी स्यात् विरुद्धधर्माध्यासात् । अपिचासौ तेषु वर्तमान' सामस्त्येनैकदेशेन वा वर्तेत सामस्त्येनवृत्तावेकस्मिन्नेवावयवे परिसमाप्तत्वादनेकावयववृत्तित्वन्न स्यात् एकदेशेन वृत्तौ निरंशत्व तस्योपगत विरुध्येत । सांशत्वेवा तेप्यंशास्ततोभिन्ना अभिन्ना वा भवेयु' भिन्नत्वे पुनरप्यनेकांशवृत्तेरेकस्य सामस्त्यैकदेशविकल्पानतिक्रमादनवस्था अभिन्नत्वे न केचिदंशाः स्युरिति न तदुभयस्वभावपक्षोपि सङ्कतिशङ्कसङ्गमगात् । अनुभयस्वभावभेदोऽप्युपेक्षार्हेत्र प्रेक्षाणां परमाणुस्थूलयो. परस्परप्रतिषेधात्मकत्वेनान्यतरप्रतिषेधे तदितरविधेरवश्यम्भावादिति नार्थे कश्चिद्विचारमूलामालम्बते । तद्ग्राहकतया समत ज्ञानमपि तथैव । किञ्चैतदर्थसमकाल तद्भिन्नकाल वा तद्ग्राहकङ्कल्प्येत । प्राक्कल्पनायां त्रिलोकीकल्पोपगता अपि पदार्थास्तत्र प्रथेरन् समकालत्वाविशेषात् । तदन्य प्रकारेतु निराकार साकार वा तत् स्यात् । प्रथमे प्रतिनियतपदार्थपरिच्छेदानुपपत्ति द्वितीयेतु किमयमाकारोव्यतिरिक्तोऽव्यतिरिक्तो वा ज्ञानात् । अव्यतिरेके न कश्चिदाकारोनाम तथाच निराकारप्रकारप्रकाशितः परिहार. । व्यतिरेके चिद्रूपोऽचिद्रूपोवाय भवेत् चिद्रूपश्चेत् तदानीमाकारोऽपि वेदक स्यात् तथाचायमपिनिराकार साकारो वा तद्वेदको भवेदित्यावर्तेतानवस्था । अथाचिद्रूप किमज्ञातो ज्ञातो वा तद्ज्ञापक' स्यात् । प्राचीने चैत्रस्येव, मैत्रस्याप्यसौ तद्ज्ञापकः स्यात् । तदुत्तरे तु निराकारेण साकारेण वा ज्ञानेन तस्यापि ज्ञान स्यादित्याद्यावृत्तावनवस्थैवेति न ज्ञानमपि किञ्चिच्चतुरन्तोगोचरे सञ्चरति । तत सर्वशून्यत्वमेव पर तत्त्वमत्राश्रितेति सर्वोपलापिविकल्पमभेष ॥

इस विषयमें सर्वापलापी बौद्ध विशेषकैएकविकल्पाटोपरूप उच्चण्डतुण्डपूर्वक सप्र रादश वकवाद करते है। अहो आर्हता. हे जैनमतावलंबियो आश्चर्य्य है कि ज्ञान क्या पदार्थ कहते हो और अर्थ क्या पदार्थ है ॥ यदि ग्राहक अन्तर ज्ञान है और ग्राह्य बाह्य अर्थ है वैसा कहते हो तब हम पूछते है कि ज्ञान किसका ग्राहक है यदि अर्थका ग्राहक है तब अर्थ ही अनर्थका मूल है इसलिये अर्थही उन्मूलनीय (खण्डनीय) है (तथाहि) ॥ शून्यवादी पूछते है कि क्या अर्थ जो है सो अणुरूप है अथवा स्थूलरूप है किंवा उभयस्वरूप है अथवा अनुभयस्वरूप है यदि अणुस्वरूप है तुम कहते हो तब अणुओंका निश्चय प्रत्यक्षसे होता है अथवा अनुमानसे होता है प्रत्यक्ष में भी क्या योगीप्रत्यक्षसे अथवा असदादिप्रत्यक्षसे प्रथम पक्ष तो केवल श्रद्धामानसे आदरणीय है एवं द्वितीयपक्ष भी अनुभवसे बाधित है क्योंकि हमलोग स्वप्नमें भी अयं परमाणुः २ वयसा अनुभव नही करते है किंतु स्तम्भोऽयं इत्याद्याकारक ही हमलोगोंको सर्वदा अनुभव होता है इस लिये प्रत्यक्षसे तो परमाणुसिद्धि तुम नही कहसकते ॥ यदि अनुमानसे परमाणुका ज्ञान कहते हो तो भी क्या अवधृत (निश्चित) साध्यसाधनसंबन्धानुमानसे अथवा अनिश्चित साध्यसाधनसम्बन्धानुमानसे कहते हों। अनिश्चित साध्यसाधनसम्बन्धानुमानसे तो नही कहसकते क्योंकि अतिप्रसङ्ग आजावेगा ॥ अर्थात् अनिश्चित साध्यसाधन-सम्बन्धानुमान नाम अगृहीत व्याप्तिकानुमानसे यदि परमाणुओंका ज्ञान कहोगे तब व्यभिचारीहेतुसे भी साध्यसिद्धि होजावेगी इसलिये वैसा नहीं कहसकते ॥ द्वितीय पक्षमें भी क्या सम्बन्धका निश्चय प्रत्यक्षसे होता है अथवा अनुमानसे होता है। प्रत्यक्षसे तो नही कहसकते है। क्योकि अणु अतीन्द्रियपदार्थ है इसलिये उनकेसाथ अविनाभाव (व्याप्ति) रूपसम्बन्ध किसी भी हेतुमें गृहीतुमशक्य है। अनुमानसे भी क्या उसीसे अथवा अनुमानान्तरसे। परस्पराश्रयरूपदोषसे तेनैव तो नही कह सकते क्योंकि सबन्धनिश्चय होनेसे तो अनुमानका उत्थान और अनुमान होनेसे सबन्धका निश्चय एवं परस्पराश्रय दोष आवेगा ॥ अनुमानान्तर भी गृहीतसम्बन्ध अथवा अगृहीतसम्बन्ध ही प्रवृत्त होता है इत्यादि आवृत्ति करनेसे अनवस्था आवेगी इसलिये अनुमानसे भी परमाणुकी प्रतीति नही होसकती। अणुपदार्थवादमें और भी दोषहै कि परमाणु नित्य है अथवा अनित्य है यदि नित्य है तो क्या अर्थ क्रियाकारी है अथवा अकिञ्चित्कर है अकिञ्चित्करपक्षतो अत्यन्त क्षुद्र है क्योंकि अकिञ्चित्करत्वाविशेषात् आकाश वृक्षकी तरह परमाणुओंके असत्वकी ही प्राप्ति आवेगी। और अर्थ क्रियाकारित्व परमाणुओंको क्रमेण है अथवा युगपद् है। यदि क्रमेण है तो भी क्या स्वभाव अभेदेन है अथवा भेदेन है। स्वभाव अभेदपक्षमें भी क्या परमाणु निजस्वभावसे प्रथम कार्य्यको उत्पन्न करते हैं उसी स्वभावसे उत्तरको

भी उत्पन्न करते हैं अथवा जिससे उत्तरको उत्पन्न करते हैं उसीसे पूर्वको भी॥ प्रथम पक्षमें तो प्रथमकार्य्य कालमें ही द्वितीयकार्यकी उत्पत्तिकी भी प्राप्ति आजावेगी वैसेही द्वितीयपक्षमें द्वितीयकार्य्यकालमें ही प्रथमकार्य्यकी उत्पत्तिकी भी प्राप्ति आवेगी॥ इसरीतिसे ही स्वभावभेदपक्षमें परमाणुओंको क्षणिकत्वकी प्राप्ति होजावेगी क्योंकि क्षणभङ्गुरताका यही लक्षण है। अब यदि युगपद् अर्थक्रियाकारित्व योगेंगे तब एककालमें ही परमाणु अपने सम्पूर्ण कार्य्योंको उत्पन्न करदेंगे तब द्वितीयादि क्षणोंमें परमाणुओंके असत्वकी ही प्राप्ति होजायगी। इसलिये परमाणु नित्य नहीं हैं। अब यदि अनित्य हैं तो भी क्या क्षणिक हैं अथवा कालान्तरस्थायी हैं। यदि क्षणिक हैं तो भी क्या अकस्मात् होते हैं अथवा किसी कारणसे होते हैं। यदि अकस्मात् तो भी हम पूछते हैं कि क्या यहापर कारणप्रतिषेध (हेतुका निषेध) मात्र तुमको विवक्षित है अथवा भवनप्रतिषेध किंवा स्वात्महेतुकत्व अथवा निरुपाख्य हेतुकत्व विवक्षित है। आद्यविकल्पमें भवनको निरपेक्ष होनेसे सर्वदा सत्व अथवा असत्व की प्राप्ति आवेगी क्योंकि अन्य हेतुकी अपेक्षा न करनेसे नित्य सत्व अथवा असत्वकी प्राप्ति आवेगी ऐसा किसी शास्त्रका वचन है द्वितीय पक्षमें पहिलेकी तरह पीछे भी परमाणु उत्पन्न न होवेंगे एव तृतीय पक्षमें परमाणुओंकी उत्पत्ति किसरीतिसे होवेगी क्योंकि स्वयं अविद्यमान जो पदार्थ हैं उनका स्वोत्पत्तिमें व्यापार किस तरह हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता। चतुर्थ पक्षमें तो उनको पहिलेभी सत्वकी प्राप्ति आनेसे नित्यताकी ही प्राप्ति आ जावेगी इसलिये अकस्मात् भवनपक्ष कथञ्चित्भी नहीं कह सकते॥ कारणाद्भवनपक्षमें तो क्या परमाणुओंका स्थूल कोई कारण है अथवा परमाणुही है। तुमने परमाणुरूप ही अर्थपक्ष माना है इसलिये तुम स्थूल तो नहीं कहसकते। यदि परमाणु हैं तो भी क्या सद्रूप अथवा असद्रूप किंवा उभयरूप अथवा अनुभयरूप परमाणु स्वकार्यको करते हैं यदि सद्रूप तुम कहते हो तो भी क्या उत्पत्तिक्षणमें ही अथवा द्वितीयादि क्षणमें भी उत्पन्न करते हैं। प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं है क्यों कि उत्पत्ति कालमें तो परमाणु उत्पत्तिमात्रमें व्यग्र हैं इसलिये स्वकार्य्य नहीं कर सकते। कदाचित् अणुओंकी जो भूतिरूप क्रिया है सो ही कारण है और वह ही कही जाती है इस वचनसे भवनक्रिया ही उत्तरोत्पत्तिमें तुम कारण कहोगे तब रूपाणु तो रसाणुओंके और रसाणु रूपाणुओंके कारण हो जावेंगे क्योंकि भवनरूप क्रियाका उभयत्र अविशेष है॥ द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि क्षणक्षयकी आपत्ति आजावेगी॥ यदि असद्रूप परमाणु कार्य्यके उत्पादक कहोगे तब एक उनके सत्ताक्षणको छोड़कर सकल कार्य्योत्पत्तिकी प्राप्ति आवेगी क्योंकि द्वितीयादि क्षणोंमें उनके असत्वका अविशेष है॥ और सत् असत् पक्ष तो दुष्टविरोधके सम्बन्धसे दुष्ट है क्योंकि यदि परमाणु सत् है तो असत् कैसे हो सकते हैं और यदि असत् है तब सत् कैसे हो

सक्ते है ॥ सदसत् पक्ष भी ठीक नही क्योंकि विधि और प्रतिपेधमेसे एकका प्रतिषेध करनेसे एककी सिद्धि अवश्य होती है । इसलिये अणु जो क्षणिक तुम कहते हो सो सूक्ष्म मनीषाके मार्गको प्राप्त नही होते अर्थात् सूक्ष्म विचारसे सिद्ध नही हो सकते ॥ कियत् कालस्थायी भी परमाणू सिद्ध नही हो सकते हैं क्योंकि क्षणिक पक्षके खडनार्थ कहीहुई युक्तियोंका यहाँपर भी अवतार हैं । अर्थात् पूर्वोक्त दोपोंसे ही कियत् कालस्थायी भी परमाणू सिद्ध नहीं हो सकते है ॥ इस पक्षमें और भी दोपहै कि कियत् कालस्थायी भी परमाणू क्या अर्थक्रियासे शून्य है अथवा अर्थक्रियाको करते हैं । यदि शून्य कहोगे तब आकाशोद्भव (आकाशसे उत्पन्न होनेवाले) कमलके सौरभकी तरह परमाणुओंके असत्वकी प्राप्ति आजावेगी । द्वितीयपक्षमें भी क्या सद्रूप अथवा असद्रूप किंवा उभयरूप अथवा अनुभयररूप कार्यको परमाणु उत्पन्न करते है यदि असद्रूप कार्यको उत्पन्न करते है तब करिकेसरकलापादिकोंके भी कारण क्यों नही है । और यदि सद्रूपकार्य्यको उत्पन्न करते है तब हम पूछते है कि सत्का कैसे कारण हो सकता है यदि सत् पदार्थका भी करण माना जावेगा तब सत्वाविशेपात् कभी भी क्रियाकी विरती नहीं होवेगी । तृतीय और चतुर्थभेद तो पूर्वोक्त सदसद्रूपादिभेदोंकी तरह बुद्धिमान पुरुषोंने खण्डन करलेना । इस लिये अणुरूप पदार्थ सर्वथा युक्तियोंसे सिद्ध नहीं हो सकता है । एवं स्थूलरूप भी पदार्थ युक्तियोंसे स्थित नहीं होसकता । क्योंकि स्थूलरूप पदार्थ भी क्या नित्य है अथवा अनित्य है नित्यतो नही कहसक्ते क्योंकि परमाणु नित्यता खण्डनकी तरह स्थूलनित्यताका भी खण्डन कर सकते हैं । अनित्य भी कह नही सकते क्योंकि उसकी उत्पत्तिमें स्थूल ही कोई पदार्थ कारण है अथवा परमाणु हैं । प्रथमपक्ष तो अत्यन्त स्थूल है क्योंकि स्थूलाद्वैतपक्ष तो वावदूकको (अत्यन्त बोलनेवालोंको) कथितुं अशक्य है क्योंकि जैसे कुवलाकी अपेक्षासे कुवलय कहा जाता है वैसे ही किसी सूक्ष्मकी अपेक्षासे ही स्थूल कहा जा सकता है ॥ अब यदि अणुओंको कारण कहोगे तब तो स्थूलार्थपक्षसे आगेका जो तदुभयस्वभावार्थपक्ष उसका तुमने स्वीकार किया । कदाचित् कहोंगे कि उभयस्वभावार्थ पक्ष ही हम स्वीकार करते है तब निरतिशय परमाणू स्थूलपदार्थको उत्पन्न करते हैं अथवा सातिशय (शक्तिविशेषविशिष्ट) परमाणु स्थूलपदार्थको उत्पन्न करते है । आद्यभेदमें तो भूर्भुवः स्वः तीन लोगमें रहनेवाले परमाणुओंमें एकाएक परमाणुसे सर्वदा स्थूलकार्य्यके उत्पादनकी आपत्ति आवेगी ॥ द्वितीय पक्षमें भी हम पूछते हैं कि उनका अतिशय कौन है । एकदेशावस्थिति अथवा सयोग किंवा क्रिया । प्रथम पक्षमें तो पृथिवीरूप एकदेशमें रहनेवाले निखिल परमाणुओंसे स्थूल एक कार्य्यके उत्पादका प्रसङ्ग आवेगा क्योंकि निखिल

पृथ्वी भी तो एक देशही है । कदाचित् जितनेक प्रदेशमें रहनेवाले परमाणुओंसे एक कार्य्य उत्पन्न होता है उतनाक ही प्रदेश एक देश है परन्तु सब पृथ्वीखण्ड नहीं है तुम ऐसा कहोगे तब अन्योन्याश्रयरूप दोषकी प्राप्ति आवेगी । क्योंकि कार्य्यके सिद्ध हो जानेसे तो एक देशकी सिद्धि होवेगी और एक देश सिद्ध हो जानेसे ही कार्यकी सिद्धि होती है इसलिये एकदेशाव शितिरूप अतिशयविशिष्टपरमाणु कार्य्यको उत्पन्न करते है वैसा भी तुम नहीं कह सकते ॥ और यदि संयोगको अतिशय कहोगे तब भी क्या यह संयोग नित्य है अथवा अनित्य है यदि नित्य है तब सर्वदा तदुत्पाद्य कार्य्यके उत्पादका प्रसङ्ग आवेगा । और यदि अनित्य है तब क्या अन्यसे ही उत्पन्न होता है अथवा परमाणुओंसे भी उत्पन्न होता है ? अन्यसे ही तो नहीं कह सकते क्योंकि तदाधारधर्म्मकी अन्यसे ही उत्पत्तिका विरोध है । अर्थात् जिसप्रकार घटवृत्ति जो रूपादि धर्म्म है उनमें केवल अग्नि संयोगादिक ही कारण नहीं है किंतु घट भी कारण है इसी प्रकारसे अणुवृत्ति जो संयोग स्वरूप अतिशय है उसमें अणु भी अव श्यकारण हैं तब अन्यत एव यह पक्ष कैसे कह सकते है ॥ द्वितीय पक्षमें भी क्या अतिशयकी उत्पत्तिके लिये निरतिशय ही परमाणु व्यापृत होते है अथवा सातिशय होते है ॥ प्रथम पक्षमें तो पूर्वोक्त ही दोष है और द्वितीय पक्षमें अनवस्थारूप दोष आवेगा क्योंकि अतिशयोत्पत्तिमें अतिशयांतर जैसे माना है इस प्रकारसे ही अतिशयांतरोत्पत्तिमें भी अतिशयांतर मानना पडेगा । संयोगको अतिशय माननेमें एक दोष कहकर प्रथकार दूसरा और कहते है । कार्य्योत्पत्तिमें परमाणुवृत्ति संयोगस्वरूप जो अतिशय तुमने माना है सो परमाणुओंका स्वभावभूत है अथवा उन्होंसे पृथग्भूत है । प्रथम पक्षमें तो परमाणु ही भये संयोग तो कुछ पदार्थांतर नहीं भया । द्वितीय पक्षमें भी क्या सर्वथा पृथग्भूत है अथवा कथञ्चित् पृथग्भूत है । कथञ्चित् पक्ष तो विरोधसे बाधित है । सर्वथा पक्षमें भी क्या सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध संयोग परमाणुओंमें रहता है । असंबद्ध पक्षमें तो परमाणुओंका सम्बन्ध यह है ऐसा नहीं कह सक्ते है । यदि सम्बद्ध है तो भी क्या संयोगेन अथवा समवायेन किंवा तादात्म्येन अथवा तदुत्पत्त्या वा अविष्वग्भावेन सबद्ध है। संयोगेन तो नहीं कह सकते है क्योंकि गुणरूप संयोगमें संयोगका असम्भव है । क्योंकि गुण जो है सो निर्गुण होते हैं ऐसा वचन है । समवायेन भी नहीं कह सकते क्योंकि समवायको सर्वत्र एक होनेसे जिस वखत वह एक संयोगको एक जगह संबद्ध करता है उसी समयपर उसको अन्यत्र भी क्यों नहीं करता । तादात्म्यसे भी नहीं कह सकते क्योंकि तुमने भेदपक्षको स्वीकार किया है। तदुत्पत्तिरूप सम्बन्धमे भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि परमाणुओंसे संयोगोत्पत्तिका खंडन हम पहिले ही कर चुके है। अविष्वग्भावेन भी

नही कह सक्ते हैं क्योंकि अविष्वग्भाव कथञ्चित्तादात्म्यरूप है उसमें जो कथंचित् यह अंघपद है सो विरोधके संबन्धसे विरुद्ध है। और भी दोष कहते हैं कि यह जो सयोग है सो अणुओंके सर्वदेशेन है अथवा एकदेशेन कहते हो॥ प्रथम पक्षमें तो पिण्ड अणुमात्र हो जावेगा। द्वितीय पक्षमें छः परमाणुओंका युगपद् योग होनेसे परमाणुओंको षडंशताकी आपत्ति आवेगी इसलिये परमाणुकी कथा भी नहीं रहेगी। इसलिये सयोग सरूप अतिशय नही कह सक्ते है। इस कहनेसे ही क्रिया रूप अतिशय पक्ष भी खण्डन किया जानना। (किंच) जो तुम स्थूल अवयवी कहते हो सो निराधार (आश्रयशून्य) है अथवा साधार (आधारवान्) है। निराधार तो नही कह सकते है क्योंकि साधार प्रतीतिका विरोध है। यदि साधार है तोभी क्या एक अवयवमें रहता है अथवा अनेकोमें रहता है। प्रथम पक्षमें तो प्रतीति विरोध है क्योंकि प्रतीति तो अवयवोंमें अवयवी है वयसी होती है परन्तु अवयवमें अवयवी है वयमी नही होती। अब यदि अनेकावयवाधार (अनेक अवयव वृत्ति) कहोगे तब भी क्या अविरोध्यनेकावयवाधार है अथवा विरोधि अनेक अवयवोंमें रहता है प्रथम पक्ष तो ठीक नही है क्योंकि चल अचल नील और अनील स्थूल अस्थूलादिरूप अवयवोंके विरोधकी प्रतीति होती है। यदि द्वितीय पक्ष स्वीकार करेंगे तब विरुद्ध धर्मोंकि अध्यास (सम्बधविशेष) होनेसे एक स्थूल अवयवी सिद्ध नही होवेगा। अपिच यह जो स्थूल अवयवी है सो अवयवोंमें सामस्त्येन (संपूर्णतया) रहता है अथवा एकदेशेन रहता है सामस्त्येन कहोगे तब एक अवयवमें ही अवयवीको समाप्त हो जानेसे अनेकावयववृत्तित्व (अनेक अवयवोंमें वृत्तिता) सिद्ध नहीं हो सकेगा! यदि एकदेशेन कहोगे तब अवयवीको जो तुमने निरंश माना है उसका विरोध आवेगा। अथवा सांश माननेसे भी वह जो अंश है सो अवयवीसे भिन्न है अथवा अभिन्न हैं यदि भिन्न है तब फिर भी पूर्वोक्त रीतिसे ही अवयवोंमें रहता हुआ सामस्त्येन अथवा एकदेशेन रहता है इत्यादि विकल्पोंमे अनवस्था आवेगी। और यदि अभिन्न मानेगे तब अंश तो कुछ पदार्थ ही नहीं भये इसलिये तदुभय स्वभावार्थ पक्ष भी संगति शृङ्गके सङ्गको प्राप्त नही होता है अर्थात् ठीक नहीं। अनुभयस्वभाव पक्ष भी बुद्धिमानोंको उपेक्षणीय है क्योंकि परमाणु और स्थूलको परस्पर निषेधात्मक होनेसे एकके निषेध करनेमे द्वितीयकी सिद्धि अवश्य होवेगी इसलिये कोई भी अर्थ युक्तिसे सिद्ध नहीं हो सकता है। जब अर्थ ही नही है तब उसका ग्राहक माना हुआ जो ज्ञान है सो भी निराधार सिद्ध नहीं हो सकता। ज्ञानके खंडनार्थ और भी युक्ति कहते है (किंच) ज्ञान जो है सो अर्थके भिन्न कालमें अथवा सम कालमें अर्थका ग्राहक तुम कल्पना करते हो सम काल पक्षमें तो समकालत्वाविशेषात् त्रिलोकीमें होनेवाले सर्व पदार्थ ज्ञानमें प्रतीयमान होने चाहिये। भिन्नकाल पक्षमें भी यह जो ज्ञान है सो क्या

निराकार है अथवा साकार है प्रथम पक्षमें तो प्रतिनियतपदार्थके परिच्छेदकी अनुपपत्ति आवेगी । और द्वितीय पक्षमें तो क्या वह जो आकार है सो ज्ञानसे व्यतिरिक्त (भिन्न) है अथवा अव्यतिरिक्त (अभिन्न) है । अव्यतिरेक पक्षमें तो आकार तो कुच्छ नहीं भया तब निराकार पक्षमें कहे हुए दोषोंसे ही इसका भी परिहार जान लेना । व्यतिरेक पक्षमें भी क्या यह जो आकार है सो चिद्रूप है अथवा अचिद्रूप है यदि चिद्रूप है तब आकार भी वेदक भया फिर वह आकार भी साकार अथवा निराकार तद्वेदक होता है इत्यादि आवर्तनसे अनवस्थारूपदोष आवेगा। यदि अचिद्रूप है तब क्या अज्ञात (ज्ञानका अविषय) अथवा ज्ञात तज्ज्ञापक होता है । प्रथम पक्षमें तो चैत्रकी तरह मैत्रको भी यह जो आकार है सो तद्ज्ञापक होना चाहिये। द्वितीय पक्षमें निराकार अथवा साकार ज्ञानसे आकारका ज्ञान होता है इत्यादि आवर्तनसे अनवस्था आवेगी इसलिये ज्ञान भी कोई पदार्थ चतुर पुरुषके चित्तके विषयको नहीं प्राप्त होता है । इसलिये सर्वशून्यता ही एक परम तत्व है यह पूर्वोक्त कथन जो है सो सर्वापलापी जो शून्यवादी है उसके मतका संक्षेप कहा है । अर्थात यह शून्यवादीका मत संक्षेपसे हमने कहा है

तदेतदखिलमनल्पपलालपूलकूटकल्पमप्रतिमोत्तरकृशानुकणमात्रसाध्यम् । तथाहि इदं प्रमाणमूलमालप्येतान्यथा वा। अन्यथा चेदुत्तिष्ठोत्तिष्ठ तर्हि कथमकथा॰ प्रामाणिकपरिषदीह प्रवेशः प्रमाणमूलञ्चेत्तत्प्रमाणमर्थरूप ज्ञानरूप वा भवेदित्यादि समार्गणैरेव मर्म्माविद्भिर्विद्ध कथमुच्छ्वसितुमपि शक्तोऽपि कथञ्च प्रमाणाभ्युपगमे शून्यसिद्धि' शून्यरूपमेव प्रमाणमिति चेत्तर्हि शून्यतासिद्धिरपि शून्यैवेति न शून्यसिद्धि स्यात् । अभ्यधिष्महि च । शून्ये मानमुपैतिचेन्ननु तदा शून्यात्मताद्दुः स्थिता । नोचेत्तर्हि तथापि किं न सुतरां शून्यात्मता दु॰स्थिता । वन्ध्या मे जननीत्यमुष्यसदृशीमप्याश्रयन्शून्यता शङ्के दु'रारुसाहसैकरसिक' स्वामिन्नसौ सौगतः ॥ अथेत्थमेव विचारयतां यदा न किञ्चित्सङ्गतिं गाते तदा शून्यमेव तत्वमव-तिष्ठत इति चेत् । तदेतदनलम्भूष्णुलस्खलिताग्रेरुत्सृजनप्रागल्भ्याभ्यसन। यत' । विचारो वस्तुरूपश्चेत्किंसिध्येत्सर्वशून्यता। विचारोऽवस्तुरूपश्चेत्किं सिध्येत्सर्वशून्यता ॥ नच तवामून्यर्थज्ञानदूषणान्यपि सूपपादानि । यस्मात् उभयस्वभाव एवार्थ इति न॰ पक्ष' नचाणुभ्य स्थूलोत्पाद सर्वत्र स्वीक्रियते यतस्तत्कार्य्यकारणभावमात्रवित्रासनेनार्थकथाविश्राम्येत् । स्थूलादपि सूत्रपटलादे' स्थूलस्य पटादे॰ प्रादुर्भावविभावनात् आत्माकाशादेरपुद्गलकार्य्यत्वकक्षीकाराच्च। यत्र पुनरणुभ्यस्तदुत्पत्तिस्तत्र तत्तत्कालादि सामग्रीसव्यपेक्षक्रियावशात्प्रादुर्भूत कथञ्चित्पृथग्भूत संयोगातिशयमपेक्ष्येयमविरुद्धैव केवल कथञ्चिदिति

किश्चन त्वचेतस्तुदति तत्रेयं प्रतिक्रिया । एकेनैव हि रूपेण भेदाभेदयोरभिधाने विरोधनिरोधः स्यात् नचैवमिह पर्य्याय-
रूपतया भेदस्य द्रव्यरूपतया च अभेदस्य भणनात् । त्वयापि च प्रमाणप्रमेयतत्वं नास्त्येनेत्येकमेन वचनं स्वपरपक्षावपेक्ष्य
साधकबाधकं वा कक्षीकृतमेव । यापि परमाणोः षडंशतापत्तिरुक्ता साप्ययुक्ता । यतोऽत्रांशशब्दस्य संबन्धनिबन्धनं
शक्तिस्वरूपोर्थो विवक्ष्येताऽवयवलक्षणो वा । न प्राच्ये प्रसङ्गः सङ्गतस्तथास्माभिस्तदभ्युपगमात् । द्वितीये तु नास्त्यवि-
नाभावस्तत्तच्छक्तिमात्रेणैव तत्तत्परमाणुसम्बन्धस्य प्रतिषेद्धुमशक्यत्वात् यदपि निराधार इत्यादिन्यगादि तत्रापि
कथञ्चिद्विरोध्यविरोध्यनेकावयवाविष्वग्भूतवृत्तिरवयव्यभिधीयते तत्र च यद्विरोध्यनेकावयवाधारतायां विरुद्धधर्म्माध्या-
सनमभ्यधायि तत्कथञ्चिदुपेयत एव । तावदवयवात्मकस्य तस्यापि कथञ्चिदनेकरूपत्वात् । यच्चोपन्यस्तं सामस्त्येनैकदे-
शेन वेत्यादि । तत्रापि विकल्पद्वयानभ्युपगम एवोत्तरम् । अविष्वग्भावेनावयविनोऽवयवेषु वृत्तेः स्वीकारात् । यच्चार्थसम-
कालमित्याद्युक्तं तत्रापि विकल्पद्वयमपि स्वीक्रियत एव । अस्मदादिप्रत्यक्षं हि योग्यसमकालार्थाकलनकुशलं स्मरणम-
तीतस्य शब्दानुमाने त्रैकालिकस्याप्यर्थस्य परिच्छेदके । निराकारश्चैतद्द्वयमपि नचातिप्रसङ्गः तद्ग्रहणपरिणामश्चेदाकारस्त-
दभ्युपगच्छामः स्वज्ञानावरणवीर्य्यान्तरायक्षयोपशमविशेषवशादेनास्य नैयत्येन प्रवृत्तेः शेषविकल्पनिकुरम्बडम्बरेऽस्वी-
कार एव तिरस्कारः निरस्ताशून्यता सेयमाशाः शाक्यवसन्त्यमूः । उन्मीलय चिरान्नेत्रे कौतुकालोकनोत्सुके ॥

यह पूर्वोक्त बहुत पलाल (तृणविशेष) के पूलोके सदृश जो शून्यवादीका कथन है सो अप्रतिम उत्तररूप अग्निके कणमात्रसे साध्य है अब खंडन प्रकार कहते है (तथाहि) जैन कहते है कि हे शून्यवादिन् यह जो तुम कहते हो सो प्रमाणमूलक कहते हो अथवा अन्यथा कहते हो (अर्थात् पूर्वोक्त पदार्थ खंडनके लिये जो तुमारा कथन है सो किसी प्रमाणसे सिद्ध है कि नहीं) यदि प्रमाणसिद्ध नही है तब यहांसे ऊठो ऊठो तुमने इस प्रामाणिक पुरुषोंकी सभामें प्रवेश क्यों करा है । यदि प्रमाणमूलक है तब वह प्रमाण अर्थरूप अथवा ज्ञानरूप ही होय-सकेगा इत्यादि मर्मोंके काटनेवाले मार्गणों (शस्त्रविशेषों)से सिद्ध तुम उच्छ्वास भी कैसे ले सक्ता है और प्रमाणके माननेसे शून्यताकी सिद्धि किसरीतिसे हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती (प्रमाणरूपार्थस्यैव सिद्धत्वात्) । कदाचित् प्रमाण भी शून्यरूप ही कहोंगे तब शून्यता सिद्धि भी शून्य ही होवेगी इसलिये शून्यतासिद्धि नहीं होती । किसी ग्रंथमें किसी आचार्य्यने कहा भी है । शून्यवादी जो है सो यदि शून्यमें प्रमाण मानेगे तब शून्यता सिद्ध नहीं होय सकेगी और यदि

प्रमाण नहीं मानेगे तब भी क्या शून्यता सुतरा दु स्थिता (असिद्धा हीं है अर्थात् दु स्थिता ही है। मेरी माता वन्ध्या है इस कथनकी
तरह असम्भवित शून्यतावादको कथनकर रहा जो यह सौगत है सो हे स्वामिन् केवल एक साहसर्ग ही रसिक है ऐसा मै अनुमान
करता हू ॥ कदाचित् वयस ही विचार करनेसे जब कोई भी पदार्थ सङ्गत नहीं होता है तब शून्य ही एक तत्व सिद्ध हो जाता है
वैसा तुम कहते हो तब यह कथन तो प्रबल शृखल (साकल) से स्खलित चरण पुरुषके उल्लघन अभ्यासके सदृश है अर्थात् यह
कथन व्यथ है क्योंकि । यत । यदि विचार वस्तुरूप है तब सर्व शून्यता कैसे सिद्ध होय सकती है ओर यदि विचार वस्तुरूप
नहीं है तब भी सर्व शून्यता कैसे सिद्ध हो सक्ती है अर्थात् नहीं हो सकती । और जो तुमने अर्थज्ञानदूषण कहे हैं सो भी सूपपाद
(युक्तिसिद्ध) नहीं है क्योंकि उभयस्वभाव ही अर्थ है वैसा हमारा पक्ष है। अणुओंसे ही स्थूलकी उत्पत्ति हम सर्वत्र नहीं मानते हैं कि
जिससे तत्कार्य्य कारणमात्र विश्रामसे अर्थ कथा विश्रान्त होय सके । क्योंकि स्थूल जो सूत्र पटलादिक हैं उनसे भी स्थूलपटादिकोंकी
उत्पत्ति देखी जाती है और आत्मा तथा आकाशादिकोंको अपुद्गलजन्यत्व स्वीकार किया है। जिस जगामें परमाणुओंसे कार्य्योत्पत्ति है
वहापर वह उत्पत्ति तत्तत्कालादि सामग्री सापेक्ष्य (अपेक्षा रखनेवाली) क्रियाके वशसे उत्पन्न कथञ्चित्परमाणुओंसे भिन्न सयोगरूप
अतिशयकी अपेक्षा रखनेसे विरुद्ध नहीं ही है । केवल कथञ्चित्कहनेसे तेरा चित्त खेदको प्राप्त होता है उसम यह वक्ष्यमाण उपाय
है । एक ही धर्म्मसे भेदाभेद यदि कहा जावे तब विरोध आ सक्ता है सो एकधर्म्मसे भेदाऽभेद हम नहीं कहते हैं क्योंकि पर्यायरूपसे
तो भेद और द्रव्यरूपसे अभेद हमने कहा है । तुमने भी तो प्रमाण प्रमेय नहीं ही है यहापर एक ही वाक्य स्वपरपक्षकी
अपेक्षासे स्वीकार कियाही है अर्थात् इस रीतिसे कथञ्चित्पक्ष तेरेको भी मन्तव्य ही है। ओर जो तैने परमाणुको षडशताकी
आपत्ति कही है सो भी अयुक्त है। क्योंकि (यत) यहापर तुमको अशशब्दका सम्बन्धका निमित्त षटोत्पादक शक्तिरूप
अर्थ विवक्षित है अथवा अवयवस्वरूप अर्थ विवक्षित है। प्रथम पक्षमें तो षडशतापत्तिरूप दोष सङ्गत नहीं है क्योंकि वयसा तो
हमने माना ही है अर्थात् ईदृश षडशतामें इष्टापत्ति है।

द्वितीय पक्षमें तो अविनाभाव (नियम) नहीं है क्योंकि तत्तच्छक्ति मात्रसे ही तत्तत्परमाणु स्वभाव प्रतिपेद्धु अशक्य है॥

और जो निराधार है अथवा साधार है इत्यादि तुमने कहा है वहापर भी कथञ्चिद्विरोधि और अविरोधि अनेकावयवोंमे अविष्व-
ग्भूतवृत्ति (अभेदेनवृत्तिमान्) अवयवी हम कहते हैं उसमे जो विरोधि अनेकावयवाधारतामे विरुद्ध धर्म्माध्यासन तुमने पीछे कहा है

और जो सामस्त्येन एकदेशेन सो कथञ्चित् हम मानते ही है। क्योंकि तावत् अवयवात्मक अवयवी भी कथंचित् अनेकरूप ही है। क्योंकि हमने अविष्वग्भावेन नाम कथञ्चि-
वा इत्यादिक तुमने कहा है उसमें विकल्पद्वयका अनभ्युपगम (न मानना) ही उत्तर है। और जो अर्थ समकालं इत्यादिक तुमने कहा है वहापर तो दोनो तादात्म्येन अवयवीकी अवयवोंमें वृत्तिता स्वीकार करी है। क्योंकि असदादिकोंका प्रत्यक्ष तो योग्य समकालवृत्तिपदार्थोंकि परिच्छेदमें कुशल है और स्मरण ही विकल्प हम स्वीकार करते ही है। अतीत कालवृत्तिपदार्थ परिच्छेदमें कुशल है और शब्द तथा अनुमान तो भूतभविष्यद्वर्तमान तीनकालवृत्ति पदार्थ परिच्छेदक है। यह दोनों ही ज्ञान निराकार है। अनियत देशकाल वृत्तिपदार्थ परिच्छेदकत्वरूप अतिप्रसङ्ग यहा नहीं है अर्थ ग्रहणपरिणामरूप व्यापार तो हम मानते हैं क्योंकि स्वज्ञानावर्ण वीर्य्यान्तरायके क्षयोपशमविशेषवशसे ही ज्ञान जो है सो नेयत्येन प्रवृत्त होता है। इनसे वाकी जो विकल्पसमूहरूप आडम्बर है उसमें अस्वीकार ही हमारा उत्तर है। अर्थात् वाकी विकल्पोंको हम नहीं मानते है। सो इस शून्यताका हमने निरास (खण्डन) किया है शाक्य यह चारों दिशा वश रही है चिरकालसे कौतुकालोकनमें उत्सुकनेत्रोंका उन्मीलन कर ॥

अथ ब्रह्मवादिवावदूका वदन्ति। युक्तं यदेष सकलापलापी पापीयानपास्तः आत्मब्रह्मणस्तात्त्विकस्य सत्वात्। नच सरलसालरसालप्रियालहिन्तालतालतमालप्रवालप्रमुखपदार्थसार्थोप्यहमहमिकया प्रतीयमानः कथं न पारमार्थिकः स्यादिति वक्तव्यं तस्य मिथ्यारूपत्वात्। तथाहि प्रपञ्चो मिथ्या प्रतीयमानत्वाद्यदेवं तदेवं यथा शुक्तिशकले कलधौतं तथाचायं तस्मात्तथा ॥

अब अत्यन्त वाहीहात वोलनेवाले ब्रह्मवादी कहते हैं कि अच्छा किया जो कि यह सकलापलापी अत एव पापीयान् शून्यवादी परास्त किया क्योंकि आत्मरूप ब्रह्म तात्विक विद्यमान है। प्रत्यक्ष प्रतीतिसिद्ध सरल साल रसालादि (वृक्षविशेष) पदार्थ तात्विक क्यों नहीं हैं वैसा नहीं कहना क्योंकि वह मिथ्यारूप हैं (तथाहि) प्रपञ्च प्रतीयमान होनेसे मिथ्यारूप है जो प्रतीयमान होता है सो मिथ्या ही होता है जैसे शुक्तिमें प्रतीयमान जो रजत है सो मिथ्या है वयसे प्रपञ्च भी प्रतीयमान है इसलिये मिथ्या ही है ॥

तदेतदेतस्य न तर्कवितर्ककार्कश्यं सूचयति। तथाहि मिथ्यात्वमत्र कीदृक्षमाकांक्षितं सूक्ष्मदृशा किमत्यन्तासत्वमु-

तान्यस्यान्याकारतया प्रतीतत्वमाहोस्विदनिर्वाच्यत्वमिति भेदत्रयी त्रिनेत्रनेत्रत्रयीव त्रौकते । प्राचिपक्षद्वये त्वदनङ्गीकार परीहारः । तार्तीयीक विकल्पे तु किमिदमनिर्वचनीयत्व नाम किं निरुक्तिविरह एव निरुक्तिनिमित्तविरहो निःस्वभावत्व वा । न प्रथमः कल्पः कल्पनार्हः । सरलोयं सालोयमितिनिश्चितोक्तेरनुभवात् । नापि द्वितीयः निरुक्तेर्हि निमित्त ज्ञान वा स्यात् विषयो वा । न प्रथमस्य विरहः सरलसालादिसवेदनस्य प्रतिप्राणिप्रतीतेः । नापि द्वितीयस्य यतो विषय. किं भावरूपोनास्त्यभावरूपो वा प्रथमकल्पनायामसत्ख्यात्यभ्युपगमप्रसङ्गः । द्वितीयकल्पनायान्तु सत्ख्यातिरेव । उभावपि न स्त इति चेत् ननु भावाभावशब्दाभ्यां लोकप्रतीतिसिद्धौ तावभिप्रेतौ विपरीतौ वा । प्रथमपक्षे तावद्यथोभयोरेकत्र विधिर्नास्ति तथा प्रतिषेधोपि परस्परविरुद्धधर्म्मयोर्मध्यादेकतरविधिनिषेधयोरन्यतरनिषेधविधिनान्तरीयकत्वात् । द्वितीयपक्षे तु न काचित् क्षतिर्नेह्यलौकिकविषयसहस्रनिवृत्तावपि लौकिकज्ञानविषयनिवृत्तिस्तन्निरुक्तिनिवृत्तिर्वा । निःस्वभावत्वपक्षेपि निस प्रतिषेधार्थत्वे स्वभावशब्दस्यापि भावाभावयोरन्यतरार्थत्वे पूर्ववत्प्रसगः प्रतीत्यगोचरत्व निःस्वभावत्वमिति चेत्तर्हि विरोध. प्रपञ्चो न प्रतीयते चेत्कथ धर्म्मितया प्रतीयमानत्वञ्च हेतुतयोपाददे । तथोपादाने वा कथ न प्रतीयते । यथाप्रतीयते न तथेति चेत् तर्हि विपरीतख्यातेरभ्युपगमः स्यात् किञ्चेयमनिर्वाच्यता प्रपञ्चस्य प्रत्यक्षेण प्रत्यक्षेऽपि सरलोयमित्याद्याकार हि प्रत्यक्षं प्रपञ्चस्य सत्यतामेव व्यवस्यति सरलादिप्रतिनियतपदार्थपरिच्छेदात्मनस्तस्योत्पादादितरेतरविभक्तवस्तूनामेव च प्रपञ्चवाचोवाच्यत्वेन सम्मतत्वात् । अथ कथमेतत्प्रत्यक्ष पक्षप्रतिक्षेपक तद्धि विधायकमेवेति तथातथा प्रत्यैव विदधाति न पुनः प्रपञ्चसत्यतां प्ररूपयति सा हि तदा प्ररूपिता स्याद्यदीतरस्मिन्नितरस्य प्रतिषेध' कुर्व' स्यात् नचैव निषेधे कुण्ठत्वात्प्रत्यक्षस्येति चेत् तदयुक्त यतो विधायकमिति कोर्थः इदमिति वस्तुस्वरूप गृह्णाति नान्यस्वरूप प्रतिषेधति प्रत्यक्षमितिचेन्नैव अन्यस्वरूपनिषेधमन्तरेण तत्स्वरूपपरिच्छेदस्याप्यसम्पत्तेः । पीतादिव्यवच्छिन्न हि नील नीलमिति गृहीत भवति । नेतरथा यदीदमितिवस्तुस्वरूपमेवगृह्णाति प्रत्यक्षमित्युच्यते । तदावश्यमपरस्य प्रतिषेधमपि तत्प्रतिपद्यत इत्यभिहितमेव भवति केवलवस्तुस्वरूपप्रतिपत्तेरेवान्यस्वरूपाप्रतिपत्तिरूपत्वात् । अपिच विधायकमेव प्रत्यक्षमिति नियमस्याङ्गीकारे विद्यावदविद्याया अपि विधान तवानुपजयते । सोयमविद्याविवेकेन सन्मात्रम्प्रत्यक्षात्प्रतियन्नेव न निषेधक तदितिब्रुवाणः कथ स्वस्थः इतिसिद्ध प्रत्यक्षबाधितः पक्ष इति । अनुमानबाधितश्च

प्रपञ्चो मिथ्या न भवत्यसद्विलक्षणत्वाद्यदेवं तदेवं यथा आत्मा तथा चायं तस्मात्तथेति। प्रतीयमानत्वञ्च हेतुर्ब्रह्मात्मना
व्यभिचारी स हि प्रतीयते नच मिथ्या। अप्रतीयमानत्वे त्वस्य तद्गोचरवचनानामप्रवृत्तेर्मूकतैव तत्र वः श्रेयसी स्यात्।
दृष्टान्तश्च साध्यविकलः शुक्तिशकलकलधौतेऽपि प्रपञ्चान्तरगतत्वेनानिर्वचनीयतायाः साध्यमानत्वात् किञ्चेदमनुमानं
प्रपञ्चाद्भिन्नमभिन्नं वा। यदि भिन्नं तर्हि सत्यमसत्यं वा। यदि सत्यं तर्हि तद्वदेव प्रपञ्चस्यापि सत्यत्वं स्यात्।
अथासत्यं तत्रापि शून्यमन्यथाख्यातमनिर्वचनीयं वा। आद्यपक्षद्वयेपि न साध्यसाधकत्वं नृशृङ्गवच्छुक्तिकलधौतवच्च।
तृतीयपक्षोप्यक्षमः अनिर्वचनीयस्यासम्भवित्वेनाभिहितत्वात् व्यवहारसत्यमिदमनुगानमतोऽसत्यत्वाभावात् स्वसाध्यसा-
धकमिति चेत् किमिदं व्यवहारसत्यं नाम व्यवहृतिर्व्यवहारो ज्ञानं तेन चेत्सत्यं तर्हि पारमार्थिकमेव तत्तत्र चोक्तो
दोषः। अथ व्यवहारः शब्दस्तेन सत्यं। ननु शब्दोपि सत्यस्वरूपस्तदितरो वा। यद्याद्यस्तर्हि तेन यत्सत्यं तत्पारमार्थि-
कमेवेति तदेव दूषणं। अथासत्यस्वरूपः शब्दः कथं ततस्तस्य सत्यत्वं नाम नहि स्वयमसत्यमन्यस्य सत्यत्वव्यवस्थाहेतु-
रतिप्रसङ्गात् अथ कूटकार्षापणे सत्यकार्षापणोचितक्रयविक्रयव्यवहारजनकत्वेन सत्यकार्षापणव्यवहारवदसत्येऽप्यनु-
माने सत्यव्यवहार इति चेत्तर्हि असत्यमेव तदनुमानं तत्रचोक्तो दोषः। अतो न प्रपञ्चाद्भिन्नमनुमानमुपपत्तिपदवीमापे-
दानम्। नाप्यभिन्नं प्रपञ्चस्वभावतया तस्यापि मिथ्यात्वप्रसक्तेर्मिथ्यारूपञ्च तत् कथंनाम स्वसाध्यं साधयेदित्युक्तमेव
एवञ्च प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वासिद्धेः कथं परमब्रह्मणस्तात्विकत्वं स्याद्यतो वाक्यार्थाभावो भवेदिति।

यह पूर्वोक्त जो कथन है सो ब्रह्मवादीकी तर्कवितर्कमें कर्कशताका सूचक नही है। क्यों नही सो कहते हैं। इस जगहमें
सूक्ष्मदृष्टिवाले हे ब्रह्मवादिन् तुह्मारेको मिथ्यात्व कीदृश आकांक्षित है। क्या अत्यन्त (सर्वथा) असत्वरूप अथवा अन्यको अन्य
रूपसे प्रतीयमानत्वरूप किंवा अनिर्वाच्यत्वरूप इसप्रकारसे महादेवके नेत्रत्रयकी तरह तीन भेद प्राप्त होते हैं। प्रथम पक्षद्वयमें
तो तुह्मारा न मानना ही उत्तर है। अर्थात् प्रथम पक्षद्वय तो तैंने माने ही नही हैं इसलिये उनके खण्डनार्थ हम पृथक् प्रयास नहीं
करते हैं। तृतीय विकल्पमें हम पूछते हैं कि अनिर्वाच्यत्व क्या पदार्थ है क्या निरुक्ति (नाम) विरह(अभाव)रूप है अथवा निरुक्तिके
निमित्तका विरहरूप है किंवा निःस्वभावत्व (स्वभावशून्य) रूप है। प्रथम विकल्प तो, कल्पना करने लायक नहीं है। क्योंकि सरलोयं
सालोयं (यह सरल है और यह साल है) इत्यादिक निश्चित उक्तिका अनुभव होता है। निरुक्ति निमित्त विरहरूप अनिर्वाच्यत्व भी

नहीं कह सकते । क्योंकि निरुक्तिका निमित्त या तो ज्ञान होता है या विषय होता है । सरल साल आदि विषयक ज्ञान सब प्राणियोंको प्रतीत होनेसे ज्ञानका तो विरह (अभाव) नहीं कहसकते है । विषयरूप जो निरुक्तिका निमित्त है उसका भी अभाव नहीं कहसकते । क्योंकि विषय क्या भावरूप नहीं है अथवा अभावरूप नहीं है प्रथम कल्पनामें असत्ख्यातिके स्वीकारका प्रसङ्ग आजावेगा । और द्वितीय कल्पनामें तो सत्ख्याति ही भयी । कदाचित् भावाभाव उभय स्वरूप ही विषय नहीं है कहोगे तब हम पूछते है कि भावाभाव शब्दसे लोकप्रतीतिसिद्ध भावाभाव तुम्हारेको विवक्षित है अथवा कोई दूसरे अलौकिक भावाभाव विवक्षित है । प्रथमपक्षमें तावत् जिसप्रकार एकमें भावाभावकी विधि नहीं है वयसे ही प्रतिषेध भी एकत्र नहीं रह सकता है क्योंकि परस्पर विरुद्ध धर्म्मोंके मध्यमेसे एककी विधि अथवा निषेध जो है सो द्वितीयके निषेध अथवा विधिके साथ अविनाभूत (सहचर) है । द्वितीय पक्षमें तो कोई क्षति नहीं है क्योंकि हजारो अलौकिक विषयोंके निवृत्त हो जाने पर भी लौकिक ज्ञानविषयकी निवृत्ति अथवा तद्विषय (ज्ञानविषय) निरुक्ति निवृत्ति नहीं होती । निःसभावत्वरूप अनिर्वाच्यत्वपक्षमें भी निर् अव्ययको निषेधार्थक होनेसे और सभावशब्दको भावाभावमेंसे एकका वाचक होनेसे पूर्ववत् ही दोष है । कदाचित् प्रतीतिका अविषयत्वरूप निःसभावत्व कहते हो तब तो विरोध है । क्योंकि यदि प्रपञ्च प्रतीयमान नहीं होता है तब प्रपञ्चका धर्म्मित्वेन और प्रतीयमानत्वका हेतुत्वेन उपन्यास किस रीतिसे किया है । जब वसे उपन्यास किया है तब कैसे नहीं प्रतीयमान होता । कदाचित् जैसे प्रतीयमान होता है वयसा प्रपञ्च नहीं है कहते हो तब विपरीतख्याति (अन्यको अन्यत्वेन कथन) के स्वीकारका प्रसङ्ग आवेगा । ओर भी युक्ति अनिर्वाच्यताके खण्डनार्थ कहते है) हे ब्रह्मवादिन् प्रपञ्चको अनिर्वाच्यत्व तुम प्रत्यक्षसे कहते हो प्रत्यक्षमें भी सरलोऽयं इत्याद्याकार प्रत्यक्ष प्रपञ्चकी सत्यताका ही स्थापन करता है क्योंकि सरलादि प्रतिनियत पदार्थ परिच्छेदात्मना प्रत्यक्षकी उत्पत्ति होती है ओर परस्पर विभिन्न वस्तुओंको ही प्रपञ्च शब्दवाच्यत्वेन स्वीकार किया है । यदि कदाचित् यह जो प्रत्यक्ष है सो पक्षका प्रतिक्षेपक (बाधक) किस रीतिसे हो सक्ता है अर्थात् नहीं होय सकता क्योंकि इसको विधायक ही होनेसे यह जो प्रत्यक्ष है सो तेन तेन रूपेण ब्रह्मको ही विधान करता है परन्तु प्रपञ्चकी सत्यताका निश्चायक यह नहीं है क्योंकि प्रपञ्चसत्यता तो तब प्ररूपिता (बोधिता) होयसके यदि इतरमें इतरोंका प्रतिषेध किया गया होवे सो तो नहीं किया गया है क्योंकि प्रत्यक्ष जो है सो निषेधमें कुण्ठित है वैसा तुम कहते हो तब यह कथन अयुक्त है क्योंकि विधायक पदका अर्थ तुम क्या

कहते हो। कदाचित् प्रत्यक्ष जो है सो इदं ऐसे वस्तुके स्वरूपको ग्रहण करता है परन्तु अन्य पदार्थके स्वरूपका निषेध नहीं करता । कहते हो तब नहीं कहना क्योंकि अन्य पदार्थके स्वरूपके प्रतिषेधसे विना स्वस्वरूपका परिच्छेद भी नहीं हो . ता है। पीतादिकोंसे व्यवच्छिन्न (विभिन्नत्वेन ज्ञात) जो नील है वही नील वयसे जाना जाता है और पीतादिकोंसे विभिन्नत्वेन अज्ञात जो नीलादिक है सो नीलं (यह नील है) इस प्रकारसे नही जाना जाता । इसलिये जब इदं इसप्रकार वस्तुके स्वरूपको ही प्रत्यक्ष ग्रहण करता है वैसा कहते हो तब अवश्य अन्यपदार्थके प्रतिषेधको भी प्रत्यक्ष ग्रहण करता है यह भी कहा ही गया क्योंकि केवल वस्तुस्वरूपका जो निश्चय है वही अन्यप्रतिषेधका निश्चयरूप होता है। और भी दोष कहते है कि यदि प्रत्यक्षको विधायक ही मानेगे तब तो प्रत्यक्ष विद्याकी तरह अविद्याका भी विधायक तुम्हारे मतमें प्राप्त होवेगा सो यह ब्रह्मवादी अविद्या (ससारोपादान) के विवेकसे सन्मात्र ही प्रत्यक्षका विषय कहता हुआ और निषेधको न कहता स्वस्थ कैसे है अर्थात् नही है इललिये प्रत्यक्षबाधितपक्ष सिद्ध भया और अनुमान से बाधित भी यह पक्ष है किस अनुमानसे बाधित है सो कहते है । असत् से विलक्षण होनेसे प्रपञ्च जो है सो मिथ्यारूप नहीं है जो पदार्थ असद्विलक्षण होता है सो मिथ्यारूप नहीं होता जैसे कि आत्मा प्रपञ्च जो है सो असद्विलक्षण है इसलिये मिथ्यारूप भी नही है। और प्रतीयमानत्व जो हेतु तुमने कहा है सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है क्योंकि ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो होता है परन्तु मिथ्यारूप नहीं है। और यदि ब्रह्मात्मा प्रतीयमान नही है तब ब्रह्मात्मामें वचनोंकी अप्रवृत्ति होनेसे उस विषयमें मूकताही तुह्मारेको कल्याणकारक है। और शुक्तिशकलमें प्रतीयमान जो रजत उसमें भी इसको प्रपञ्चान्तरगत होनेसे अनिर्वचनीयता साध्यमाना है इसलिये शुक्तिशकलकलधौत जो तैने दृष्टान्त दिया है सो साध्यनशून्य भी है। और भी प्रपञ्च-सत्यतामें युक्ति कहते हैं कि पूर्वोक्त जो तुम्हारा अनुमान है सो प्रपञ्चसे भिन्न है अथवा अभिन्न है। यदि भिन्न है तो क्या सत्य है अथवा असत्य है यदि सत्य है तब इस अनुमानकी तरह ही प्रपञ्च भी सत्य ही होवे । यदि असत्य है तब भी क्या शून्य है अथवा अन्यथा ख्यात है किम्वा अनिर्वचनीय है। आद्यपक्षद्वयमें तो पुरुषशृङ्गकी तरह और शुक्तिरजतकी तरह यह अनुमान साध्यसाधक नही हो सकेगा। तृतीय पक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि अनिर्वचनीयता असम्भवित नाम युक्तिसिद्ध नहीं है ऐसा पहिले हम कह चुके है। यदि कदाचित् पूर्वोक्तानुमान व्यवहारसत् होनेसे स्वसाध्य साधक हो सकता है वैसा तुम कहते हो तब व्यवहार क्या है ज्ञान सो यदि ज्ञानसे सत्य है कहोगे तब तो यह अनुमान पारमार्थिक ही भया उसमे तो हम दोष कह ही चुके हैं। और

यदि व्यवहार शब्दस्वरूप है उससे सत्य कहतेहो तब हम पूछते है कि वह शब्द भी सत्यस्वरूप हे अथवा असत्य है । यदि सत्य है तब उससे जो सत्य है सो पारमार्थिक ही भया पारमार्थकम तो पूर्वोक्त ही दोष हे । यदि शब्द असत्य स्वरूप है तब शब्दसे अनुमानकी सत्यता कैसे सिद्ध होय सक्ती है अर्थात् नहीं होय सकती क्योंकि जो स्वय असत् है सो दूसरेके सत्यत्वमें हेतु नहीं हो सक्ता क्योंकि यदि स्वय असत् दूसरेकी सत्यता सिद्ध करेगा तब अतिप्रसङ्गरूप दोष आवेगा । यदि कदाचित् असत्य (झूठे) सुवर्ण जिसप्रकार सत्य सुवर्णोचित क्रयविक्रयरूप अर्थक्रियाके होनेसे सत्यसुवर्णव्यवहार होता है इसीतरह असत्य अनुमानसे भी सत्य व्यवहार है ऐसा तुम कहते हो तब तो पूर्वोक्तानुमान असत्य ही भया उसमें तो दोष हम कह ही चुके है । इसलिये प्रपंचसे भिन्न अनुमान युक्तिसिद्ध नहीं हो सक्ता । प्रपञ्चाभिन्न भी अनुमान युक्तिसिद्ध नहीं है क्योंकि उसको प्रपञ्च स्वरूप होनेसे मिथ्यारूपता होनेगी मिथ्यारूप जो अनुमान है सो स्वसाध्यको सिद्ध कैसे कर सक्ता हे अर्थात् नहीं कर सक्ता यह बात पहिले कह ही चुके हैं । इसप्रकार प्रपञ्चको मिथ्यात्वकी सिद्धि न होनेसे परम ब्रह्मको तात्विकत्व भी सिद्ध नहीं होता है जिससे बाह्य अर्थका अभाव सिद्ध हो सके ॥

प्रमाणत्वाभिमतज्ञानस्य स्वव्यवसायीति विशेषण व्याख्यान्ति ॥

अब प्रमाणत्वेन स्वीकृत ज्ञानके लक्षणमें प्रविष्ट जो स्वव्यवसायि यह विशेषण है इसकी सूत्रकार व्याख्या करते है ॥

स्वस्य व्यवसाय स्वाभिमुख्येन प्रकाशनं बाह्यस्येव तदाभिमुख्येन करिकलभकमहमात्मना जानामीति ॥

जिसप्रकार बाह्याभिमुख्येन प्रकाशन बाह्य व्यवसाय ज्ञानका होता है इसी प्रकारसे स्वाभिमुख्येन जो प्रकाशन है सो स्वव्यवसाय है जैसे करिकलभकको मै आत्माकरके जानता हू यह ज्ञान जो हे सो स्वप्रकाश भी हे ॥

यथा बाह्याभिमुख्येन बाह्यानुभवनेन प्रकाशनं बाह्यव्यवसायो ज्ञानस्य तथा स्वाभिमुख्येन प्रकाशन स्वव्यवसायः अत्रोल्लेख' करिकलभकमित्यादि । यथा करिकलभकमिति प्रमेयस्याहमिति प्रमातुर्जानामीति प्रमिते' प्रतिभासस्तथात्मनेति प्रमाणत्वाभिमत ज्ञानस्याप्यस्त्येवेति भाव' ॥

जिसप्रकार बाह्याभिमुख्येन नाम बाह्यानुभवेन जो प्रकाशन है सो ज्ञानका बाह्यव्यवसाय है वैसे ही स्वाभिमुख्येन जो प्रकाशन है सो स्वव्यवसाय कहा जाता है इसमें उल्लेख, नाम शब्दप्रयोग कहते है (करिकलभक इत्यादि) जैसे करिकलभक इतने अशमें प्रमेयका और अहं यह प्रमाताका और जानामि अंशमें प्रमितिका प्रतिभास (बोध) होता है ऐसे ही आत्मना इस अंशमें प्रमाणत्वेन अभिमत ज्ञानका भी प्रतिभास होता ही है यह इस सूत्रका आशय है

स्वव्यवसायमेव स्पष्टदृष्टान्तप्रकटनेन निष्टङ्कयन्ति ।

अब स्पष्ट दृष्टान्त कहकर सूत्रकार स्वव्यवसायित्वको ही दृढ करते है

कः खलु ज्ञानस्यालम्बनं बाह्यं प्रतिभातमभिमन्य-मानस्तदपि तत्प्रकारं नाभिमन्येत मिहिरालोकवदिति ॥

जिसप्रकार घटादि पदार्थ जो मिहिरालोकका विषय है उनको प्रतिभात (ज्ञात) मान रहे जो पुरुष है उन्होंने मिहिरालोकको भी प्रतिभात माना है इसप्रकार ही ज्ञानका विषय जो बाह्य पदार्थ है उसको प्रतिभात मान रहा कौन पुरुष ज्ञानको भी प्रतिभात नही मानेगा अर्थात् अवश्य मानना ही चाहिये ॥

तदपीति ज्ञानमपि । तत्प्रकारमिति स प्रतिभातत्वलक्षणः प्रकारः प्रतिनियतं स्वरूपं यस्य तत्तत्प्रकारं प्रतिभातमित्यर्थः । यथैव हि गिरिनगरगहनादिकं मिहिरालोकस्य विषयं प्रतिभातमभिमन्यमानैर्मिहिरालोकोपि प्रतिभातोऽभिमन्यते लौकिकपरीक्षकैस्तद्वद्ज्ञानस्य विषयं कुंभादिकं प्रतिभातमभिमन्यमानैस्तैर्ज्ञानमपि प्रतिभातं स्वीकर्त्तव्यमिति ॥

सूत्रमें जो तदपि शब्द है उसका ज्ञानमपि (ज्ञान भी) यह अर्थ है। अब तत्प्रकार शब्दका अर्थ लिखते है यहाँपर जो तत् शब्द है इसका प्रतिभातत्व अर्थ है और प्रकार शब्दका प्रतिनियतस्वरूप अर्थ है इन दोनों शब्दोंका बहुव्रीहि समास करनेसे तत्प्रकार वैसा भया इसका अर्थ प्रतिभातं ऐसा जानना। जिसप्रकारसे मिहिरालोकका विषय पर्वतादिपदार्थोंको प्रतिभात मान रहे लौकिक (सामान्य) परीक्षक (पण्डित) पुरुषोंने मिहिरालोक भी प्रतिभात माना है इसीप्रकारसे ज्ञानके विषय घटादि पदार्थको प्रतिभात मान रहे लौकिक और परीक्षकोंने ज्ञानको भी प्रतिभात ही मानना चाहिये ॥

अत्रैयं भट्टचट्टघट्टना । ननु न स्वसंवेदन वेदनस्य सुन्दर स्वात्मनि क्रियाविरोधादित्यस्य पारोक्ष्यमेवाक्षूण कक्षीकरणीय
तदेतदरमणीय । यतः किमुत्पत्तिर्ज्ञप्तिर्वा स्वात्मनि विरुध्येत । यद्युत्पत्ति' सा विरुध्यतां नहि ज्ञानमात्मानमुत्पादयतीति
वयमध्यगीष्महि । अथ ज्ञप्तिर्नैयमात्मनि निरोधमदीधरत्तदात्मनैव ज्ञानस्य स्वकारणकलापादुत्पादात् प्रकाशात्मनेव प्रदीप
कलिकालोकस्य । अथ प्रकाशात्मनैव प्रदीपालोकोऽयमुदयामाशिवानिति परप्रकाशकोऽस्तु आत्मानमप्येतावन्मात्रेण । प्र
काशयतीति तु कौतस्कुती नीतिरितिचेत्तत्किं तेन अप्रकाशितेनेव वराकेण स्थातव्यमालोकान्तराद्वा प्रकाशेनास्य भवितव्य ।
प्रथमे प्रत्यक्षबाधा द्वितीयेपि सैवानवस्थापत्तिश्च । अथ नासौ स्वमपेक्ष्य कर्म्मतया चकास्तीत्यस्वप्रकाशकः स्वीक्रियते
प्रकाशरूपतया तूत्पन्नत्वात् स्वयम्प्रकाशत एवेति चेदनेनैव सुधामद्धि । नहि वयमपि ज्ञान कर्म्मतयैव प्रतिभासमानं
स्ववेद्यमावेदयामहि । ज्ञान स्वय प्रतिभासत इत्यादावकर्म्मकस्य तस्य चकासनात् । यथातु ज्ञान जानामीति कर्म्मतयापि
तन्नाति तथा प्रदीप' स्व प्रकाशयतीत्ययमपि तथा प्रथत एव अथावयवैरालोकावयवी प्रकाश्यत इत्यस्वप्रकाशक एवाय
मिति चेत् ननु तेऽपि केन प्रकाशनीयाः। अवयविनेति चेत् न वमीषां परस्परगोचरज्ञानजनने सहकारित्वमेव तावत् प्रका-
शकत्वमुच्यते तथामीषामज्ञातानां ज्ञातानां वा स्यात् नाज्ञातानामेव ह्यनालोकित एव प्रदीपकुड्मलालोकोऽपि कदाचित्
फलशकुलिशादीन् ज्ञापयेत् । ज्ञातानाश्चेदितरेतराश्रयापत्तिर्ज्ञाता' खल्ववयवा अवयविन ज्ञापयेयु' सोपिच ज्ञात एव
तान् ज्ञापयेदिति । अथ तेषामप्यवयवानामवयवित्वाभिजावयवैर्ज्ञप्ति' करिष्यते तदानीमनवस्था अथ पर्य्यन्ते केचिदवय
वा' स्वयमेवात्मान ज्ञापयेयुस्तर्हि ज्ञानमपि स्वयमेवात्मान निश्चिनोतीति किन्न कक्षीकुरुषे । कथञ्च पारोक्ष्ये ज्ञानस्य
ज्ञान स्यात् । अन्यथानुपपद्यमानार्थप्राकट्यरूपार्थसमुत्थापितार्थापत्तेरितिचेत् । ननु तदर्थप्राकट्यमात्मधर्म्मो ज्ञानधर्म्मो
ऽर्थधर्म्मो वा भवेत् नाद्य. प्रकार' प्रभाकरकक्षापञ्जरप्रवेशप्रसङ्गात् । न द्वैतीयीक' ज्ञानस्य क्षणिकत्वेन तत्क्षण एव क्षीण-
त्वादुपरितनक्षणोत्पदिष्णोस्तस्य तद्धर्म्मत्वविरोधात् नापितार्तीयीकस्तथात्वे हि चैत्रस्येव मैत्रस्यापि स पदार्थः प्रगटः स्यात् ।
अथ यस्यैव ज्ञानेन जनयाम्बभूवेऽसौ तस्यैव तत्प्रकटन तद्धर्घट घटस्य प्रतिनियतप्रमातृप्रबोधितप्रदीपाङ्कुरप्रकटितस्याप्यनि
यतैर्दर्शनात् तन्नियमानुपपत्ते' । अस्तु वैतत्तथाप्ययमर्थधर्म्मो जडश्चिद्रूपो वा भवेत् । यदि जडः कथमर्थदर्श । स्यात् ।
अर्थदर्शन ह्यर्थदृष्टिरर्थज्ञप्तिरुच्यते जडत्वेतु प्राकट्यस्य कथमिद घटेत ज्ञानप्रमाणशब्दयोरेव सामानाधिकरण्यममूपपाद

यतो ज्ञायते ज्ञप्तिर्जन्यते येन तत् ज्ञानमाज्ञायते प्राकट्यस्य च जडत्वेनाज्ञप्तिरूपत्वे कथन्तज्जनकं प्रमाणं ज्ञानं व्यपदिश्येत चिद्रूपश्चेत् स्वसंवेद्यो वेदनान्तरवेद्यो वा यदि स्वसंवेद्यस्तर्हि कुतश्च शीलविध्वंसो न चानङ्गः शमंगत इति न्यायः समायातः स्वात्मनि क्रियाविरोधात् विज्ञाने स्वसंवित्तिप्रतिक्षेपपातकं कृत्वापि प्राकट्ये तस्याः स्वयं स्वीकारात् । वेदनान्तरवेद्यत्वं पुनरस्य कुतस्त्यं । तथाहि किमयं यावदर्थं यावदक्षव्यापारं वावतिष्ठेत ज्ञानवत् क्षणिको वा भवेत् । नाद्यः पक्षः पदार्थमालोक्य निमीलितलोचनोत्पलयुगलस्य प्रकटतत्प्रतीतिप्रसक्तेः न द्वितीयोऽक्षादिव्यापारस्य ज्ञानोत्पत्तिमात्रे व्यापारात् प्राकट्यस्य तदपेक्षानुपपत्तेः नापि तृतीयः क्षणजातनष्टस्य वेदनान्तरेण वेदितुमशक्यत्वाद्वेदनेतु द्वित्रिक्षणावस्थितिप्रसक्तेः तन्न तद्वेदनमवदातं यतोऽर्थापत्तिरुल्लसेदिति ॥

इस विषयमें वक्ष्यमाणरीतिसे भट्ट (मीमांसक विशेष) की चतुराई पूर्वक मटना है । स्वात्मामें क्रियाविरोध-होनेसे ज्ञानको स्वप्रकाशत्व मानना ठीक नही है इसलिये ज्ञानको निराबाध परोक्ष (प्रत्यक्षाविषय) ही मानना ठीक है ॥ जैन कहते है कि पूर्वोक्त जो मीमांसकका कथन है सो रमणीय सुन्दर नही है क्योंकि स्वात्मामें उत्पत्ति विरुद्ध है अथवा ज्ञप्ति (ज्ञान) विरुद्ध है कहतेहो । यदि उत्पत्ति विरुद्ध है तब विरुद्ध रहो ज्ञान (आत्मा) स्व स्वरूपको उत्पन्न करता है ऐसा हम भी नही कहते है । यदि ज्ञप्ति कहतेहो तब ज्ञप्ति तो आत्मामें विरोधको धारण नही करती है क्योंकि ज्ञान जो है सो ज्ञप्तिरूपेण ही स्वकारणोंसे उत्पन्न होता है । दृष्टांत (जैसे दीपालोक स्वकारणोंसे प्रकाशात्मना उत्पन्न होता है) अब कदाचित्प्रकाशात्मना उत्पन्न जो प्रदीपालोक है सो परका प्रकाशक रहो परन्तु स्व स्वरूपको भी एतावन् मात्रसे प्रकाश ही करता है इसमें क्या प्रमाण है ऐसा तुम कहते हो तब हम पूछते हैं कि क्या गरीब बिचारा दीपालोक अप्रकाशित ही रहता है अथवा प्रकाशान्तरसे उसका प्रकाश होता है । प्रथम पक्षमें तो प्रत्यक्ष बाध है द्वितीयपक्षमें भी प्रत्यक्ष बाध ही है क्योंकि आलोकान्तरसे विना भी आलोकका प्रकाश अनुभवमें आता है । और द्वितीय पक्षमें अनवस्थारूप दोष भी है । यदि कदाचित् प्रदीपालोक जो है सो स्व अपेक्षया कर्म्मतया प्रकाश नही होता है इसलिये इसको अस्वप्रकाशक स्वीकार करते है परन्तु प्रकाशरूपतया उत्पन्न होनेसे स्व प्रकाशित तो होना ही है ऐसा कहते हो तब जैन कहते है कि इसप्रकारसे ही तुम ज्ञानको स्वप्रकाश माननारूप अमृतका पानकरो । हम भी कर्म्मतया ही प्रतिभासमान ज्ञानको स्ववेद्य नही कहते है । क्योंकि ज्ञानं स्वयं प्रकाशते इस जगहमें अकर्मक ही ज्ञानका भान होता है और जैसे ज्ञानको मैं

नानतादु इसप्रकारसे कर्म्मतया भी ज्ञान भासता है वैसे ही प्रदीप सको प्रकाश करता है इसप्रकारसे प्रदीप भी कर्म्मतया प्रतीयमान होता ही है। यदि कदाचित् अवयवोंसे आलोकावयवी प्रकाशित होता है इसलिये यह अस्वप्रकाशक ही है ऐसा कहोगे तब हम पूछते हैं कि अवयवीके प्रकाशक जो अवयव है उनका प्रकाशक कोन है। यदि अवयवी कहोगे तब हम कहते है कि इनको परस्पर विषयक ज्ञानोत्पत्तिमें सहकारित्व ही प्रकाशकत्व कहा जाता है सो जो प्रकाशकत्व है सो इनको अज्ञातोंको है अथवा ज्ञातोंको है। अज्ञातोंको तो नहीं कह सकते है क्योंकि यदि अज्ञात ही प्रकाशक कहोगे तब नहीं देखा गया जो प्रदीपादिकोंका प्रकाश है वह भी किसी समयमें घटपटादि पदार्थोंका बोध करावे, कराता तो नहीं है इसलिये अज्ञातको प्रकाशक नहीं कह सक्ते है। और ज्ञात-पक्ष भी तुम्हारे मतानुसार ठीक नहीं है क्योंकि अन्योन्याश्रय दोष आता है॥ अन्योन्याश्रयको स्पष्ट करते है ज्ञात ही अवयव अवयवीका बोध कराते हैं और अवयवी भी ज्ञात ही अवयवोंका बोध कराता है इसप्रकार अन्योन्याश्रय भया॥ यदि कदाचित् पूर्वोक्त प्रकाशक जो अवयव हैं उनको भी अवयवी होनेसे उनका स्व अवयवोंसे प्रकाश होता है कहोंगे तब अनवस्थारूप दोष आजावेगा। और यदि अन्तमें कोई एक अवयव स्वयमेव स्व स्वरूपको प्रकाश करते हैं कहोंगे तब ज्ञान भी स्वयमेव स्वका निश्चय करता है ऐसा क्यों नहीं स्वीकार करते हो। और परोक्षमाननेसे ज्ञानका ज्ञान कैसे होसकेगा। अन्यथा अनुपपद्यमान (ज्ञानसे विना न सिद्धहोनेवाले, अर्थप्राकट्य (अर्थकी प्रकटता) रूप अर्थसे समुत्थापित (उठायेहुए) अर्थापत्तिरूप प्रमाणसे यदि कहोंगे तब हम पूछते हैं कि यह जो अर्थप्राकट्यरूप अर्थ है सो आत्माका धर्म्म है अथवा ज्ञानका धर्म्म है किंवा अर्थधर्म्म है आद्यपक्ष तो नहीं कहसकते है क्योंकि प्रभाकरके मतमें प्रवेश हो जावेगा। तुम्हारे मतमें ज्ञान क्षणिक है इसलिये तत्कालमें ही नष्ट होय चुका है तब द्वितीयक्षणोत्पन्न अर्थप्राकट्यको ज्ञानधर्म्मत्वका विरोध है इसलिये द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं। और तृतीयपक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि यदि अर्थप्राकट्य अर्थका धर्म्म मानोगे तब देवदत्तकी तरह मैत्रको भी यह अर्थ प्रकट होवे क्योंकि अर्थप्राकट्य दोनोंको समान ही है। यदि कदाचित् जिसके ज्ञान करके प्राकट्य उत्पन्न भया है उसीको उसका प्रकटन होता है ऐसा नियम करोंगे तब यह नियम दुर्घट है क्योंकि प्रतिनियत (किसीएक) प्रमातासे प्रबोधित (जलायाभया) जो प्रदीप उससे प्रकटित भी घटको अनेक पुरुष देखते हैं। अथवा यथा कथञ्चित् यह (नियम) स्वीकार भी करो तो भी यह जो प्राकट्यरूप अर्थधर्म्म है सो जड़ है अथवा चिद्रूप है। यदि जड़ है तब यह अर्थप्राकट्य अर्थ दर्शन कैसे होसक्ता है। अर्थदृष्टि नाम अर्थज्ञप्ति ही अर्थ ज्ञान कहाता है और यदि प्राकट्यको जड मानेगे तब यह कैसे अर्थदृष्टिरूप

नहीं कह सकेगा। और अर्थप्राकट्यको जड माननेसे ज्ञान तथा प्रमाण शब्दका सामानाधिकरण्य (एकार्थवाचित्व) भी नहीं कह सकेगे क्योंकि जो पदार्थ ज्ञप्तिको उत्पन्न करे वह-पदार्थ ज्ञान कहाजाता है प्राकट्यको जडरूप होनेसे ज्ञप्तिरूपता नहीं है तब उसका जनक प्रमाण ज्ञान कैसे कहावेगा अर्थात् नहीं कहावेगा। इसलिये प्राकट्यको जडरूप नहीं कह सक्ते है। यदि अर्थ-धर्मरूप अर्थप्राकट्य चिद्रूप है तब भी क्या स्ववेद्य है अथवा ज्ञानान्तर वेद्य है यदि स्ववेद्य है तब (किसी स्त्रीने स्व शीलका तो नाश किया परन्तु पुरुषमें शक्ति न होनेसे कामदेव शान्त न भया यह न्याय तुमारेको भी प्राप्त होगया क्योंकि स्वात्मामें किया विरोधसे स्वविदितत्वका खंडनरूप पाप करनेपर भी अर्थधर्मरूप अर्थप्राकट्यमें स्वसंविदितत्व तुमको स्वयं स्वीकार करना पडा यदि पुनः ज्ञानान्तरवेद्यत्व इसको मानोंगे तब कैसे होसक्ता है अर्थात् नहीं हो सकता। क्यों नहीं हो सकता सो कहते है। क्या यह जो अर्थका धर्म्म अर्थप्राकट्य है (अर्थसमकालवृत्ति) अर्थकालमें व्याप्त होकर रहने वाला है अथवा इन्द्रिय-व्यापारसमकालवृत्ति है किंवा ज्ञानवत् क्षणिक है। प्रथमपक्ष तो ठीक नहीं है क्योंकि पदार्थको देखकर मीचलिया है नेत्ररूपी कमल युगल जिसने ऐसे पुरुषको भी प्रकटरूपसे उस पदार्थके बोधकी प्राप्ति आजावेगी। द्वितीयपक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि इन्द्रियव्यापारको ज्ञानोत्पत्तिमात्रमें चरितार्थता है प्राकट्यको तो उसकी अपेक्षा नहीं है। तृतीयपक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि क्षणजातनष्ट पदार्थको वेदनान्तर (द्वितीयज्ञान) मे जान नहीं सकते हैं तब वेदनान्तरसे जाने तब दो तीन-क्षणस्थायित्वकी प्राप्ति आवेगी इसलिये क्षणिक अर्थप्राकट्यका ज्ञान ठीक नहीं है कि जिससे अर्थापत्ति होसके ॥

अथ यौगाः सङ्गिरन्ते। अहो आर्हता नामिन्मीमांसके वराके व्यपाकृतेऽपि संवेदने स्वसंवेदनदोहदः पूरयितुं पार्यते तथाहि ज्ञानं स्वान्यप्रकाश्यं ईश्वरज्ञानान्यत्वेसति प्रमेयत्वाद्यदेवं तदेवं यथा घटस्तथाचेदं तस्मात्तथा समुत्पन्नं हि ज्ञानमेकात्मसमवेतान्तरसमयसमुत्पद्यिष्णुमानसप्रत्यक्षेणैव लक्ष्यते न पुनः स्वेन नचैवमनवस्थाव्हेरुल्लासः। अर्थावसा-यिवेदनोत्पादमात्रेणैवार्थसिद्धेः तद्धि पदार्थपरामर्शस्वभावमेवोत्पन्नमात्रमेव पदार्थप्रथामनोरथस्थपितं कृतार्थयति प्रमातारं अर्थज्ञानजिज्ञासायां तु तत्रापि ज्ञानमुत्पद्यत एवेति। तदेतदेतेषां मतेस्तरलतां तनोति। प्रकटितप्रयोगपक्षस्या-नुमानेन मानखण्डनात्तथाच तावत्काकृतेन तत्र हेतोः कालात्ययापदिष्टत्वनिष्टङ्कनाच तथाहि विवादास्पदं ज्ञानं स्वसं-विदितं ज्ञानत्वादीश्वरज्ञानवत् वाद्यसिद्धमेवनिदर्शनं जैनैरीश्वरस्यै कारण तज्ज्ञानस्य तेषामप्रसिद्धेरिति चेत्तदन्तुस्सम-

नवद्यविद्याविद्याधरीनन्धुरपरिग्रहस्य पुरूपातिशेषविशेषस्य खण्डपरशो' स्वीकारात् त्रिविष्टपघटनलम्पटपटिम्नः सकलावलोकनकौशलशालिन एव चास्य तिरस्कारात् व्यर्थविशेष्यश्चायंहेतु समर्थविशेषणोपादानेनैव साध्यसिद्धेर्धूमध्वजसिद्धौ धूमवत्वेसति द्रव्यत्वादितिवत् नहीश्वरज्ञानादन्यत् स्वसंविदितमप्रमेयं चास्ति यदपोहाय प्रमेयत्वादिति क्रियेत अप्रयोजकश्चाय हेतु सोपाधिकत्वात् साधनाव्यापक' साध्येन समव्याप्तिकः खलूपाधिरभिधीयते तत्पुत्रत्वादिना श्यामत्वे साध्ये शाकाद्याहारपरिणामवत् । कः पुनरुपाधिरत्र सूक्ष्मेक्षणैरीक्षाञ्चक्रे इतिचेदुच्यते । निविडजडिमन् जडिमलक्षण' । तथाहीश्वरज्ञानान्यत्वेप्रमेयत्वे सत्यपि यदेव जडिमपात्र पात्रादि तदेव स्वस्मादन्येनैव प्रकाश्यते । स्वप्रकाशे परमुखोत्प्रेक्षित्व हि जडस्य लक्षण नच ज्ञान जडस्वरूपमिति सिद्ध साधनाव्यापकत्व जाड्यस्य । साध्येन समव्याप्तिकत्व चास्य स्पष्टमेव । जाड्य विहाय स्वप्रकाशाभावस्य तत्र त्यक्त्वा जाड्यस्य क्वचिदप्यदर्शनादिति ॥

अब यौग (नैयायिक) कहते हैं । अहो आर्हता (जैना) गरीब बिचारे भट्टनामक मीमासकके खण्डन करनेपर भी ज्ञानको स्वसंविदितत्व तुम सिद्ध नहीं करसकते हो । ज्ञानके अन्यप्रकाशकत्वमें अनुमान प्रमाण कहते हैं ईश्वरज्ञानसे भिन्न होयकर प्रमेयत्ववान् ज्ञान है इसलिये ज्ञान स्वान्यप्रकाश्य है जो प्रकृत हेतुमान् होता है सो प्रकृत साध्यवान् अवश्य होता है जैसे घट प्रकृत हेतुमान् होनेसे प्रकृत साध्यवान् भी है वैसा ही ज्ञान भी है इसलिये यह भी स्वान्यप्रकाश्य ही है ॥ जो ज्ञान जिस आत्मामें उत्पन्न होता है सो ज्ञान उसी आत्मामें स्वाव्यवहित उत्तर क्षणमें समवाय सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले मानस प्रत्यक्षसे जाना जाता है परन्तु स्वप्रकाश नहीं है । ऐसा माननेसे अनवस्थारूप दोष आवेगा ऐसा नहीं कहना क्योंकि पदार्थके निश्चायक ज्ञानके उत्पादमात्रसे ही अर्थसिद्ध हो जाता है अर्थावसायिज्ञान जो है सो तो पदार्थ परामर्श (ज्ञानविशेष) स्वभाव ही है इसलिये उत्पन्नमात्र ही पदार्थके जाननेकी इच्छारूप जो रथ उसमें स्थित प्रमाता पुरुषको कृतार्थ कर देता है । और यदि अर्थ ज्ञानकी जिज्ञासा होवे तब तो पूर्वोक्त ज्ञानविषयक ज्ञानान्तर भी उत्पन्न होता ही है । यहांतक नैयायिकोंका कथन भया अब जैन कहते हैं कि पूर्वोक्त जो नैयायिकोंका कथन है सो इनकी बुद्धिकी तरलता अर्थात् न्यूनताका सूचक है । क्योंकि प्रत्यनुमान (द्वितीय अनुमान) से तुम्हारे अनुमानमें जो पक्ष है उसका मान खण्डित है तब तेरेमतव्य दोषोंके अनुसार पूर्वोक्तानुमानमें जो हेतु है सो सत्प्रतिपक्षित है ॥ प्रत्यनुमानका आकार कहते हैं । जैसे ईश्वरज्ञान ज्ञानत्ववान् होनेसे स्वसंविदित है वैसे ही विवादास्पद जो ज्ञान है सो भी ज्ञानत्ववान् होनेसे

हो तब नहीं कहना क्योंकि दोषरहित जो विद्या (केवल ज्ञान) रूप विद्याधरी उसके संबन्धवाला पुरुषोत्तम खण्डपरशु जैनोंने भी माना ही है केवल जगत्का कर्तारूप सर्वको देखनेमे कुशलताशाली ही ईश्वरका खण्डन जैनको अभीष्ट है । और पूर्वोक्त जो तुह्मारा हेतु है सो व्यर्थ विशेष्य भी है क्योंकि समर्थ हेतुसे ही साध्यसिद्धि होय सकती है तब जैसे अग्निसिद्धिके लिये धूमवत्वे सति द्रव्यत्वात् यह हेतु व्यर्थ विशेष्य है वैसे ही पूर्वोक्त जो तुह्मारा हेतु है सो भी व्यर्थ विशेष्य है ईश्वर ज्ञानसे अन्य कोई स्वविदित और अप्रमेय नही है कि जिसके हटानेके लिये प्रमेयत्वका हेतु कुक्षिमें निवेश सफल होयसके । और उपाधिवाला होनेसे अप्रयोजक भी तुह्मारा हेतु है । जो पदार्थ हेतुका अव्यापक होवे और साध्यका व्यापक होवे सो उपाधि कही जाती है। जैसे श्यामत्वसाध्यक, तत्पुत्रत्वरूप हेतुमें शाकपाकजन्यत्व जो है सो पूर्वोक्त उपाधिलक्षणलक्षित होनेसे उपाधि कहा जाता है । यदि पूर्वोक्तानुमानमें कौन उपाधि है ऐसा पूछते हो तब निबड जडिमन् जडिम अर्थात् जडत्वरूप उपाधि हम कहते है क्योकि ईश्वर ज्ञानान्यत्व विशिष्ट प्रमेयत्ववान् जो जो जड पदार्थ है पात्रादिक सो सब स्वान्य प्राकाश्य ही है । क्योंकि स्वप्रकाशमें दूसरे पदार्थकी अपेक्षा करनेवाला ही जड कहा जाता है ज्ञान तो जड स्वरूप नही है इस रीतिसे पूर्वोक्त जडत्वरूप धर्म्मको साधनाव्यापकत्व सिद्ध भया । और साध्यके साथ समव्यापकत्व तो इसको स्पष्ट ही है क्योकि जाड्यको छोडकर स्वप्रकाशाभाव और स्वप्रकाशाभावको छोडकर जडत्व कही भी नही देखा जाता है ॥

यच्चोक्तं समुत्पन्नं हि ज्ञानमेकात्मसमवेतेत्यादि तदपि नावितथमित्थमर्थज्ञानतज्ज्ञानयोरुत्पद्यमानयोः क्रमानुपलक्षणात् । आशूत्पादादत्र क्रमानुपलक्षणमुत्पलपत्रशतव्यतिभेदवत् इतिचेत्तदचारु जिज्ञासाव्यवहितस्यार्थज्ञानज्ञानस्योत्पादप्रतिपादनात् नच जिज्ञासासमुत्पाद्यत्वं संवेदनानां सङ्गच्छते । अजिज्ञासितेष्वपि योग्यदेशेषु गोचरेषु तदुत्पादप्रतीतेः नचायोग्यदेशमर्थज्ञानमात्मसमवेतस्यास्य समुत्पादादिति जिज्ञासामन्तरेणैवार्थज्ञाने ज्ञानोत्पादप्रसङ्गः । बाढमुत्पद्यतां नामेदं कोदोष इतिचेत् नन्वेवमेव तज्ज्ञानज्ञानेप्यपरज्ञानोत्पादप्रसङ्गः । तत्रापि चैवमेवायमित्यपरापरज्ञानोत्पादपरम्परायामेवात्मनो व्यापारान्न विषयान्तरसञ्चारः स्यादिति न ज्ञानस्य ज्ञानान्तरज्ञेयतापि युक्तिमार्गमवगाहते ॥

और जो तुमने प्रथमोत्पन्न जो घटादिविषयक ज्ञान है सो उसी आत्माम उत्तर क्षणम समवाय सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले मानस ज्ञानसे जाना जाता है इत्यादिक कहा है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि इसप्रकार अर्थज्ञान और अर्थज्ञानके ज्ञानकी उत्पत्तिमें क्रम नहीं देखा जाता है। कदाचित् जैसे कमलोंके शैकडे पत्रोंमें शीघ्र ही वेध हो जानेसे क्रम ज्ञान नहीं होता है ऐसे ही शीघ्रोत्पाद होनेसे पूर्वोक्त ज्ञानोंमें भी क्रमज्ञान नहीं होता ऐसा कहते हो तब यह कथन तो ठीक नहीं है क्योंकि जिज्ञासासे व्यवहित ज्ञानके ज्ञानका उत्पाद तुमने कहा है तब जिज्ञासाका बीचमें व्यवधान होनेसे अवश्य क्रमज्ञान होना चाहिये। और जिज्ञासा समुत्पाद्यत्व भी ज्ञानोंको सङ्गत नहीं होय सकता क्योंकि योग्यदेशवृत्ति अजिज्ञासित पदार्थ विषयक बोध भी देखा जाता है। अर्थ-ज्ञान जो है सो अयोग्यदेशवृत्ति नहीं है क्योंकि आत्मामें समवाय सम्बन्धसे इसकी उत्पत्ति होती है इसलिये जिज्ञासासे विना ही अर्थ ज्ञान विषयक ज्ञानके उत्पादका प्रसङ्ग आवेगा। यदि कदाचित् वैशक जिज्ञासासे विना ही उत्पन्न होवे तो भी क्या दोष है ऐसा कहोगे तब हम कहते हैं कि इसीप्रकार अर्थज्ञानज्ञानविषयक ज्ञानके उत्पादका भी प्रसङ्ग आजावेगा फिर तद्विषयक तद्विषयक ज्ञानकी उत्पाद परपराम ही आत्माका व्यापार हो जानेसे विषयान्तरमें सचार न हो सकेगा। इसलिये ज्ञानको ज्ञानान्तर ज्ञेयत्व भी युक्ति मार्गका अवगाहन नहीं करता है अर्थात् ज्ञानको ज्ञानान्तरवेद्यत्व युक्ति सिद्ध नहीं होय सकता ॥

प्रमाणं विविच्यास्यैव प्रामाण्यस्वरूप धर्ममाविष्कुर्वन्ति ॥

प्रमाणके लक्षणस्वरूपादि कहकर अब सूत्रकार प्रमाणवृत्ति प्रामाण्यके स्वरूपको कहते हैं ॥

ज्ञानस्य प्रमेयाव्यभिचारित्व प्रामाण्यमिति ॥

प्रमेय जो घटपटादि पदार्थ उनके साथ जो ज्ञानका अव्यभिचारिता नाम व्यभिचारा भाव उसीको प्रमाणनिष्ठप्रामाण्य जानना इति ॥

प्रमीयमाणार्थाव्यभिचरणशीलत्व यज्ज्ञानस्य तत्प्रामाण्यमित्यर्थः ॥

ज्ञानकी जो वर्तमानकालीनप्रमाविषयीभूत पदार्थके साथ अव्यभिचार स्वभावता है सो प्रामाण्य कहाता है इस सूत्रका ऐसा अर्थ जानना ॥

प्रसङ्गायातमप्रामाण्यरूपमपि धर्म्म प्रकटयन्ति ।

प्रसङ्ग संगतिसे प्राप्त अप्रामाण्यके स्वरूपको भी सूत्रकार प्रकट करते हैं ॥

तदितरत्त्वप्रामाण्यमिति ॥

ज्ञानका प्रमेय पदार्थके साथ जो व्यभिचारित्व है सो अप्रामाण्य कहा जाता है ॥

तस्मात्प्रमेयाव्यभिचारित्वादितरत्प्रमेयव्यभिचारित्वमप्रामाण्यं प्रत्येयं । प्रमेयव्यभिचारित्वञ्च ज्ञानस्य स्वव्यतिरिक्त-
ग्राह्यापेक्षयैव लक्षणीयं स्वस्मिन् व्यभिचारस्यासम्भवात् तेन सर्वं ज्ञानं स्वापेक्षया प्रमाणमेव न प्रमाणाभासं बहिरर्थापेक्ष-
यातु किञ्चित्प्रमाणं किञ्चित् प्रमाणाभासम् ॥

तस्मात् नाम प्रमेयाव्यभिचारित्वसे अन्य नाम भिन्न अर्थात् प्रमेयव्यभिचारित्व जो है सो अप्रामाण्य जानना । और ज्ञानको
प्रमेय व्यभिचारित्व जो है सो स्व (ज्ञान) से अतिरिक्त (भिन्न) जो घटादि ग्राह्य (विषय) हैं उनकी अपेक्षासे जानना
क्योंकि स्वमें स्वके व्यभिचारका असम्भव है इसलिये प्रकाशक ज्ञानमात्र स्व अपेक्षासे तो प्रमाण ही है परन्तु प्रमाणाभास नहीं है
और बाह्यपदार्थकी अपेक्षासे कोई एक ज्ञान प्रमाणरूप और कोई प्रमाणाभासरूप हैं ॥

अथोत्पत्तौ स्वनिश्चये च ज्ञानानां स्वत एव प्रामाण्यमप्रामाण्यन्तु परत एव यज्जैमिनीया जगुस्तन्निराकुर्वन्ति ॥

अब जो मीमांसक लोग ज्ञानोंको उत्पत्तिमें और स्वनिश्चयमें स्वतः ही प्रामाण्य है और अप्रामाण्य तो सर्वथा परतः ही है
ऐसा कहते हैं उनका सूत्रकार खण्डन करते हैं ।

तदुभयमुत्पत्तौ परत एव ज्ञप्तौ तु स्वतः परतश्चेति ॥

ज्ञाननिष्ठ जो प्रामाण्य अथवा अप्रामाण्य है सो दोनो ही उत्पत्तिमें तो स्वतः हैं और निश्चयमें स्वतः भी हैं और कहीक
परतः भी हैं ।

अत्र ल्यब्लोपे पञ्चमी परं स्वं चापेक्ष्येत्यर्थः । ज्ञानस्य हि प्रामाण्यमप्रामाण्यं च द्वितयमपि ज्ञानकारणगतगुणदोपरूपं
परमपेक्ष्योत्पद्यते निश्चीयते त्वभ्यासदशायां स्वतोऽनभ्यासदशायान्तु परत इति तत्र ज्ञानस्याभ्यासदशायां प्रमेयाव्यभि-

चारि तदितरन्नासीति प्रामाण्याप्रामाण्यनिश्चय. । सवादकबाधकज्ञानमनपेक्ष्य प्रादुर्भवन् स्वतो भवतीत्यभिधीयते । अनभ्यासदशायान्तु तदपेक्ष्य जायमानोऽसौ परत इति ।

इस पूर्वोक्त सूत्रमें स्वत और परत यहांपर जो पञ्चमी विभक्ति है सो ल्यब्लोपमें है इसलिये स्व और परकी अपेक्षा रखकर ऐसा अर्थ भया ज्ञाननिष्ठ जो प्रामाण्य और अप्रामाण्य है सो ज्ञानके कारणमें रहनेवाले गुण अथवा दोषरूप जो पर पदार्थ हैं उनकी अपेक्षा रखकर ही उत्पन्न होता है । और उनका निश्चय तो अभ्यासदशामें स्वत और अनभ्यासदशामें परसे होता है । उनमें ज्ञानका अभ्यास दशामें प्रमेयका व्यभिचारी अथवा अव्यभिचारी है इसप्रकारसे जो प्रामाण्य और अप्रामाण्यका निश्चय है सो सवादक अथवा बाधक ज्ञानकी अपेक्षा न रखकर उत्पन्न होता हुआ स्वत होता है ऐसा कहा जाता है । और अनभ्यास दशामें तो सवादक अथवा बाधक ज्ञानकी अपेक्षा रखकर उत्पन्न होता है इसलिये यह जो प्रामाण्याप्रामाण्य है सो परत ऐसा कहाता है ॥

अत्रैव मीमासका मीमांसामांसलतां दर्शयन्ति । स्वत एव सर्वथा प्रमाणानां प्रामाण्य प्रतीतिकोटिमाटीकते तथाहि तदुत्पत्तिप्रगुणा गुणा' प्रत्यक्षेणानुमानेन वा मीयेरन् यदि प्रत्यक्षेण तत्किमैन्द्रियेणातीन्द्रियेण वा । नैन्द्रियेणातीन्द्रियेन्द्रियाधिकरणत्वेन तेषां तद्ग्रहणायोग्यत्वात् । नाप्यतीन्द्रियेण तस्य चारुविचारगोचरचरिष्णुत्वाभावात् । अनुमानेन तान्निरणेष्महीति चेत्कुतस्तत्र नियमनिर्णयः स्यान्न प्रत्यक्षात् गुणेषु तत्प्रवृत्ते परास्तत्वात् तथाच द्विष्ठसबन्धसवित्तिनकरूपप्रवेदनात् । द्वयस्वरूपग्रहणे सति सम्बन्धवेदनम् । नाप्यनुमानात् तत एव तन्निश्चितानितरेतराश्रयस्य तदन्तरात्पुनरनवस्थाया प्रसक्ते । ततो न गुणा' सन्ति केचिदिति स्वरूपावस्थेभ्य' एव कारणेभ्यो जायमान तत्कथमुत्पत्तौ परत स्यात् निश्चयस्तु तस्य परत' कारणगुणज्ञानाद्बाधकाभावज्ञानात् सवादिज्ञानाद्वा भवेत् तत्र प्राच्य प्रकार प्रागेव परास्तम् गुणग्रहणप्रवीणप्रमाणपराकरणात् द्वितीयेतु तात्कालिकस्य कालान्तरभाविनो वा बाधकस्याभाव ज्ञान तन्निश्चायक स्यात् पौरस्त्य तावत् कूटहाटकनिष्टङ्कनेपि स्पष्टमस्त्येव द्वितीयन्तु न चर्म्मचक्षुषां सम्भवति । सवादिवेदनन्तु सहकारिरूप सत्तन्निश्चय विरचयेद् ग्राहक वा । नाद्यभिद् भिन्नकालत्वेन तस्य सहकारित्वासम्भवात् द्वितीयपक्षे तु तस्यैव ग्राहक सत्तद्विषयस्य विषयान्तरस्य वा न प्रथमः पक्ष• प्रवर्तकज्ञानस्य सुदूरनष्टत्वेन ग्राह्यत्वायोगात् । द्वितीयेत्वेक-

तैमिरिकावलोक्यमानमृगाङ्कमण्डलद्वयदर्शिदर्शनेन व्यभिचारः । तद्धि
संतानं भिन्नसंतानं वा तत्स्यात् पक्षद्वयेपि
चैत्रस्य पुनः पुनमैत्रस्य चोत्पद्यत एव ।। तृतीये पुनरर्थक्रियाज्ञानमन्यद्वा तद्भवेत् । न पौरस्त्यं प्रवर्तकस्य प्रामाण्य-
निश्चये प्रवृत्त्यभावेनार्थक्रियाया एवाभावात् । निश्चितप्रामाण्यात्तु प्रवर्तकज्ञानात् प्रवृत्तौ चक्रकम् । निश्चितप्रामाण्यात्
प्रवर्तकात् प्रवृत्तिः प्रवृत्तेरर्थक्रियाज्ञानं तस्माच्च प्रवर्तकज्ञानस्य प्रामाण्यनिश्चय इति । कथं चार्थक्रियाज्ञानस्यापि
प्रामाण्यनिश्चयो ऽन्यस्मादर्थक्रियाज्ञानाच्चेदनवस्था । प्रवर्तक ज्ञानाच्चेदन्योन्याश्रयः स्वतश्चेत्प्रवर्त्तकज्ञानस्यापि तथैवास्तु ।
अन्यदपि विज्ञानमेकसन्तानं भिन्नसन्तानं वा । द्वयमपिचैतदेक-जातीयं भिन्नजातीयं वा । चतुष्टयमपि चैतद्व्यभिचाराभि-
चारदुःसञ्चरं । तथाह्येकसन्तानं भिन्नसंतानं चैकजातीयमपि तरलतरतुङ्गतरङ्गतरङ्गिणीतोयज्ञानं भिन्नजातीयञ्च कुम्भा-
म्भोरुहादिज्ञानम् मरुवसुन्धराचारिचतुरतरतरणिकिरणश्रेणिसङ्गिसलिलसंवेदनस्य न संवादकमिति न ज्ञप्तावपि
तत्परतः । अप्रामाण्यन्तूत्पत्तौ दोषापेक्षत्वाद् ज्ञप्तौ तु बाधकापेक्षत्वात्परत एवेति ।।

इस विषयमें वक्ष्यमाणप्रकारसे मीमांसक लोग मीमांसामें मांसलता (बलवत्ता) को दिखाते है । प्रमाणनिष्ठ जो प्रामाण्य है
सो सर्वथा स्वतः ही अनुभवमें आता है । तथाहि, जो उसके उत्पादक गुण तुमने कहे हैं सो प्रत्यक्षसे जाने जाते हैं अथवा
अनुमानसे । यदि प्रत्यक्षसे तो भी इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षसे अथवा अतीन्द्रियसे । गुण जो है सो अतीन्द्रिय इन्द्रियोंमें रहते है
इसलिये ऐंद्रियप्रत्यक्षसे तो नही कहसकते क्योंकि परमाणुवृत्तिरूपादिकोंकी तरह अतीन्द्रियवृत्तिगुणका ऐन्द्रियप्रत्यक्ष नहीं
होता है । अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे भी नहीं कह सकते क्योंकि अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष तो सूक्ष्म विचारका विषय नहीं होय सकता अर्थात्
तुमलोग अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष योगीको कहतेहो सो योगी ही नहीं है ॥ यदि कदाचित् अनुमानसे गुणोंका निश्चय हम मानते है ऐसा
तुम कहतेहो तब हम पूछते है कि गुणोंमें अविनाभाव (व्याप्ति) का निश्चय किससे होता है । प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति तो गुणोंमें प्रथम
ही हम खण्डन करचुके हैं इसलिये प्रत्यक्षसे तो नहीं कह सकेंगे । दोमें रहने वाले सम्बन्धका ज्ञान एक सम्बन्धि मात्र ज्ञानसे नहीं
होता है किन्तु दोनोंके ज्ञान होनेसे ही होता है ऐसा किसी आचार्यका वचन है । अनुमानसे भी व्याप्तिका निश्चय नहीं कहसकते
है क्योंकि यदि उसी अनुमानसे सबन्धका भी निश्चय कहोगे तब तो अन्योन्याश्रयरूपदोष आवेगा और यदि अनुमानान्तरसे
कहोगे तब अनवस्थारूप दोष आवेगा । इसलिये प्रत्यक्षके जनक गुण युक्तिसिद्ध नहीं है किन्तु स्वरूपावस्था कारणोंसे ही प्रामाण्य

उत्पन्न होता है तब यह उत्पत्तिमें परत कैसे होयसक्ता है अर्थात् स्वत ही है। और जो तुमने प्रामाण्यका निश्चय परत कहा है सो कारणगुणज्ञानसे होता है अथवा बाधकाभाव ज्ञानसे होता है किंवा सवादिज्ञानसे होता है। इन तीन भेदोंमेंसे प्रथम भेदको तो पहिले गुणग्राहक प्रमाण खण्डन करनेसे ही हम खण्डन करचुके है। द्वितीयपक्षमें भी क्या तात्कालिक (ज्ञानकालीन) अथवा कालान्तरभावी बाधकके अभावका ज्ञान प्रामाण्यका निश्चायक होवे। प्रथमपक्ष कहोंगे तब वह तो झूठे सुवणज्ञानम भी स्पष्ट विद्यमान ही है अर्थात् तात्कालिक बाधकाभाव ज्ञान शुक्ति कलधौतादि ज्ञानमें भी हे तब उसमें भी प्रामाण्यग्रह होना चाहिये। कालान्तरभावी बाधकके अभावका ज्ञान तो चर्मचक्षुवाले जो असदादि है उनको नहीं होय सक्ता। और संवादिवेदन जो है सो सहकारी होयकर प्रामाण्यके निश्चयको कराता है अथवा ग्राहक होकर कराता है। प्रथम पक्ष तो नहीं मान सकते हैं क्योंकि भिन्नकाल होनेसे संवादि वेदनको सहकारित्वका असम्भव है। ग्राहकत्व पक्षमें भी यह जो संवादि वेदन है सो प्रामाण्यका ही ग्राहक होकर प्रामाण्यके निश्चयको उत्पन्न करता है अथवा प्रामाण्यके विषयका ग्राहक होकर कराता है किंवा विषयान्तरका ग्राहक होकर कराता है। प्रथमपक्ष तो नहीं कह सकते हैं क्योंकि प्रवर्तक ज्ञानको बहुत पहिले नष्ट हो जानेसे ग्राह्यत्वका असम्भव है। द्वितीयपक्षमें भी यह जो ज्ञान है सो एक सन्तान हे अथवा भिन्न सन्तान है पक्षद्वयमें भी तैमिरिक (तिमिररोगवान्) पुरुषकरके देखा गया जो चन्द्रमण्डलद्वय तद्दर्शिदर्शन करके व्यभिचार है क्योंकि तैमिरिकावलोक्यमान चन्द्रमण्डलद्वयदर्शी दर्शन जो है सो चैत्रको तथा मैत्रको पुन पुन उत्पन्न होता ही है। विषयान्तरग्राहकत्व पक्षमें भी अर्थक्रियाज्ञानस्वरूप ही विषयान्तरग्राहक है अथवा अन्य है। प्रथम पक्ष तो नहीं है क्योंकि प्रवर्तकमें प्रामाण्यका निश्चय न होनेसे प्रवृत्तिका अभाव होवेगा प्रवृत्तिके न होनेसे अर्थक्रियाका ही अभाव है यदि निश्चितप्रामाण्य जो प्रवर्तक ज्ञान है उससे प्रवृत्ति मानोंगे तब चक्रक दोष आवेगा। (चक्रकको स्पष्ट करते हैं) निश्चित प्रामाण्य प्रवर्तक ज्ञानसे तो प्रवृत्ति और प्रवृत्तिसे अर्थ क्रियाज्ञान और अर्थ क्रिया ज्ञानसे प्रवर्तकज्ञानमें प्रामाण्यका निश्चय इस रीतिसे चक्रक भया। और भी दोष कहते है कि अर्थक्रिया ज्ञानमें भी प्रामाण्यका निश्चय कैसे होताहे अन्य अर्थ क्रिया ज्ञानसे यदि कहोंगे तब अनवस्था आवेगी और यदि प्रवर्तक ज्ञानसे कहोंगे तब अन्योन्याश्रय दोष आवेगा। यदि कदाचित् स्वत कहोंगे तब प्रवर्तक ज्ञानमें भी प्रामाण्यग्रहण स्वत ही होवे। अन्यज्ञान भी एक सन्तान है अथवा भिन्न सन्तान है एकसन्तान अथवा भिन्नसन्तान ज्ञान एकजातीय है अथवा भिन्नजातीय है। यह चारों ही व्यभिचारके सबन्धसे दुसचर है। व्यभिचारको

स्पष्ट करते है। एकसन्तान अथवा भिन्नसन्तान एकजातीय अत्यन्त चञ्चल उन्नत तरङ्गवाली नदीके जलका ज्ञान और भिन्न जातीय घट पट कमलादिकोंका जो ज्ञान है सो मरु भूमिकामें विचरनेवाली जो प्रचण्डतर सूर्य्यकिरणश्रेणिके सगिजलको विपय करनेवाले ज्ञानका संवादक नही है इसलिये ज्ञप्तिमें भी प्रामाण्य परत नही है। और अप्रामाण्य जो है सो उत्पत्तिमें तो दोषापेक्ष होनेसे और ज्ञप्तिमे बाधकापेक्ष होनेसे परत ही है ॥

अत्राभिदध्महे ।' यत्तावद्गुणाः प्रत्यक्षेण परोक्षेण वा मीयेरन्नित्यादि न्यगादि तदखिलं न खलु न दोपप्रसरेपि प्रेरयितुं पार्यते अथाध्यक्षेणैव चक्षुरादिस्थान् दोपान्निश्चिक्यिरे लोकाः किन्न नैर्म्मल्यादीन् गुणानपि। अथ तिमिरादिदोपाभावमात्रमेव नैर्म्मल्यादि नतु गुणरूपमिति कथमध्यक्षेण गुणनिश्चयः स्यादेवं तर्हि नैर्म्मल्यादि गुणाभावमात्रमेव तिमिरादि नतु दोपरूपमिति विपर्ययकल्पना किं न स्यात् अस्तु वा दोपाभावमात्रमेवगुणस्तथापि नायं तुच्छः कश्चित्सङ्गच्छते (।भावान्तरविनिर्मुक्तो भावोऽत्रानुपलम्भवत्। अभावः सम्मतस्तस्य हेतोः किं न समुद्भवः ॥ इति स्वयं भट्टेन प्रकटनात् तदपेक्षायामपि च कथं न परतः प्रामाण्योत्पत्तिः। अथासतां नैर्म्मल्यादयो गुणास्तथाप्यधिष्ठानप्रतिष्ठानेव तान् प्रत्यक्षं साक्षात्करोति न करणस्थांस्तेपां परोक्षत्वात्तर्हि तत एव दोपानपि तत्स्थानेव तत्साक्षात्कुर्यादिति कथं दोपा अपि प्रत्यक्षलक्ष्याः स्युः अथाप्रामाण्यं विज्ञानमात्रोत्पादककारणकलापातिरिक्तकारणकोत्पाद्यं विज्ञानमात्रानुवृत्तावपि-व्यावर्त्तमानत्वात् तदनुवृत्तावपियद्व्यावर्त्ततेतत्तन्मात्रोत्पादककारणकलापातिरिक्तकारणकोत्पाद्यंयथापाथःपृथिवीपवनात पानुवृत्तावपि व्यावर्तमानः कोद्रवाङ्कुरस्तदतिरिक्तकोद्रवोत्पाद्य इत्यनुमानाद्दोपप्रसिद्धिरितिचेच्चिरंनन्दताद्भवानिदमेव ह्यनु-मानमप्रामाण्यपदं निरस्य प्रामाण्यपदञ्च प्रक्षिप्य गुणसिद्धावपि विदध्यादिति कथं न दोपवद्गुणा अपि सिद्धेयुः। यतो नो-त्पत्तौ परतः प्रामाण्यं स्यात् प्रतिबन्धस्य च यथा दोपानुमाने तथा गुणानुमानेऽपि निर्णयः कथं वादित्यगत्यनुमाने तन्निर्णयः दृष्टान्तेतु यथात्रसाध्यसाधनः संबन्धोद्बोधोऽस्ति तथा गुणानुमानेऽपि ॥

जैन कहते है कि पूर्वोक्त जो मीमांसकोंके कुतर्क है उनके उत्तर हम कहते है ॥ पहिले गुण जो है सो प्रत्यक्षसे जाने जाते हैं अथवा अनुमानसे जाने जाते हैं इत्यादिक जो मीमांसकने कहा है सो दोपोंमें भी तो कह सकते हैं यदि कदाचित् चक्षुरादि इन्द्रियोंमें रहे दोपोंको सर्व लोग प्रत्यक्षसे ही निश्चय करते है ऐसा कहते हो तब हम कहते हैं कि नैर्म्मल्यादि गुणोंको भी

प्रत्यक्षसे ही क्यों नहीं निश्चय करेंगे। यदि कदाचित् तिमरादिक जो दोष है उनका जो अभाव तद्रूप ही नैर्मल्यादि है परन्तु गुणरूप नहीं है इसलिये उनका प्रत्यक्ष क्योंकर हो सकता है अर्थात् अभावका ज्ञान तो अनुपलब्धि प्रमाणसे होता है गुण हैं अभावस्वरूप इसवास्ते इनका प्रत्यक्ष नहीं होसक्ता ऐसा कहते हो तब हम कहते हैं कि नैर्मल्यादि गुणोंका अभाव ही तिमिरादिक हैं परन्तु दोषरूप नहीं हैं ऐसी विपरीत कल्पना क्यों न होवे। अथवा (तुष्यतु दुर्जन) दोषाभाव स्वरूप ही गुण रहें तो भी यह शशकशृङ्गवत् कुछ तुच्छ नहीं साबित होता है क्योंकि भूतलादिकोंमें अनुपलम्भकी तरह भावान्तरसे विनिर्मुक्तभाव ही अभाव सम्मत है उसकी हेतुसे उत्पत्ति क्यों नहीं होती ऐसा मानने सय कहा है।

और दोषाभाव स्वरूप जो गुण है उसकी भी अपेक्षा रखनेसे प्रामाण्य परत क्यों नहीं है अर्थात् परत ही है। यदि कदाचित् नैर्मल्यादिक गुण तो रहें परन्तु अधिष्ठान (गोलकादिक) में स्थित ही गुणोंका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करता है परन्तु चक्षुरादि करणोंमें तो नहीं करताहै क्योंकि चक्षुरादिकोंको परोक्ष होनेसे ऐसा कहतेहो तब पूर्वोक्त युक्तिसे ही दोषोंका भी अधिष्ठान स्थितोंका ही प्रत्यक्ष साक्षात्कार करे। इस रीतिसे दोष भी प्रत्यक्ष सिद्ध कैसे होसक्ते हैं। यदि कदाचित् विज्ञानमात्रकी अनुवृत्ती होनेपर भी व्यावर्तमान होनेसे अप्रामाण्य जो है सो विज्ञानमात्रके उत्पन्न करनेवाला जो कारण हुए उससे अतिरिक्त भी कारणसे जन्य है सामान्यमुखी व्याप्ती कहतेहैं कि जिसकी अनुवृत्ती होने पर भी जो पदार्थ जिससे व्यावृत्त होताहै सो पदार्थ तन्मात्रके उत्पादक कारण कलापातिरिक्त कारण कलापसे उत्पाद्य होताहै जैसे जल पृथ्वी और वायु तथा तेज इनकी अनुवृत्ति होनेपर भी व्यावर्तमान कोद्रवाङ्कुर जलादि कारणातिरिक्त कोद्रवसे उत्पन्न होताहै इस अनुमानसे दोषोंकी सिद्धि होतीहै ऐसा कहते हो तब भाई चिरकाल आनन्दमें रहो तुम यही अनुमान अप्रामाण्य पदको निकाल कर और प्रामाण्यपदका निवेश करके गुणों की सिद्धिमें भी कह देवो इस रीतिमें दोषोंकी तरह गुण भी सिद्ध क्यों न होंगे कि जिससे उत्पत्तिमें परत प्रामाण्य न होय सके। और अविनाभावका जिसप्रकार दोषानुमानमें निश्चय होताहै इसी प्रकार गुणानुमानमें भी होगा। अन्यथा सूर्य्यकी गतिके अनुमानमें अविनाभावका निश्चय कैसे होगा। और दृष्टान्तमें तो। जिस प्रकारसे दोषानुमानमें साध्यसाधनके सम्बन्धका बोध होता है। इसी प्रकार गुणानुमानमें भी जानना ॥

यथावादि निरपस्तु सदा परत इत्यादि तत्र संवादिवेदनादिति ब्रूम' कारणगुणज्ञानबाधकाभावज्ञानयोरपि न संवाद-कज्ञानरूपत्वं प्रतिपद्यामहे। यादृशोऽर्थ. पूर्वज्ञाने प्रथापथमवतीर्णस्तादृश एवासौ येन विज्ञानेन व्यवस्थाप्यते तत्संवादक-

मित्येतावन् मात्रं हि तल्लक्षणमाचचक्षिरे धीराः। यस्तु गुणग्रहणप्रवीणप्रमाणपराकरणपरायणातिदेशप्रयासः प्रयास एवकेवल-
मयमजनि भवतः दोपसन्दोहवत् गुणगणेऽपि प्रमाणप्रवृत्तेरनिवारणात् । यच्चु बाधकाभावज्ञानपक्षे विकल्पितं तात्कालि
कस्य कालान्तरभाविनो वेत्यादि । तत्राद्यविकल्पकल्पनाल्पीयसी । न खलु साधननिर्भासिसंवेदनोदयकाले कापि
कस्यापि बाधकस्योदयः संभवी उपयोगयौगपद्यासम्भवात् । भविष्यत्कालस्य तु बाधकस्याभावज्ञानात् प्रामाण्यनिर्णयो
निरवद्य एव नच चर्म्मचक्षुषां तदभावो भवितुमर्हति यदुदग्रसमग्रसामग्रीसंपाद्यसंवेदनं न तत्र भाविबाधकावकाश इत्येवं
तन्निर्णयात् । यदि च भाविवस्तुसंवेदनमस्मादृशां न स्यादेव तदा कथं कृत्तिकोदयाच्छकटोदयानुमानं नास्तमियात् ॥

और जो तुमने निश्चयस्तु तस्य परतः इत्यादिक कहा है उनगेंरो संवादिवेदनसे प्रामाण्यका निश्चय हम कहतेहे । और कारण-
गत जो गुण उनका ज्ञान तथा बाधकाभाव ज्ञानको भी सवादक ज्ञान रूप ही हम मानतेहै । क्योंकि यादृश जाति आकृतिविशिष्ट
जो पदार्थ पूर्वज्ञानमें विषय भयाहे तादृश जात्यादि विशिष्ट वही पदार्थ जिस ज्ञानसे व्यवस्थापित किया जावे उस ज्ञानको संवादक
जानना । एतावन् मात्रही संवादकका लक्षण बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं । और जो गुणोंके ग्रहण करनेमें प्रवीण प्रमाणोंके खण्डनार्थ
अतिदेश वाक्योंमें तैने प्रयास कियाहे सो तो तेरेको केवल प्रयास ही भयाहे । क्योंकि दोषोंकी तरह गुणोंमें भी प्रमाणोंकी प्रवृत्ति
निराबाधहै । और जो तैने बाधकाभावज्ञानपक्षमें तात्कालिक अथवा कालान्तरभावी बाधकज्ञानाभाव इत्यादि विकल्प कियेहै । उनमें
प्रथम विकल्पकल्पना तो तुच्छहै क्योंकि साधन निर्भासि ज्ञानोत्पत्तिकालमें किसी जगामें किसी भी बाधकके उदयका सम्भव नही है।
क्योंकि दो उपयोगोंकी एककालावच्छेदेन उत्पत्ति असम्भावित है । भविष्यत्कालमें होनेवाले बाधकके अभावज्ञानसे तो प्रामाण्य-
निर्णय होता ही है चर्मचक्षु जो असदादि हे उनको भावी बाधकके अभावका ज्ञान नहीं होसकता हे ऐसा नही कहना क्योंकि जिस
स्थलमें उदग्रसमग्रसामग्रीसे सम्पाद्य संवेदन होताहे वहांपर भावी बाधकका अवकाश नही होता इसप्रकारसे भावी बाधकाभावज्ञान
उत्पन्न होता है जेकर भावीपदार्थ विषयक बोध असदादिकोंको होता ही नहीं हे तब कृत्तिका नामक नक्षत्रके उदयसे शकटोदयका
अनुमान भी न होना चाहिये ॥

यत्पुनरवादि संवादिवेदनं त्वित्यादि तत्र संवादिवेदनात् साधननिर्भासिप्रतिभासविषयस्य विषयान्तरस्य वा
ग्राहकात् प्रामाण्यनिर्णय इति ब्रूमः भवति हि तिमिरनिकुरुम्बकरम्बितालोकसहकारिकुम्भावभासस्य तत्रैकसंतानं

भिन्नसंतानस्थ निरन्तरालोकसहकारि सामर्थ्यसमुद्भूत संवेदन संवादक । नच तैमिरिकादिवेदनेऽपि तत्प्रसङ्गस्तत्र
परतो बाधकात् स्वत.सिद्धप्रामाण्यादुत्तरस्याप्रामाण्यानिर्णयात् विषयान्तरग्राहकमपि संवादकमेव यथार्थक्रियाज्ञानं
नचात्र चक्रकावकाश प्रवर्तकप्रमाणप्रामाण्याप्रयोजनायाः प्रथमप्रवृत्तेः संशयादपि भावात् । अर्थक्रियाज्ञानस्य
तु स्वत एव प्रामाण्यनिश्चयोऽभ्यासदशापन्नत्वेन दृढतरस्यैवास्योत्पादात् नच साधननिर्भासिनोऽपि तथैवायमस्त्विति
वाच्य तस्य तद्विलक्षणत्वात् । अन्यदप्येकसंतानं भिन्नसंतान चैकजातीयञ्च यथैकदसदर्शन दसान्तरदर्शनस्य
भिन्नजातीय च यथा निशीथे तथाविधरसास्वादन तथाभूतरूपस्य संवादकम्भवत्येव । न च मिथ्यापाथ प्रथायाः
पाथोन्तरे कुम्भादौ वा संवेदन संवादक प्रसज्यते यतो न खलु निखिल प्रागुक्त संवेदन संवादक सङ्गिरामहे
किन्तर्हि यत्र पूर्वोत्तरज्ञानगोचरयोरव्यभिचारस्तत्रैव । किंच स्वत एव प्रामाण्यनिर्णयवर्णनसकर्णेनानेन स्वशब्द आत्मार्थ
आत्मीयार्थो वा कथ्येत । नाद्यः पक्ष स्वावबोधविधानेप्यन्धया बुध्या स्वधर्मस्य प्रामाण्यस्य निर्णेतुमशक्ते' द्वितीये तु
प्रकटकपटनाटकघटनपाटव प्राचीकटत् प्रकारान्तरेणास्मन्मताश्रयणात् । अस्माभिरप्यात्मीयेनैव ग्राहकेण प्रामाण्यनि
र्णयस्य स्वीकृतत्वात् । अथ येनैव ज्ञानमात्र निर्णीयते तेनैव तत्प्रामाण्यमपीति स्वतः प्रामाण्यनिर्णयो वर्ण्यते नन्वर्थप्रा-
कट्योत्थापितार्थापत्ते.सकाशात्त्वया ज्ञाननिर्णीतिस्तावदभिप्सामासे । अर्थप्राकट्यञ्च यथार्थत्वविशेषणविशिष्ट निर्विशेषण
वार्थापत्तिमुत्थापयेत् प्राचिपक्षे तस्य तद्विशेषणग्रहणं प्रथमप्रमाणादन्यस्मात् स्वतो वा भवेत् प्रथमपक्षे परस्पराश्रयप्रसङ्ग. ।
निश्चितप्रामाण्याद्धि प्रथमप्रमाणात् यथार्थत्वविशिष्टार्थप्राकट्यग्रहण तस्माच्च प्रथमप्रमाणे प्रामाण्यनिर्णय इति । द्वितीयप-
क्षेत्वनवस्था । अन्यस्मिन्नपि हि प्रमाणे प्रामाण्यनिर्णायिकार्थापत्त्युत्थापकस्यार्थप्राकट्यस्य यथार्थत्वविशेषणग्रहणमन्यस्मा-
त्प्रमाणादिति । अथ स्वतस्तद्विशेषणग्रहण तथाहि स्वसंविदितमर्थप्राकट्य तथात्मान निर्णयमान स्वधर्मभूत यथार्थत्व-
मपि निर्णयते । तथाच ततोऽनुमीयमाने ज्ञाने स्वतः प्रामाण्यज्ञप्तिरिति । तदेतदनवदातमेव सत्यप्रामाण्यस्यापि स्वतो ज्ञप्ति
प्रसक्ते' । स्वतोनिश्चितवैतथ्यविशेषणादर्थप्राकट्याद्धि ज्ञानमनुमीयमानमास्कन्दिताप्रामाण्यमेवानुमीयते । तत' कथ प्रामा-
ण्यवदप्रामाण्यस्यापि स्वतो निर्णीतिर्न स्यात् । अथ तत्र बाधकादेवाप्रामाण्यनिर्णयो न पुनर्ज्ञाननिर्णायकादेव तर्हि संवा-
दकादेव प्रामाण्यस्यापि निर्णयोऽस्त्विति तदपि कथ स्वतो निर्णीत स्यात् । निर्विशेषणञ्चेत्तदर्थप्राकट्यमर्थापत्त्युत्थापक

तर्ह्यप्रमाणेऽपि प्रामाण्यनिर्णायकार्थापत्त्युत्थापनापत्तिरर्थप्राकट्यमात्रस्य तत्रापि सद्भावादिति सूत्रोक्तैव व्यवस्था सिद्धिसौधमध्यमध्यरुक्षत् ॥ इति प्रमाणनयतत्त्वालोके श्रीरत्नप्रभाचार्य्यविरचितायां रत्नाकरावतारिकाख्यलघुटीकायां प्रमाणस्वरूपनिर्णयो नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥

और जो तुमने संवादिवेदनं तु इत्यादिक कहा है उसमें प्रवर्तक ज्ञानके विषयके अथवा विषयान्तरके ग्राहक संवादिवेदनसे प्रामाण्यका निर्णय हम कहते हैं। अन्धकारके समूहसे व्याप्त आलोकसहकारी घटादि ज्ञानका उसी प्रदेशमें एक सन्तान। और भिन्न सन्तान निरंतर आलोकसहकारि सामर्थ्यसे उत्पन्न जो ज्ञान सो संवादक होता ही है। तैमिरिकादि ज्ञानमें भी संवादकत्वका प्रसङ्ग आवेगा ऐसा नही कहना क्योंकि उसमें दोषरहितचक्षु वाले पुरुषका दर्शन बाधक है। और प्रामाण्यको स्वतःसिद्ध माननेसे तो उत्तर ज्ञानसे पूर्वमें अप्रामाण्यका निर्णय न हो सकेंगा। एवं—विषयान्तरका ग्राहक भी संवादक होता ही है जैसे विषयान्तरग्राही भी अर्थक्रियाज्ञान सवादक है। इसमें पूर्वोक्त चक्रक दोषका अवकाश भी नही है क्योंकि प्रवर्तक प्रमाणमें प्रामाण्यका निश्चय कराना है प्रयोजन जिसका ऐसी जो प्रथम प्रवृत्ति है सो संशयसे भी हो जाती है। और अर्थक्रियाज्ञान जो है सो अभ्यास दशापन्न होनेसे दृढतर ही उत्पन्न होता है इसलिये उसमें स्वतः ही प्रामाण्यका निश्चय होता है। प्रवर्तक ज्ञानमें भी स्वतः ही प्रामाण्यका निश्चय होवे ऐसा नही कहना क्योंकि प्रवर्तकज्ञान जो है सो अर्थक्रियाज्ञानसे विलक्षण है। और भी एक सन्तान अथवा भिन्न सन्तान एकजातीय जैसे एक दस (चोर) वा गधेका जो दर्शन है सो दस्रान्तर दर्शनका और भिन्न जातीय जैसे रात्रिमें तथाभूत रसका आस्वादन जो है सो तथाविध रूपका सवादक होता ही है। मिथ्या जलके ज्ञानमें जलान्तरमें अथवा घटादिकोमें जो ज्ञान है उसको संवादकत्वकी प्राप्ती होवेगी ऐसा नही कहना क्योंकि पूर्वोक्त सब ही ज्ञानोंको संवादक हम नही कहते है किन्तु जिस स्थलमें पूर्वोत्तर विषयोंका व्यभिचार न होवे उसी जगह संवादक कहते हैं। प्रामाण्यके स्वतो ग्राह्यत्व पक्षमें एक दूषण कहकर दूसरा और कहते हैं। स्वतः एव प्रामाण्य निश्चयके वर्णनमें तत्पर मीमांसकने स्वशब्द आत्मार्थक कहा है अथवा आत्मीयार्थक कहा है। प्रथम पक्ष तो ठीक नही। क्योंकि स्वावबोध (ज्ञान) में भी अन्ध बुद्धिसे स्वधर्म्मभूत प्रामाण्यका निश्चय नही हो सकता। अर्थात् मीमांसकमतमें ज्ञान स्वप्रकाश नही है तब जब स्वको ही प्रकाश नही करता तब स्ववृत्ति प्रामाण्यका प्रकाश

कैसे कर सकेगा अर्थात् नहीं करेगा द्वितीय प्रकारमें तो प्रकट कपट नाटक घटनामें चातुर्यका प्रगटन किया है क्योंकि प्रकारान्तरसे हमारे ही मतका आश्रयण किया हमने भी तो स्वके ही ग्राहकसे प्रामाण्य निर्णय स्वीकार किया है। यदि कदाचित् जिससे ज्ञानका निर्णय होता है उसीसे तन्निष्ठ प्रामाण्यका भी निश्चय होता है इसलिये स्वतः प्रामाण्य निर्णय हम कहते है ऐसा कहते हो तब हम पूछते हैं कि अर्थ प्राकट्यसे उत्थापित अर्थापत्ति करके ज्ञानका निर्णय तुमनें कहा है सो अर्थप्राकट्य जो है सो यथार्थत्व विशेषण विशिष्ट होकर अर्थापत्तिका उत्थापक है अथवा निर्विशेषण ही है। प्रथमपक्षमें अर्थप्राकट्यमें यथार्थत्वका ग्रहण प्रथम प्रमाणसे होता है अथवा अन्यसे होता है किंवा स्वतः ही गृहीत होता है ऐसा हम पूछते हैं प्रथमपक्षमें तो अन्योन्याश्रयदोष आवेगा क्योंकि निश्चित है प्रामाण्य जिसमें ऐसे प्रथमज्ञानसे यथार्थत्व विशिष्ट अर्थप्राकट्यका ज्ञान और यथार्थत्वरूप विशेषणविशिष्ट अर्थप्राकट्यसे प्रथम ज्ञानमें प्रामाण्यका निश्चय। इसप्रकारसे अन्योन्याश्रय भया। अन्यप्रमाणसे विशेषण ग्रहणपक्षमें तो अनवस्थारूप दोष आवेगा क्योंकि विशेषण ग्राहकत्वेन कल्पित अन्यप्रमाणमें भी प्रामाण्य निर्णायक अर्थापत्तिका उत्थापक जो अर्थप्राकट्य उसमें प्रामाण्य ग्रहण प्रमाणान्तरसे ऐसे ही आगे आगे माननेसे अनवस्था आवेगी। यदि स्वतः ही विशेषणका ग्रहण होताहै (कैसे सो कहते है) अर्थप्राकट्य स्व विदित है सो स्व स्वरूपको प्रगट करता हुआ स्वधर्मभूत यथार्थत्वको भी निश्चय करलेताहै। तब तादृश अर्थप्राकट्यसे अनुमीयमान ज्ञानमें स्वतः प्रामाण्यका ज्ञान होता है ऐसा कहते हो। तब यह कथन तो ठीक नहीं। क्योंकि ऐसा माननेसे अप्रामाण्यको भी स्वतः ग्राह्यत्वकी प्राप्ति आवेगी क्योंकि स्वतः निर्णीत है वैतथ्यरूप विशेषण जिसमें ऐसे अर्थ प्राकट्यसे अनुमीयमान जो विज्ञान है सो अप्रामाण्यसे आस्कन्दित ही अनुमितिका विषय होताहै ऐसा कहनेसे प्रामाण्यकी तरह अप्रामाण्यको भी स्वतो ग्राह्यत्व क्यों न होवे अर्थात् स्वतो ग्राह्यत्व होवेगा। यदि कदाचित् अप्रमाण ज्ञानमें तो उत्तरकालवृत्ति बाधक ज्ञानसे ही अप्रामाण्यका निश्चय होता है परन्तु ज्ञान निर्णायकसे नहीं होता ऐसा कहोगे। तब हम कहते हैं कि प्रामाण्यका भी निर्णय संवादकसे ही होवे तब प्रामाण्य भी स्वतो ग्राह्य कैसे होय सके अर्थात् परतो ग्राह्य ही होवे। इसलिये यथार्थत्व विशेषण विशिष्ट अर्थ प्राकट्यसे अर्थापत्ति प्रमाणका उत्थापन नहीं कह सकते। अब यदि निर्विशेषण अर्थ प्राकट्यसे अर्थापत्तिकी उत्थापना मानोंगे तब अप्रमाणमें भी प्रामाण्यनिर्णायक अर्थापत्तिकी उत्थापना आवेगी क्योंकि प्राकट्यमात्रका वहांपर

भी सद्भाव है ग्रन्थकार कहते है कि इसप्रकारसे सूत्रोक्त ही व्यवस्था सिद्धिरूप सौध (गृह विशेष अथवा किला) के मध्यमें प्राप्त भई अर्थात् सूत्रोक्त ही व्यवस्था सिद्ध भई ॥

इति श्री रत्नाकरावतारिकाख्यलघुटीकायां वशीधरशर्म्मणा कृतायां भाषाटीकाया प्रथमः परिच्छेदः ॥

॥ द्वितीयः परिच्छेदः प्रारभ्यते ॥

एवं प्रमाणस्य स्वरूपं प्रतिपाद्य संख्यां समाख्यान्ति ॥

इसप्रकार प्रथमपरिच्छेदमें सूत्रकार प्रमाणके स्वरूपका निरूपण (लक्षण प्रयोजनाभ्याङ्कथन) करके अब द्वितीय परिच्छेदमें प्रमाणोंकी संख्याका निरूपण करते है ॥

तद्विभेदं प्रत्यक्षं च परोक्षं चेति ॥

पूर्वोक्त जो प्रमाण है सो प्रत्यक्ष और परोक्ष इन भेदोंसे दो प्रकारका है ॥

अक्षमिन्द्रियं प्रतिगतमिन्द्रियाधीनतया यदुत्पद्यते तत्प्रत्यक्षमितितत्पुरुषः। नन्वक्षिशब्दादपि प्रतिपूर्वात् प्रतिपरसमनुभ्योक्ष्ण इत्यव्ययीभावसमासान्ते टचि प्रत्यक्षमिति सिद्ध्यति तत्किन्न कक्षीचक्रिवांसः न चैवं स्पर्शनादि प्रत्यक्षं नैतच्छब्दवाच्यं स्यादिति वाच्यम् तत्प्रवृत्तिनिमित्तस्य स्पष्टत्वस्य तत्रापि भावेन तच्छब्दवाच्यतोपपत्तेः । व्युत्पत्तिनिमित्तमात्रतया ह्यत्राक्षिशब्दः शब्यते कथमन्यथाक्षशब्दोपादानेप्यनिन्द्रियप्रत्यक्षस्य तच्छब्दवाच्यता चतुरस्रा स्यात् ॥

अक्ष नाम इंद्रिय प्रतिगत नाम अधीनतया उत्पन्न, अर्थात् इन्द्रियोंकी अधीनतासे जो ज्ञान उत्पन्न होवे उसको प्रत्यक्ष जानना इस तरह तत्पुरुप समास होनेसे प्रत्यक्षशब्दकी सिद्धि जाननी । प्रश्न करते हैं कि प्रतिपूर्वक अक्षिशब्दसे (प्रतिपरसमनुभ्योक्ष्ण.) इस सूत्रकरके अव्ययीभाव समासान्त टच् प्रत्यय करनेसे भी प्रत्यक्ष शब्दकी सिद्धि होय सकती है सो क्यों नही मानते हो अनन्तरोक्त अव्ययीभाव समास करनेसे स्पार्शनादि प्रत्यक्षोंको एतत् (प्रत्यक्ष) शब्दवाच्यता न होसकेगी इसलिये अव्ययीभाव नही किया ऐसा नही कहना क्योंकि प्रत्यक्ष शब्दके प्रवृत्तिनिमित्त स्पष्टत्वको स्पार्शनादि ज्ञानमें भी होनेसे इनको भी प्रत्यक्ष शब्द

वाच्यता बनसकेगी। अक्षिशब्द तो इस जगहमें केवल व्युत्पत्तिनिमित्तमात्र कहते हैं। अन्यथा अक्ष शब्दके रखनेसे भी अतीन्द्रिय (योगज) प्रत्यक्षको भी प्रत्यक्ष शब्दवाच्यता कैसे सङ्गत हो सकेगी (क्योंकि तत्रापि इन्द्रियानपेक्षत्वात्)।

अथ कथमेव प्रत्यक्षः प्रेक्षाक्षणः प्रत्यक्षा पक्ष्मलाक्षीति स्त्रीपुम्भावोऽस्याव्ययीभावस्य सदा नपुंसकत्वान्नैव प्रत्यक्षमस्यास्तीत्यर्शआदित्वेनादन्तत्वात् तद्भावसिद्धेः॥

अव्ययीभावको नित्य नपुंसक होनेसे प्रत्यक्ष प्रेक्षाक्षण और प्रत्यक्षा पक्ष्मलाक्षी इत्यादिकोंमें पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग न होसकेगा इसलिये अव्ययीभाव समास नहीं है पूर्वपक्षी कहता है कि ऐसा नहीं कहना क्योंकि प्रत्यक्ष अस्य अस्ति इस व्युत्पत्ति करनेसे अर्शआदित्वेन मत्वर्थीय अच् प्रत्ययान्त होजानेसे स्त्रीपुंवद्भाव सिद्ध होताहै॥

अत्रोच्यते। एवमपि प्रत्यक्षो बोधः प्रत्यक्षा बुद्धिरित्यत्र पौंस्नं स्त्रैणञ्च न प्राप्नोति नह्यत्र मत्वर्थीयार्थो घटते प्रत्यक्षस्वरूपस्यैव वेदनस्य बोधबुद्धिशब्दाभ्यामभिधानात्। अक्षाणाम्परमक्षव्यापारनिरपेक्षं मनोव्यापारेणासाक्षादर्थपरिच्छेदकं परोक्षमिति परशब्दसमानार्थेन परस् शब्देन सिद्धं। च शब्दो द्वयोरपि तुल्यकक्षतां लक्षयतस्तेन या प्रत्यक्षस्य कैश्चित् ज्येष्ठताभीष्टा नासौ श्रेष्ठेति सूचितं द्वयोरपि प्रामाण्यं प्रति विशेषाभावात्। ननु कथमेतद्द्वैतमुपपद्यते यावता प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमिति चार्वाकोऽवोचत्। अपरेतु प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्यभावसम्भवैतिह्यप्रातिभस्वभावान् भूयसो भेदान् प्रमाणस्य प्रोचुस्तत्कथमेतदिति चेदुच्यते। समर्थयिष्यमाणप्रमाणभावेनानुमानेन तावत् चार्वाकस्तिरस्करणीयः अपरेतु सम्भवत्प्रमाणभावानामत्रैवान्तरभावेन बोधनीया। तत्रानुमानागमौ परोक्षप्रकारावेव व्याख्यास्येते। उपमानन्तु नैयायिकमते तावत् कश्चित् प्रेष्यः प्रभुणा प्रेषयाञ्चक्रे गवयमानयेति स गवयशब्दवाच्यमर्थमजानानः कञ्चन वनेचरं पुरुषमप्राक्षीत् कीदृग्गवय इति स प्राह यादृग्गौस्तादृग्गवय इति ततस्तस्य प्रेष्यपुरुषस्यारण्यानीं प्राप्तस्यातिदेशवाक्यार्थस्मरणसहकारि गोसदृशगवयपिण्डज्ञानमयं गवयशब्दवाच्योऽर्थ इति प्रतिपत्तिं फलरूपामुत्पादयत्प्रमाणमिति। मीमांसकमते तु येन प्रतिपन्ना गौरुपलब्धो न गवयो नचातिदेशवाक्यं गौरिव गवय इति श्रुतं तस्य विकटाटवीपर्यटनलम्पटस्य गवयदर्शने प्रथमे समुत्पन्ने सति यत्परोक्षे गवि सादृश्यज्ञानमुन्मज्जत्यनेन सदृशः स गौरिति तस्य गोरनेन सादृश्यमिति

वा तदुपमानम् । तस्मात् यत्स्मर्यते तत्स्यात् सादृश्येन विशेषितं । प्रमेयमुपमानस्य सादृश्यं वा तदन्वितमिति वचनादिति तदुच्यते ॥

जैनकहते है कि इसविषयमें हम कहते है । अव्ययीभाव समास करनेपर भी पूर्वोक्त रीतिसे प्रत्यक्ष. प्रेक्षाक्षणः और प्रत्यक्षा पक्ष्मलाक्षी इत्यादि स्थलमें स्त्रीपुवद्भाव कथञ्चित् सिद्ध हो भी जावेगा तो भी प्रत्यक्षो बोधः प्रत्यक्षा बुद्धिः इस स्थलमें पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग नही प्राप्त होगा । प्रत्यक्ष स्वरूप जो वेदन है सो ही यहाँपर बोध और बुद्धि शब्दसे कहा है इसलिये मत्वर्थीय अन् प्रत्यय भी यहांपर नही घट सकता है अत' तत्पुरुषसमास ही यहाँपर युक्तियुक्त है । अव परोक्षशब्द सिद्धिपूर्वक परोक्षप्रमाणका लक्षण कहते है । इन्द्रियोंसे पर अर्थात् इन्द्रिय व्यापारानपेक्ष मनोव्यापारमात्रसे असाक्षात् अर्थका परिच्छेदक जो ज्ञान उसको परोक्ष कहते है इसप्रकारसे परशब्दके समानार्थक परस् शब्दसे परोक्षशब्द सिद्ध होताहै । सूत्रमें जो दो च शब्द है सो दोनों ही प्रमाणोंकी तुल्यताको द्योतन करते है इससे के एक दर्शनकारोंने प्रत्यक्षको ज्येष्ठता मानी है सो श्रेष्ठ नही ऐसा सूत्रकारने सूचन-करवाया क्योंकि दोनोंमें प्रामाण्यका अविशेष है । प्रश्नकरते है कि प्रमाणके यह दो भेद कैसे उपपन्न होसकते हैं अर्थात् नहीं । क्योंकि प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है ऐसा तो चार्वाक कहते है । और दूसरे मीमासकादिक प्रत्यक्ष अनुमान आगम उपमान अर्थापत्ति अभाव सम्भव ऐतिह्य प्रातिभ इत्यादि स्वरूप अनेक ही प्रमाणोंके भेदोंको कहते हैं ॥ इसलिये दो ही प्रमाण हैं ऐसा कहना ठीक नही । जैन कहते है कि इसका उत्तर हम कहते है । आगे अनुमानरूप प्रमाणको हमने सिद्ध करना है उससे तो चार्वाक तिरस्करणीयहै बाकी जो मीमांसकादिक है सो अनुमान आदि प्रमाणान्तरोंका इन दोनों प्रमाणोंमें ही अन्तरभाव होनेसे बोधनीय है । पर प्रणीत प्रमाणोंमेंसे अनुमान तथा आगम जो है सो परोक्षके ही भेद है ऐसा ग्रंथकार स्वयं कहेगे । उपमानका स्वरूप नैयायिक और मीमांसकमतभेदेन भिन्नभिन्नहै इसलिये दोनोंके मतानुसार उपमानके स्वरूपको कहकर परोक्षभेद प्रत्यभिज्ञामें अन्तरभाव करते है । प्रथम नैयायिक मतानुसार उपमानका स्वरूप कहते है । किसी भृत्य (नौकर) को स्वामी (मालिक) ने कहाकि गवयको ले आवो (गवयमानय) भृत्य गवय पदार्थके स्वरूपको जानता नहीं था इसलिये उसने किसी वनवासीको पूछाकि गवय-पदार्थका कैसा स्वरूप होताहै तव वनवासी पुरुषने कहाकि जैसा गोका स्वरूप वैसा ही गवयका स्वरूप होता है इस वाक्यको सुनकर वनमें गया वहाँपर गवयको देखनेसे भृत्यपुरुषको पूर्वोक्त वनवासीपुरुषके वाक्यार्थस्मरणसहकृत जो गोसादृश्यज्ञान भया

सो अय गवयशब्दवाच्योऽथ (अथवा गवयो गवयपदवाच्य) इत्याकारक प्रमारूप ज्ञानको उत्पन्नकरता हुआ उपमान प्रमाण कहलाताहै । मीमांसक मतमें तो जिसपुरुषने कभी भी गवय पदार्थको नहीं देखा और नही पूर्वोक्त वनवासीके वचनको सुना वनमें फिर रहे उसको प्रथम गवयदर्शन होनेसे इसके सदृश वह गौ है इस प्रकार अथवा उस गौ का इसके साथ सादृश्य है इसप्रकार जो ज्ञान सो उपमान कहा जाताहै । इस ज्ञानसे जिसका स्मरण होताहै सादृश्य विशेषित (विशिष्ठ) वह अथवा तदन्वित सादृश्य जो है सो उपमानका विषय होताहै ऐसा किसी आचार्य्यका वचन है ॥

एतच्च परोक्षभेदरूपायां प्रत्यभिज्ञायामेवान्तर्भावयिष्यते ।

पूर्वोक्त उपमानरूप प्रमाणका परोक्षभेदरूप प्रत्यभिज्ञानमें ही अन्तरभाव ग्रंथकार स्वय करेंगे ॥

अर्थापत्तिरपि प्रमाणषट्कविज्ञातो यत्रार्थोनन्यथा भवन् । अदृष्टङ्कल्पयेदन्य सार्थापत्तिरुदाहृता इत्येवलक्षणा अनुमानान्तर्गतैव । तथाह्यर्थापत्त्युत्थापकोऽर्थोऽन्यथानुपपद्यमानत्वेनानवगतोऽवगतो वाऽदृष्टार्थपरिकल्पनानिमित्त स्यात् । न तावत् अनवगतोऽतिप्रसङ्गात् । अथावगतस्तर्हन्यथानुपपद्यमानत्वावगमोऽर्थापत्तेरेव प्रमाणान्तराद्वा प्राच्यप्रकारे परस्पराश्रयस्तथाह्यन्यथानुपपद्यमानत्वेन प्रतिपन्नादर्थादर्थापत्तिप्रवृत्तिस्तत्प्रवृत्तेश्चास्यान्यथानुपपद्यमानत्वप्रतिपत्तिरिति । प्रमाणान्तरन्तु भूयोदर्शन विपक्षेऽनुपलम्भोवा भूयोदर्शनमपि साध्यधर्म्मिणि दृष्टान्तधर्म्मिणि वा । यदि साध्यधर्म्मिणि तदा भूयोदर्शनेनैव साध्यस्यापि प्रतिपन्नत्वादर्थापत्तेर्वैयर्थ्य । अथ दृष्टान्तधर्म्मिणि तर्हि तत्र प्रवृत्त भूयोदर्शन साध्यधर्म्मिण्यन्यथानुपपद्यमानत्वं निश्चाययति तत्रैव वा तत्रोत्तर पक्षोऽसन्न खलु दृष्टान्तधर्म्मिणि निश्चितान्यथानुपपद्यमानत्वोऽर्थे साध्यधर्म्मिणि तथात्वेनानिश्चित॰ स्वसाध्यङ्गमयत्यतिप्रसङ्गात् । प्रथमपक्षे तु लिङ्गार्थापत्त्युत्थापकार्थयोर्भेदाभाव॰ । विपक्षेऽनुपलम्भात्तदवगम इतिचेत् नन्वसावनुपलम्भमात्रोऽनिश्चितो निश्चितो वा तदवगमयेत् । प्रथमपक्षे तत्पुत्रत्वादेरपि गमकत्वापत्ति॰ । निश्चितश्चेत् तर्ह्यनुमानमेवार्थापत्तिरापन्ना निश्चितान्यथानुपपत्तेरनुमानरूपत्वात् । न च सपक्षसद्भावासद्भावकृतोऽनुमानार्थापत्त्योर्भेद॰ पक्षधर्मतासहितादनुमानात्तद्रहितस्य प्रमाणान्तरत्वानुपपत्तेः । नच पक्षधर्म्मत्वव-न्ध्यमनुमानमेव नास्तीति वाच्य । पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमा सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्म्ममपेक्षत इति भट्टेन स्वयमभिधानात् । यदपि प्रत्यक्षादेरनुत्पत्ति॰ प्रमाणाभाव उच्यते । सात्मनोऽपरिणामोवा विज्ञान वान्यवस्तुनि सेति

प्रत्यक्षाद्यनुत्पत्तिः । आत्मनो घटादिग्राहकतया परिणामाभावः प्रसज्यपक्षे। पर्युदासपक्षे पुनरन्यस्मिन् घटविविक्तताख्ये
वस्तुन्यभावे घटोनास्तीति विज्ञानमित्यभावप्रमाणमभिधीयते । तदपि यथासम्भवं प्रत्यक्षाद्यन्तर्गतमेव ॥

जिनदेवदत्तादिकोंमें प्रमाणषटक (अर्थात् प्रमाणपञ्चक) से निश्चित जो पीनत्वादि अर्थ सो दिनमें भोजनकरतेको न देखनेसे
अर्थापत्त्या रात्रिभोजनको सिद्धकरताहै इत्याकार स्वरूपवान् जो अर्थापत्ति नामक प्रमाणहै सो भी अनुमानान्तर्गत ही है । अनुमाना-
न्तर्भावको स्पष्ट करते है । अर्थापत्तिका उत्थापक जो पीनत्वादिधर्म्म है सो अन्यथानुपपद्यमानत्वेन अनिश्चित अदृष्ट अर्थकी
कल्पनामें निमित्त होताहै अथवा निश्चित होताहै । यदि अनवगत कहोगे तब वाणि और मनसे अतीत पदार्थोंका भी अर्थापत्तिसे
बोध होना चाहिये क्योंकि उभयत्र अनवगतत्वाविशेषात् । यदि अवगत कहोगे तब भी क्या अन्यथानुपपद्यमानत्वका निश्चय अर्थापत्तिसे
ही होताहै अथवा प्रमाणन्तरसे होताहै । प्रथम प्रकारमें तो अन्योन्याश्रयरूप दोष आवेगा । क्योंकि अन्यथानुपपद्यमानत्वेन
निश्चित पीनत्वादि पदार्थसे तो अर्थापत्तिरूप प्रमाणकी प्रवृत्ति और अर्थापत्तिकी प्रवृत्तिसे अन्यथानुपपद्यमानत्वका निश्चय
इसप्रकारसे अन्योन्याश्रय स्फुट ही है । और यदि प्रमाणान्तरसे अन्यथानुपपद्यमानत्वका निश्चय कहतेहो तब भी वह प्रमाणा-
न्तर भूयोदर्शनरूपहै अथवा विपक्षमें अनुपलम्भरूपहै । यदि भूयोदर्शनरूपहै । तब भी साध्यधर्मी (पक्ष) में भूयोदर्शनरूपप्रमाणहै
अथवा दृष्टान्तधर्मीमें जो भूयोदर्शन सो प्रमाण है । यदि साध्यधर्म्मीमें तब भूयोदर्शनसे ही साध्यका भी निश्चय हो जावेगा
अर्थापत्तिप्रमाणको व्यर्थता आवेगी । और यदि दृष्टान्त धर्म्मीमें कहोगे तब हम पूछतेहै कि दृष्टान्तधर्म्मीमें प्रवृत्त भूयोदर्शन
साध्यधर्मीमें भी अन्यथा नुपपद्यमानत्वका निश्चय कराता है अथवा दृष्टान्तधर्मीमें ही कराताहै । द्वितीयपक्ष तो ठीक नहीं क्योंकि
दृष्टान्तधर्मीमें निश्चित और साध्यधर्मीमें अनिश्चित जो अन्यथानुपपद्यमानत्वरूप अर्थ है सो अतिप्रसङ्गसे साध्यधर्मीमें स साध्यका-
गमक (बोधक) नही होताहै । और प्रथम पक्षमें तो लिङ्ग (हेतु) तथा अर्थापत्त्युत्थापक पीनत्वादि पदार्थके अभेदकी प्राप्ति
आजावेगी) कदाचित् विपक्ष (निश्चितसाध्याभाववान्) में अनुपलम्भसे अन्यथानुपपद्यमानत्वका निश्चय होताहै ऐसा कहोगे
तब हम पूछते हैं कि यह जो विपक्षानुपलम्भ (ज्ञानाभाव) मात्र है सो अज्ञात ही अन्यथानुपपद्यमानत्वका बोधक होताहै अथवा
ज्ञात होताहै । अज्ञातपक्षमें तो उपाधिदूषित तत्पुत्रत्वादिरूप हेतुको भी देवदत्तादिकोंमें श्यामत्वादिकोंके साधकत्वकी प्राप्ति
आजावेगी । क्योंकि अनिश्चितविपक्षानुपलम्भमात्र वहांपर भी समान है । यदि निश्चित कहोगे तब अर्थापत्तिरूप प्रमाणको अनुमान

रूपताकी आपत्ति आवेगी-क्योंकि निश्चितान्यथानुपपत्तिको अनुमानरूपता है। अनुमानमें सपक्ष होता है और अर्थापत्तिमें सपक्ष नहीं होता इसलिये अनुमान और अर्थापत्ति परस्पर भिन्न हैं ऐसा नहीं कहना क्योंकि ऐसा मानोगे तब पक्षधर्म्मता सहित अनुमानसे पक्षधर्म्मता रहित अनुमानको प्रमाणान्तरत्वकी आपत्ति आवेगी। पक्षधर्म्मतासे शून्य अनुमान ही नहीं होता ऐसा भी नहीं कहना क्योंकि मातापिताको ब्राह्मण होनेसे पुत्रमें ब्राह्मणत्वकी अनुमिति सवलोक प्रसिद्ध है इसलिये वह अनुमिति पक्षधर्म्मताकी अपेक्षा नहीं करती है ऐसा भट्टने स्वय कहा है। इसलिये अर्थापत्ति कोई प्रमाणान्तर नहीं है। और जो प्रत्यक्षादिकोंकी अनुत्पत्तिको अभावप्रमाण कहते हैं सो प्रत्यक्षादिकोंकी अनुत्पत्ति प्रसज्य पक्षमें तो आत्माका घटादि ग्राहकतया परिणामाभाव सरूप है और पर्युदासपक्षमें घटशून्यदेशावच्छेदेन घटाभावविषयक घटो नास्ति इत्याकार ज्ञानस्वरूप है ऐसा अभावप्रमाण तुमने कहा है जैन कहते हैं कि सो भी यथासम्भव प्रत्यक्षादिकोंमें ही अन्तर्भूत है॥

तथाहि गृहीत्वावस्तुसद्भाव स्मृत्वा च प्रतियोगिन मानस नास्तिता ज्ञान जायतेऽक्षानपेक्षया॥ १॥ इतीयमभावप्रमाणजनिका सामग्री। तत्र भूतलादिक वस्तु प्रत्यक्षेण घटादिभि प्रतियोगिभि' ससृष्टमससृष्ट वा गृह्येत। नाद्य' पक्ष प्रतियोगिससृष्टस्य भूतलादिवस्तुन प्रत्यक्षेण ग्रहणे तत्र प्रतियोग्यभावग्राहकत्वेनाभावप्रमाणस्य प्रवृत्तिविरोधात्। प्रवृत्तौ वा न प्रामाण्य प्रतियोगिन सत्वेऽपि तत्प्रवृत्तेः। द्वितीयपक्षे त्वभावप्रमाणवैयर्थ्य प्रत्यक्षेणैव प्रतियोगिनां कुम्भादीनामभावप्रतिपत्तेः। अथ न ससृष्ट नाप्यससृष्ट प्रतियोगिभिर्भूतलादिवस्तु प्रत्यक्षेण गृह्यते वस्तुमात्रस्य तेन ग्रहणाभ्युपगमादितिचेत्तदपि दुष्ट ससृष्टत्वाससृष्टत्वयो॰ परस्परपरिहारस्थितिरूपत्वेनैकनिषेधेनापरपरिविधानस्य परिहर्तुमशक्यत्वादिति सदसद्रूपवस्तुग्रहणप्रवणेन प्रत्यक्षेणैवाय वेद्यते। क्वचित्तु तदघट भूतलमिति स्मरणेनतदेवेदमघट भूतलमिति प्रत्यभिज्ञानेन योऽग्निमान्नभवति नासौ धूमवानिति तर्केण नात्र धूमोऽनग्नेरित्यनुमानेन गृहे गर्गो नास्तीत्यागमेनाभावस्य प्रतीतेः काभावप्रमाण प्रवर्त्तेता। सम्भवोऽपि समुदायेन समुदायिनोऽवगम इत्येव लक्षण' सम्भवति खार्या द्रोण इत्यादिर्नानुमानात्पृथक्। तथाहि खारी द्रोणवती खारीत्वात् पूर्वोपलब्धखारीवत्। ऐतिह्य त्वनिर्दिष्टप्रवक्तृक प्रवादपारम्पर्य्य मितीहोचुर्वृद्धा यथेह वटे यक्ष प्रतिवसतीति तदप्रमाणमनिर्दिष्टप्रवक्तृकत्वेन सांशयिकत्वात्। आप्तप्रवक्तृत्वनिश्चयेनागम इति यदपिप्रातिभमक्षलिङ्गशब्दव्यापारानपेक्षमकस्मादेवाद्य मे महीपतिप्रसादो भवितेत्याद्याकार स्पष्टतया

वेदनमुदयते तदप्यनिन्द्रियनिबन्धनतया मानसमिति प्रत्यक्षकुक्षिनिक्षिप्तमेव यत्पुनः प्रियाप्रियप्राप्तिप्रभृतिफलेन सार्द्धं गृहीतान्यथानुपपत्तिकात्मनः प्रसादोद्वेगादेर्लिङ्गादुदेति तत्पिपीलिकापटलोत्सर्पणोत्थज्ञानवदस्पष्टमनुमानमेवेति न प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणद्वैविध्यातिक्रमः शक्रेणापि कर्तुं शक्यः ॥

अभावको पृथक् प्रमाणवादीके मतानुसार अभावप्रमाण जनिका सामग्रीको कहकर और उसमें दोष दिखायकर अभावप्रमाणका प्रत्यक्षादिकोंमें ही अन्तर्भाव कहते हैं । भूतलादिक जो अभावाधिकरणत्वेन विवक्षित वस्तु है उनको प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे जानकर और प्रतियोगित्वेन विवक्षित जो घटादि पदार्थ है उसका स्मरण होगकर इन्द्रियोंकी अपेक्षासे विना मानस नास्तिता (अभाव) का ज्ञान होता है । जैन कहते है कि यह पूर्वोक्त सामग्री तुम्हारे मतमें अभाव प्रमाण जनिका है इसमें हम पूछते हैं कि भूतलादिक जो वस्तु है सो घटादिरूप प्रतियोगीके साथ संबद्ध प्रत्यक्षादि प्रमाणसे गृहीत होता है अथवा असम्बद्ध । प्रथमपक्ष तो ठीक नही क्योंकि जब प्रतियोगीसे सबद्ध-भूतलादिक वस्तु प्रत्यक्षसे गृहीत होजावेगा तब उसी भूतलादीमें उसीप्रतियोगीके अभाव ग्राहकत्वेन अभावप्रमाणकी प्रवृत्तिका विरोध है । अथवा कथञ्चित् प्रवृत्ति हो भी जावे तो भी इसको प्रामाण्य सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि प्रतियोगीके होनेपर भी उसकी प्रवृत्ति होगई है । असंबद्ध पक्षमें तो अभावप्रमाणको व्यर्थता है क्योंकि प्रत्यक्षसे ही घटादिकोंके अभावका निश्चय होगया है । यदि कदाचित् न तो संसृष्ट नाही प्रतियोगीसे असंसृष्ट भूतलादिवस्तु प्रत्यक्षसे गृहीत होती हैं क्योंकि प्रत्यक्षसे वस्तु मात्रका ही ग्रहण हमने स्वीकार किया है ऐसा कहतेहो तब यह कथन भी युक्तियुक्त नहीं । क्योंकि संसृष्टत्व और असंसृष्टत्व जो है सो परस्पर परिहार स्थितिरूप है अर्थात् उसके न होनेसे वह रहता है और उसके न होनेसे वह । इसलिये एकके निषेधसे द्वितीयका विधान अवश्य होता ही है इसलिये सत् असत् वस्तुके ग्रहणमें प्रवीण प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही अभाव गृहीत होता है । कहीक वह भूतल घटाभाववालाहै इत्यादि स्थलमें स्मरणसे और वही घटाभाववान् यह भूतल है इत्यादि स्थलमें प्रत्यभिज्ञानसे और जो अग्निमान् नहीं होता सो धूमवान् भी नहीं होता इत्यादि तर्कसे तथा इस ह्रदादिकमें अग्नि न होनेसे धूम नहीं है इत्यादि अनुमानसे गृहमें गर्ग ब्राह्मण (नहीं) नहीं है इत्यादिक आगमसे अभावकी प्रतीति हो जाती है तब अभाव प्रमाण किस जगहमें प्रवृत्त होवे अर्थात् किस अभावके ज्ञानार्थ अभाव प्रमाण मानते हो ॥ और खारीरूप समुदायसे द्रोणरूप समुदायीका निश्चयरूप खार्यान्द्रोणः इत्याकारक जो सम्भवरूप प्रमाण तुम कहते हो सो भी

अनुमानसे पृथग्भूत नहीं है किंतु अनुमानरूप ही है। अनुमानका स्वरूप कहते हैं। जैसे पूर्वज्ञात खारी द्रोण परिमाणवाली थी वैसे ही यह भी खारी होनेसे द्रोणपरिमाणवाली है। और प्रवाद परम्परासे प्राप्त जिसके मूलवक्ताका ज्ञान नहीं इस वटवृक्षमें यक्ष रहता है ऐसा वृद्ध कहतेथे इत्याकारक जो ऐतिह्य प्रमाण तुम कहतेहो सो तो प्रमाण ही नहीं है क्योंकि उसके वक्ताका ज्ञान न होनेसे वह संशयका हेतु है। और यदि उसका आप्तवक्ता निश्चय हो जावेगा तब तो वह आगम स्वरूप ही है। और जो इन्द्रिय हेतु तथा शब्द इनके व्यापारकी अपेक्षा न रखकर अकस्मात्से ही आज मेरेपर राजाकी प्रसन्नता होगी इत्याकारक ज्ञान स्वरूप प्रातिभ प्रमाण तुम कहते हो वह भी इन्द्रियजन्य न होनेसे मानस प्रत्यक्षमें ही अंतर्भूत है। और जो प्रिय तथा अप्रियादिरूप साध्यके साथ गृहीत व्याप्तिक जो आत्माका प्रसाद और उद्वेगरूप हेतु उससे होता है सो तो पिपीलिकाके उत्सर्पणसे वृष्ट्यनुमानकी तरह अस्पष्ट अनुमान ही है इसलिये प्रत्यक्ष और परोक्षरूप प्रमाण द्वयका उल्लंघन इन्द्र भी नहीं करसकता अर्थात् दोही प्रमाण हैं यह कहना युक्तियुक्त है।

प्रत्यक्षं लक्षयन्ति

अब सूत्रकार प्रत्यक्ष प्रमाणका लक्षण कहते हैं॥

स्पष्टं प्रत्यक्षमिति ॥

जो स्पष्ट ज्ञान है उसको प्रत्यक्ष जानना।

प्रबलतरज्ञानावरणवीर्यान्तराययोः क्षयोपशमात् क्षयाद्वा स्पष्टता विशिष्टं वैशद्यास्पदीभूतं यत् तत्प्रत्यक्षं प्रत्येयं ॥

प्रबलतर जो ज्ञानका आवरण और अंतराय उनके क्षयोपशमसे अथवा क्षयसे स्पष्टता विशिष्ट वैशद्य नामवाला जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष जानना ॥

स्पष्टत्वमेव स्पष्टयन्ति।

अब ज्ञाननिष्ठ स्पष्टताको ही स्पष्ट करते हैं॥

अनुमानाद्याधिक्येन विशेषप्रकाशनं स्पष्टत्वमिति ॥

अनुमानादि प्रमाणोंसे आधिक्येन विशेषोंका जो प्रकाशन वही ज्ञाननिष्ठ स्पष्टत्व है ॥

अनुमानादिभ्यो वक्ष्यमाणपरोक्षप्रकारेभ्योऽतिरेकेण यद्विशेषाणां नियतवर्णसंस्थानाद्यर्थाकाराणां प्रतिभासनं ज्ञानस्य तत् स्पष्टत्वमिति ।

वक्ष्यमाण परोक्ष प्रमाणके भेद जो अनुमानादिक है उनसे अधिक जो नियत वर्ण स्थानादिरूप विशेष उनका जो प्रकाशन वही ज्ञाननिष्ठ स्पष्टत्व है ॥

प्रत्यक्षस्य प्रकारप्रकाशनायाहुः ।

अब पूर्वोक्त प्रत्यक्षप्रमाणके अवान्तर भेद प्रकाश करनेके लिये सूत्र कहते है ॥

तद्विप्रकारं सांव्यवहारिकं पारमार्थिकं चेति ॥

पूर्वोक्त प्रत्यक्षप्रमाण सांव्यवहारिक तथा पारमार्थिक इनभेदोंसे दो प्रकारका है ॥

संव्यवहारो बाधारहितप्रवृत्तिनिवृत्ती प्रयोजनमस्येति सांव्यवहारिकं बाह्येन्द्रियादिसामग्रीसापेक्षत्वादपारमार्थिकमस्मदादिप्रत्यक्षमित्यर्थः । परमार्थे भवं पारमार्थिकं मुख्यमात्मसन्निधिमात्रापेक्षमवध्यादिप्रत्यक्षमित्यर्थः ॥

बाधारहित प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप है प्रयोजन जिसका उसको कहिये सांव्यवहारिक सो सव्यवहार नाम इष्टानिष्ट विषयमें बाधारहित प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप है प्रयोजन जिसका उसको कहिये सांव्यवहारिक सो कौन है कि चक्षुरादि बाह्य इन्द्रियोंकी अपेक्षा रखनेसे अपारमार्थिक जो असदादिकोंका प्रत्यक्ष है वही सांव्यवहारिक है ऐसा जानना । परम अर्थमें जो होवे उसको पारमार्थिक जानना जैसे मुख्यरूपेण आत्माकी सन्निधि मात्रकी अपेक्षा रखनेवाले अवधि प्रभृति ज्ञान है ॥

सांव्यवहारिकस्य प्रकारौ दर्शयन्ति ।

अब सूत्रकार सांव्यवहारिकके भेदोंको दिखाते हैं ॥

तत्राद्यं द्विविधमिन्द्रियनिबन्धनमनिन्द्रियनिबन्धनं चेति ॥

इन्द्रियनिबन्धन और अनिन्द्रियनिबन्धन इन भेदोंसे सांव्यवहारिक दो प्रकारका है ॥

इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि निबन्धनमस्येतीन्द्रियनिबन्धनम् । नन्विन्द्रियज्ञाने मनोऽपि व्यापिपर्तीति कथं न तेन व्यपदेशः । उच्यते । इन्द्रियस्यासाधारणकारणत्वान्मनः पुनरनिन्द्रियवेदनेऽपि व्याप्रियत इति साधारणं तत् । असाधारणेन च व्यपदेशो दृश्यते यथा पयःपवनातपादिजन्यत्वेऽप्यङ्कुरस्य बीजेनैव व्यपदेशः शाल्यङ्कुरः कोद्रवाङ्कुरोयमिति । अनिन्द्रियं मनोनिबन्धनं यस्य तत्तथेति । इदमिदानीं मनाग्मीमांसामहे । प्राप्यकारीणीन्द्रियाण्यप्राप्यकारीणिवेति । तत्र प्राप्यकारीण्येवेतिकणभक्षाक्षपादमीमांसकसांख्याः समाख्यान्ति । चक्षुःश्रोत्रेतराणि तानि तथेति ताथागताः । चक्षुर्वर्ज्जानीति तु तथा स्याद्वादावदातहृदयाः ।

चक्षुरादिक इन्द्रिय जिस ज्ञानके कारण होवें उसको बुद्धिमान् पुरुष इन्द्रियनिबन्धन कहते हैं । प्रश्न करते हैं कि इन्द्रियजन्य ज्ञानमें सर्वत्र इन्द्रियवत् मनका भी व्यापार होता है इसलिये मनोनिबन्धन ऐसा व्यवहार क्यों नहीं होता उत्तर कहते हैं कि इन्द्रियोंको स्वजन्य ज्ञानमें असाधारणकारण होनेसे तेन रूपेण विभाग होता है और मन तो अनिन्द्रिय ज्ञानमें भी व्याप्टत होता है इसलिये साधारण कारण है । व्यवहार तो जगत्में असाधारण धर्म्मसे ही देखा जाता है । जैसे शाल्यादि अङ्कुरोंको जल आतप वाय्वादि साधारण कारणजन्य होनेपर भी यह शाल्यङ्कुर है ऐसा ही व्यवहार होता है । और जो मनोजन्य प्रत्यक्ष है उसको अनिन्द्रिय निबन्धन कहते हैं । अब इन्द्रिय स्व स्व विषयकेसाथ मिलकर प्रत्यक्ष ज्ञानको उत्पन्न करते हैं अथवा असम्बद्ध ही करते हैं इस विषयमें हम थोडा विचार करते हैं उसमें वैशेषिक और नैयायिक तथा मीमांसाकार और सांख्य जो हैं सो सब बाह्येन्द्रियोंको प्राप्यकारी ही कहते हैं और बौद्ध जो हैं सो चक्षु और श्रोत्रसे वर्जित इन्द्रियोंको प्राप्यकारी कहते हैं और चक्षुवर्जित इन्द्रिय प्राप्यकारी हैं ऐसा स्याद्वाद न्यायको जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं ॥

तत्र प्रथमे प्रमाणयन्ति चक्षुः प्राप्यमर्थं करोति विषयं बाह्येन्द्रियत्वादितो यद्बाह्येन्द्रियतादिना परिगतं तत्प्राप्यकारी क्षितं । जिह्वावत्प्रकृतं तथा च विदितं तस्मात्तथा स्थीयतां नात्रासिद्धिमुखस्य दूषणकणस्तल्लक्षणानीक्षणात् ॥ १ ॥
अद्रिचन्द्रकलनेषु या पुनयागपद्यधिषणा मनीषिणां । पद्मपत्रपटलीविलोपवत् सत्वरोदयनिबन्धनैव सा ॥ २ ॥
प्रथमतः परिसृत्य शिलोच्चयं निकटतः क्षणमीक्षणमीक्षते । तदनुदूरतराम्बरमण्डलीतिलककान्तमुपेत्य सितत्विषम्॥३॥
पूर्वोक्त वादियोंमेंसे नैयायिकके मतानुसार प्रमाण कहते हैं ।

चक्षुरिन्द्रिय प्राप्यकारी है क्योंकि बाह्येन्द्रिय होनेसे जो बाह्येन्द्रिय होता है सो प्राप्यकारी ही होता है जैसे जिह्वा चक्षु भी प्राप्यकारित्वव्याप्य बाह्येन्द्रियत्ववान् है इसलिये प्राप्यकारी ही है। इस अनुमानमें असिद्धि वगेरा दूषण नही है क्योंकि उनका लक्षण यहाँ नही आता है। १।

जो बुद्धिमान् पुरुषोंको भी पर्वत तथा चन्द्रके चाक्षुप प्रत्यक्षमें (यौगपद्य) एककालावच्छेदेनोत्पत्तिका बोध होता है सो तो जैसे बहुतसे इकठे पद्मपत्रोंमें शीघ्रभेद हो जानेसे यौगपद्यज्ञान भ्रान्तिरूप उत्पन्न होता है वयसे ही शीघ्रोत्पत्ति मात्र निबंधन ही है। वस्तुत तो वह क्रमसे ही उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

क्योंकि पहिले नजदीक होनेसे चक्षुरिन्द्रिय पर्वतमें जायकर पर्वतको क्षणमात्र देखता है उसकेबाद चन्द्रमामें प्राप्त होकर चन्द्रको देखता है ॥ ३ ॥

कुर्म्महेऽत्र वयमुत्तरकेलीं किदृशी दृगिह धर्म्मितयोक्ता किंतु मांसमयगोलकरूपा सूक्ष्मताभृदपरा किमुकापि ॥ ४ ॥

आदिमा यदि तदापि किमर्थो लोचनानुसरणव्यसनी स्यात् । लोचनं किमुत वस्तुनि गत्वा संसृजेत प्रिय इव प्रणयिन्याम् ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षबाधः प्रथमप्रकारे प्राकारपृथ्वीधरसिन्धुरादिः । संलक्ष्यते पक्ष्मपुटोपटङ्की प्रत्यक्षकाले कलयापि नोयत् ॥ ६ ॥

पक्षे परत्रापि स एव दोषः सर्पन्न वस्तु प्रतिवीक्ष्यतेऽक्षि । संसर्पणे वास्य सकोटरत्वप्राप्त्या पुमान्किन्न जरद्द्रुमः स्यात् ॥ ७ ॥

चक्षुषः सूक्ष्मता पक्षे सूक्ष्मता स्यादमूर्तता । यद्वाल्पपरिमाणत्वमित्येषा कल्पनोभयी ॥ ८ ॥

स्याद्व्योमवद्व्यापकता प्रसक्त्या सर्वोपलम्भः प्रथमप्रकारे । प्राकार कान्तार विहारहार मुख्योपलम्भो न भवेत् द्वितीये ॥ ९ ॥

जैन कहते हैं कि पूर्वोक्त नैयायिकादिकोंके कथनमें हम उत्तररूप क्रीडा करते है अर्थात् इसके उत्तरमें हमको कुच्छ भी श्रम नही हम पूछते है कि पूर्वोक्तानुमानमें कैसा चक्षुधर्म्मि (पक्ष) त्वेन तुमने कहा है । क्या मांसमय गोलकरूप चक्षु कहा है अथवा कोई दूसरा सूक्ष्म कहा है ॥ यदि प्रथमपक्ष मानने हो तब भी क्या पदार्थ जाकर चक्षुके साथ मिलता है अथवा चक्षु स्वयं

मिय पुरुष मियाके साथ जैसे वयसे जाकर विषयके साथ मिलता है ॥ प्रथम प्रकारमें तो प्रत्यक्ष बाध है क्योंकि प्राकार पर्वत समुद्रादिक जितने विषय हैं सो यत्किञ्चिद्भी प्रत्यक्षकालमें नेत्रोंके साथ आकर मिलते हुए नहीं देखे जाते ॥ द्वितीयपक्षमें भी यही दोष है क्योंकि पदार्थमें जाता हुआ चक्षु नहीं देखा जाता अथवा चला भी जावे तो भी इसको सकोटरत्वकी प्राप्ति होनेसे पुरुष जरद्रुम क्यों न होवे और जो पूर्वोक्तानुमानमें पक्षभूत चक्षुको सूक्ष्मता पक्ष मानोंगे तब सूक्ष्मता अमूर्तत्वरूपा अथवा अल्प परिमाणत्वरूपा है यह दो प्रकारकी ही सूक्ष्मताकी कल्पना हो सकती है ॥ अमूर्तत्व पक्षमें तो जिसप्रकार अमूर्त आकाश व्यापक है इसी प्रकार अमूर्त होनेसे चक्षुको भी व्यापकत्वकी प्राप्ति होनेसे जगत् भरके सब योग्य पदार्थोंका बोध होना चाहिये। और सूक्ष्मतापक्षम प्राकार (किला) और वन तथा हार इत्यादिक विषयोंका मुख्यतया ज्ञान न होनेकी सम्भवता होगी क्योंकि नखल (नहेरना) नख छेदक जो शस्त्रहै सो स्व प्रमाणसे अधिक प्रमाणवाले पट कट तथा शकटादिक पदार्थोंका भेदक नही होता यह प्रसिद्ध है इसीतरह सूक्ष्मचक्षु भी अपनेसे महान् पर्वतादिकका बोध न करावेगा। यदि कदाचित् चक्षुमें रसिचक्र है सो क्रमसे पूर्वोक्त विषयोंमें प्रसार पाता है इसलिये यह अनल्पप्रकाश है अर्थात् स्वसे अधिक प्रमाणवालोंका भी प्रकाश करता है ॥

तथाहि। प्रोद्दाममाणिक्यकणानुसारी दीपाङ्कुरस्त्वद् पटलीप्रभावात् । किन्नैव कश्मीरजकज्जलादीन् प्रथीयसोऽपि प्रथयत्यशेषान् ॥ नन्वेवमध्यक्षनिराक्रिया स्यात् पक्षे पुरस्तादुपलक्षितेऽस्मिन् । प्रौढप्रभामण्डलमण्डितोऽर्थो नाभासते यत्प्रतिभासमानः ॥ अथाप्यनुद्भूततया प्रभाया पदार्थसम्पर्कजुषोऽप्यनीक्षा । सिद्धिस्तदानीं कथमस्तु तस्या ब्रवीषि चेत्तैजसतारयहेतो ॥ रूपादिमध्ये नियमेन रूपप्रकाशकत्वेन च तैजसत्व। प्रभापक्षे चक्षुषि सप्रसिद्ध यथा प्रदीपाङ्कुरविद्युदादौ ॥ तदिद घुसृणविमिश्रणमन्थ्रपुरध्रीकपोलपालीनां । अनुहरते व्यभिचाराद्रूपेक्षणसन्निकर्षेण ॥ द्रव्यत्वरूपेऽपिविशेषणे स्याद्धेतोरनैकान्तिकताञ्जनेन। तस्यापि चेत्तैजसता तनोपि तन्वादिना किंतु तदापराद्धम् ॥ सौवीरसौवर्चलसैन्धवादि निश्चिन्वते पार्थिवमेव धीराः। कृशानुभावोपगमोऽस्य तस्मादयुक्त एव प्रतिभात्यमीषाम् ॥

पूर्व श्लोकमें चक्षुरिन्द्रियमें रसिचक्र स्वीकार करके अनल्पप्रकाशत्व कहा था उसीको ग्रथकार दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट करते हैं ॥ देदीप्यमानरत्नकणके सदृश जो दीपाङ्कुर है सो अपनेसे अधिक परिमाणवाले भी केशर तथा कज्जलादि पदार्थोंको प्रकाश नहीं करता है क्या अर्थात् करता ही है इसीप्रकार चक्षु भी शकटादिकोंका प्रकाश कर-सकेगा ॥ अब जैन कहते है कि

पूर्वोक्त चक्षुः प्राप्यमर्थं करोति इत्याकारक अथवा चक्षुः रश्मिवत् इत्याकारक जो पक्ष है उसमें प्रत्यक्ष बाध है क्योंकि चक्षुकी प्रभासे प्रतिभासमान अतएव प्रौढप्रभामंडलसे व्याप्त घटादि पदार्थ नही प्रतीत होता है अर्थात् चक्षुकी प्रभासे व्याप्त पदार्थ नही प्रतीत होता ॥ यदि कदाचित् पदार्थके साथ मिली हुई भी चक्षुकी प्रभाका अनुद्भूत होनेसे प्रत्यक्ष नही होता ऐसा कहते हो तब हम पूछते है कि चक्षुमें प्रभाकी सिद्धि कैसे होवेगी । यदि कदाचित् तैजसत्वरूप हेतुसे कहोगे ॥ और प्रदीपको दृष्टान्त देकर रूप रस गन्ध स्पर्श तथा शब्द इनके मध्यमेंसे केवल रूपका ही व्यंजक (बोधक) होनेसे चक्षुमें तैजसत्वकी सिद्धि कहोगे ॥ तब यह तो तुमारा हेतु रूपग्राहक चक्षुसन्निकर्षावच्छेदेन व्यभिचारि होनेसे घुसृणविमिश्रणमभ्र-पुरंध्री (पतिपुत्रादिमतिस्त्री) के कपोलोंमे अङ्क वा कपोलोंकी पंक्तिका अनुकरण करता है ॥

यदि कदाचित् पूर्वोक्त रूपादिषु मध्ये नियमेन रूपप्रकाशकत्व रूपहेतुमें द्रव्यत्वे सति यह विशेषण पूर्वोक्त दूषण हटानेके लिये कहोगे तब भी अजनमें व्यभिचार आवेगा । यदि अंजनको भी तैजस ही कहोगे तब शरीरादिकोंने तुमारा क्या अपराध करा है अर्थात् शरीरादिकोंको भी तैजस ही मानो ॥ अजनकी सामग्री जो सौवीर सौवर्चल तथा सैन्धवादिक है उनको धीर–पुरुष पार्थिव ही मानते है इसलिये अंजनको तैजस मानना बुद्धि मानोंको अयुक्त ही प्रतीत होता है ॥

तथा च । सौवीरसौवर्चलसैन्धवादिकं स्यादाकरोद्भूतिवशेन पार्थिवं । मृदादिवन्नव्यभिचारचेतनं चामीकरेणानुगुणं निरीक्ष्यते ॥ चामीकरादेरपि पार्थिवत्वं लिङ्गेन तेनैव निवेदनीयं । शब्दप्रमाणेन नचात्र बाधा पक्षस्य यन्नास्ति तदत्र सिद्धम् ॥ अञ्जनं मरिचरोचनादिकं पार्थिवं ननु तवापि संमतम् । अञ्जनेपि तदसौप्रवृत्तिमानप्रयोजकविडम्बडम्बरी ॥ हनूमल्लोललाङ्गूललम्बात्ते साधनादतः । न सिद्धिस्तैजसत्वस्य दृष्टगुरुपष्टदूषणात् ॥ चक्षुर्न तैजसमभास्वरतिग्मभावादम्भोवदित्यनुमितिप्रतिषेधनाच । सिद्धिं दधाति नयनस्य न तैजसत्वं तस्मादमुष्य घटते किमु रश्मिवत्ता ॥ अपि च । प्रत्यक्षबाधः समलक्षि पक्षे न रश्मयो यद्दृशि दृष्टपूर्वाः । तथाच शास्त्रेण तवैव कालातीतत्वदोषोप्युदपादि हेतोः॥ अनुद्भवद्रूपजुषो भवेयुश्चेद्रश्मयस्तत्र ततो न दोषः। नन्वेवमेतस्य पदार्थसार्थप्रकाशकत्वं न सुवर्णवत् स्यात् ॥ आलोकसाचिव्यवशादथास्य प्रकाशकत्वं घटनामियर्त्ति । नन्वेवमेतत् सचिवस्य किंस्यात् प्रकाशकत्वं न कुटिकुटादेः ॥ अथास्तु कामं ननु तैजसत्वमुत्तेजितं किं न भवेत्त्वयास्य । तथा च नव्यस्त्वदुपज्ञ एषोऽद्भुतप्रवादोऽजनि तैजसत्वे ॥ उत्पद्यन्ते

तरणिकिरणश्रेणिसम्पर्कतश्चेत् तनोद्भूता' सपदि रुचयो लोचने रोचमानाः। यद्गृह्यन्ते न खलु तपनालोकसंपत्प्रतान' तस्मिन् हेतुर्भवति हि दिवा दीपभासामभास' ॥

पूर्व श्लोकमें सौवीरादिकोंको पार्थिवत्व कहा था उसीको स्पष्ट करते हैं जिसप्रकार मृत्तिका खानमेंसे उत्पन्न होनेसे पार्थिव है इसीप्रकार सौवीर सौवर्चल तथा सैन्धवादिक भी आकर (खान) मेंसे उत्पन्न होनेसे पार्थिव ही है। इस हेतुका सुवर्णावच्छेदेन व्यभिचार कहना ठीक नहीं ॥ क्योंकि सुवर्णाग्निकोंमें भी पूर्वोक्त आकरोद्भवत्व रूपहेतुसे ही पार्थिवत्व सिद्ध करलेना। सुवर्णपक्षक पार्थिवत्वसाध्यक आकरोद्भवत्व रूपहेतुमें शब्द प्रमाणसे बाधा है ऐसा नहीं कहना क्योंकि तुमारेको अभीष्ट जो आगमप्रमाण है सो जैनमें असिद्ध है ॥ अञ्जन मरिच तथा रोचनादिक तुमारेको भी पार्थिव ही समत है। पूर्वोक्त तैजसत्व साधकानुमान तो अञ्जनमें प्रवृत्त होता है इसलिये अप्रयोजक ही है ॥ इसलिये हनुमानकी चञ्चल पूछकी तरह व्यर्थ लम्बायमान जो तैजसत्वसाधक तुमारा हेतु है। उससे तैजसत्वकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि उसमें स्पष्ट रीतिसे व्यभिचार रूपदोष देखा गया है ॥ और जिसप्रकार अभास्वरशुक्ल रूपवान् होनेसे जल तैजस नहीं है इसी प्रकार चक्षु भी तैजस नहीं है इत्याकारक अनुमान करके प्रतिषेध होनेसे भी चक्षुको तैजसत्वकी सिद्धि नहीं होती जब तैजसत्व ही सिद्ध न भया तब इसमें रश्मिवत्ता कैसे सिद्ध हो सकती है अर्थात् नहीं होती ॥ और पूर्वोक्त रश्मिवत्ता साधकानुमानमें प्रत्यक्ष बाध भी है क्योंकि चक्षुमें रश्मिवत्ता कभी भी देखी नहीं जाती। इसलिये तुमारे शास्त्रके अनुसार बाध दोष भी हेतुको आता है ॥ यदि कदाचित् चक्षु में अनुद्भूतरूपवाली रश्मिये मानेगे तब पूर्वोक्त प्रत्यक्षबाध नहीं है कहोगे। तब हम कहते हैं कि सुवर्णकी तरह चक्षुको भी पदार्थप्रकाशकत्व न होना चाहिये (उभयत्र अनुद्भूत रश्मिवत्ताया अविशेषात्) ॥ यदि कदाचित् आलोकरूप सहकारीके वशसे चक्षुरिन्द्रियको प्रकाशकत्व युक्तियुक्त है कहोगे। तब हम कहते हैं कि आलोक सहकृत घट-पटादि पदार्थोंको भी प्रकाशकत्व क्यों नहीं होता ॥ यदिकदाचित् घटादि पदार्थोंको भी बेशक तैजसत्व रहो तुमार इसने क्या नहीं प्रकाशित किया ऐसा तुम कहते हो तो हम जैन कहते है कि भाई यह तो तुमारा एक नवीन ही तैजसत्वमें अद्वैत प्रवाद उत्पन्न भया हैं अर्थात वेसा तो आजतक किसी भी वादीने नहीं माना ॥ यदि कदाचित् नेत्रमें सूर्यकी किरणोंके सम्बन्धसे उद्भूतरश्मिये शीघ्र ही उत्पन्न होती है और जो नेत्रमें रोचमान रश्मियोंका प्रत्यक्ष नहीं होता उसमें हेतु सूर्य्यके

आलोकका संवन्ध है क्योंकि लोकमें भी सूर्य प्रकाशके साथ संवन्ध होनेसे दिनमें उद्भूत भी दीपकका प्रकाश नही ही प्रतीत होता ऐसा कहते हो ॥

अत्रेयं प्रतिक्रिया । मुष्टिग्राह्ये कुवलयदलश्यामलिम्नावलिप्ते स्फीते ध्वान्ते स्फुरति चरतो घूककाकोदरादेः । किं लक्ष्यन्ते क्षणमपि रुचो लोचने नैव यस्मात् आलोकस्य प्रसरणकथा काचिदप्यत्र नास्ति ॥ उत्पत्तिरुद्भूततयाथ तासां तत्रैव यत्रास्ति रविप्रकाशः । काकोदरादेरपि तर्हि नैताः कीटप्रकाशे कुशला भवेयुः ॥ अविवरतिमिरव्यतिकरपरिकरितापवरकोदरे क्वचन । वृषदंशदृशि न दृष्टा मरीचयः किमु कदाचिदथ ॥ अतएव विलोकयन्ति सम्यक्तिमिराडुरकरम्बितेऽपि कोणे । मूपिकपरिपंथिनः पदार्थान् ज्वलनालोकविजृम्भणं विनैव ॥

तव इसमें ऐसा उत्तर है । कि अत्यन्तगाड़ अन्धकारमें विचर रहे घूक (उल्लु) तथा सर्पादिकोंके नेत्रमें रसिये क्यों नही देखाई पडती अर्थात् अन्धकारमें सर्पादिकोके नेत्रमें स्थित प्रभाका प्रत्यक्ष होना चाहिये. क्योंकि तुम्हारे कथनानुसार चक्षु रसियोंके प्रत्यक्षका प्रतिवन्धक जो सूर्य्यादिकोंका प्रकाश उसके प्रसारकी तो अन्धकारमें कथा भी नही है ॥ यदि कदाचित् जिस स्थलमें सूर्यादिकोंका प्रकाश होवे उसी स्थलमें चक्षुकी रसिये उद्भूतरूपसे उत्पन्न होती हैं परन्तु अन्धकारमें नही होतीं अत एव उनका प्रत्यक्ष भी नही होता ऐसा कहोगे । तव हम कहते हैं कि सर्पादिकोंके कीट प्रकाशमें भी यह चक्षु-रसिये समर्थ न होवें ॥ नैयायिक कहते है अहो जैन किसी गाढान्धकारसे व्याप्त घरमें फिर रहे बिल्लीके नेत्रमें तैने रस्मिये कभी नही देखी हैं क्या ॥ उद्भूत रसियोंके होनेसे ही तो विडालादिक अन्धकारसे व्याप्त घरके कोणेमें भी अग्न्यादिकोंके आलोकसे विना ही पदार्थोंको देख लेते हैं ॥

अत्रोत्तरं । चाकचिक्यप्रतीभासमात्रमत्रास्ति वञ्चनात् । नांशवः प्रसरन्तस्तुप्रेक्ष्यन्ते सूक्ष्मका अपि ॥ मार्जारस्य यदीक्षणप्रणयिनः केचिन्मयूखाः सखे विप्रेरन्नतदा कथंनिशि भृशं तच्चक्षुपा प्रेक्षिते । प्रोन्मीलत्करपुञ्जपिञ्जरतनौ सञ्जातवत्युन्दरे प्रोज्जृम्भेत तथापि हन्त धिपणा दीप्रप्रदीपाद्यथा ॥ कृशतरतया तेषां नोचेदुदेति मतिस्तव प्रभवति कथं तस्याप्यस्मिन्नसौ निरुपप्लवा । घटननिपुणा साक्षात्प्रेक्षाविधौ हि ततिस्त्विपां न खलु न समा भीमन् सा चोभयत्र विभाव्यते ॥ अमूदृग्मूपिकारीणां तस्मादस्ति स्वयोग्यता । यया तमस्यपीक्षन्ते न चक्षुरश्मिवत् पुनः ॥ इत्थन्न चक्षुपि कथ-

श्चिदपि प्रयाति संसिद्धिपद्धतिमिव खलु रश्मिराचा । तस्मात्कथ कथय तार्किक चक्षुः स्यात् प्राप्यैव वस्तुनि मतिप्रतिबोधकृत्त्वम् ॥ बहिरर्थग्रहोन्मुख्य बहि कारणजन्यता। स्थायित्व वा बहिर्देशे किं बाह्येन्द्रियता भवेत्॥ तत्राद्रिमाया भिदि चेतसा स्यादेतस्य हेतोर्व्यभिचारचिह्न अप्राप्यकारि प्रकरोति यस्मान्मन्दाकिनीमन्दिरबुद्धिमेतत् ॥ दोष सएवोत्तरकल्पनायां यदात्मनः पुद्गलएव बाह्यः । चेतश्च तस्मादुपजायमानमेतद्बहिः कारणजन्यताभृत् ॥ चेतः सनातनतया कलितस्वरूप सर्वापकृष्टपरिमाणपविनितश्च । प्रायः प्रियः प्रणयिनीप्रणयातिरेकादेतत्करोति हृदये ननु तर्कतज्ञाः ॥ एतद्गावितताक्रियमाण प्रस्तुतेतरदिवप्रतिभाति । विस्तराय न भवेदिति नित्य तद्विलोक्यगुरुगुम्फितवृत्तिम् ॥ पक्षे तृतीये विषयप्रदेशः शरीरदेशो यदिवा बहि स्यात् । स्थायित्वमाद्ये विषयाश्रितत्व यद्वा प्रवृत्तिर्विषयोन्मुखी स्यात् ॥ प्राचीनपक्षे प्रविवाद्यसिद्धिकलङ्कपङ्कः समुपैति हेतोः । स्याद्वादिना यत्प्रतिवादिनास्य नाङ्गीकृत मेषसमाश्रितत्वम् ॥ पक्षे तथा साधनशून्यतास्मिन् दृष्टा तदोषः प्रकटः पटूनाम् । जिह्वेन्द्रिय नार्थसमाश्रित यद्विलोकयामासुरसी कदाचित् ॥ द्वितीयकल्पे किमसौ प्रवृत्तिरर्थाभिमुख्येन विसर्पण स्यात् । आश्रित्य किं वा विषयप्रपञ्च प्रतीतिसम्पत्प्रतिबोधकत्व ॥ पक्षे पुरश्चारिणि सिद्धिबन्ध स्यात्साधन जैनमतानुगानां । यस्मान्नतैर्लोचनरश्मिचक्रमङ्गीकृत वस्तुयुग प्रसर्पत् ॥ निदर्शनस्य स्फुटमेव दृष्ट वैकल्यमत्रैवहि साधनेन । पदार्थसार्थ प्रति यन्न सर्पत् जिह्वेन्द्रिय केनचिदिष्टपूर्व ॥ पक्षान्तरे तु व्यभिचारमुद्रा किं चेतसा नैव समुज्जजृम्भे । यस्मात्तदप्राप्य सुपर्वशैलस्वर्ग समुत्पादयति प्रतीतिम् ॥ शरीरस्य नहिर्देशे स्थायित्व यदि जल्प्यते । बाह्येन्द्रियत्वमत्र स्यात्सन्दिग्धव्यभिचारिता ॥ अप्राप्तार्थपरिच्छेदेनापि सार्द्ध न विद्यते । हेतोर्बाह्येन्द्रियत्वस्य विरोधो नत कश्चन ॥ कचित्साध्यनिवृत्त्यातु हेतुव्यावृत्तिदर्शनात् । प्रतिबन्धप्रसिद्धिश्चेत्तदानापि कथ न सा ॥ रसनस्पर्शनघ्राणश्रोत्रान्येन्द्रियतावलात् । चक्षुरप्राप्यविज्ञातृमनोवत् प्रतिपद्यताम् ॥ साध्यव्यावृत्तितोऽत्रापि हेतुव्यावृत्तिरीक्षिता । नच कश्चिद्विशेषोऽस्ति येनैकत्रैव सा मता ॥ बाह्येन्द्रियत्व सकलङ्कमेव न तार्किकान्प्रीणयितु तदीष्टे । भ्रूविभ्रमो दुर्भगभामिनीनां वैदग्ध्यभाजो भजते न चेतः ॥ किंयान्न समुचितमादिश दाढ्यं पुरश्चारिणि कारकत्व । यत्प्राप्यकारित्वसमर्थनाय नेत्रस्य तत्काणदृगञ्जनाभम् ॥ यस्मादिद मन्त्रजपोपसर्पत्प्रोद्दामरामाव्यभिचारदोषात् । उत्तालवेतालकरालकेलीकलङ्कितश्रीकमिवावभाति ॥ तथाहि । कनकनिकषस्निग्धांगुग्धांमुग्धमधुरस्मिता । चटुलकुटिल

तरुणरमणीमारान्मंत्रान्मनो भुवि
भ्रूविश्रान्ति कटाक्ष पुच्छछटाम् । त्रिजगतिगतां कश्चिन्मत्री समानयति क्षणात् । तेन नाभिहितदूपणोदयः ॥
संसरन् ॥ कश्चिदत्र गदतिस यत्पुनर्मंत्रमंत्रणगवीसमानयेत् । युक्तमेव मदिरेक्षणादिकं ध्वनिस्वरूपस्तवसम्मतो
मंत्रस्य साक्षाद्घटनाप्रियादिना परंपरातो यदि वा निगद्यते । साक्षान्नतावद्यदयं विहायसो स्यान्मंत्रस्तथा प्यस्त्विय-
गुणः ॥ ततोऽस्य तेनैव समं समस्ति संसक्तिवार्ता नतु पक्ष्मलाक्ष्या । अथाक्षरालम्बनवेदनं प्रियं प्रति
मात्मनैव ॥ अथापि मंत्रस्य निवेद्यते त्वया संसक्तिरेतत्पतिदेवतात्मना । सन्तोपपोपप्रगुणा च सा प्रियां देवतात्मनि
प्रेरयति स्वयोगिनीम् ॥ ब्रूमहेऽत्र ननु देवतात्मना मंत्रवर्णविवरस्य का घटा । अम्बरस्य गुण एव तत्कथं ॥ व्यापकेपु
भजेत सङ्गतिम् ॥ आश्रयद्वारतोऽप्यस्य संसर्गो नास्ति सर्वथा । व्यापकद्रव्ययोर्यस्मात् संसर्गो नामुना मतः ॥ अयस्का-
वदति व्यतिपङ्गं यस्तु तेन मनसा ध्वनिना च । तीतवस्तुविपयेण विमृश्य स्पष्ट एव विलसन् व्यभिचारः ॥ प्राप्यकारिणि
न्तादनेकान्तस्तथात्र परिभाव्यतां । आक्षेपश्च समाधिश्च ज्ञेयो रत्नाकरादिह ॥ कारकत्वमपि तन्न शोभते प्राक्प्ररूपितमुपैति
यदीक्षणे मतं । प्राप्यवस्तु वितनोति तन्मतिं नैव चक्षुरिति तत्वनिर्णयः ॥ अद्रिचन्द्रकलनेपु येत्यदः
नो घटां । रश्मिसंचयविपश्चितं हि तत्तेन तत्र नितरां व्यपाकृताः ॥

पूर्वोक्त नैयायिकके कथनका उत्तर कहते है । हे न्यायविद् जो तुमने कहा कि गाढांधकारमें फिर रहे बिल्लेके नेत्रमें रश्मिये देखी जाती है सो तो भाई नैयायिक तुमारेको भ्रम है क्योंकि जिसप्रकार वज्रादिकोंमें चाकचिक्यादिकोंका भान होता है इसी प्रकारसे बिल्लेके नेत्रोंमें भी चाकचिक्यमात्रका ही भान होता है परन्तु रश्मियोंका नहीं ॥ हे मित्र नैयायिक विचार करो कि यदि बिल्लेके नेत्रोंमें मयूखा (किरणा) होंमें तब उसके नेत्रोंकी किरणोंसें व्याप्त उन्दर (मूसा) में तुमारेको भी ज्ञान क्यों नही होता अर्थात् जैसे प्रदीपादिकोंके आलोकसे व्याप्त उन्दरका बोध तुमको होता है इसीप्रकार बिल्लेके नेत्रोंसे आलोकसे व्याप्त भी उन्दरादिकोंका ज्ञान होना चाहिये ॥ यदि कदाचित् बिल्लेके नेत्रोंकी रश्मिये तो कृशतरह इसलिये उनके व्याप्त भी उन्दरका हमको ज्ञान नहीं होता ऐसा तुम कहते हो तब हे मित्र नैयायिक उन्ही कृशतर रश्मियोंसे बिल्लेको भी उन्दरका ज्ञान न होना चाहिये क्योंकि चाक्षुप प्रत्यक्षमें सर्वत्र प्रौढ आलोकके संयोगको ही तुमारे मतमें कारणता है ॥ इसलिये हे मित्र बिल्लेके नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है कि जिससे अन्धकारमें भी विद्यमान पदार्थोंको देख लेता है परन्तु उसके चक्षु तो

रसियेवाले नहीं हैं ॥ इस पूर्वोक्त विचारसे कथञ्चिद् भी चक्षुमें रसिवत्ताकी सिद्धि नहीं होती है तव (रैताफिक) चक्षुमें प्राप्त होकर नाम विषयके साथ मिलकर ही बोधजनकत्व भी कैसे सिद्ध हो सकता है अर्थात् नहीं होय सकता ॥ पूर्वोक्त नैयायिकके अनुमानमें पक्षदोष कहकर अब छत्तीसमें श्लोकसे हेतु दोष कहते हैं कि हे नैयायिक जो तुमने चक्षुमें प्राप्य कारित्वकी सिद्धिके लिये बाह्येन्द्रियत्वरूप हेतु कहा है सो बाह्येन्द्रियत्व क्या पदार्थ तुह्मारेको अभीष्ट है क्या बाह्य पदार्थके ज्ञानमें उन्मुखत्व (बाह्य घटपटादि पदार्थोंका बोध करानेमें उद्यत अर्थात् तागत) ही बाह्येन्द्रियत्व है अथवा बाह्यकारणोंसे जन्यत्वरूप है किंवा बाह्यदेशमें स्थायित्वरूप बाह्येन्द्रियत्व तुह्मारेको अभीष्ट है ॥ बहिरर्थग्रहोन्मुखत्वरूप यदि कहोगे तब मनमें व्यभिचार आवेगा । क्योंकि अप्राप्यकारी भी मन पर्वतादिकोंके ज्ञानको करवा देता है ॥ पर द्वितीय कल्पनामें भी यही दोष है क्योंकि यह पुद्गल आत्मासे बाह्य है । चित्त (मन) उससे उत्पन्न होता है इसलिये इसमें भी बहि कारणजन्यत्व है ही ॥ यदि मन नित्य है और अणुपरिमाणवाला है ऐसा तुम कहते हो तब ऐसा कथन तो कोई रागी पुरुष स्त्रीके प्रेमसे मानलवे तो मानलवे परन्तु बुद्धिमान् पुरुष तो कभी भी नहीं मानते ॥ इस जगहमें मनके नित्यानित्यत्वका विचार करना अप्रस्तुत जैसा मालूम होता है । और उसके विचारसे ग्रंथका विस्तार भी हो जावेगा इसलिये इस ग्रंथकी बडी टीकामें मनके अनित्यत्वकि सिद्धि जान लेनी ॥ अब यदि बाह्यदेशमें स्थायित्वरूप बहिरिन्द्रियत्व तुम कहोगे तब भी क्या विषय प्रदेशको बहिर्देश तुम कहते हो अथवा शरीर देशको कहते हो । आद्य पक्षमें भी विषय प्रदेशमें स्थायित्व क्या विषयाश्रितत्व कहते हो अथवा विषयोन्मुखी प्रवृत्ति कहते हो ॥ विषय प्रदेशमें स्थायित्व पक्षमें तो प्रतिवादिसिद्धि नामक हेतुक दोष आवेगा । क्योंकि स्याद्वादमतावलम्बी जो प्रतिवादी हैं उह्नोंने चक्षुको विषयाश्रितत्व नहीं माना है ॥ और विषयाश्रितत्व पक्षमें बुद्धिमान् पुरुष दृष्टान्त दोष भी कहते हैं क्योंकि जिह्वारूप जो तुह्मारा दृष्टान्त है सो विषयकी तरफ जाता हुआ कभी भी बुद्धिमानोंने नहीं देखा है ॥ द्वितीय पक्षमें भी विषयोन्मुखी प्रवृत्ति जो तुम कहते हो सो विषयके अभिमुखमें विसर्पणरूप है । अथवा विषयमें आश्रित होकर बोधजनकत्व रूप है ॥ प्रथम पक्षमें तो जैन मतके अनुसार असिद्धिरूप दोष है । क्योंकि जैनोंने वस्तुकी तरफ प्रसर्पण करनेवाला चक्षुकी रसियोंका चक्र नहीं माना है ॥ और जिह्वेन्द्रियका पदार्थकी तरफ जाना किसीने भी नहीं माना इसलिये दृष्टान्तमें साधनशून्यतारूप दोष तो स्फुट ही है ॥ और द्वितीयपक्षमें तो मनोऽवच्छेदेन व्यभिचार है । क्योंकि

मन पर्वतादिकोमें न प्राप्त होकर ही पर्वतादिकोंका ज्ञान करा देता है। यदि कदाचित् शरीरके वहिर्देशमें स्थायित्वरूप वहिरिन्द्रियत्व तुम कहते हो तब इस हेतुमें सदिग्ध व्यभिचाररूप दोष आवेगा। क्योंकि ईदृश वहिरिन्द्रियत्वका अप्राप्यकारित्वके साथ भी कुछ विरोध नही है॥ यदि कदाचित् जो प्राप्यकारी नही है सो बाह्येन्द्रिय भी नही है जैसे मन प्राप्यकारी न होनेसे वहिरिन्द्रिय भी नही है इत्याकारक व्यतिरेक व्याप्तिसे प्राप्यकारित्वकी सिद्धि तुम कहोगे तब चक्षुमें अप्राप्यकारित्वकी भी सिद्धि क्यों न होगी अर्थात् हो सकेगी॥ क्योंकि रसन त्वक् घ्राण तथा श्रोत्रान्य इन्द्रियत्वरूप हेतुसे मनकी तरह चक्षुमें अप्राप्यकारित्व सिद्ध हो सकता है॥ इस हमारे अनुमानमें भी तुह्मारे अनुमानकी तरह साध्याभावसे हेत्वभाव सिद्ध हो सकता है तुह्मारे और हमारे अनुमानमें कुछ भी विशेष नही है कि जिससे तुह्मारे अनुमानमें ही साध्यकी व्यावृत्तिसे हेतुकी व्यावृत्तिद्वारा साध्य सिद्धि होवे और हमारे अनुमानमें न होवे॥ इसप्रकार सन्दिग्धव्यभिचारि होनेसे बाह्येन्द्रियत्वरूप जो तुह्मारा हेतु है सो तार्किक पुरुषोंको प्रसन्न करनेमें समर्थ नही है। क्योंकि मूर्ख स्त्रियोंका जो कटाक्ष है सो चतुर पुरुषके चित्तको मोह नही सकता है॥ और चक्षुः प्राप्यमतिङ्करोति इत्यादिक श्लोक करके चक्षुमें प्राप्यकारित्वकी सिद्धिके लिये आदि शब्दसे जो कारकत्वरूप हेतुका तुमने सूचन कराया है सो काणेनेत्रमें अंजनकी तरह व्यर्थ ही है॥ क्योंकि जिस वास्ते मन्त्रके जपसे चली आ रही जो स्त्री उसमें व्यभिचाररूप दोषसे उत्ताल (उत्कट) वेतालकी जो भयङ्कर क्रीडा उससे कलङ्कित है श्रीजिसकी उसकी तरह यह हेतु प्रतीत होता है अर्थात् प्राप्यकारित्वकी सिद्धिके लिये जो तुमने कारकत्वरूप हेतु कहा है उसका मन्त्रावच्छेदेन व्यभिचार है॥ क्योंकि इस जगहमें मन्त्रको जप रहा जो मन्त्री है सो द्वीपान्तरमें स्थित स्त्रीको भी बुलालेता है तब मन्त्रमें कारकत्वतो भया परंतु प्राप्यकारित्व न होनेसे यह हेतु व्यभिचारी है॥ इसमें कै एक पुरुष कहते है कि मन्त्र जो है सो स्वसम्बद्ध ही स्त्रीको बुलाता है इसलिये उक्त व्यभिचाररूप दोष नही है॥ जैन कहते है कि उनको हम पूछते है कि स्त्रीका मन्त्रके साथ साक्षात् सम्बन्ध तुम कहते हो अथवा परम्परा कहते हो। साक्षात् तो नही कह सकते क्योंकि तुह्मारे मतमें मन्त्र जो है सो आकाशका ध्वनिस्वरूप गुण है॥ इसलिये उसका आकाशके ही साथ साक्षात् सम्बन्ध हो सकता है परन्तु स्त्रीके साथ नही। और यदि अक्षरोंसे उत्पन्न हुए ज्ञानको मन्त्र कहते हो तो भी ज्ञान स्वरूप मन्त्रका सबन्ध आतमाके साथ ही होगा॥ यदि मन्त्रका स्व देवताके साथ संबन्ध है और देवताका संबन्ध स्त्रीके साथ है। मन्त्रके उच्चारणसे खुश होकर देवता स्वसंब-

भिता स्त्रीको मन पठनेवालेके पास भेज देता है ऐसा तुम कहते हो ॥ तब इस विषयमें हम कहते हैं कि तुम्हारे मतके अनुसार आकाशका गुणस्वरूप जो मन्त्र है उसका देवताके आत्माके साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं होता ॥ आश्रयद्वारा नाम स्वाश्रयसंयोग सम्बन्ध भी देवताके आत्माके साथ तुम नहीं कह सकते क्योंकि व्यापक द्रव्योंका परस्पर संयोग तुमने नहीं माना ॥ और जो नवीन नैयायिक व्यापक द्रव्योंका संयोग मानते हैं उनके मतमें भी अतीत वस्तुको विषय करनेवाले मन तथा शब्दमें पूर्वोक्त कारकत्वरूप हेतुका व्यभिचार स्फुट ही है ॥ और लोहाकर्षक जो चुम्बक पत्थर है उसमें भी इस हेतुका व्यभिचार है ऐसा बुद्धिमानोंने जानना । इस विषयमें अनेक शङ्का तथा समाधान (उत्तर) रत्नाकरसे जान लेने ॥ इस पूर्वोक्त विचार करनेसे कारकत्वरूप हेतु भी चक्षुके प्राप्यकारित्वकी सिद्धिमें समर्थ नहीं है ॥ इसलिये चक्षुरिन्द्रिय विषयमें प्राप्त न होकर ही ज्ञान करा देता है यही अबाधित सिद्धान्त जानना ॥ और जो तुमने पर्वत तथा चन्द्रके ज्ञानमें कालविलम्ब कहा था सो भी युक्तियुक्त नहीं क्योंकि रश्मिचक्रके माननेसे ही वह कथन हो सकता था सो रश्मिचक्र तो हमने सर्वथा खण्डन कर दिया है ॥

किं च । चक्षुरप्राप्यधीकृद् व्यवधिमतोऽपि प्रकाशकं यस्मात् । अन्तःकरणं यद्वद्व्यतिरेके स्पार्शना रसना ॥ अथ द्रुमादिव्यवधानभाजं प्रकाशकत्वं दृशो न दृष्टं । ततोऽप्ययं हेतुरसिद्धताया धौरेयभावं बिभराम्बभूव ॥ एतन्न युक्तं शतकोटिका च स्वच्छोदकस्फाटिकभित्तिमुख्यैः । पदार्थपुञ्जे व्यवधानभाजि सञ्जायते किं नयनान्न संवित् ॥ दम्भोलिप्रभृतिप्रभिद्यभिदुराथेद्रोचिषश्चक्षुषः संसर्गोपगताः पदार्थपटला पश्यन्ति तत्र स्थिताः । एवं तर्हि समुच्छलन्मलभरं भित्वा जलं तत्क्षणात् तेनाप्यन्तरितस्थितीननिमिषानालोकयेयुर्न किम् ॥ विख्यातास्तेन ते चेद्विमलजलभरात् किं भजन्ते न शान्तिं किंश्चाम्भः काचकूपोदरनिपरगतं निष्पतेच्चत्तदानीं । दोषश्चैवपतूर्णं यदयमुदयते नूतनव्यूहरूपं सर्पेयुस्तर्हि नेताः कथमपि रुचयो लोचनस्यापि तस्मिन् ॥ भवति परिगमश्चेत् वेगवत्त्वादमीषां कतिपयकलयास्तु क्षीरपातस्तदानीं । न च भवति कदाचिद्बुद्बुदस्यापि तस्मात्प्रपतनमितियुक्तस्तस्य नाशः किमाशु ॥ किञ्च । कलशकुलिशप्राकारादित्रिविष्टपकन्दराकुहरकलितं विश्वं वस्तु प्रतिक्षणभङ्गुरम् । ज्वलनकलिकावर्त्तिक्त्वस्मिन् निरन्तरताभ्रमः प्रभवति यदन्नित्थं शास्यं कथं प्रतिहन्यते ॥ तस्मौ स्थेमा तदस्मिन् व्यवधिमदमुना प्रेक्ष्यते येन सर्वं तत्सिद्धा नेत्रबुद्धिर्व्यवधिपरिगतस्यापि भावस्य

सम्यक् । कुड्यावष्टब्धबुद्धिर्भवति किमु न चेन्नेदृशी योग्यतास्य प्राप्तस्यापि प्रकाशे प्रभवति न कथं लोचनाद्गन्धबुद्धिः ॥
किंवा न प्रतिभासते शशधरे कर्म्मापि तद्रूपवत् दूराच्चेद्विलसत् तदस्य हृदये लक्ष्येत किं लांछनम् । तस्माच्चक्षुषि योग्य-
तैव शरणं साक्षी च नः प्रत्ययस्तत्तर्कप्रगुण प्रतीहि नयनेष्वप्राप्यधीकर्तृताम् ॥

कारकत्वरूप हेतुसे प्राप्यकारित्वको सिद्ध करनेवाले नैयायिकको पूर्वोक्त हेतुमें दोष कहकर अब चक्षुमें अप्राप्यकारित्वका साधक अनुमान देखायकर भी प्राप्यकारित्वका खण्डन कहते है । जिसप्रकार अन्त.करण जो है सो व्यवहित पदार्थोंका भी प्रकाशक होनेसे अप्राप्यकारी है इसीतरह चक्षु भी व्यवधीमान पदार्थोंका भी प्रकाशक होनेसे अप्राप्यकारी ही है यहाँपर व्यतिरेकी-दृष्टान्त रसनेन्द्रिय जानना ॥ यदि कदाचित् द्रुमादिकोसे व्यवहित पदार्थोंका प्रकाशक चक्षुरिंद्रिय नहीं है इसलिये अप्राप्य-कारित्वकी सिद्धिके लिये प्रयुक्त जो व्यवधिमतोऽपि प्रकाशकत्वरूप तुमारा हेतु है सो स्वरूपासिद्ध है ऐसा तुम कहते हो ॥ तो यह तुम्हारा कथन तो ठीक नही क्योंकि मणि तथा स्वच्छ जल और स्फटिकसे बनी हुई भित्तिसे व्यवहित पदार्थोंका नेत्रसे ज्ञान नही होता है क्या अर्थात् होता ही है इसलिये पूर्वोक्त हमारा हेतु असिद्ध नही है । यदि कदाचित् वज्र जल तथा स्फटिकादि पदार्थोंके भेदनमें समर्थ चक्षुकी रश्मिये पदार्थके साथ मिलकर ही व्यवधानमें स्थित पदार्थका बोध कराती है ऐसा तुम कहते हो तो हम पूछते है कि उछल रहा जो मलिन जल है उसको भेदन करके उससे व्यवहित पदार्थका भी बोध चक्षुकी रश्मिये क्यो नही कराती ॥ यदि कदाचित् मलिन जल करके शान्त हो जानेसे मलिन जलमे अतरित पदार्थोंका चक्षु रश्मिये बोध नही कराती है ऐसा तुम कहोगे तो हम पूछते है कि विमलजलके समूहसे भी चक्षुकी रश्मिये शान्त क्यों नही होती अर्थात् जिसप्रकार चक्षुकी रश्मिये मलिन जलके साथ मिलकर शान्त होजानेसे उससे व्यवहित पदार्थके बोधमें समर्थ नही होती है इसीतरह स्वच्छ जलके साथ मिलकर भी शान्त होजानेसे उसमे व्यवहित पदार्थके बोधमें भी समर्थ न होवेगी । और काचके बने हुए कूपमें भरे हुए जलको प्रत्यक्ष कालमें बाहर निकल जाना चाहिये क्योंकि तुमारे मतके अनुसार पूर्वोक्त कूपमें चक्षुकी रश्मियोंसे छिद्र हो गये है यदि कदाचित् चक्षुरश्मियोंसे विदीर्ण भी काचका कूप शीघ्र ही नवीन उत्पन्न हो जाता है इसलिये जल नही निकलता ऐसा कहते हो तब तो भाई नैयायिक नेत्रकी रश्मिये भी इसमें कथमपि प्रवेश न करसकेगी ॥ यदि कदाचित् चक्षुकी रश्मियोंको अतिवेगवाली होनेसे काचके कूपके भीतर प्रवेश हो सकता है ऐसा कहोगे तो

हम कहते हैं कि जब दूधोंसे कुछ थोड़ासा नब तो निकलना चाहिये परन्तु उससे प्रत्यक्ष वाक्में एक बुदमात्र भी जल नहीं निकला है इसलिये उस भवके दूसरी भिन्न उत्पत्ति तथा नाश मानना युक्तियुक्त है क्या अर्थात् नहीं है ॥ और तीन लोकों रहनेवाले सब घटपटादि पदार्थ क्षणिकाभंगुर हैं और उनमें सोऽयम् इत्यादि प्रतीति तो केश दीपकलिका इस प्रतीतिकी तरह भ्रमरूप है इस तरह कह रहा जो बौद्ध है उसको भी तुम्हारे मतमें क्या उत्तर हो सकता है अर्थात् जैसे तुम कहते हो कि शब्दका जो रूप है सो न दुरी रश्मियोंके सम्बन्धसे नाश होकर शीघ्र पुनः वैसा ही उत्पन्न हो जाता है इस तरहसे ही बौद्ध भी सब पदार्थों को कहते हैं और तुम्हारे मतमें सोऽयं हुआ इस शब्दकी तरह सोऽयं घट इत्यादि वाक्योंसे वह भ्रम-रूप कहता है तब उसको उत्तर तो मात्र सोऽयम् इत्याकारक अबाधित प्रतीति ही थी सो तो सोऽयं हुआ इस प्रतीतिकी तरह भ्रमरूप होगई इसलिये हमको भी क्षणभंगुरता ही मानना पड़ेगा ॥ इसलिये शब्दका रूप स्थिर स्वरूप ही है उससे व्यवहित भी जलादि [illegible] प्रकाशक होनेसे चक्षुरिन्द्रियको व्यवहितपदार्थोंके प्रकाशकत्वकी सिद्धि युक्तियुक्त है और यदि तुम हमसे पूछोगे कि कुड्यादिकोंसे व्यवहित पदार्थका भी ज्ञान क्यों नहीं होता तो हम कहेंगे कि जैसे चक्षुमें गन्ध ग्रहणकी योग्यता न होनेसे घ्राण भी चक्षुरिन्द्रिय गन्धको ग्रहण नहीं करता है इसी तरह कुड्यादिकोंसे व्यवहितपनेके बोधकी भी योग्यताके न होनेसे चक्षु-रिन्द्रिय उसका बोध नहीं करता चक्षुमें योग्यता सिद्धिके लिये और भी युक्ति कहते हैं कि जिस प्रकार चन्द्रमाके रूपका बोध होता है इसी तरह उसकी दूरताका बोध भी क्यों नहीं होता यदि कदाचित् दूरत्वरूप लोकसे नहीं होता ऐसा कहोगे तो चन्द्रके समीप नहीं होनेसे चन्द्रका भी बोध न होना चाहिये । इसलिये चक्षुमें योग्यता ही कारण है इसमें साक्षी हमारा अनुभव भी है । इसलिये हे वादिन् तुम भी ऐसा समाप्य और इसको स्वीकार करो ॥

पौरा. पुनरिदमाहु श्रोत्र न प्राप्यबुद्धिमाधत्ते । दिग्देशव्यपदेशान् करोति शब्दे यतो ह्यन्त ॥ तथाहि । प्राच्यां सम [illegible] नलशुनामतूनित गजित श्रीमीलसलमेव चातकतोऽक्षाम घाण दक्षिण । रुतं केकिद्दुन्दकस्य निगदतेता कला काननादि दिग्व्यपदेशानिति न किं गन्देस्ति सम्मत्य ॥ प्राप्यकारि यदितु श्रवण स्यात् नहि तत्र न स्यश्रवण गेव । वस्तुत सधुराद्यपदेश शर्करास्पृशि यथा रसनायाम् ॥ नेश्यानुरागप्रतिम तदेवन् गन्धपददव्यभिचारदोषान् । घ्राण यदेवव्यपदेशभाक प्राप्तकारी कुरुते मनीषाम् ॥ तथाह । मन्दमन्दमुदेत्यसम्परि

मलः प्राग्माधवीमण्डपाङ्कूयः सौरभमुद्वमन्त्युपवने फुल्लाः स्फुटं मल्लिकाः । गन्धोवन्धुर एप दक्षिणदिशः श्रीचन्दना-
त्प्राप्तवानित्येवं ननु विद्यते तनुभृतां घ्राणात् तथा प्रत्ययः ॥ अस्ति त्वगिन्द्रियेणापि व्यभिचारविनिश्चयः । शेमुपीमाद-
धानेन दिग्देशव्यपदेशिनीम् ॥ तथाहि । सेयं समीरलहरी हरिचन्दनेन्दुसंवादिनीवनभुवः प्रसभम्प्रवृत्ता । स्फीतस्फुरत्पु-
लकपल्लविताङ्ग यष्टिं मामातनोति तरुणीकरपल्लवश्च ॥ अथानुमानादधिगम्य तेपां हेतूंस्ततस्तद्व्यपदेशिनी धीः । नघ्रा-
णतः स्पर्शनतश्च तादृक् प्रत्यक्षरूपा प्रथते मनीपा ॥ श्रोत्रेऽपि सर्वं तदिदं समानमालोकमानोऽपि न मन्यसे किं ।
दृष्टव्यलीकामपि कामिनीं यत्सम्मन्यते कामुक एव साध्वीं ॥ स्मृत्वा यथैव प्रतिबन्धमाशु शंखादिशब्दोऽयमिति प्रती-
तिः। प्राच्यादिदूरादिगतेऽपि शब्दे तथैव युक्ता प्रतिपत्तिरेपा ॥ दिग्देशानां श्रुतिविपयता किंच नो युक्तियुक्ता युक्तत्वे वा
भवति न कथं ध्वानरूपत्वमेपां । तस्माद्भिन्नप्रमितिविपयस्ते विशिंपन्ति शब्दं सिद्धे चैवं भवतु सुतरां साधने साप्यसि-
द्धिः ॥ अपिच । गृह्यते यदि विनैप सङ्गतिं किं तदानुगुणमारुते ध्वनौ । दूरतोऽपि धिपणा समुन्मिपेदन्यथा तु निकटेऽ-
पि नैव सा ॥ मुहुर्मरुति मन्थरं स्फुरति सानुलोमागमे समुल्लसितवल्लकीकणकलाकलापप्लुता । सकामनवकामिनीकलि-
तघोलनाडम्बरा न किं निशि निशम्यते सपदि दूरतः काकली ॥ पट्टघटितकपाट संपुटौघे भवति कथं सदनेऽथ शब्दबु-
द्धिः । पट्टघटितकपाटसम्पुटौघे भवति कथं सदनेपि गन्धबुद्धिः ॥ तथाहि । कर्पूरपारीपरिरम्भभाजि श्रीखण्डखण्डे मृगनाभि
मिश्रे । धूमायमाने पिहितेऽप्यगारे गन्धप्रबन्धो बहिरभ्युपैति ॥ द्वारावृतेऽपि सदने प्रणयप्रकर्पादेवं प्रिये स्फुरदपत्र-
पयास्खलन्ती । द्वारि स्थितस्य सरसाकुलबालिकायाः कर्णातिथी भवति मन्मनसूक्तिमुद्रा ॥ एवं च प्राप्त एवैप शब्दः
श्रोत्रेण गृह्यते । श्रोत्रस्यापि ततः सिद्धा निर्बाधा प्राप्यकारिता ॥

पूर्वोक्त युक्तियोंसे चक्षुरिन्द्रियको प्राप्यकारी माननेवाले नैयायिकादिकोंके मतको खण्डन करके अब श्रोत्रको अप्राप्यकारी कहनेवाले बौद्धके मतको प्रथम दिखाकर खण्डन कहतेहैं । बौद्धकहते हैं कि जैसे चक्षुरिन्द्रिय स्व विपयमें दिग्देश (दिशा तथा स्थान) का निश्चायक होनेसे अप्राप्यकारी है ऐसे ही श्रोत्रेन्द्रिय भी स्वविपय शब्दमें दिग्देशका निश्चायक होनेसे अप्राप्यकारी ही है ॥ श्रोत्रेन्द्रिय भी दिग्देशका निश्चायक है इस बातको स्पष्ट करते है । इसपूर्वदिशामें बडाभारी मेघका शब्द हो रहा है और यह मनोहर चातकका शब्द दक्षिणमें सुना जा रहा है और इस वनसे मोरोंके समूहका सुन्दर शब्द आ रहा है बौद्ध कहते हैं इत्यादि सर्वानुभवसिद्ध

दिग्देश व्यवहार शब्दमें नहीं है क्या अर्थात् है ही ॥ यदि श्रोत्रेन्द्रिय प्राप्यकारी होवे तो बाधित प्रतीतिसिद्ध देशदेश व्यवहार शब्दमें कदापि नहीं हो सकता जैसे प्राप्यकारी रसनेन्द्रियसे गृहीत शर्करा (तक्षिप्रसे इति यावत्) दिग्देश व्यवहार नहीं होता है ॥ ऐसा कहते हैं कि यह पूर्वोक्त जो बौद्धका कथन है सो वेश्याके साथ जो प्रेम उसके सदृश है। क्योंकि प्राप्यकारी घ्राणेन्द्रियमें पूर्वोक्त अप्राप्यकारित्वसाधक दिग्देश व्यपदेशकारित्वरूप हेतुका स्पष्ट रीतिसे व्यभिचार देखनेमें आ रहा है ॥ घ्राणेन्द्रियसे भी दिग्देश व्यवहार होता है इसबातको स्पष्ट करते हैं। पूर्वदिशाके विषमार माधवीमण्डपसे मन्दमन्द गन्ध आ रहा है उपवनमें खिल रहे मल्लिकाके पुष्प अत्यन्तमात्र गन्धको फैला रहे हैं। यह सुगन्ध दक्षिणदिशामें स्थित श्रीचन्दनसे आरहा है जैन कहते हैं कि इसप्रकार घ्राणसे भी दिग्देशमत्यय सर्वसाधारण है इसलिये पूर्वोक्त तुम्हारा हेतु घ्राणावच्छेदेन व्यभिचारी है ॥ और दिग्देशविषयक ज्ञानको उत्पन्न करते त्वगिन्द्रियके साथ भी पूर्वोक्त तुम्हारे हेतुका व्यभिचार बुद्धिमान पुरुषोंको निश्चय होता है ॥ जिसप्रकार त्वगिन्द्रियके साथ पूर्वोक्त हेतुके व्यभिचारका ज्ञान होता है सो कहते हैं। सो यह हरिचन्दन और इन्दु चन्द्रको कहनेवाला वनभूमीसे प्रवृत्त वायु और युवतिजनोंके हाथ रूपी पल्लव बहुतस्फुरण होरहा पुलक और पल्लवित है (अङ्ग) शरीररूपी यष्टी जिसकी ऐसे युवकोंको चारों तरफसे विस्तार कर रहा है अर्थात् आनन्द कर रहा है। यदि कदाचित् पूर्वोक्त गन्धादिकोंके कारणको अनुमानसे जानकर फिर उनमें दिग्देशव्यपदेशादिकी (बोध) होता है परन्तु घ्राणसे अथवा त्वगिन्द्रियसे नहीं होता ऐसा तुम कहते हो ॥ तब शब्दमें भी यह सब निरूपण श्रोत्रमें भी समान ही देखरहे तुम क्यों नहीं मानते अर्थात् मानलो। क्योंकि जिस स्त्रीका व्यभिचार प्रत्यक्ष देखलिया है उस स्त्रीको कामुक पुरुष ही साध्वी मानते हैं परन्तु बुद्धिमान नहीं ॥ जैसे बालकके शब्दको शब्दत्वेन प्रत्यक्षसे जानके बाद नीम व्याप्तिका स्मरण होकर अब सरसशब्द इत्याकारक अनुमितिरूप प्रतीति भी अनुभवसिद्ध है इसीप्रकार पूर्वोक्त शब्दमें दिग्देशविषयक प्रतीति भी अनुमिति स्वरूप माननी ही ठीक है ॥ और दिग्देश जो हैं उनको श्रुति (श्रोत्र) का विषय मानना युक्तियुक्त नहीं है यदि कदाचित् युक्त होवे तो दिग्देशको भी शब्द रूपता क्यों न होवे अर्थात् जो जो भाव पदार्थ श्रोत्रसे ग्रहीत होता है सोसो शब्द स्वरूप ही होता है जैसे शब्दका शब्द श्रोत्रग्राह्य होनेसे शब्दस्वरूप ही है (शब्दत्व भी कथंचित शब्द स्वरूप ही है अत शब्दत्वसे इस हेतुका व्यभिचार नहीं है इति ज्ञेयम्) इसलिये भिन्नप्रतीतिके विषय ही दिग्देशादिक शब्द विशिष्ट ज्ञानको कराते हैं ऐसा कहते हैं कि हे बौद्ध शब्दमें दिग्देशव्यपदेशको भिन्नप्रतीतिका विषयसिद्ध हो जानेसे दिग्देशव्यपदेशकारित्वरूप तुम्हारे हेतुमें

सरूपासिद्धिनामकदोष भी सिद्ध होगया ॥ श्रोत्रेन्द्रियमें प्राप्यकारित्वकी सिद्धिके लिये युक्त्यन्तर भी कहतेहैं । जैन कहते है कि
हे बौद्ध विचार करो कि यदि शब्द श्रोत्रके सम्बन्धसे विना ही ग्रहीत होताहोवे तो अनुकूलवायुसे शब्दमें दूरसे भी प्रतीति होती है
और वायुके प्रतिकूल होनेसे समीपमें भी नही होती इसमे क्या कारण है अर्थात् इसलिये श्रोत्रसम्बद्ध शब्दका ही ज्ञान होता है ॥
वायुके अनुकूल होनेसे दूरदेशवृत्ति शब्दका भी ज्ञान होताहै इसको स्पष्टकरते है कि सानुलोम मधुर वायुके वारवार चलनेपर समु-
ल्लसित नाम समुल्लासको पारहे वीणाके सूक्ष्मशब्दके समूहसे प्लुत नाम व्याप्त कामवती नवीन स्त्रीसे कलितघोलनाडंवरा (तूर्यरव
विशिष्ट) काकली सूक्ष्मशब्द दूरसे भी रात्रिको क्या नही सुना जाता अर्थात् सुना जाताहै इससे अनुकूलवायुकी उपयोगता इसमें
अवश्य है ॥ बौद्ध कहते है कि यदि श्रोत्रेन्द्रिय प्राप्यकारी होय तो अच्छीतरह दरवाजे बंद करदेने पर भी घरमें बाहरके शब्दकी
प्रतीति कैसेहोतीहै अर्थात् न होनी चाहिये जैन भी उनके समान ही उत्तर देतेहैं कि अच्छीतरह कपाटबन्द कर देनेपर भी घरमें
बाहरके गन्धका ज्ञान भी कैसे होता है ॥ कपाट बंद करनेपर भी गन्धकी प्रतीति होतीहै इसमें प्रत्यक्षानुभव दिखाते है ॥ कपूर
चन्दन कस्तूरी प्रभृति गन्ध द्रव्योंसे युक्त तथा धूमायमान चन्दकिरो घरमें भी बाहरके गन्धका उद्गार आता है ॥ इसी तरह द्वार
बंद होनेपर भी धीरे २ मधुर शब्दोको कर रहे द्वारमें स्थित प्रियके शब्द भी प्रियाको प्रतीत होसकते है ॥ जैन कहते है
कि इसप्रकार श्रोत्रेन्द्रियसे प्राप्य ही शब्द गृहीतहोताहै । इसलिये श्रोत्रको भी निर्बाध प्राप्यकारिता सिद्ध भयी ॥ १३ ॥

अथास्य द्विविधस्यापि प्रकारान् प्रकटयन्ति ।

अब सूत्रकार पूर्वोक्त दोनो प्रकारके प्रत्यक्षके भी भेदोको कहते है ।

एतद्द्वितयमवग्रहेहावायधारणाभेदादेकशश्चतुर्विकल्पमिति ॥

पूर्वोक्त दो प्रकारके प्रत्यक्ष मेंसे एक एक अवग्रह ईहा अवाय तथा धारणा इनभेदोंसे चार चार प्रकारका होताहै ॥

अवग्रहश्चेहाचावायश्च धारणाच ताभिर्भेदोविशेषस्तस्मात् । प्रत्येकमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमप्रत्यक्षं चतुर्भेदमिति ॥

अवग्रहेत्यादि ... ईहा अवाय और धारणा इनपदोंका द्वन्द्व समास होकर पीछे भेद पदके साथ तत्पुरुष समास जानना ॥

... यह दिग्देशका निश्चायक है ... स्पष्टयन्ति ।

... चातकका शब्द दक्षिणमें सुना जा रहा है और ... भेदोंको चार सूत्रोंमे स्पष्ट करते है ।

निर्देश व्यवहार शब्दका नहीं है क्या अर्थात् है ई ‘तरसमुद्भूतसत्तामात्रगोचरदर्शनाज्जातमाद्यमवा-
शब्दमें कथञ्चिद्भी नहीं हो सकता जैसे प्र ‘

कहते है कि यह॥न्याकारविशिष्टवस्तुग्रहणमवग्रह इति ॥

विषय (अर्थ) विषयी (इन्द्रिय) इनके योग्यदेशमें रहनेसे अनन्तर उत्पन्न होनेवाला जो सत्तामात्रविषयक निर्विकल्पकबोध
उससे उत्पन्न होनेवाला जो आद्य अवान्तर सामान्य (घटत्वादि) तद्विशिष्टवस्तुविषयक ज्ञानको अवग्रह जानना ॥

विषय सामान्यविशेषात्मकोऽर्थो विषयी चक्षुरादिस्तयोः समीचीनो भ्रान्त्याद्यजनकत्वेनानुकूलो निपातो योग्यदेशा-
वस्थान तस्मादनन्तरसमुद्भूतमुत्पन्न यत्सत्तामात्रगोचर निःशेषविशेषवैमुख्येन सन्मात्रविषय दर्शन निराकारो बोध
स्तस्माज्जातमाद्य सत्त्वसामान्यादवान्तरैः सामान्याकारैर्मनुष्यत्वादिभिर्जातिविशेषैर्विशिष्टस्य वस्तुनो यद्ग्रहण ज्ञानं
तदवग्रह इति नाम्ना गीयते ॥

विषय नाम सामान्य विशेषात्मक पदार्थ विषयी नाम चक्षुरादि उनका जो भ्रान्त्यादि अजनकत्वेन अनुकूलनिपात नाम योग्य
देशादिकोंमें अवस्थान (स्थिति) उससे अनन्तर समुद्भूतनाम उत्पन्न जो सत्तामात्र विषयक नाम और सब विशेषोंसे विमुख
होनेसे सन्मात्र विषयक दर्शन नाम निराकार बोध उससे उत्पन्न आद्य नाम अन्य सब जात्यपेक्षया अधिकदेशवृत्ति सत्वसामान्यसे
अवान्तराकार (न्यूनदेशवृत्ति) जो मनुष्यत्वादिक जातिविशेष उन करके विशिष्ट पदार्थका जो ज्ञान सो अवग्रह इसनाममे कहा जाताहै ॥

अवगृहीतार्थविशेषाकाङ्क्षणमीहेति

पूर्वोक्त अवग्रह ज्ञानसे गृहीत पदार्थके आकाङ्क्षणको ईहा जानना ॥

अवगृहीतोऽवग्रहेण विषयीकृतो योऽर्थोऽवान्तरमनुष्यत्वादि जातिविशेषलक्षणस्तस्य विशेष कर्णाटलाटादिभेदस्तस्याकाङ्क्षण
भवितव्यताप्रत्ययरूपतया ग्रहणाभिमुख्यमीहेत्यभिधीयते ॥

अवगृहीत नाम अवग्रहसे गृहीत जो पदार्थ अवान्तरमनुष्यत्वादिलक्षण उसका जो विशेष कर्णाट लाटादिभेद उसका जो
आकाङ्क्षण नाम भवितव्यता प्रत्ययरूपसे ग्रहण उसमें आभिमुख्य जो सो ईहा जानना ॥

ईहितविशेषनिर्णयोऽवाय इति ॥

ईहाके विषयीभूतविशेषके निर्णयको अवाय कहा जाताहै ॥

ईहितस्येहया विषयीकृतस्य विशेषस्य कर्णाटलाटादेर्निर्णयो याथात्म्येनावधारणमवाय इति कीर्त्यते ॥

ईहित नाम ईहासे विषयीकृत जो कर्णाटलाटादिरूपविशेष उसका जो निर्णयनाम यथार्थज्ञान सो अवाय इस नामसे कहाजाताहै ।

स एव दृढतमावस्थापन्नो धारणेति ॥

वही अवाय दृढतमावस्थामें प्राप्तहोकर धारणा इसनामसे बोला जाताहै ॥

स इत्यवायो दृढतमावस्थापन्नो विवक्षितविषयावसाय एव सादरस्य प्रमातुरत्यन्तोपचितः कञ्चित् कालं तिष्ठन् धारणे-त्यभिधीयते । दृढतमावस्थापन्नोऽप्यवायः स्वोपढौकितात्मशक्तिविशेषरूपसंस्कारद्वारेण कालान्तरे स्मरणं कर्तुं पर्याप्नोतीति ॥

सूत्रमें जो सः शब्दहै उससे अवाय समझना दृढतमावस्थापन्न शब्दका अर्थ कहते हैं दृढतमावस्थापन्न नाम विवक्षित विषयक अवसाय (निश्चय) ही सादरप्रमाताने इकट्ठाकियाहुआ अतएव कुछकाल ठहरताहुआ वही पूर्वोक्त अवाय नामक ज्ञान धारणा इसनामसे कहाजाताहै ॥ क्योंकि दृढतमावस्थाको प्राप्त जनाग ही इससे प्राप्त आत्मशक्तिविशेषरूप संस्कारद्वारा कालान्तरमें स्मरण-करनेको समर्थ होताहै ॥

नन्वनिश्चयरूपत्वादीहायाः संशयस्वभावतैवेत्यारेकामपाकुर्वन्ति ।

अब ईहाको अनिश्चयरूप होनेसे संशयरूपता ही है इस आशङ्काके दूर करनेके लिये सूत्र कहतेहैं ॥

संशयपूर्वकत्वादीहायाः संशयाद्भेद इति ।

ईहारूपज्ञानको संशयपूर्वक होनेसे ईहाका संशयमें भेदहै ॥

उल्लेखनेक कोटिपरामर्शिसंशयस्ततोऽपि प्रमातुर्विशेषलिप्सायां पुरुषावग्रहानन्तरं हि किमयं दाक्षिणात्य उतौदीच्य इत्यनेक कोटिपरामर्शिसंशयस्ततोऽपि प्रमातुर्विशेषलिप्सायां दाक्षिणात्येनानेन भवितव्यमित्येवमीहा जायत इति तन्तुपटवत् हेतुहेतुमद्भावाद्व्यक्तमनयोः पृथक्त्वम् ॥

किसी पुरुषको पुरुषविषयक अवग्रहके बाद क्या यह पुरुष दाक्षिणात्य (दक्षिणदेशनिवासी) है अथवा औदीच्य (उत्तरदेश

निवासी है इत्याकारक एकधर्म्मिविशेष्यक विरुद्ध नानाधर्म्मप्रकार ज्ञानरूप संशय उत्पन्न होता है उससे भी प्रमाताकी विशेष लिप्सा होनेपर यह पुरुष दाक्षिणात्य होना चहिये इत्याकारक ईहा नामका ज्ञान उत्पन्न होता है इसलिये तन्तु और पटकी तरह हेतुहेतुमद्भाव (नाम संशयको ईहाका कारण) होनेसे संशय और ईहाका परस्पर भेद स्पष्ट ही है ।

दर्शनादीनां कथञ्चिदव्यतिरेकेऽपि संज्ञाभेदं समर्थयन्ति ।

अब दर्शनादिकोंका परस्पर कथञ्चित् अभेद है तो भी इनका नामभेद युक्तियुक्त है इस बातको सूत्रकार समर्थन करते हैं ॥

कथञ्चिदभेदेऽपि परिणामविशेषादेषां व्यपदेशभेद इति ।

पूर्वोक्त दर्शनादिकोंका कथञ्चित् अभेद होनेपर भी परिणाम विशेष होनेसे इनके नामका भेद है ऐसा जानना ।

यद्यप्येकजीवद्रव्यतादात्म्येन द्रव्यार्थादेशादमीषामैक्यम् । तथापि पर्यायार्थादेशाद्भेदोऽपीति तदपेक्षया व्यपदेशभेदोऽपि सूपपाद इति ।

यद्यपि एक जीवरूप द्रव्यमें तादात्म्य नाम तादात्म्य सबन्धसे सम्बधित होनेसे द्रव्यार्थिक नयापेक्षासे पूर्वोक्त दर्शनादिकोंका ऐक्य है तोभी पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे भेद भी है इसलिये पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे नामभेद भी सूपपाद ही है ॥

अथामीषां भेदं भावयन्ति ।

अब सूत्रकार दर्शनादिकोंके परस्पर भेदका भावन कराते हैं ।

असामस्त्येनाप्युत्पाद्यमानत्वेनाऽसङ्कीर्णस्वभावतयानुभूयमानत्वादपूर्वापूर्ववस्तुपर्यायप्रकाशकत्वात् क्रमभावित्वाच्चैते व्यतिरिच्यन्त इति ॥

असामस्त्येन (क्रमेण) भी उत्पाद्यमान होनेसे तथा असङ्कीर्णस्वभावता (परस्परभिन्नस्वभावता) से अनुभूयमानहोनेसे और अपूर्व अपूर्व वस्तु पर्यायोंके प्रकाशक होनेसे और क्रमभावि होनेसे दर्शनादिक परस्पर भिन्न २ स्वरूपवाले होते हैं ।

असङ्कीर्णस्वभावतया परस्परस्वरूपवैचित्र्येणानुभूयमानत्वाद्दर्शनादयो भिद्यन्ते । तथानुभवनमप्यमीषामसामस्त्येना-

प्येकद्वित्र्यादिसंख्यतयोत्पद्यमानत्वादवसेयम् । तथाहि । प्रमातुर्विचित्रक्षयोपशमवशात् कदाचिद्दर्शनमेव कदाचिद्दर्शनाव-ग्रहौ कदाचिद्दर्शनावग्रहसंशयादयः क्रमेण समुन्मज्जन्तीति सिद्धमतोऽसङ्कीर्णत्वेनैव तेषामनुभवनम् अपूर्वापूर्ववस्तुपर्याय-प्रकाशकत्वक्रमभावित्वेऽपि प्रत्यात्मवेद्ये एवात्र प्रयोगाः पुनरेवं । येऽसङ्कीर्णस्वभावतयाऽनुभूयन्ते अपूर्वापूर्ववस्तुपर्यायप्र-काशकाः क्रमभाविनो वा ते परस्परं व्यतिरिच्यन्ते यथा स्तम्भादयोऽनुमानादयोऽङ्कुरकन्दलकाण्डादयो वा तथा चैत इति ॥

दर्शनादिक जो है सो असङ्कीर्णस्वभावतया नाम परस्पर स्वरूपवैविक्त्येन अर्थात् भिन्न २ स्वरूपतया अनुभूयमान होनेसे भिन्न २ ही है । दर्शनादिकोंका परस्पर स्वरूपवैविक्त्येन अनुभवन भी असामस्त्येन नाम एक वा दो अथवा तीन आदि संख्याने उत्पन्न होने करके जानना । असामस्त्येन उत्पद्यमानत्वको ही स्पष्ट करते हैं । तथाहि इति । प्रमाता पुरुषके विचित्र क्षयोपशम वशसे कभी तो दर्शन ही और कभी दर्शन तथा अवग्रह और कदाचित् दर्शन अवग्रह तथा संशय क्रमसे उत्पन्न होतेहैं यह बात अनुभवसिद्ध है इसलिये असंकीर्णत्वेन ही दर्शनादिकोंका अनुभवन है । अपूर्वापूर्ववस्तुपर्यायप्रकाशकत्व और क्रमभावित्व भी प्रत्यात्मवेद्य ही है अर्थात् अनुभवसिद्ध ही है । इस जगहमें अनुमान प्रयोग (व्याप्तिज्ञान) ऐसा जानना । जो पदार्थ असङ्कीर्णस्वभावसे अनुभूत होते हैं अथवा अपूर्वापूर्ववस्तुपर्यायप्रकाशक होते हैं अथवा क्रमभावी होते हैं सो परस्पर भिन्न २ ही होते हैं जैसे स्तम्भादि और अनुमानादि और अङ्कुर कन्दल और काण्डादि पदार्थ पूर्वोक्त हेतुवाले होनेसे पूर्वोक्त साध्यवाले हैं ऐसे ही दर्शनादिक भी हैं ॥

अथामीषां क्रमनियमार्थमाहुः ।

अब दर्शनादिकोंके क्रमनियमके लिये कहते हैं ।

क्रमोऽप्यमीषामयमेव तथैव संवेदनादेवं क्रमाविर्भूतनिजकर्म्मक्षयो-पशमजन्यत्वाच्चेति ।

दर्शनादिकोंका क्रम भी यही नाम दर्शनसे उत्तर अवग्रह एवं उत्तर २ है क्योंकि ऐसा ही अनुभवमें आताहै और इस क्रमसे (आविर्भूत) प्रकटभया जो (निज) स्व कर्म्मक्षयोपशम तज्जन्य होनेसे भी दर्शनादिकोंका पूर्वोक्त ही क्रमहै ॥

अयमेव दर्शनावग्रहादिरमीषां क्रमस्तेनैव क्रमेणानुभवाद्यदेव हि सन्मात्रमैक्षि तदेव वर्णाद्याकारेण केनचिदवग्राहि तदनन्तरमनिर्धारितरूपतया सन्देहास्पदीचक्रे ततोऽपि नियताकारेणेहामासे । ततोऽपीहिताकारेण निरणायि पुनः कालान्तरे स्मृतिहेतुत्वेन धारयाञ्चक्रे इति सर्वैरनुभूयते । दर्शनज्ञानावरणक्षयोपशमलक्षणकारणेनाप्येवमेव भूष्णुनाऽमीषामुत्पाद्यत्वाच्चायमेव क्रम । क्रमोत्पादिष्णुना हि कारणेन क्रमेणैव स्वकार्यं जनयितव्यम् यथा स्थासकोशकुशूलछत्रादिनेति ॥

दर्शनादिकोंका अयमेव नाम दर्शन अवग्रहादि ही क्रम है क्योंकि उसीक्रमसे अनुभव होता है क्यों कि जो पदार्थ सन्मात्रतासे देखाजाताहै वही रूपादि आकारसे किसी प्रमातासे अवगृहीत होता है उसके अनन्तर वही पदार्थ अनिर्धारित रूपादिमान् होनेसे सन्देहास्पद होताहै संशयसे भी फिर नियताकारेण वही पदार्थ ईहित होताहै । तो भी फिर ईहित आकारसे निर्णीत होताहै पुन कालान्तरमे स्मृतिहेतुत्वेन धारण होताहै यह बात सर्वानुभवसिद्ध है ॥ और इसीक्रमसे उत्पन्न होनेवाले ज्ञानावरणके क्षयोपशमरूपकारण जन्य होनेसे भी इनका यही क्रम है क्योंकि क्रमसे उत्पन्न होनेवाले कारणोंसे क्रमसे ही स्वकार्य उत्पन्न होता है जैसे स्थास कोश कुशल तथा छत्रादिकोंसे क्रमेण ही कार्य उत्पन्न होता है ॥

व्यतिरेके दोषमाहु ॥

इस पूर्वोक्त क्रमके न माननेमे दोष कहते है ॥

अन्यथा प्रमेयानवगतिप्रसङ्ग इति ॥

दर्शनादिकोंके पूर्वोक्त क्रमके न माननेसे प्रमेयकी अनवगति (असिद्धि) का प्रसङ्ग आवेगा ।

अन्यथेति यथोक्तक्रमानभ्युपगमे प्रतीयमानक्रमापह्नवे हि दर्शनादीनां प्रमेयापह्नव एव कृतो भवतीति ॥

अन्यथा नाम यथोक्त प्रतीयमान क्रमके न माननेसे दर्शनादिकोंके (प्रमेय) विषयका अस्वीकार ही प्राप्त होगा ॥

उक्तमेव क्रम व्यतिरेकद्वारा समर्थयन्ते ॥

पूर्वोक्त ही क्रमको व्यतिरेकद्वारा सिद्ध करते है

न खल्वदृष्टमवगृह्यते नचानवगृहीतं सन्दिह्यते नचासन्दिग्धमीह्यते नचानीहितमवेयते नाप्यनवेतं धार्यत इति ॥

जो पदार्थ अदृष्ट नाम दर्शनका विषय नही होता है सो अवगृहीत नाम अवग्रहका विषय भी नही होता । और जो अवगृहीत नही होता सो संदिग्ध भी नही होता जो सन्दिग्ध नही होता सो ईहित नाम ईहाका विषय भी नहीं होता और जो ईहित नही होता सो अवेत नाम अवायका विषय भी नही होता जो अवेत नहीं सो धारणाका विषय भी नहीं होता (यह कथन अनुभवसाक्षिक ही जानना)

स्पष्टम् ॥ (भा०) इस सूत्रका अर्थ स्पष्ट ही है ॥

क्वचिदेषां तथाक्रमानुपलक्षणे कारणमाहुः ।

कहीक दर्शनादिकोंके पूर्वोक्त क्रमके अनुपलक्षण (अज्ञान) में कारण कहते हैं ॥

क्वचित्क्रमस्यानुपलक्षणमेषामाशूत्पादादुत्पलपत्रशतव्यतिरेकक्रमवदिति ॥

जिसप्रकार कमलपत्र शत भेदकी शीघ्र उत्पत्ति होनेसे कालभेद प्रतीत नहीं होता इसी प्रकार दर्शनादिकों की भी शीघ्र (अविलम्बेन) उत्पत्तिहोनेसे क्रम (कालभेद) ज्ञान नहीं होता ॥

क्वचिदित्यभ्यस्ते करतलादौ गोचरे । शेषं व्यक्तम् ।

सूत्रमें जो कचित् पद है उसका अभिप्राय कहते है कचित् नाम (अभ्यस्त) बहुतदफे देखे गये करतलादिक विषयमें बाकी जो सूत्रमें पद है सो सुगमार्थ है इसलिये उनकी व्याख्या नही लिखी ॥

पारमार्थिकप्रत्यक्षं लक्षयन्ति ॥

अब पूर्वोक्त दो प्रकारके प्रत्यक्षमेंसे पारमार्थिक प्रत्यक्षको सूत्रकार स्पष्ट करते है ।

पारमार्थिकं पुनरुत्पत्तावात्ममात्रापेक्षमिति ।

पारमार्थिक प्रत्यक्ष तो स्वोत्पत्तिमें आत्ममात्रापेक्ष है अर्थात् इन्द्रियादिकोंकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्माकी ही अपेक्षा रखता है ।

क्षयक्षयोपशमविशेषविशिष्टमात्मद्रव्यमेवाव्यवहितं समाश्रित्य पारमार्थिकमेतदवध्यादिप्रत्यक्षमुन्मज्जति न पुनः सांव्यवहारिकमिवेन्द्रियादिव्यवहितमात्मद्रव्यमाश्रित्येति भावः ।

क्षय और क्षयोपशमविशेषविशिष्ट अव्यवहित केवल आत्मद्रव्यको ही आश्रय करके पारमार्थिक जो अवधि आदिक प्रत्यक्ष है सो उत्पन्न होता है परन्तु सांव्यवहारिक प्रत्यक्षकी तरह इन्द्रियादिकोंसे व्यवहित आत्मद्रव्यको आश्रयकरके उत्पन्न नहीं होता इस- सूत्रका यह अभिप्राय है ॥

अस्य भेदावुपदिशन्ति ॥

अब सूत्रकार पारमार्थिक प्रत्यक्षके अवान्तर भेदोंको कहते है ॥

तद्विकलं सकलञ्चेति

पूर्वोक्त पारमार्थिक प्रत्यक्ष विकल और सकल इन भेदोंसे दो प्रकारका है ॥

असम्पूर्णपदार्थपरिच्छेदकत्वाद्विकलम् । तद्विपरीतं तु सकलम् ॥

असम्पूर्ण नाम यत्किञ्चित् पदार्थका (परिच्छेदक) बोधक होनेसे तो विकल और सम्पूर्ण पदार्थ परिच्छेदक होनेसे सकल नामवाला पारमार्थिक प्रत्यक्ष होता है ॥

विकलम्भेदतो दर्शयन्ति ।

अब सूत्रकार पारमार्थिक भेद विकलप्रत्यक्षके भेदोंको कहते हैं ॥

तत्र विकलमवधिमनःपर्यायज्ञानरूपतया द्वेधेति ॥

पूर्वोक्त पारमार्थिकभेद विकल तथा सकल प्रत्यक्षमेंसे विकल जो है सो अवधिज्ञान तथा मनःपर्य्यायज्ञान इन भेदोंसे दो प्रकारका है ॥

सुगमम् ॥ (भा०) इससूत्रका अर्थ सुगम ही है ॥ अवधिं लक्षयन्ति ॥

अव अवधिज्ञानका लक्षण करते है ॥

अवधिज्ञानावरणविलयविशेषसमुद्भवं भवगुणप्रत्ययं रूपिद्रव्यगो-चरमवधिज्ञानमिति ।

अवधिज्ञानके आवरणविलयविशेषसे नाम अवधिज्ञानके आवरण क्षयोपशम विशेषसे समुत्पन्न तथा (भव) जन्म तथा (गुण) सम्यग्दर्शनादि है हेतु जिसके ऐसा (रूपिद्रव्य) रूपवान् द्रव्यको विषय करनेवाला जो ज्ञान उसको अवधिज्ञान कहतेहैं ॥

अवधिज्ञानावरणस्य विलयविशेषः क्षयोपशमभेदस्तस्मात्समुद्भवति यत् । भवः सुरनारकजन्मलक्षणो गुणः सम्यग्दर्शनादिस्तौ प्रत्ययौ हेतू यस्य तत्तथा । तत्र भवप्रत्ययं सुरनारकाणाम् । गुणप्रत्ययं पुनर्नरतिरश्चाम् । रूपिद्रव्यगोचरं रूपिद्रव्याणि पृथिवीपाथःपावकपवनान्धकारच्छायाप्रभृतीनि तदालम्बनमवधिज्ञानं ज्ञेयम् ।

अवधिज्ञानके आवरणका विलयविशेष नाम क्षयोपशमभेद उससे जो उत्पन्न होवे और भव नाम सुर तथा नारक जन्मस्वरूप गुण नाम सम्यग्दर्शनादिक वह दोनों ही है प्रत्यय नाम हेतु जिसके ऐसा । उनमें भवप्रत्यय सुर और नारकोंका है गुणप्रत्यय तो मनुष्य तथा पशुवगैरोंका है । रूपिद्रव्यगोचरं नाम पृथिवी जल तेज वायु अन्धकार और छायादिक है गोचर नाम विषय जिसके उसको अवधिज्ञान जानना ॥

अत्र न्यायमार्गानुयायिनः सङ्गिरन्ते । ननु पृथिव्यादीनां चतुर्णां सकर्णा वर्णयन्तु द्रव्यताम् । तिमिरच्छाययोस्तु द्रव्यता वाचोयुक्तिर्युक्तिरिक्तैव भासामभाव एव हि तमच्छाये गदतां सच्छाये । तथाहि शसधरदिनकरकरनिकरनिरन्तरप्रसरासम्भवे सर्वतोऽपि सति तम इति प्रतीयते । यदातु प्रतिनियतप्रदेशेनातपत्रादिना प्रतिबद्धस्तेजःपुञ्जो यत्र यत्र न संयुज्यते तदा तत्र तत्र छायेति प्रतीयते । प्रतिबन्धकाभावे तु स्वरूपेणालोकः समालोक्यत इत्यालोकाभाव एव तमच्छाये । यदि च तमो द्रव्यं भवेत् तदा रूपवद्द्रव्यसंस्पर्शाव्यभिचारात् स्पर्शवद्द्रव्यस्य च महतः प्रतिघातहेतुत्वात्तरलतरतुङ्गतरङ्गपरम्परोपेतपारावारावतार इव प्रथमजलधरधाराधोरणीधौताञ्जनगिरिगरीयः शृङ्गप्रतिवादिनीव निर्यन्निर्झरझा-

स्फारिवारिदुर्वारशीकरासारसिच्यमानाभिरामाराममहिरुहसमूहप्रतिच्छन्द इव च प्रवृत्ते तिमिरभरे सञ्चरत' पुस' प्रतिबन्धः स्याद्गोलकस्येव चास्यावयवभूतानि खण्डावयविद्रव्याणि प्रतीयेरन्नेव छायायामपीति कथ ते द्रव्ये भवेताम्। अत्राभिदध्महे। तमसस्तावदभावस्वभावतास्वीकृतिरानुभाविकी आनुमानिकी वा। न तावदानुभाविकी यतोऽभावानुभवो भावान्तरोपलम्भे सत्येव सम्भवी कुम्भाभावोपलम्भवत् नच प्रचुरतरतिमिरनिकरपरिकरितापवरकोदरे स्वकरतलादिमात्रस्याप्युपलम्भ' सम्भवति तत्कथ तदनुभूतिर्भवेत्। कथ वा प्रदीपादिप्रभाप्राग्भारप्रोज्जृम्भणमन्तरेणास्योपलम्भः कुम्भाद्यभावो हि तद्भावे एवानुभूयमानो दृष्टस्तत्कथमेषन्यायमुद्रातिक्रमो न कृतः स्यात्। अथ यो भावो यावता सामग्र्येण गृह्यते तदभावोऽपि तावतैव तेन तदिहालोकस्य स्वातन्त्र्येणालोकान्तरमन्तरेणैव ग्रहणमालोकितमिति तदभावस्यापि तत्किमस्यादितिचेत्। अहो पीतविषस्याप्यमृतोद्गारः। एव वदता त्वयैव तमसि द्रव्यता व्याहरात्। किमिदमीदृशमैन्द्रजालमिति चेत् इदमीदृशमिन्द्रजालमालोच्यताम्। आलोक' किल चक्षुषा सयोगाद्गृह्यते। यदि च तदभावस्यापि तत्सामग्र्येणैव ग्रहण स्यात् तदा तस्यापि ग्रहणे चक्षु' सयोगसद्भावादायाता द्रव्यतापत्ति। सयोगस्य गुणत्वेन तद्वृत्तित्वात्। अथासयुक्तोऽप्यय प्रेक्ष्यते तदा कथ यो भावो यावतेत्यादि मृषोद्य न स्यात्। कथ वा चक्षुष' प्राप्यकारिताप्रवादः स्वपाद॰ स्यात्। विशेषणविशेष्यभावसम्बन्धबन्धुरस्यान्धकारस्य ग्रहणादयमदोष इति चेत्। कतमस्यैषविशेषण न शरीरस्य तदन्यत्रापि प्रतिभासनात्। नापि भूतलकलशकुड्यादेस्तत एव। तर्हि भवतु नभस इति चेत्तदशसमेतस्य तद्विशेषणविशेष्यीभावेन कदाचिदप्रतिभासनात्। तन्नैतदभावतास्वीकृतिरानुभाविकी भव्या। नाप्यानुमानिकी। यत' कतमोऽत्र हेतुरारयायते सख्यावता। किं भाववैलक्षण्येन लक्ष्यमाणत्वम्। १। भावविलक्षणसामग्रीसमुत्पाद्यत्व। २। असत्येवालोके तत्प्रतिभासनम्। ३। आलोकग्रहणसामग्र्या गृह्यमाणत्वम्। ४। तिमिरद्रव्योत्पादककारणाभावः। ५। द्रव्यगुणकर्म्मातिरिक्तकार्य्यत्वम्। ६। आलोकविरोधित्वम्। ७। भावरूपताप्रसाधकप्रमाणाभावोवा। ८। इत्यष्टपक्षीराक्षसीव त्वत्पक्षभक्ष्यभक्षणविचक्षणोपतिष्ठते। तत्र न तावदाद्यः पक्ष' क्षेमङ्करः। कुम्भोऽय स्तम्भोयमिति हि यथा कुम्भादयो भावा विधिमुखेन प्रत्यक्षेण प्रेक्ष्यन्ते। तथेद तम इति तमोऽपि। अभावरूपतायां तस्य प्रतिषेधमुखेन प्रत्ययः प्रादुःष्यात्। यथा कुम्भोऽत्रनास्तीति। ननु नाशप्रध्वसादिप्रत्यया विधिमुखेनापि प्रवर्तमाना दृश्यन्ते। नैव नाशादिशब्दानामेव भावप्र-

तिषेधाभिधायकत्वात् । अत एव हि कुम्भस्य प्रध्वंस इति सोपपदानामेषां प्रयोगोपपत्तिः यदितु तमः प्रभृति शब्दा अपि तत्समानार्थतामाविभ्रीरंस्तदानीं कुम्भस्याभाव इतिवदालोकस्य तम इत्यपि प्रोच्येत । नचैवं कश्चिद्विपश्चिदपि प्रवक्ति अथालोकाभावे सङ्केतितस्तमः शब्दो नाभावमात्रे ततो न तथा व्यपदेश इतिचेन्नैवं यदिह्यन्धकाररूपोऽभावोऽपि विधिमुखेन वीक्ष्येत तदानीं किमन्यदेतस्य भाववैलक्षण्येन लक्ष्यमाणत्वं स्याद्यतो हेतुसिद्धिर्भवेत् । १ । अथ भावविलक्षणसामग्री-समुत्पाद्यत्वं हेतुस्तथाहि समवाय्यसमवायिनिमित्तकारणकलापव्यापाररूपाभावोत्पादिका सामग्री नैव तमसीयं समगंस्त तदशस्तम् । यतः किमिदं समवायिकारणनाम्ना त्वमाम्नासीः । यत्र कार्य्यं समवेतमुत्पद्यते तदितिचेत् तदसम्यक् समवायस्य निरन्तरसुहृद्गोष्ठीषु गौरवार्हत्वात् तत्प्रसाधकत्वाभिमतस्येह तन्तुषु पट इत्यादि प्रत्ययस्याप्रसिद्धेः पटे तन्तव इत्यादिरूपस्याबालगोपालं प्रतीतत्वात् सिद्धौ वा इह भूतले घटाभाव इत्यभावप्रत्ययेन व्यभिचारात् सम्बन्धमात्रपूर्वताप्रसाधने सिद्धसाधनादविष्वग्भावमात्रनिमित्ततया तदङ्गीकारात् एकान्तैकस्वरूपत्वेन चास्यैकवस्तुसमवायसम्भवे समस्तवस्तुसमवायस्य विनश्यदेकवस्तुसमवायाभावे समस्तवस्तुसमवायाभावस्य वा प्रसङ्गात् । तत्तदवच्छेदकभेदात्तदुपपत्तौ तस्यापि कथञ्चिद्भेदापत्तेरनेकपुरुषावच्छिन्नपर्षदादेरपि तावत् स्वभावभावेन कथञ्चिद्भेदात् । अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपतया चास्याकाशसामान्याद्येतादृग्वस्तुसमाश्रितत्वमेव भवेन्नतु कार्य्यवस्तु समाश्रितत्वम् । तत्तत्सहकारिकारण-कलापोपनिपातप्रभावात् कार्यसमवायस्वीकारोऽपि सनिकारस्तत् स्वभावप्रभावप्रतिबद्धानां तेषामपि सदा सन्निधान-प्रधानत्वात् तथा चास्तमिता समवायिकारणकिंवदन्ती तदसत्वे किमसमवायिकारणं समवायिकारणप्रत्यासन्नत्वं हि तल्लक्षणं तदसत्वे कथमेतत् स्यात् । तथाच तच्छेषभूतस्य निमित्तकारणस्यापि का व्यवस्था । सन्तुवा कारणान्यमूनि तथापि यथा कथंचिदालोककलापस्योत्पादस्तथा तमसोऽपि भविष्यति किमरुन्निविरचनाभिर्व्यपासितुं शक्यते । किम-स्योत्पादकमिति चेदालोकस्य किमितिवाच्यम् । तेजोऽणव इति चेदस्यापि तमोणव एव सन्तु सिद्धास्तावत्तैजसास्ते ऽविवादेन वादिप्रतिवादिनोरिति चेत् तामसा अपि तद्वदेव किं न सेत्स्यंतीति त्यज्यतामाग्रहः । असत्येवालोके तत्प्र-तिभासनमप्यसम्यक् नहि यस्मिन्नसत्येव यत्प्रतिभासते तत्तदभावमात्रमेव भवति असत्येव व्यवधाने प्रतिभासमानैर्घ-टादिभिर्व्यभिचारात् । कथंच नैव प्रतिबन्धके असत्येव समुत्पद्यमानस्य स्फोटस्यापि तदभावमात्रता स्यात् । अथ स्फोटो

दाहकात्मकतया स्पार्शनप्रत्यक्षेणानुभूयते । अभावमात्रतायां हि तस्य नेयमौपपत्तिकी स्यात् तर्हि तमोपि शैत्येन तेनैव प्रत्यक्षेण प्रेक्ष्यमाण कथमभावस्वभाव भवेत् । ३ । अथालोकग्रहणसामग्र्या गृह्यमाणत्व हेतुस्तथाच श्रीन्यायभूषणो योहि भावो यावत्या सामग्र्या गृह्यते तदभावोऽपि —स्यैवेत्यालोकग्रहणसामग्र्या गृह्यमाणन्तमस्तदभाव एवेति तदपि न किञ्चित् । तमोग्रहणसामग्र्या गृह्यमाणस्यालोकस्यै तदभावताप्रसङ्गेनानैकान्तिकत्वात् । घटपटयोर्वा समानग्रहण-सामग्रीकतया परस्पराभावत्वप्रसङ्गात् । ४ ।

इस रूपिद्रव्योंकी गणनामें (न्यायमार्गानुयायी) षोडश वा सप्त पदार्थवादी जो लोग है सो ऐसा कहते हैं कि पृथिवी जल तेज तथा वायु इन चारोंको बुद्धिमान् तुम (जैन) द्रव्यता कहो । (अर्थात् पूर्वोक्त रूपिद्रव्योंमेंसे प्रथम चारको द्रव्यत्वमात्र नेयायिकको अभीष्ट है और रूपिद्रव्यत्व तो तीनको ही है परन्तु रूपिद्रव्यत्व अरूपिद्रव्यत्व इसविचारको छोडकर पहिले सामान्यत विचार करते हैं कि तुम्हारे कहे हुए रूपिद्रव्योंमें द्रव्यत्व ही सिद्ध नहीं इत्यादि) परन्तु (तम) अन्धकार तथा छायाको द्रव्यत्वकहना तो युक्तिशून्य ही है अर्थात् ठीक नहीं । क्योंकि विजातीयतेजोऽभाव स्वरूप ही तम तथा छाया पदार्थ है (तथाहि) चन्द्रमा तथा सूर्यकी किरणोंके समूहके प्रसरके निरंतर न होनेसे तम इत्याकारक प्रतीति होती है । और जब तुच्छथोडीसी जगहमें रहने वाले छत्रादिकोंसे प्रतिबद्ध तेजोऽवयवी जिस २ स्थलमें संयुक्त नहीं होताहै तब उस २ स्थलमें (इय) छाया इत्याकारकप्रतीति होती है । और जब उस छत्रादिस्वरूप प्रतिबन्धकका अभाव होजाय तो तेजोवयवी स्वरूपेण प्रतीयमान होताहै इसलिये आलोकाभाव ही तम और छायाहै । और यदि तम द्रव्यस्वरूपहोवे तो रूपवाले द्रव्यको स्पर्शसे अव्यभिचारताहै अर्थात् जो द्रव्यरूपवान् होताहै सो स्पर्शवान् अवश्य होता ही है । और स्पर्शवान् जो महत् पदार्थ है सो प्रतिघात (संयोग विशेष) का हेतु होता है । इसलिये अत्यन्त चंचल बडेभारी तरङ्गोंके समूहसे युक्त समुद्र अवतारकी तरह और प्रथम मेघकी धाराके पडनेसे धौत अञ्जन (सुरमा) के पर्वतके शृङ्गकी तरह प्रवृत्त अन्धकारमें विचर रहे पुरुषका प्रतिबन्ध होना चाहिये और पृथवीकी तरह इसके अवयवभूत खण्डअवयवी द्रव्य भी प्रतीत होने चाहिये (त्वया तत्र रूपादिमत्वस्य स्वीकृतत्वात्) होते तो नहीं है इसलिये तम और छाया यह दो द्रव्यरूप कैसे होसकते है अर्थात् द्रव्यरूप नहीं है । अब जैन कहते है कि इस पूर्वोक्तनैयायिकके कथनका हम उत्तर कहते है । जैन कहते है कि पहिले हम पूछते है कि अन्धकारको अभावस्वरूपताका स्वीकार तुम अनुभवसे कहतेहो किम्वा अनुमानसे अनुभवसे तो नहीं कहसकते क्यों कि अभावका अनुभव (सर्वमत साधारण्येन) भावान्तरके उपलम्भ होनेपर ही होता है जैसे कुम्भादिकोंके अभावका ज्ञान भूतलादिकोंके ज्ञान

होनेसे ही होता है। गाढ अन्धकारके होनेपर तो अपने करतल (हथयाली) का भी ज्ञान नही होता है तब तेजोऽभावस्वरूप अन्धकारका भी अनुभव कैसे होयसके । तमके अभाव पक्षमे एक दोष कहकर अब दूसरा कहते है कि कुम्भादिकोंका अभाव दीपादिकोंकी प्रभाके होनेपर ही गृहीत होता है तब पूर्वोक्त प्रभाके न होनेपर भी अन्धकारकी प्रतीति कैसे हो सके होती तो है तब अभाव प्रत्यक्षमें दीपादिकोंकी प्रभाको भी कारणता है इसन्यायका उलंघन नही भया क्या अर्थात् हो ही गया । जैन कहते है कि हे न्यायविद् यदिकदाचित् जो भाव पदार्थ जितनीक सामग्रीसे गृहीत होता है उसका अभाव भी उतनीक ही सामग्रीसे गृहीत होता है इसलिये प्रकृतमें आलोकका आलोकान्तर निरपेक्ष स्वातन्त्र्येण ही बोध हम लोगोंसे देखा जाता है इसलिये उसका अभाव जो अन्धकार उसका भी आलोकसे विना ही ज्ञान क्यो न होवे अर्थात् होसकेगा ऐसा तुम कहतेहो तब जैन कहते है वडा आश्चर्य्य है कि पीतविषका भी तुमारा अमृतका उद्गार (डधार) है क्यों कि ऐसा कहरहे तुमने ही (तम) अन्धकारमें द्रव्यत्व व्यवहारको स्वीकार करलिया । नैयायिक कहते हैं कि भाई यह क्या तुम ऐसा इन्द्रजाल करतेहो जैनकहते है कि यह ऐसा इन्द्रजाल है तुम अच्छी तरह देखो । आलोक जो है सो चक्षुरिन्द्रियकरके संयोग सन्निकर्षसे गृहीत होता है। सो यदि उसके अभावका भी उसीसामग्रीसे ग्रहण होताहोय तब उस अभावके भी ज्ञानमें चक्षुःके सयोगका सद्भाव होनेसे तमको द्रव्यत्वकी आपत्ति आगयी । क्यों कि सयोगरूप गुणको द्रव्यमें ही वृत्तिता है (तव मतेऽपि गुणानां द्रव्यमात्राश्रितत्वस्यैव स्वीकृतत्वात् सिद्धं तमसः संयोगाश्रयत्वेन द्रव्यत्वम्) यदिकदाचित् असंयुक्त भी अन्धकारका चाक्षुपज्ञान होजाता है ऐसा कहते हो तब जो भाव जिससामग्रीसे गृहीत होता है उसका अभाव भी उसीसामग्रीसे गृहीत होता है ऐसा जो तुमने कहाथा सो तुमारा कथन झूठा कैंसे नही अर्थात् झूठा ही भया । और असंयुक्त पक्षमें चक्षुरिन्द्रियको प्राप्यकारित्व जो तुम कहते हो सो भी असूपपाद होगा अर्थात् नही कहसकोंगे । यदिकदाचित् विशेषणविशेष्यभाव नामक सम्बन्धविशिष्ट अन्धकारका ग्रहणहोता है इसलिये प्राप्यकारित्वप्रवाद असूपपादहोगा ऐसा जो तुमने दोषदियाथा सो नही है ऐसा कहतेहो तब भाई नैयायिक हमपूछते है कि यह जो अन्धकार है सो किसका विशेषण है शरीरका तो नही कह सकते क्योंकी शरीरसे अन्यत्र भी अन्धकारकी प्रतीति होती है। इसीलिये भूतल कलश तथा कुड्यादिकोंका भी विशेषण नही होसकता । यदिकदाचित् सर्वव्यापी आकाशका विशेषणकहोगे तो यह कथन तो ठीक नहीं क्योंकि अन्धकारकी आकाशके साथ विशेषणविशेष्यभावेन कभी भी प्रतीति नही होती इसलिये अन्धकारको अभावस्वरूपमानना ठीक नही है।

अनुमानसे भी अन्धकारको अभाव स्वरूप मानना युक्तियुक्त नहीं क्योंकि इसको अभावसिध्यर्थ कोनसा हेतु तुम कहतेहो क्या भाववैलक्षण्येन प्रतीयमानत्वरूप हेतु कहतेहो अथवा भावविलक्षणसामग्रीसमुत्पाद्यत्व कहतेहो किम्वा असत्येवालोके तत्प्रतिभासनरूप कहतेहो अथवा आलोकग्रहणसामग्र्या गृह्यमाणत्वरूप कहतेहो वा तिमिरद्रव्योत्पादककारणाऽभावरूप किंवा द्रव्यगुणकर्मातिरिक्तकार्यत्वरूप कहतेहो अथवा आलोकविरोधित्वरूप कहतेहो किम्वा भावरूपताप्रसाधनप्रमाणाभावरूप हेतु कहतेहो इत्याकारक अष्टपक्षी राक्षसीकी तरह तुमारे पक्षरूपी भक्ष्यके भक्षणमें निपुण साक्षने विद्यमान है। इन पूर्वोक्त आठ हेतुओंमेंसे प्रथम तो ठीक नहीं क्योंकि जैसे कुम्भोऽयं स्तम्भोऽयम् इसप्रकार कुम्भादि पदार्थ विधिमुखेन प्रतीतहोते हैं ऐसे ही इद तम इसप्रकार तम भी विधिमुखेन ही प्रतीत होताहै। यदिकदाचित् अन्धकारको अभावरूपता होवे तो इसका प्रतिषेधमुखेन (नास्तीत्याद्याकारेण) ज्ञान होवे। जैसे कुम्भोऽत्रनास्ति इत्याकारक कुम्भाभावका ज्ञान होता है। नैयायिक प्रश्न करते हैं कि घट नाशोऽय घटो नष्ट इत्याकारक नाशादिविषयक ज्ञान विधिमुखेन भी उत्पन्नहोते देखे जाते हैं इसीतरह विधिमुखेन प्रतीतिके विषय भी तमके अभावस्वरूपता स्वीकारमे क्या विरोध है अर्थात् कुच्छ विरोध नहीं। जैन कहते है कि ऐसा नही कहना क्योंकि नाश आदिक शब्द ही भावप्रतिषेधके विधायक है। इसीलिये कुम्भस्य प्रध्वंस इत्यादिक स्थानोंमें प्रपूर्वकोंका इनका प्रयोग उपपन्न होताहै अर्थात् शुद्ध शब्दका वाच्य होनेसे तमको भावरूपता ही है।नत्वभावरूपत्वम्। और यदि तम आदि शब्द भी नाश आदि शब्दोंके समानार्थक ही होवें तो कुम्भस्य अभाव इसकी तरह आलोकस्य तम ऐसा भी प्रयोग कहा जावें। परन्तु इसप्रकार कोई पण्डित भी नहीं कहताहै इसलिये तम शब्द नाशादि शब्दोंके समानार्थक नहीं है। यदिकदाचित् आलोकाभावमात्रमें तम शब्द सङ्केतित है परन्तु अभावमात्रमें नहीं इसलिये आलोकस्य तम ऐसा व्यवहार नहीं होता अर्थात् जैसे अभावादि शब्द सामान्येन अभावमात्रके वाचक होनेसे कस्य अभाव इत्याकाङ्क्षाया कुम्भस्य अभाव ऐसा प्रयोग होता है ऐसे ही तम शब्द भी यदि अभावमात्रका वाचक होता तव पूर्वोक्ताया आकाङ्क्षाया आलोकस्य तम ऐसा व्यवहार होता सो तो नहीं है क्योंकि तम शब्द तो केवल आलोकाभावमें ही सङ्केतित है जैन कहते है कि हे न्यायविद् ऐसा तुम कहतेहो तो नहीं कहना। क्योंकि यदि अन्धकाररूप अभाव भी विधिमुखेन ही देखा जाता है तो भाई न्यायविद् तमसूको भाववैलक्षण्येन लक्ष्यमाणत्व और क्या है कि जिससे हेतु सिद्धि होवें। १। अब अन्धकारको अभावसिध्यर्थ भावविलक्षणसामग्रीसमुत्पाद्यत्वरूप हेतु कहते है (तथाहि) समवायी

तथा असमवायी और निमित्तकारणरूप कारणसमूहका व्यापार ही भावोत्पादिका सामग्री है सो यह सामग्री अन्धकारको सङ्गत नही होसकती इसलिये भावविलक्षणसामग्रीसमुत्पाद्यत्वरूप हेतु सिद्ध है। जैन कहते है कि यह तुह्मारा कथन अयुक्त है। क्योंकि हम पूछते है कि कौनसा वह पदार्थ है कि जिसको तुम समवायी कारण नामसे कहतेहो। यदिकदाचित् जिस पदार्थमें समवाय संबन्धसे सबद्ध कार्य्य उत्पन्न होवे उसको समवायीकारण कहोंगे तब यह तो तुह्मारा कथन ठीक नही। क्योंकि समवायको सर्वथा सुहृद्गोष्ठीमें गौरवार्हता है अर्थात् गौरवात् समवाय कोई अतिरिक्त सम्बन्ध नही है। समवायको सिद्ध करनेवाली जो तुह्मारेको अभीष्ट इह तन्तुपु पटः इत्यादि प्रतीतिये है सो तो असिद्ध है परन्तु उलटी (पटे तन्तवः) पटमें तन्तु है इत्यादिरूप प्रतीति आवालगोपाल प्रसिद्ध है। अथवा कथञ्चित् तन्तुपु पटः यह प्रतीति सिद्ध भी होवें तो भी इह भूतले घटाभावः इत्याकारक अभावविषयक ज्ञानके साथ व्यभिचार है अर्थात् इह भूतले घटाभावः यह प्रतीति विना ही समवायसे होंती है तब जो विशिष्ट प्रतीति है सो सब समवायादि निमित्तक ही है यह व्याप्ति तो न बन सकी। यदि कदाचित् तन्तुपु पटः इत्याकारक विशिष्ट प्रतीतिको संबन्धसामान्य निमित्तकत्व सिद्धकरोंगे तो सिद्धसाधनरूप दोप आजावेगा क्योंकी अविष्वग्भावरूप संवन्धनिमित्तकत्व इह तन्तुपु पटः इस प्रतीतिको हमने भी स्वीकार किया ही है। और समवायको एकव्यक्तिक माननेसे किसी पदार्थमें एक वस्तुके समवायके होनेपर समस्त वस्तुओंके समवायकी प्राप्ति तथा विनश्यदवस्थ एक पदार्थके समवायके अभाव होनेपर समस्त वस्तुओंके अभावकी प्राप्तिरूप दोप आवेगा। तत्तद्घटादिरूप अवच्छेदकोंके भेदसे पूर्वोक्त व्यवस्था (भेदरूपी) बनसकेगी ऐसा माननेसे समवायके भी कथञ्चिद्भेदकी आपत्ति आवेगी। क्योंकि अनेक पुरुपावच्छिन्न परिपदादिकोंका भी तावत् स्वभावके होनेसे कथञ्चिद्भेद ही है। और तुह्मारे मतानुसार समवायको अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिर एकरूप होनेसे आकाश तथा सामान्यादिक जो एतादृक् नाम समवायके सदृश अप्रच्युतानुत्पन्न स्थिर एकरूप वस्तु है तदाश्रितत्व ही रहे परन्तु कार्यवस्तुसमाश्रितत्व न बनसकेगा (अन्यथा अप्रच्युतादिस्वरूपहान्यापत्तेः) तत्तत् दण्डादिरूप सहकारिकारणकलापके (उपनिपात) सम्बन्धविशेपके प्रभावसे कार्यसमवाय मानना भी युक्तियुक्त नही है अर्थात् जैसे अप्रच्युतादि स्वभाववाले भी आकाशको तत्तत् अवच्छेदकरूप उपाधिके वशसे घटाकाशादिरूपेण नानात्व है इसीतरह समवायको भी तत्तत् सहकारिकारणकलापोपनिपातरूप उपाधिवशसे नानात्व होसकेगा तब कार्यसमवायमें भी कुच्छ बाधा नहीं है ऐसा कदाचित् तुम कहतेहो तब यह भी तुह्मारा कथन ठीक नहीं है क्योंकि सम-

वायके अप्रच्युतादिरूप स्वभावके प्रभावसे प्रति॰ , जो सहकारिकारण हैं उनको भी सदैव सन्निधानप्र॰ ८। ६ एव सति समवायिकारणकी वार्ता भी अस्त हो गयी। अर्थात् जब समवाय ही सिद्ध न भया तब समवायिकारण किसको कहसकेंगे क्योंकि समवायेन जिसमें कार्य उत्पन्न होवे उसको ही तो समवायिकारण तुम कहतेथे सो तवाभिमत समवाय ही नहीं है तब समवायि कारणकी तो वार्ता भी कैसे होसकती। जब समवायिकारण ही सिद्ध न भया तब असमवायिकारण भी कुच्छ न भया क्योंकि समवायिकारणप्रत्यासन्नत्व ही असमवायिकारणका लक्षण है सो जब समवायिकारण ही नहीं है तब समवायिकारणप्रत्यासन्नत्व कैसे किसको होय सके। जब समवायी तथा असमवायी दोनों ही कारण सिद्ध न भये तब एतदुभयभिन्नत्वविशिष्ट कारणत्वरूप जो निमित्तकारणत्व उसकी भी कुच्छ व्यवस्था न बन सकी। तुष्यतु दुर्जनन्यायसे कहते हे कि अथवा पूर्वोक्त तवाभिमत कारणत्रय रहें तो भी जिसकिसी रीतिसे (आलोक कलाप) तेजोऽवयवीका उत्पाद होता है इसीतरह तमका भी होसकेगा जैन ही कहते हैं कि अरुचि करनेमात्रसे तुम इसका खण्डनकर सकतेहो क्या। यदिकदाचित् तुम पूछते हो कि इसका उत्पादक क्या है तो हम पूछते हैं कि पूर्वोक्त तेजका उत्पादक क्या है सो कहो। यदि तेजके अणु कहते हो तो तमके भी अणु ही तमोत्पादक रहे। यदिकदाचित् तेजके परमाणु वादिप्रतिवादी उभयकों पहिले ही अविवादसे सिद्ध है ऐसा कहते हो तो हम कहते हैं कि तमके भी अणु वैसे ही सिद्ध न होवेंगे क्या अर्थात् होवेंगे ही। इसलिये भाई नैयायिक इस झूठे आग्रहको त्याग देवो। २। अब असत्येवालोके तत्प्रतिभासनरूप जो तृतीय हेतुहै सो भी अन्धकारको अभावत्व सिद्ध नही कर सकता इस वार्ताको कहते है। व्यवधानके न होनेसे ही चक्षुरिन्द्रियसे जानेजाते घटादिकोंमें व्यभिचारसे जिसके न होनेसे ही जो जानाजाता हे सो तदभाव ही होता है यह व्याप्ति न बन सकी इसलिये असत्येवालोके तत्प्रतिभासमानत्वरूप हेतु भी ठीक नहीं है। ओर हम पूछते है कि दाहादिप्रतिबन्धकके न होनेपर ही होनेवाले स्फोटको भी प्रतिबन्धकाभाव स्वरूपता क्यों नहीं है। यदिकदाचित् स्फोट तो दाहात्मकतया स्पार्शन प्रत्यक्षसे अनुभूत होता है। यदि स्फोटको अभावमानता होवे तो इसको दाहात्मकता युक्तियुक्त कैसे होसके अत स्फोटको अभावमात्रता नहीं है ऐसा कहते हो तो जैन कहते हैं कि इसी तरह शैत्य स्पर्शसे स्पार्शनप्रत्यक्ष करके ही जाना जा रहा जो अन्धकार सो भी अभाव स्वभाव कैसे हो सकता हे। अर्थात् नहीं होसकता ॥ ४ ॥ अब नैयायिकलोग आलोक ग्रहणसा-मग्र्या गृह्यमाणत्वरूप चतुर्थ हेतुको अन्धकारके अभाव सिध्यर्थ कहते हैं इसीमें शङ्कर ओर न्यायभूषणकी सम्मति भी कहते हैं कि

जो भावपदार्थ जितनीक सामग्रीसे गृहीत होता है उसका अभाव भी उतनीक ही सामग्रीसे गृहीत होता है इसलिये आलोकग्रहण-सामग्रीसे गृह्यमाण जो तम है सो आलोकाभावस्वरूप ही है (इति) जैन कहते है कि यह भी उनका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि तुल्ययुक्त्या अन्धकारके ग्रहण करानेवाली सामग्रीसे गृह्यमाण जो आलोक है उसीको अन्धकाराभाव स्वरूपताके प्रसङ्गसे पूर्वोक्त हेतुको अनैकान्तिकता है। और घट तथा पटको समानग्रहणसामग्रीक होनेसे परस्पर अभावत्व प्रसङ्ग आवेगा अर्थात् घटके ज्ञानकी जो चक्षुसयोगादिरूप सामग्री है वही चक्षुसंयोगादिक पटके ज्ञानकी भी सामग्री है तब पूर्वोक्त तुह्मारी व्याप्तिके माननेसे घटको पटाभावस्वरूप तथा पटको घटाभावस्वरूपताकी आपत्ति आजावेगी इसलिये पूर्वोक्त तुह्मारा हेतु ठीक नही है। ४।

अथ तिमिरद्रव्योत्पादककारणाभावो हेतुः। तथाच श्रीधरः। तमःपरमाणवः स्पर्शवन्तस्तद्रहिता वा। न तावत्स्पर्शवन्तः स्पर्शवतस्तत्कार्य्यद्रव्यस्य क्वचिदप्यनुपलम्भात्। अदृष्टव्यापाराभावात् स्पर्शवत्कार्य्यद्रव्यानारम्भका इतिचेत्। रूपवन्तो वायुपरमाणवोऽदृष्टव्यापारवैगुण्याद् रूपवत्कार्य्यं नारभन्त इति किन्न कल्प्येत किंवा न कल्पितमेकजातीयादेव परमाणोरदृष्टोपग्रहाच्चतुर्द्धा कार्य्याणि जायन्त इति कार्य्यैकसमधिगम्याः परमाणवो यथाकार्यमुन्नीयन्ते। न तद्विलक्षणाः प्रमाणाभावादितिचेत्। एवं तर्हि तामसाः परमाणवोप्यस्पर्शवन्तः कल्पनीयाः तादृशाश्च कथं तमोद्रव्यमारभेरन्। अस्पर्शवत्वस्य कार्यद्रव्यानारम्भकत्वेन व्यभिचारोपलम्भात्। कार्य्यदर्शनात् तदनुगुणं कारणं कल्प्येत नतु कारणवैकल्येन दृष्टकार्य्यविपर्य्यासो युज्यत इति चेन्न वयमन्धकारस्य प्रत्यर्थिनः किन्त्वारम्भानुपपत्तेर्नीलिममात्रप्रतीतेश्च द्रव्यमिदं न भवतीति ब्रूम इति नैतदुपपत्तिपदवीं प्रतिपद्यते। यतः स्पर्शवन्त एव तामसाः परमाणवः प्रोच्यन्ते यत्पुनस्तत्रोपादेशि स्पर्शवतस्तत्कार्यस्य क्वचिदप्यनुपलम्भादिति। तदसत्यं शीतस्पर्शवतस्तमोद्रव्यस्यैव तत्कार्यस्य दर्शनात्। तत्र स्पर्शसद्भावे किं प्रमाणमितिचेत् तदभावे किं प्रमाणमिति वाच्यम्। नहि तत्प्रतिषेधकप्रमाणमन्तरेणास्पर्शवत्वात् कार्य्यद्रव्यानारम्भस्त्वयाप्रसाधयितुं शक्यत अस्माकन्तु तद्भावे प्रमाणाभावेऽपि तावन्न काचित्क्षतिः। न च नास्त्येव तत्प्रत्यक्षस्यैव सद्भावात् तथाहि दिवा दिवाकरकरालातपप्रपातोपतप्तवपुषः पथिकास्तमिस्रासन्तमसशैत्यसम्पर्कात् प्रमोदन्ते न च तापाभावमात्रसूचित एव तेषां प्रमोदः प्रतीतिबाधात् तन्मात्रनिमित्तो हि घटोऽत्र नास्तीतिवत् तापः सम्प्रति नास्तीति प्रतिषेधमुख एव प्रत्ययः प्रादुःष्यान्नतु सम्प्रति शीतलीभूतं मे शरीरमिति विधिमुखः। तथात्वे हि तमोऽभावमात्रसूचित एवायमालोक प्रत्यय इत्यपि वावदूकस्य वदतो वदनं न वक्री भवेत्।

अब तिमिरद्रव्योत्पादककारणाभावरूप हेतु कहते हैं इसीमें श्रीधर (कन्दलीकार) नामक प्रचण्ड नैयायिककी सम्मति भी कहते हैं श्रीधर पूछते हैं कि अंधकारके जो तुम परमाणु कहते हो सो स्पर्शवाले है अथवा स्पर्श रहित हैं। स्पर्शवाले तो नहीं कहसकते क्योंकि स्पर्शवाला उनका कार्य्यरूप द्रव्य कहीं भी प्रतीत नहीं होता (स्पर्शवत कारणात् स्पर्शवदेव कार्यमुत्पद्यत इतिनियमात् स्पर्शवत इतिभाव) यदि कदाचित् अदृष्टरूपकारणके न होनेसे तमके परमाणु स्पर्शवाले कार्य्यद्रव्यको आरम्भ नहीं करते ऐसा कहतेहो तव हम पूछते हैं कि रूपवाले वायुके परमाणु अदृष्ट व्यापारके न होनेसे रूपवाले कार्य्यको आरम्भ नहीं करते ऐसी भी कल्पना क्यों न हो सके। और एकजातीय परमाणुओंसे ही अदृष्टवशात् चार प्रकारके कार्य उत्पन्न होते हैं ऐसी भी क्यों न कल्पना किया अर्थात् जैसे तुम कहते हो कि स्पर्शवाले भी तम परमाणु अदृष्टव्यापाराभावात् स्पर्शवत्कार्यद्रव्यको आरम्भ नहीं करते हैं । ऐसे ही जगत्में एक जैसे ही सब परमाणु हैं परन्तु अदृष्टवशात् उनसे भिन्न २ स्वभावके चार कार्य्य पृथवी जल तेज वायुरूप उत्पन्न होते हैं ऐसी ही कल्पना क्यों नहीं करलेते। परन्तु ऐसा किसीने भी स्वीकार तो नहीं किया है तस्मात् कार्य्यैकसमधिगम्य ही परमाणु है अर्थात् (कार्य्य) घटादिकोंसे ही परमाणुओंका अनुमान किया जाता है इसलिये जैसा कार्य्य देखा जावे वैसे ही परमाणु अनुमितिविषय होते हैं परन्तु कार्य्यसे विलक्षणपरमाणु कभी सिद्ध नहीं हो सकते क्योंकि कार्य्यविरुद्ध परमाणुओंके सिद्ध करनेवाला प्रमाण ही कोई नहीं है । जैन कहते है कि ऐसा यदि तुम कहते हो तो अच्छा (तामस) अंधकारके परमाणु स्पर्शशून्य ही हम मानते हैं। श्रीधर कहते है कि स्पर्शशून्य परमाणु अंधकाररूप द्रव्यको आरम्भ कैसे करसकगे अर्थात् न करसकगे क्योंकि अस्पर्शवत्वको कार्यद्रव्यानारम्भक होनेसे कार्यद्रव्यारम्भकत्वके साथ व्यभिचार प्रतीत हो रहाहै अर्थात् स्पर्शशून्य जो आकाशादिक हैं सो कोई भी कार्यद्रव्यको उत्पन्न नहीं करते है इसलिये अस्पर्शत्वका कार्यद्रव्योत्पादकत्वके साथ व्यभिचार है अर्थात् स्पर्शशून्य पदार्थ कार्यद्रव्यको कभी भी उत्पन्न नहीं करता। जैन कहते हैं कि कार्य देखकर उसके अनुगुण नाम उसके उत्पादनम समर्थ कारणकल्पना किया जाता है परन्तु कारणकी विकलतासे प्रत्यक्षसिद्ध कार्यका (विपर्यास) नाम दृष्टविपरीत कहना युक्तियुक्त नहीं है । नैयायिक कहते है कि ऐसा तुमने नहीं कहा क्योंकि हमलोग अंधकारके प्रत्यर्थी नहीं हैं किन्तु इसके आरम्भकी अनुपपत्तिसे तथा नीलिममात्रकी प्रतीतिसे अंधकार द्रव्य रूप नहीं है ऐसा हम कहते हैं। जैन कहते है कि ऐसा जो नैयायिकोंका कहना है सो युक्तिमार्गको प्राप्त नहीं हो सकता अर्थात्

स्पर्शवाले ही तामस परमाणु है ऐसा हम कहते है। और जो तुमने उसमें कहा यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि (यतः) स्पर्शवाले ही तामस परमाणु है ऐसा हम कहते है। और जो तुमने उसमें कहा है कि स्पर्शवाले उसके कार्यकी कही भी प्रतीति नहीं होती सो तुम्हारा कथन असत्य है क्योंकि शीतस्पर्शवाला अन्धकाररूप द्रव्य ही उसका कार्य प्रतीत हो रहाहै। यदिकदाचित् तुम पूछते हो कि अन्धकारनिष्ठ स्पर्शके सद्भावमें क्या प्रमाण है तो हम पूछते है कि स्पर्शके न होनेमें क्या प्रमाण है ऐसा तुम ही कहो। तममें स्पर्शवत्वके प्रतिषेधक प्रमाणसे विना अस्पर्शवत्वहेतुसे कार्य्यद्र-व्यानारम्भकत्व सिद्ध करनेको तुम समर्थ नही हो सकते। और हमारे मतमें तो स्पर्शसद्भावमें प्रमाणके न होनेसे भी कोई दोष नही। जैन ही कहते है कि अन्धकारमें (प्रमाणाभावाद्वा) स्पर्श नही ही है ऐसा तुमने नही कहना। क्योंकि अन्धकारके स्पर्शका प्रत्यक्ष ही होता है अर्थात् प्रत्यक्षप्रमाणसे ही अन्धकारका स्पर्श प्रतीत होता है तब तुम नहीं ही है ऐसा कैसे कह सकते हो। अन्धकारके स्पर्शके प्रत्यक्षको स्पष्ट करते है (तथाहि इत्यादिना) दिनमें सूर्य्यके भयङ्कर आतप (तडका) के पडनेसे तप्तशरीरवाले (पथिक) रास्तेमें चलनेवाले लोग रात्रिमें अन्धकारके शीतस्पर्शके सम्बन्धसे आनन्दको प्राप्त होते हैं "इति पूर्वोक्त शीतस्पर्शस्यानुभवः" दिवा आतपसंतप्त पुरुषोंको रात्रिमें तापाभावमात्रनिमित्तक ही वह आनन्द है ऐसा नही कहना क्योंकि इसमें प्रतीतिबाध है। प्रतीति बाध ही दिखाते हैं, कि यदि तापाभावमात्रनिमित्तक ही वह आनन्द होवे तो (घटोऽत्र नास्ति) घट यहा नही है इसकी तरह (तापः सम्प्रति नास्ति) अब ताप नही है ऐसी प्रतिषेधमुखेन ही प्रतीति उत्पन्न होनी चाहिये परन्तु अब मेराशरीर शीतल होगया है ऐसी विधिमुखेन प्रतीति न होनी चाहिये। जैन ही कहते हैं कि जब वैसी प्रतीति होती है तो अभावको विधिमुखेन प्रतीतिका विषय भी तुमने स्वीकार किया तो अयं आलोकः यह प्रतीति तमोऽभावमात्रसूचित है ऐसा कहते भी व्यर्थ वारंवार बोलनेवालेका तुम्हारा मुख टेढ़ा नही होता अर्थात् जैसे सम्प्रति शीतलीभूत मे शरीरं यह ज्ञान विधि-मुखेन उत्पन्न भी अभावको विषयकरता है ऐसा तुमने स्वीकार करलिया तब अयं आलोकः यहज्ञान भी तमोऽभावको विषय करता है ऐसा भी विनिगमनाभावात् क्यों नही तुम कहदेते। (तस्मात् आलोकवत् विधिमुखेन प्रत्ययविषयत्वात् तमसो नाभावमात्रत्वम् किन्त्वतिरिक्तद्रव्यत्वमेवेति भावः)

अथान्धकारनिबन्धत्वे शैत्यस्पर्शप्रत्ययस्य निबिडतरघटितकपाटसम्पुटे गवलकुवलयकलकण्ठीकण्ठकाण्डकृष्णान्धकारैकार्णवीभूते कारागारे क्षिप्तस्य पुंसः सुतरां तत्प्रत्ययोभवेदितिचेत् तापाभावनिमित्ततायामपि सुतरां स किं तत्र न स्यात्तत्रात्यन्तं तापाभावसम्भवात्। तस्मान्मन्दमन्दसमीरलहरिपरिचय एव जलस्पर्शस्तत्र तत्स्पर्शस्याप्यभिव्यक्तौ हेतुर्न

चासौ तत्रास्तीति न तत्र तत्प्रतीतिः प्रादुर्भवति । अनुमानतोऽपि तत्र स्पर्शप्रतीति॰ । तथाहि तम॰ स्पर्शवद्रूपवत्त्वात् पृथ्वीवत् । न च रूपवत्त्वमसिद्धम् अंधकार॰ कृष्णोऽयमिति कृष्णाकारप्रतिभासात् । ननु यदि तिमिरं श्यामरूपपरिकलितकलेवरं स्यात् तदावश्य स्वप्रतिभासे आलोकमपेक्षेत कुवलयकोकिलतमालादिकृष्णवस्तूनामालोकापेक्षवीक्षणत्वादितिचेत्तन्नाकलङ्कम् । उलूकादीनामालोकमन्तरेणापि तत्प्रतिभासात् । अथास्मदादिप्रतिभासमपेक्ष्यैतदुच्यते । तदपि न पेशलम् । यतो यद्यपि कुवलयादिकमालोकमन्तरेणालोकयितु न शक्यतेऽस्मदादिभिस्तथापि तिमिरमालोकयिष्यते विचित्रत्वाद्भावानामितरथा पीतावदातादयोऽपि तपनीयमुक्ताफलप्रमुखा नालोकनिरपेक्षवीक्षणा इति प्रदीपचन्द्रादयोऽपि प्रकाशान्तरमपेक्षेरन्निति सिद्ध तमोरूपवत् । तथा तमो रूपवत् कार्ष्ण्यवत्त्वेन प्रतीयमानत्वात् कुवलयवदित्यतोऽपि तत्र रूपवत्त्वसिद्धि॰ । न खल्वरूप कुम्भाभावादि कृष्णाद्याकारेण कदाचित्प्रतीयमानमालोकितमिति रूपवत्त्वसिद्धौ च सिद्ध स्पर्शवत्त्वम् । तथाच तामसपरमाणूना कार्य्यद्रव्यारम्भप्रतिषेधोपन्यस्तमस्पर्शवत्त्व स्वरूपासिद्ध परस्य तामसपरमाणूनामप्रसिद्धेराश्रयासिद्धश्चेति स्थितम् । ५ । द्रव्यगुणकर्म्मातिरिक्तकार्यत्वमपि न हेतुर्द्रव्यातिरिक्तकार्य्यत्वस्य तस्मिन्नसिद्धत्वेनैकदेशासिध्यतापत्ते । तत्प्रसिद्धिर्हि तस्याभावरूपतयान्यतो वा कुतोऽप्यभिधीयते नाद्य पक्षः परस्पराश्रयप्रसङ्गात् अभावरूपतासिद्धौ हि तस्य द्रव्यातिरिक्तकार्य्यत्वसिद्धिस्ततोऽपि सेति । अन्यहेतुतस्तत्सिद्धौ तु स एवास्तु किमनेन सिद्धोपस्थायिना कृतकभक्तिभृत्येनेव कर्तव्यम् । ६ । आलोकविरोधित्वमपि न साधीयः । नहि यो यद्विरोधी स तद्भावस्वभाव एव वारिवैश्वानरयोः परस्पराभावमात्रतापत्ते॰ । अथ सहानवस्थानलक्षणो विरोधस्तिमिरस्याभावस्वभावतासिद्धौ साधनत्वेनाभिप्रेतो न वध्यघातकभाव॰ । सच भावाभावयोरेव सम्भवी न पुनर्द्वयोरपि भावयोस्तदिहालोकानवकाशे सत्येव समुज्जृम्भमाणस्यान्धकारस्य अभावरूपतैव श्रेयसी कुम्भाभाववदितिचेत् । तदपवित्रमत्रापि वध्यघातकभावस्यैव भावात् घनतरतिमिरपूरिते पथि प्रसर्प्पता प्रदीपप्रभाप्राग्भारेण तिमिरनिकुरम्बाडम्बरविडम्बनात् । ७ । भावरूपताप्रसाधकप्रमाणाभावोप्यसिद्ध॰ । तत्प्रसाधकानुमानसद्भावात् तथाहि भावरूपं तमो घनतरनिकरलहरिप्रमुखशब्दैर्व्यपदिश्यमानत्वादालोकवत् । नचासिद्धि॰ साधनस्य । तथाहि । रहः सङ्केतस्थो घनतरतम॰ पुञ्जपिहिते वृथोन्मेष चक्षुर्मुहुरुपदधान॰ पथिपथि । खटत्कारादल्पादपि निभृतसम्प्राप्तरमणीभ्रमक्राम्यद्बाहुर्दमदमिकयोत्ताम्यति युवा । १ ।

पर्यस्तो दिवसस्तटीमयमटत्यस्ताचलस्यांशुमान् सम्प्रत्यङ्कुरितान्धकारनिकरैर्लेभ्बालकाद्यौरभूत् । एह्यन्तर्विशवेश्मनः
प्रियसखि द्वारस्थलीतोरणस्तम्भालम्बितबाहुवल्लिरुदती किं त्वं पथः पश्यसि । २ । तिमिरलहरीगुर्वीमुर्वीं करोतु
विकस्वराम् । हरतु नितरां निद्रामुद्रां क्षणात् गुणिनां गणात् । तदपि तरणे तेजः पुञ्जः प्रियो न ममैप ते
किमपि तिरयन् ज्योतिश्चक्रं स्वजातिविराजितम् । ३ । औपचारिक एवायम् तत्र तद्व्यपदेश इतिचेत् । नैवमेत-
दभावरूपताप्रसिद्धिं विना घनतरादिव्यपदेशस्य भावरूपमुख्यार्थबाधाविरहेण तस्यौपचारिकत्वायोगात् । तथात्वेऽपि ना
तस्य तमसो भावरूपतैव प्रसिद्ध्यति न खलु कुम्भाद्यभावस्तथा प्रकारोपचारगोचरचारितामास्तिघ्नुते । तत्र सादृश्याद्युपचा-
रकारणाभावात् । तथा नाभावरूपं तमः प्राग्भावाद्यस्वभावत्वाद्व्योमवत् । न चायमपि हेतुरसिद्धस्तथाह्यालोकस्य प्रागभानः
प्रध्वंसाभाव इतरेतराभावोऽत्यन्ताभावो वा तमो भवेत् । आद्य एकस्यानेकस्य वागं तत्स्यात् । न तावदेकस्यालोकस्य
प्राग्भावस्तमः । प्रदीपालोकेनेव प्रभाकरालोकेनापि तस्य निवर्त्त्यमानत्वात् । यस्य हि यः प्रागभावः स तेनैव निवर्त्त्यते ।
यथा पटप्रागभावः पटेनैव । नाप्यनेकस्यैकेन निवर्त्त्यमानत्वात्पटप्रागभाववदेव । नन वाच्यं प्रत्यालोकं स्वस्व निवर्त्तनी-
यस्य तमसोभेदात्प्रदीपादिना निवर्त्तितेऽपि तमोविशेषे सूर्यादिनिवर्त्तनीयं तमोऽन्तरं तदभावान्न निवर्त्तत इत्येकेन निव-
र्त्तमानत्वादिति हेतुरसिद्ध इति प्रदीपादि निवर्तिततमसि प्रदेशे दिनकरादिनिवर्त्तनीयस्य तमोन्तरस्योपलब्धिलक्षणप्रा-
प्तस्यानुपलब्धेः सम्प्रतिपन्नवत् । यदिचेदं प्रागभावस्वभावं स्यात्तदा प्रदीपप्रभाप्रबन्धप्रध्वंसेऽस्योत्पत्तिर्न स्यादनादित्वात्प्रा-
गभावस्य नाप्यालोकस्य प्रध्वंसाभावस्तमोनिवर्त्त्यमानत्वात् तस्यैव प्रागभाववत् । नापीतरेतराभावस्तस्य प्रसृतेऽपि प्रचण्डे
मार्त्तण्डीये तेजसि सद्भावेन तमिस्रायामिव वासरेऽपि तमः प्रतीतिप्रसङ्गात् । नाप्यालोकस्यात्यन्ताभावस्तमस्तस्य स्वका-
रणकलापोपनिपातकाले समुत्पद्यमानत्वादिति पक्षाष्टकेनाप्यघटमानत्वान्नानुमानिक्यपि तमसोऽभावरूपता स्वीकृतिः ॥
एतत्सकलमपि प्रायेण छायायामपि समानमिति यथासम्भवं योज्यं विशेपतश्चैतद्द्रव्यताप्रसिद्धिः परिपाटिप्राप्तस्याह्लादरत्ना-
करादवधारणीया । यत्पुनरवाचि तमसि सञ्चरतः पुंसः प्रतिबन्धः स्यादित्यादि तदखिलमालोकेऽपि समानमिति स एव
प्रतिविधास्यतीति किमतिप्रयत्नेन तत्रास्माकमिति सिद्धे तमश्छाये द्रव्ये ।

यदि कदाचित् पूर्वोक्तस्पर्श प्रतीतिको अन्धकार निमित्तकल मानोगे तब निविडतर घटितकपाटोंसे सम्पुट अर्थात् रा्‍न अच्छी-

तरह वन्द किये गए है कपाट जिसके ऐसे अत एव श्यामकमलकी तरह श्याम अंधकारसे व्याप्त कारागार नाम कैदखानेमें क्षिप्त पुरुषको सुतरां शैत्यकी प्रतीति होनी चाहिये ऐसा कहते हो तो हम पूछते हैं कि पूर्वोक्त शैत्यज्ञानको तापाभावनिमित्तक माननेपर भी पूर्वोक्तकारागारमें क्षिप्त पुरुषको ही सुतरां शैत्यज्ञान क्यों न होवे क्योंकि वहांपर अत्यन्ततापाभाव है अर्थात् यह प्रश्नोत्तर हमारा तुम्हारा बरावर है। इसलिये मंदमंद वायुका सम्बंध ही जलस्पर्शकी तरह अंधकारके स्पर्शकी (अभिव्यक्ति) प्रकटता में भी हेतु है सो वायुसबंध पूर्वोक्त कारागारमें नहीं है इसलिये वहाँपर शीत स्पर्शका ज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता। और अनुमानसे भी अंधकारमें शैत्यप्रतीति होती है। अनुमानका आकार कहते हैं। अन्धकार पृथिवीकी तरह रूपवाला होनेसे स्पर्शवाला है। अंधकारमें रूपवत्व असिद्ध है ऐसा नहीं कहना क्योंकि यह अंधकार कृष्णवर्णका है ऐसा प्रत्यक्षप्रमाणसे ही सिद्ध है। नैयायिक शङ्का करते हैं कि यदि अंधकार कृष्णरूपवान् द्रव्य होवे तो स्वप्रतिभास अर्थात् अपने चाक्षुप प्रत्यक्षमें आलोककी अपेक्षा करे क्योंकि श्यामपद्म तथा कोकिल तथा तमाल प्रभृति कृष्णवस्तुओंको आलोकापेक्षवीक्षणता है अर्थात् जो जो कृष्णपदार्थ हैं सो सब आलोक सम्बंधसे ही गृहीत होते है इसलिये अंधकार भी यदि कृष्णद्रव्य होवे तो अन्धकारका भी ज्ञान विना आलोक सम्बंधसे न होवे। जैन कहते हैं कि यह जो तुम्हारा कथन है सो अकलङ्कित नहीं है अर्थात् यह कथन ठीक नहीं है। क्योंकि उलूक (उल्लु) प्रभृति जीवोंको आलोकसे विना भी कृष्णपदार्थोंका ज्ञान होता है। यदि कदाचित् अस्मदादिकोंके प्रत्यक्षकी अपेक्षासे तुम ऐसा कहते हो तो भी तुम्हारा कथन ठीक नहीं है। क्योंकि यद्यपि कुवलयादिक कृष्ण पदार्थ आलोकसे विना अस्मदादिकोंसे नहीं देखे जा सकते तो भी अंधकार देखाजा सकता है क्योंकि भावपदार्थोंको विचित्रता है। यदि भाववैचित्र्य न मानेंगे तो पीतावदातादिक भी तपनीयमुक्ताफल प्रभृति पदार्थ आलोकनिरपेक्षवीक्षण नहीं हैं अर्थात् आलोकसम्बंधसे ही उनका ज्ञान होता है इसलिये प्रदीप तथा चन्द्रादिक भी आलोकान्तरकी अपेक्षाकरें परन्तु करते तो नहीं हैं इसलिये शक्तिवैचित्र्य सिद्धिपूर्वक अंधकारको रूपवत्व सिद्ध भया। और कृष्णरूपवत्वेन प्रतीयमान होनेसे कुवलयादिकोंकी तरह अंधकार रूपवान् है इस अनुमानसे भी अंधकारमें रूपवत्ता सिद्ध होती है। व्यतिरेकी दृष्टान्त कहते हैं कि रूपशून्य जो प्रागभावादि पदार्थ है सो कृष्णाद्याकारेण कभी भी प्रतीयमान हम नहीं देखते। इसरीतिसे रूपवत्व सिद्ध होजानेपर स्पर्शवत्व भी सिद्ध भया। तब अंधकारके परमाणुओंको कार्यद्रव्यके आरम्भके प्रतिषेधके लिये कहा हुआ जो अस्पर्शवत्वरूप वादी (नैयायिक) का हेतु है सो स्वरूपासिद्ध है। और

सिद्ध भी है यह सिद्ध भया । ५ । द्रव्यगुणकर्म्मातिरिक्तकार्य्य-वादीके मतमें तामस परमाणुओंके असिद्ध होनेसे पूर्वोक्त हेतु आश्रयासिद्ध भी है यह सिद्ध भया । ५ । द्रव्यगुणकर्म्मातिरिक्तकार्य्य-त्वरूप भी हेतु अन्धकारको अभावरूपता सिद्ध नही करसकता क्योंकि द्रव्याद्यतिरिक्तकार्य्यत्वको अन्धकारमें असिद्ध होनेसे एकदे-शासिद्धतारूप दोष आजावेगा । क्योंकि अन्धकारको द्रव्यगुणकर्म्मातिरिक्तकार्य्यत्वकी सिद्धि अभावरूप होनेसे है अथवा और किसी हेतुसे तुम कहते हो । प्रथम पक्ष तो ठीक नही क्योंकि उसमें अन्योन्याश्रय दोष है । तथाहि, अन्धकारको अभावरूपता सिद्ध होजानेपर ही उसको द्रव्याद्यतिरिक्तकार्य्यत्वकी सिद्धि होती है और द्रव्याद्यतिरिक्त कार्य्यत्वकी सिद्धि होजानेसे ही अभावरूपताकी सिद्धि होती है इत्येवं दोषः । यदि अन्यहेतुसे पूर्वोक्त सिद्धि कहोगे तब वही हेतु रहे परन्तु कृतकभक्ति जो नौकर उसकी तरह सिद्धोपस्थायी प्रकृतहेतुसे क्या है आलोक विरोधित्वरूप भी हेतु ठीक नही है क्योंकि जो जिसका विरोधी होता है सो उसका अभाव ही होता है ऐसा कुच्छ नियम नही है नही तो जल और अग्निको परस्पर अभावमात्रताकी आपत्ति आजावेगी । यदि क-दाचित् अन्धकारको अभाव स्वरूपतासिध्यर्थ सहानवशान (लक्षणस्वरूप) विरोध साधनत्वेन (अभिप्रेत) अभीष्ट है परन्तु वध्यघातकभाव नही है सो सहानवस्थानरूप विरोध भाव तथा अभावका ही परस्पर होता है परन्तु दोनों भावोंका नही हो सकता इसलिये प्रकृतमें तो आलोकके न होनेसे ही होनेवाले अन्धकारको घटविरोधीघटाभावकी तरह अभावस्वरूप मानना ही ठीक है ऐसा तुम कहतेहो तो यह कथन तो ठीक नही है क्योंकि आलोक तथा अन्धकारका भी परस्पर वध्यघातकभाव ही विरोध है क्योंकि गाड़ान्धकारसे व्याप्त मार्गमें विचर रहे दीपककी प्रभाप्राग्भारसे अन्धकार समूहके आडम्बरका विडम्बन होता है अर्थात् गाढ अन्धकार भी दीपकके आनेमात्रसे ही नाश होजाता है । ७ । भावरूपताप्रसाधकप्रामाणाभावरूप हेतु भी असिद्ध है क्योंकि भावरूपतासिद्ध करनेवाले अनुमानप्रमाणका सद्भाव है । तथाहि । घनतर निकर और लहरिप्रभृति शव्दोंसे व्यवहार होता है इसलिये अन्धकार भावरूप ही है जैसे आलोक पूर्वोक्त हेतुमान् होनेसे पूर्व साध्यवान् है । पूवोक्त हेतुकी असिद्धि है ऐसा नहीं कहना । क्योंकि, एकांत स्थानमें संकेतमें स्थित और व्यर्थ है उन्मेष जिसका वैसे चक्षुको वारंवार इधर उधर फेलाता हुआ एवं वारंवार रमणी (स्री) की प्राप्तिके भ्रमसे चारोंतरफ वाहुओंको घुमारहा जो कोई युवा है सो घनतर नाम अत्यंत गाढ अंधकारके पुंजसे व्याप्त मार्गमार्गमें दु.खसे घूमरहा है । १ । एवं दिन तो अब व्यतीत हो रहा है यह सूर्यदेव अस्ताचलको जा रहा है अब अंकु-रित अंधकारके समूहसे लंब अलको वाली द्यौ (आकाश) हो रही है । इसलिये हे प्रियसखि आओ घरके भीतर प्रवेशकर द्वार-

नक क्या देख रही है' । २ । ११ अन्धकारकी
नहीं होनेसे सबसे पहले उसको संवाद के रहा कर रही तू मानती नक क्या देख रही है? इसको धामको दूर करनाहुआ भी है गुरुदेव
नहींसे प्यार पृथ्वीको निकाल कराइ था और गुणियोंकी निवास गुहाको धामको दूर करता हुआ भी है गुरुदेव
यह पुराण तेज पुन नेत्रोंमें अनुपम ज्योतिभरको भाजादा करोगे मुझे अच्छा नहीं लगता है । इत्यादि वाक्योंमें
प्रकाश और तिमिर तथा गहरी नक्लोंमें प्रकाशमें निराली व्यवहार किया है । इसप्रकार पातालादि व्यवहार औपचारिक ही है
लेना नहीं कहना क्योंकि इसप्रकारको भावाभावस्वरूपकी सिद्धिसे किया पातालादि व्यवहारका जो भास्कर गुण पथ उसके साथ के
न होनेसे मुख्य व्यवहारको औपचारिकताका प्रयोग है । अथवा कदाचित् पूर्वोक्त व्यवहारको औपचारिक मान भी लिया जाय
तो भी प्रकाशको भावरूपता ही सिद्ध होती है क्योंकि घटादिकोंका अभाव कभी भी मुख्य व्यवहारका विषय नहीं होता
क्योंकि प्रमाण उसमें कारणभूतप्रत्यादिकोंका अभाव है । अन्धकारको अभावरूपता नहीं है इसीसे तेज भी प्रमाण कहते हैं।
जिसप्रकार आकाशादिक प्रागभावादिरूप न होनेसे अभावरूप नहीं हैं इसीतरह अन्धकार भी प्रागभावादिरूप न होनेसे अभावरूप
नहीं है । यह भी हेतु असिद्ध है ऐसा नहीं कहना असिद्ध नहीं है इसबातको स्पष्ट करते हैं जो पूछते हैं कि अन्धकार आलो
कका अभाव होवे अथवा प्रध्वंसाभाव होवे किंवा अन्योन्याभाव किंवा अत्यन्ताभाव होवे इन चार विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्प
एक किसी आलोकका प्रागभाव तम है अथवा अनेकका है तुम कहो हो एक किसी आलोकका प्रागभाव अन्धकारको नहीं कह
सकते क्योंकि जैसे दीपकके आलोकसे अन्धकार निवृत्त होता है वैसे ही सूर्यके आलोकसे भी उसकी निवृत्ति होती है । जिसका
जो प्रागभाव होता है सो उसीसे निवृत्त होता है जैसे घटका प्रागभाव घटसे ही निवृत्त होता है इसलिये एक आलोकका प्रागभाव
उसको नहीं कहसकते । अनेकका भी नहीं कहसकते क्योंकि एकसे निवृत्त होता है इसमें भी घटप्रागभाव ही दृष्टान्त है । यदि
कदाचित् प्रति आलोकमें स स जिसमें अन्धकारका भेद होनेसे प्रदीपादिकोंसे निवर्तित हो जाय तो भी तम जिसमें सूर्यादि
निवर्तित जो अन्धकार सो सूर्यादिकके न होनेसे निवृत्त नहीं होता, अर्थात् जिस देशमें होनेसे जिस अन्धकारका नाश होता
है यह अन्धकार उस आलोकका प्रागभाव है परन्तु सब अन्धकारकी एक आलोकसे निवृत्ति नहीं होती इसलिये एकेक निवर्त-
कताका यह हेतु असिद्ध है ऐसा तुम कहतेहो तो नहीं कहना क्योंकि प्रदीपादिकसे निवर्तित तमप्रदेशमें अर्थात् जिसजगहमें
प्रदीपादिकसे अन्धकारकी निवृत्ति भयी है उसीजगहमें सूर्यादि निवर्तनीय अन्धकारान्तर प्रतीतिसिद्ध नहीं है जैसेकि और अन्य

कारप्रतीति सिद्ध है। अन्धकारको प्रागभावमाननेमें एक दूषण कहकर दूसरा और भी कहते हैं कि यदि अन्धकार प्रागभावस्वरूप
होवे तो प्रदीपककी प्रभाके नाशहोनेपर इसकी उत्पत्ति न होवे क्योंकि प्रागभावको अनादिता है। जैसे आलोकका प्रागभाव
निवर्त्यमान नाम निवृत्तिवाला होनेसे प्रध्वंसस्वरूप नही है वैसे ही अन्धकार भी निवर्त्यमान होनेसे आलोकका प्रध्वंसाभावरूप नही
है। आलोकका अन्योन्याभावस्वरूप भी तम नही है क्योंकि अन्योन्याभाव तो प्रचण्ड सूर्य्यके तेजके होनेपर भी होता ही है
इसलिये जैसे अन्धेरी रात्रिमें अन्धकार प्रतीत होता है ऐसे ही दिनमें भी प्रतीतिका प्रसङ्ग आवेगा। आलोकका अत्यन्ताभाव
स्वरूप भी तम नही है क्योंकि अन्धकारकी स्वकारण समूहके होनेसे उत्पत्ति होती है अर्थात् अत्यन्ताभाव तो तुम्हारे मतमें
नित्य पदार्थ है इसलिये उत्पत्त्यादिसे शून्य है और अन्धकार तो स्वकारण समूहसे उत्पन्न होता है इसलिये अत्यन्ताभावस्वरूप
नहीं हो सकता एवं सति पक्षाष्टकमें भी अघटमान होनेसे अन्धकारको अभावस्वरूपताकी स्वीकृति अनुमान सिद्धि भी नही है॥
पूर्वोक्त सब प्रश्न तथा उत्तर छायामें भी प्राय: समान ही है सो यथासम्भव बुद्धिमानोंने जोडलेने। तम तथा छायाको विशेष-
रूपेण द्रव्यत्वकी सिद्धि परिपाटिप्राप्त स्याद्वाद रत्नाकरसे निश्चय करलेनी। और अन्धकारमें विचर रहे पुरुषको प्रतिबन्ध होवे
इत्यादिक जो पूर्व कहा है सो सब दोष आलोकमें भी समान ही है इसलिये इनका समाधान वादी स्वयं करेगा ही अतः इसके
उत्तरमें हमको व्यर्थ प्रयत करनेकी क्या आवश्यकता है अर्थात् नहीं है इसरीतिसे अन्धकार तथा छाया इन दोनोंको द्रव्य
स्वरूपता सिद्ध भयी॥

मनःपर्यायं प्ररूपयन्ति।

अब सूत्रकार मनःपर्याय नामक ज्ञानका प्ररूपण करते है।

संयमविशुद्धिनिबन्धनाद्विशिष्टावरणविच्छेदाज्ज्ञातं मनोद्रव्यपर्यायालम्बनंमनःपर्य्यायज्ञानमिति।

संयमविशुद्धि है कारण जिसका वैसा जो विशिष्टावरणका विच्छेद उससे उत्पन्न होनेवाला जो मनसे गृहीतद्रव्यके पर्यायोंको विषयकरनेवाला ज्ञान उसको मनः पर्याय नामक ज्ञान जानना।

विशिष्टचारित्रवशेन योऽसौ मन पर्यायज्ञानावरणक्षयोपशमस्तस्मादुद्भूत मानुषक्षेत्रवर्ति सति जीवगृहीतमनोद्रव्य-पर्यायसाक्षात्कारि यत् ज्ञान तन्मन पर्यायज्ञानमित्यर्थः ।

विशिष्ट चारित्रके वशसे उत्पन्नभया जो मन पर्याय ज्ञानके (आवरण) आच्छादकका (उत्पत्ति प्रतिबन्धके तियावत्) क्षयोपशम उससे उद्भूत मानुष क्षेत्रवर्ति सजक जो जीव उसने मनसा गृहीत द्रव्यके पर्यायोंको विषय करनेवाला जो ज्ञान उसको मन पर्याय ज्ञान जानना, यह इस सूत्रका अर्थ है ॥

सकलप्रत्यक्ष लक्षयन्ति ।

अब सूत्रकार सकल प्रत्यक्षका लक्षण कहते है ।

सकलन्तु सामग्रीविशेषतः समुद्भूतसमस्तावरणक्षयापेक्षं निखिलद्रव्यपर्यायसाक्षात्कारिस्वरूप केवलज्ञानमिति ।

अन्यत्र प्रतिपादित सामग्रीके प्रकर्षसे उत्पन्न होनेवाला जो आवरणका क्षय उसकी अपेक्षा रखनेवाला तथा निखिल द्रव्य पर्यायोंको विषय करनेवाला हे स्वरूप जिस नानका उसको केवलज्ञान कहते हैं ।

सामग्री सम्यग्दर्शनादिलक्षणान्तरङ्गा बहिरङ्गा तु जिनकालिकमनुष्यभवादिलक्षणा । तत॰ सामग्रीविशेषात् प्रकर्षप्राप्तसामग्रीत समुद्भूतो य समस्तावरणक्षय॰ सकलघातिसघातविघातस्तदपेक्षं सकलवस्तुप्रकाशस्वभाव केवलज्ञान ज्ञातव्यम् ।

सम्यग्दर्शनादिस्वरूपा अ तरङ्गा तथा जिनकालिक मनुष्यभवादिस्वरूपा बहिरङ्गा यह दो प्रकारकी सामग्रीके विशेषसे नाम प्रकर्षप्राप्त सामग्रीसे उत्पन्न भया जो समस्तावरणक्षय नाम सकल घातिसमूहका नाश तदपेक्ष जो सकलपदार्थप्रकाशस्वभाव नाम सो केवलज्ञान जानना ।

यस्तु नैतदमस्त मीमासको मीमासनीया तन्मनीषा । तथाहि । बाधकभावात् साधकाभावाद् वा सकलप्रत्यक्षप्रतिक्षेप॰ स्याप्येत । आद्यपक्षे प्रत्यक्षमप्रत्यक्ष वा बाधकमभिदध्याः प्रत्यक्ष चेत् पारमार्थिक साव्यवहारिक वा पारमार्थिकमपि विकल सकल वा विकलमप्यवधिलक्षण मनःपर्यायरूप वा नैतत्पक्षद्वयमपि क्षेमाय द्वयस्यास्य क्रमेण रूपि

सकलं चेदहो शुचिविचारचातुरी यत्केवलमेव केवलप्रत्यक्षस्याद्रव्यमनोवर्गणागोचरत्वेन तद्बाधनविधावधीरत्वात् । सकलं चेदहो शुचिविचारचातुरी यत्केवलमेव केवलप्रत्यक्षस्या- भावं विभावयतीति वक्षि । वन्ध्यापि प्रसूयतामिदानीं स्तनन्धयान् । वान्ध्येयोऽपि च विधत्तामुत्तंसान् । सांव्यवहारिकमप्यनिन्द्रियोद्भवमिन्द्रियोद्भवं वा न तावत् प्रथममस्य प्रातिभातिरिक्तस्य स्वात्मावित्खग्भूतसुखादिमात्र गोचरत्वात् । प्रातिभन्तु तद्बाधकं नानुभूयत एव ऐन्द्रियन्तु स्वकीयं परकीयं वा स्वकीयमपीदानीमत्र तद्भावं बाधेत सर्वत्र सर्वदा वा । प्राचिपक्षे पिष्टं पिनष्टि भवांस्तथा तदभावस्यास्माभिरप्यभीष्टेः द्वितीयेतु सर्वदेशकालानाकलय्येदं तदभावमुद्भावयेदितरथा वा । आकलय्य चेदाकालं नन्दताद्भवान् भवत्येव सकलकालकलाकलापाशेषदेशविशेषवेदिनि वेदनस्य तादृशः प्रसिद्धेः अनाकलय्यचेत् कथं सकलदेशकालानाकलने सर्वत्र सर्वदा वेदनं तादृग्नास्तीति प्रतीतिरुल्लसेत् । परकीयमपीदानीमत्र तद्भावं बाधेत सर्वत्र सर्वदा वेत्यादि विकल्पजालजर्ज्जरीभूतं न तद्बाधनधुरां धारयितुं धीरतां दधाति । कथं वा परगृहरहस्याभिज्ञो भवानेवमभूत् । तादृक्षप्रत्यक्षप्रतिक्षेपदक्षं प्रत्यक्षं प्रावर्त्तिष्ट ममेति तेन कथनाच्चेत् यदि कथिते प्रत्ययस्तर्हि तादृक्षाध्यक्षप्रतिक्षेपि प्रत्यक्षं नास्त्येवेत्युत्तम्भितहस्ता वयं व्याकुर्म्मह इति किन्न तथानुमन्यसे । अथ न यौष्माकीणः प्रमाणप्रवीणः समुल्लापः परकीयः कथमितिवाच्यम् । नखल्वयं स्वप्रत्यक्षं त्वत्प्रत्यक्षं कर्तुं शक्नोति वचसा तु यथाऽसौ कथयति तथा वयमपि ॥

जो मीमांसक सकलप्रत्यक्षको नही मानते उनकी मनीषा मीमांसनीया नाम विचारणीया है । तथाहि । किसी बाधकके होनेसे सकलप्रत्यक्षका प्रतिषेध कहते हो अथवा साधक प्रमाणके न होनेसे कहते हो । आद्य पक्षमें क्या तुम बाधक प्रत्यक्ष कहते हो अथवा अप्रत्यक्ष कहते हो । यदि प्रत्यक्ष कहते हो तो भी क्या पारमार्थिक अथवा सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष बाधक कहते हो पारमार्थिक भी क्या विकल कहते हो अथवा सकल विकल भी क्या अवधिलक्षण प्रतिबन्धक है कहते हो अथवा मनःपर्यायरूप कहते हो यह अन्त्यम जो दो पक्ष है सो ठीक नही है क्योंकि इन दोनोंको ही क्रमेण रूपिद्रव्य तथा मनःपर्याय विषयक होनेसे सकलप्रत्यक्षकी बाधन विधिमें असमर्थता है । यदि सकलप्रत्यक्षको बाधक कहते हो तो जैन कहते है कि अहो भाई तुम तो खूब सूक्ष्मविचारमें चतुरायी दिखाते हो जो कि तुम केवलज्ञान ही केवलज्ञानके अभावको सिद्ध करता है ऐसा कहते हो । ऐसा माननेसे तो वन्ध्या स्त्री भी पुत्रोंको उत्पन्न करे और वन्ध्यापुत्र भी उत्तंस करे अर्थात् जब असत् केवल ज्ञान स्वाभावको सिद्धकर देता है तो

असत् वन्ध्यापुत्र भी उससोंको त्यां न करे अर्थात् करे इसलिये पारमार्थिक प्रत्यक्षको केवल ज्ञानका बाधक नहीं कह सकते। अब यदि साव्यवहारिक प्रत्यक्षको केवल ज्ञानाभावसाधक कहते हो तो भी क्या अनीन्द्रियोद्भवको कहते हो अथवा इन्द्रियोद्भवको कहते हो। अनीन्द्रियोद्भवको तो नहीं कहसकते क्योंकि प्रातिभसे अतिरिक्त जो अनीन्द्रियोद्भवज्ञान है सो तो स्वात्मस्वरूप सुखमात्रको ही विषय करता है तब केवलज्ञानाभावको कैसे सिद्ध करेगा। और प्रातिभ उसका बाधक है सो तो अनुभवमें ही नहीं आता इसलिये अनीन्द्रियोद्भव ज्ञानको बाधक नहीं कह सकते। अब यदि ऐन्द्रियको कहते हो तो भी क्या स्वकीय अथवा परकीय स्वकीय भी क्या एतत्कालावच्छेदेन एतद्देशमें केवल ज्ञानका प्रतिबन्धक कहते हो अथवा सर्व देशमें सर्वदा ही प्रतिबन्धक कहते हो। प्रथम पक्षमें तो तुम पिष्टपेषण कर रहे हो क्योंकि वैसा केवलज्ञानाभाव तो हमने भी माना ही है। सर्वत्र सर्वदा इस द्वितीय पक्षमें भी क्या यह जो स्वकीय वेदन है सो सर्वदेशकालको जानकर केवल ज्ञानाभावको सिद्ध करता है अथवा विषय किये विना ही सिद्ध कर देता है यदि विषय करके कहते हो तो भाई तुम सर्वकाल आनन्दको प्राप्त होवो क्योंकि सकलकाल कलाकलापको अर्थात् सर्व क्षणोंको तथा सर्व स्थानोंको जाननेवाले तुम्हारेमें ही (तादृश) केवल ज्ञान सिद्ध हो गया। अब यदि सर्व देशकालको अनाकलय्य यह पक्ष स्वीकार करोगे तब हम पूछते हैं कि सकल देश तथा कालको न जानेपर सर्वदा सर्वत्र केवल ज्ञान नहीं है यह प्रतीति कैसे उत्पन्न हो सकेगी अर्थात् नहीं हो सकेगी। इसी तरह परकीय प्रत्यक्ष भी एतत्कालावच्छेदेन एतद्देशमें केवलज्ञानको बाधता है अथवा सर्वत्र सर्वदा बाधता है इत्यादि विकल्परूप जालसे जर्जरीभूत परकीय प्रत्यक्षरूप पक्ष भी केवल ज्ञानके बाधाकी धुराको धारण करनेकी धीरताको धारण नहीं करता। और भी दोष कहते हैं कि परगृहके (रहस्य) गुप्तवार्ताके जाननेवाला तू कैसे हो गया अर्थात् परकीय प्रत्यक्षसे केवल ज्ञानका बाध होता है ऐसा तुमने कैसे जान लिया। यदि कदाचित् केवल ज्ञानका बाधक प्रत्यक्ष मेरेको भया है वैसे परके कथनसे कहोगे तो भाई मीमांसक यदि तुम्हारेको किसीके कहनेपर निश्चय है तो केवल ज्ञानके अभावका साधक प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा हम हाथ उठाकर कह रहे हैं तुम क्यों नहीं मानते। यदि कदाचित् तुम कहते हो=कि आपका कहना प्रमाणसिद्ध नहीं है तो हम पूछते हैं कि दूसरोंका कथन प्रमाण सिद्ध कैसे है ऐसा तो कहो दूसरा भी तो कोई समप्रत्यक्षको तुम्हारेको प्रत्यक्ष नहीं करा सकता। और वचनसे तो जैसे दूसरा कोई कह रहा है वैसे हम भी कह ही रहे हैं॥

अथ तदुपदर्शितेऽर्थे संवादात् तद्वचः प्रमाणं नन्वेवं प्रत्यक्षमप्रत्यक्षं वा संवादकं स्यादित्यादि पूर्वोक्तावर्त्तनेनाननवस्थावल्लिरुल्लसन्ती कथं कर्त्तनीया । किञ्च संविदामिन्द्रियागोचरत्वादैन्द्रियमध्यक्षं सकलप्रत्यक्षस्य विधौ प्रतिषेधे वा मूकमेव वराकं। नच त्वन्मते नाभावः प्रत्यक्षेण प्रेक्ष्यते तथात्वे हि किमिदानीमपहृतसर्वस्वेन तपस्विनाभावप्रमाणेन कर्त्तव्यम्। तन्न प्रत्यक्षं तद्बाधविधानसंविधानोद्धुरम्। अप्रत्यक्षमपि प्रत्यक्षाभावमात्रमपरप्रमाणरूपं वा प्रणिगद्यते आद्यं चेत् तर्हि निद्राणदशायामम्भस्तम्भकुम्भाम्भोरुहाम्भोधरादिगोचरप्रत्यक्षाभावात् तेषामभावो भवेत् । द्वितीयश्चेद्भावस्वभावमभावस्वभावं वा भावस्वभावमप्यनुमानं शाब्दमर्थापत्तिरूपमानं वा अनुमानं चेत्कस्तत्र धर्म्मी सकलप्रत्यक्षं पुरुषो वा कश्चित् सकलप्रत्यक्षं चेत् तत्रोपादीयमानः समस्तो हेतुराश्रयासिद्धतामाश्रयेद्भवतस्तस्याप्रसिद्धेः। पुरुषोऽपि सर्वज्ञस्तदन्यो वा धर्म्मी वर्ण्येत। सर्वज्ञश्चेत् किं सर्वज्ञत्वेन निर्णीतः पराभ्युपगतो वा निर्णीतश्चेत्कथं तत्र तादृक्षप्रत्यक्षप्रतिक्षेपः प्रेक्षाकारिणः कर्त्तुमुचितस्तन्निर्णायकप्रमाणेनैव तद्बाधनात् ॥

यदि कदाचित् दूसरेके कथित अर्थमें संवाद (सफल प्रवृत्ति) होनेसे उस (जैमिनिमुनी) का वचन प्रमाणरूप है ऐसा कहते हो तो हम पूछते है कि संवादक प्रत्यक्ष है अथवा अप्रत्यक्ष है इत्यादि पूर्वोक्तकी आवृत्ति करनेसे वध रही अनवस्थारूप वल्ली किसप्रकारसे काटी जासकेगी अर्थात् अनवस्थारूप दोष आजावेगा। ऐन्द्रिय प्रत्यक्षको बाधक कथन पक्षमें और भी दोष कहते है कि ज्ञानोंको इन्द्रियजन्य ज्ञानका अविषय होनेसे दीन विचारा ऐन्द्रियप्रत्यक्ष सकलप्रत्यक्षकी विधि अथवा निषेधमें समर्थ ही नही है। तुह्मारे मतमें अभाव प्रत्यक्षसे नहीं जाना जाता ऐसा तो नहीं अर्थात् जब प्रत्यक्षसे ही केवल ज्ञानाभावकी सिद्धि कहोगे तो अभावका भी प्रत्यक्ष तुमने माना तो फिर अपहृत सर्वस्व नाम जिसकी सर्व वस्तु छीन ली है वैसे तपस्वी विचारे अभाव प्रमाणकी क्या आवश्यता है अर्थात् कुच्छ नहीं। इसलिये प्रत्यक्ष तो केवल ज्ञानके बाधन विधानमें समर्थ नही है । और अप्रत्यक्ष भी क्या प्रत्यक्षाभावमात्र ही केवल ज्ञानका बाधक है कहते हो अथवा कोई दूसरा प्रमाणरूप कहते हो । यदि प्रत्यक्षाभावमात्र कहते हो तो निद्राण (सुषुप्ति) दशामें जल स्तंभ कुम्भ अम्भोरुहादि विषयक प्रत्यक्षके न होनेसे उनका भी अभाव होना चाहिये अर्थात् यदि प्रत्यक्षाभावमात्रसे पदार्थाभाव कहोगे तो सुषुप्ति कालमें घटादिकोंका प्रत्यक्ष नही होता है इसलिये जगतमें उनके भी अभावकी आपत्ति आजावेगी। यदि द्वितीय कहोगे तो भी क्या वह प्रमाण भाव

स्वभाव है अथवा अभाव स्वभाव है भावस्वभाव भी क्या अनुमानरूप है अथवा शब्द है किंवा अर्थापत्तिरूप है यदिवा उपमानरूप है। यदि अनुमानरूप कहते हो तो हम पूछते हैं कि उसमें धर्मी (पक्ष) कौन है क्या सकल प्रत्यक्ष है अथवा कोई पुरुष है यदि सकल प्रत्यक्ष है तब तो भाई मीमांसक उसमें जो कोई भी हेतु तुम कहोगे सो सब आश्रयासिद्ध ही होगा क्योंकि तुम्हारे मतमें केवलज्ञान अप्रसिद्ध है इसलिये केवलज्ञानको तो पक्ष नहीं कह सकते। अब यदि पुरुष कहोगे तो भी क्या सर्वज्ञको धर्मी कहते हो अथवा उससे अन्य कोई पुरुष धर्मित्वेन तुमको अभीष्ट है। यदि सर्वज्ञ है तो भी क्या सर्वज्ञत्वेन निर्णीत है अथवा पराभिमत है। यदि निर्णीत है तब तो उसमें केवलप्रत्यक्षका निषेध विचारवान् तुम कैसे कर सकते हो अर्थात् नहीं कर सकते क्योंकि धर्मीके निर्णायक प्रमाणसे ही केवल प्रत्यक्षके प्रतिक्षेपरूप साध्यका बाध हो जावेगा ॥

अथ सर्वज्ञत्वेन परैरभ्युपगतः पुमान् वर्द्धमानादिर्धर्म्मी तर्हि किं तत्र साध्यं नास्तित्वमसर्वविच्त्वं वा न तावन्नास्तित्वं तथाविधपुरुषमात्रसत्तायामुभयोरविवादात् तथा व्यवहारपारमार्थिकापारमार्थिकत्व एव विप्रतिपत्तेः। असर्वविच्त्वं चेत् कस्तत्र हेतुरुपलब्धिरनुपलब्धिर्वा। उपलब्धिश्चेदविरुद्धोपलब्धिर्विरुद्धोपलब्धिर्वा। अविरुद्धोपलब्धिस्तावदव्यभिचारिणी नित्यत्वनिषेधाभिधीयमानप्रमेयत्ववत्। विरुद्धोपलब्धिस्तु किं साक्षाद्विरुद्धोपलब्धिर्विरुद्धव्याप्तोपलब्धिर्विरुद्धकार्य्योपलब्धिर्विरुद्धकारणोपलब्धिर्विरुद्धसहचराद्युपलब्धिर्वा स्यात्। नाद्या सर्वज्ञत्वेन साक्षाद्विरुद्धस्य किंचिज्ज्ञत्वस्य तत्र प्रसाधकप्रमाणाभावात्। नाग्रेतनविकल्पचतुष्टयमपि घटामटाट्यते। प्रतिषेध्यस्य हि सर्वविच्त्वस्य विरुद्धं किंचिज्ज्ञत्वं तस्य च व्याप्यं कतिपयार्थसाक्षात्कारित्वं २ कार्य्यं कतिपयार्थप्रज्ञापकत्वं ३ कारणमावरणक्षयोपशमः। ४। सहचरादि रागद्वेषादिकं ५ न च विवादोपादाने पुंसि तेषामन्यतमस्यापि प्रसाधकं किंचित्प्रमाणं तवास्ति। यतस्तदुपलब्धीनां सिद्धिः स्यात् वक्तृत्वरूपाविरुद्धकार्य्योपलब्धिरस्त्येव तन्निषेधे साधनं साधिष्ठमिति चेत् ननु कीदृग्वक्तृत्वमत्र विवक्षांचक्रे। यत् सर्वविच्त्वविरुद्धस्य कार्यं स्यात् प्रमाणविरुद्धार्थवक्तृत्वं १ तदविरुद्धार्थवक्तृत्वं २ वक्तृत्वमात्रं वा ३ आद्यभिदायामसिद्धं साधनं वर्द्धमानादौ भगवति तथा भूतार्थवक्तृत्वाभावात्। द्वितीयभिदि तु नेयं विरुद्धकार्योपलब्धिः किंतु कार्य्योपलब्धिरेव तद्विधिसाधनी धूमध्वजसिद्धिनिबन्धनोपन्यस्तधूमोपलब्धिवत् तथाच विरुद्धो हेतुः। तृतीयभेदे

त्वनेकान्तो वक्तृत्वमात्रे सर्वविच्चकार्य्यत्वस्याविरोधात्। अनुपलब्धिरपि विरुद्धानुपलब्धिः अविरुद्धानुपलब्धिर्वा विरुद्धानुपलब्धिस्तावद्विधिसिद्धावेव साधीयस्तां दधात्यनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेरित्यादिवत्। अविरुद्धानुपलब्धिरपि स्वभावानुपलब्धिः १ व्यापकानुपलब्धिः२। कार्यानुपलब्धिः कारणानुपलब्धिः सहचराद्यनुपलब्धिर्वाभिधीयते स्वभावानुपलब्धिरपि सामान्येनोपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वविशेषणा वा व्याक्रियेत पौरस्त्या तावन्निशाचरादिना व्यभिचारिणी द्वितीया पुनरसिद्धा सर्वविच्चस्य स्वभावविप्रकृष्टत्वात्। व्यापकानुपलब्धिप्रभृतयोऽपि विकल्पा अल्पीयांसः यतः सर्वविच्चस्य व्यापकं सकलार्थसाक्षात्कारित्वं कार्यमतीन्द्रियवस्तूपदेशः कारणमखिलावरणविलयः सहचरादिक्षायिकचारित्रादिकं नच तत्र तदनुपलब्धीनां सिद्धौ साधनं किंचित्तेस्तीत्यसिद्धा एवामूः अथ सर्वज्ञादन्यः कश्चिद्धर्म्मी तर्हि तस्यासर्वविच्चे साध्ये सिद्धसाध्यता। तन्नानुमानं तद्बाधकम्। नापि शाब्दं यतस्तदपौरुषेयं पौरुषेयं वा स्यात् न तावदपौरुषेयमपौरुषेयत्वस्य वचस्सुसम्भवाभावात्। पौरुषेयमपि केवलालोकाकलितपुरुषप्रणीतं तदितरपुरुषप्रणीतं वा आद्यं कथं बाधकं विरोधात्। द्वितीयेत्वसौ पुरुषः केवलालोकविकला सकलाः पुरुषपर्षदः प्रेक्षते नवा। प्राच्यपक्षे कथं तत्प्रतिषेधस्तस्यैव तदाकलितत्वात्। द्वितीयेपि कथन्तरां तत्प्रणीतशब्दस्य पांशुलपादकोपदिष्टशब्दस्येव प्रमाणत्वासम्भवात्। नाप्यर्थापत्तिस्तद्बाधिका तदभावमन्तरेणानुपपद्यमानस्य प्रमाणषट्कनिष्टंकितस्यार्थस्य कस्यचिदसत्वात्। नाप्युपमानं तस्य सादृश्यमात्रगोचरत्वात् तन्न भावरूपं प्रमाणं तद्बाधबद्धकक्षम्। नाप्यभावरूपं तस्य सत्तापरामर्शिप्रमाणपंचकाप्रवृत्तौ सत्यां भावात्। नचासौ समस्ति विवादास्पदं कस्यचित् प्रत्यक्षं प्रमेयत्वात् पटवदिति तद्ग्राहकानुमानस्यप्र वृत्तेः तन्न बाधकभावात् सकलप्रत्यक्षाभावः। नापि साधकाभावादनुमानस्यैव तत्साधकस्येदानीमेव निवेदनादिति सिद्धं करतलकलितनिस्तुलस्थूलमुक्ताफलायमानाकलितसकलवस्तुविस्तारं केवलनामधेयं संवेदनमिति सिद्धमेवं केवलज्ञानम्।

जैन कहते है कि यदि कदाचित् परैः (जैनैः) जैनादिकोंने सर्वज्ञत्वेन माना हुआ वर्द्धमानादिक पुरुष (धर्म्मी) पक्ष है ऐसे तुम कहते हो तो हम पूछते है कि उसमें साध्य क्या है नास्तित्व है अथवा असर्वज्ञत्व है नास्तित्व तो नहीं कह सकते क्योंकि परैरभ्युपगत वर्द्धमान नामक पुरुषके होनेमें तो किसीको भी विवाद नही है किन्तु सर्वज्ञत्व व्यवहारके पारमार्थिकत्व वा अपारमार्थिकत्वमें ही विवाद है अर्थात् सर्वैरभ्युपगत वर्द्धमाननामक पुरुष विशेष सर्वज्ञ है ऐसा तो हम कहते है और तुम कहते हो सर्वज्ञ नही है

नहीं है इस अशमें विवाद है परन्तु पुरुषविशेषकी सत्तामें कुच्छविवाद नहीं हे इसलिये नास्तित्वको साध्य नहीं कह सकते। अब यदि असर्ववित्त्व नाम असर्वज्ञत्व साध्य कहते हो तो हम पूछते है कि उसम हेतु कौन है उपलब्धिरूप हे अथवा अनुपलब्धि है। यदि उपलब्धि है तो भी क्या अविरुद्धोपलब्धि है अथवा विरुद्धोपलब्धि है। अविरुद्धोपलब्धि तो नित्यत्व निषेधके लिये विधीयमान प्रमेयत्व हेतुकी तरह व्यभिचारिणी है इसलिये अविरुद्धोपलब्धिको तो हेतु नही कहसकते। अब यदि विरुद्धोपलब्धिको हेतु कहते हो तो भी क्या साक्षात् विरुद्धोपलब्धिहेतु है अथवा विरुद्धव्याप्योपलब्धि किम्वा विरुद्धकार्योपलब्धि अथवा विरुद्धकारणोपलब्धि वा विरुद्धसहचराद्युपलब्धिरूप हेतु है तुम कहते हो। साक्षाद् विरुद्धोपलब्धि तो नहीं कह सकते क्योंकि सर्वज्ञत्वके साथ साक्षाद्विरुद्धकिञ्चिज्ज्ञत्वके प्रसाधक नाम किञ्चज्ज्ञत्वको सिद्ध करनेवाले प्रमाणका पूर्वोक्त धर्म्मीमें अभाव है अर्थात् वर्द्धमानादिकोंमें किञ्चिज्ज्ञत्व किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है इसलिये साक्षाद्विरुद्धोपलब्धि तो नहीं कह सकते। विरुद्धव्याप्तोपलब्धिसे आदि लेकर जो चार विकल्प हैं सो भी युक्तियुक्त नहीं हैं क्योंकि प्रतिषेध्यसर्वज्ञत्वका विरुद्ध किञ्चिज्ज्ञत्व है उसका व्याप्य कतिपयार्थ साक्षात्कारित्व नाम कुच्छ थोड़े पदार्थोंका साक्षात्कारित्व है और उसका कार्य्य कतिपयार्थ प्रज्ञापकत्व हे और उसका कारण आवरणक्षयोपशम है और उसके सहचरादिरागद्वेषादिक हैं सो इनसभोंमेंसे किसीका भी प्रसाधकप्रमाण विवादास्पद वर्द्धमान नामक पुरुषमें तुमको नहीं है कि जिससे विरुद्ध व्याप्तोपलब्धिआदिकों की सिद्धि हो सके। यदि कदाचित् वक्तृत्वरूप विरुद्धकार्य्योपलब्धि सर्वज्ञके निषेधमें हेतु (साधीय) दोषरहित है ऐसा कहते हो तो हम पूछते हैं कि कैसा वक्तृत्व तुम यहाँ कहते हो कि जो सर्व वित्त्वके विरुद्धका कार्य है प्रमाण विरुद्धार्थवक्तृत्व १ कहते हो अथवा प्रमाण अविरुद्ध अर्थ वक्तृत्व कहते हो किम्वा वक्तृत्वमात्र ही कहते हो प्रथम पक्षमें तो हेतु असिद्ध हे क्योंकि वर्द्धमानादि भगवानमें प्रमाण विरुद्धार्थ वक्तृत्वका अभाव है और द्वितीय भेदमें तो प्रमाण अविरुद्धार्थ वक्तृत्वरूपा विरुद्धकार्य्योपलब्धि नहीं है किन्तु कार्योपलब्धि ही है सर्वज्ञत्वको सिद्ध करने वाली अग्निको सिद्ध करनेके लिये कही हुई धूमोपलब्धिकी तरह तथाच तुम्हारा हेतु विरुद्ध है। तृतीय भेदमें तो तुम्हारा हेतु व्यभिचारी है क्योंकि वक्तृत्वमात्रमें सर्ववित्त्वके कार्यत्वका अविरोध है इसलिये असर्ववित्त्वकी सिद्धिके लिये उपलब्धिरूप हेतु तुम कथञ्चिद् भी नहीं कह सकते। अब यदि अनुपलब्धि कहोगे तो भी क्या विरुद्धानुपलब्धि कहते हो अथवा अविरुद्धानुपलब्धिकहते हो इनमेंसे विरुद्धानुपलब्धि तो केवल विधि सिद्धिमें ही सद्धेतुताको धारण करती है जैसे कि

एकान्त स्वरूपकी अनुपलब्धिसे वस्तु अनेकान्तात्मक है यह अनुपलब्धि विधिसाधिका है इसलिये असर्वज्ञत्व सिध्यर्थ विरुद्धानुपलब्धिरूप हेतु नही कह सकते । अब यदि अविरुद्धानुपलब्धि कहते हो तो भी क्या स्वभावानुपलब्धि अथवा व्यापकानुपलब्धि २ किंवा कार्यानुपलब्धि ३ अथवा कारणानुपलब्धि ४ अथवा सहचराद्यनुपलब्धि कहते हो । इनमेंसे स्वभावानुपलब्धि भी सामान्येन नाम नास्ति सर्वज्ञः अनुपलब्धेः ऐसे कहते हो अथवा उपलब्धिलक्षण प्राप्तत्वरूप विशेषण विशिष्ठ हेतुत्वेन कहते हो सामान्येन स्वभावानुपलब्धि तो निशाचराद्यवच्छेदेन व्यभिचारिणी है इसलिये उसका तो हेतुत्वेन उपन्यास नही कर सकते । द्वितीया नाम उपलब्धिलक्षणप्राप्तत्व विशेषणविशिष्टा स्वभावानुपलब्धि तो असिद्ध है क्योंकि सर्ववित्वको स्वभावसे विप्रकृष्टता है । बाकीके व्यापकानुपलब्धिसे आदि लेकर जो विकल्प हैं सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सर्ववित्वका व्यापक सकलार्थसाक्षात्कारित्व है और अतीन्द्रिय वस्तुका उपदेश कार्य है और सर्व आवर्णोंका विलय नाम नाश उसका कारण है क्षायिक चारित्रादिक जो है सो उसके सहचरादि है । वर्द्धमानादि धर्म्मीमें सर्ववित्वके व्यापकादिकोंकी अनुपलब्धिओंकी सिद्धिके लिये तुमारा कोई भी हेतु नहीं है इस लिये यह असर्ववित्वकी सिद्धिमें असिद्ध ही है । यदिकदाचित् सर्वज्ञसे अन्यकोई धर्म्मी कहोगे तो उसके असर्ववित्वसाध्यमें सिद्ध साध्यता है । जैन ही कहते हैं कि हे मीमांसक इसरीतिसे अनुमान तो सर्वज्ञत्वका बाधक नही है और शाब्द भी बाधक नही है क्योंकि वह शाब्द प्रमाण पौरुषेय बाधकत्वेन कहोगे अथवा अपौरुषेय कहोगे अपौरुषेय तो नहीं कह सकते क्योंकि अपौरुषेय तो वचनहो ही नहीं सकते । पौरुषेय भी क्या केवल ज्ञानवाले पुरुषसे प्रणीत आगमको बाधक कहते हो अथवा किसी दूसरेसे प्रणीत कहते हो । केवल ज्ञानवान् पुरुषप्रणीत आगमको तो केवल ज्ञानमें बाधक नहीं कह सकते क्योंकि केवल ज्ञानवान् पुरुष प्रणीत आगमको केवल ज्ञानकी बाधकतामें विरोध है । अर्थापत्तिरूपप्रमाण भी केवल ज्ञानका बाधक नहीं हो सकता क्योंकि केवल ज्ञानके अभावसे विना अनुपपद्यमान प्रमाण षट्कसे सिद्ध पदार्थ कोई नही हैं । उपमान भी केवल ज्ञानका बाधक नहीं है क्योंकि उसको सादृश्यमात्र गोचरता है इसलिये भावरूप प्रमाण सर्वज्ञत्वका बाधक नहीं है । और अभावरूप प्रमाण भी बाधक नहीं ही है क्योंकि अभावरूप प्रमाणकी सत्तापरामर्शि नाम सत्ताको विषय करनेवाले प्रमाण पञ्चककी अप्रवृत्तिमें प्रवृत्ति होती है सो प्रमाण पञ्चककी प्रवृत्तिका अभाव तो यहां नहीं है क्योंकि घटादिकोंकी तरह प्रमेयत्ववान् होनेसे विवादास्पद पदार्थ किसीको प्रत्यक्ष जरूर है इत्याकारक प्रत्यक्षग्राहक अनुमानकी प्रवृत्ति है । इसलिये बाधकभावसे नाम

साधक होनेसे सकल प्रत्यक्षाभाव नहीं कह सकते । और साधकाभावसे भी सकल प्रत्यक्षाभाव नहीं कह सकते क्योंकि अभी तो हमने उसका साधक अनुमान कहा है ऐसा ही कहते हैं कि इस प्रकार हथेलीपर रक्खे हुए गोलाकार स्थूल मुक्ताफलके सदृश सर्व वस्तुविषयक केवल ज्ञान सिद्ध भया । इति सिद्धकेवलज्ञानम् यहाँतक केवलज्ञान सिद्ध भया ॥

किन्तु सार्वं पुरुषमेतदास्पदी करोतीत्याहुः ।

जिस पुरुषमें यह केवलज्ञान रहता है सो कहते हैं ।

तद्वानर्हन्निर्दोषत्वादिति ।

केवलज्ञानवाला अर्हन् (अरिहंत) है क्यों कि निर्दोष होनेसे ।

तद्वेवल नित्यमस्यास्तीति नित्ययोगे मतुप् । निष्क्रान्तो दोषेभ्यो रागद्वेषाऽज्ञानलक्षणेभ्यो निर्दोषस्तद्भावस्तस्मात् प्रयोगः । अर्हन् सर्वज्ञो निर्दोषत्वात् यस्तु नैवं स नैवं यथा रथ्यापुरुषस्तथाचार्हस्तस्मात्सर्वज्ञ इति ।

व्युत्पत्तिपूर्वक अब लिखते हैं कि तत् नाम केवल सो नित्य जिसमें होवे उसको कहिये तद्वान् यहाँपर नित्य योगमें मतुप् प्रत्यय है । अब रागद्वेष तथा अज्ञान आदि दोषोंसे जो निकल गया होय उसको कहिये निर्दोष निर्दोषका जो भाव नाम प्रवृत्ति निमित्तक उसको कहिये निर्दोषत्व पंचमीका निर्दोषत्वात् । अनुमान प्रयोग लिखते हैं कि निर्दोष होनेसे अर्हन् सर्वज्ञ है जो सर्वज्ञ नहीं है सो निर्दोष भी नहीं है जैसे रथ्यापुरुषादिक अर्हन् तो निर्दोष है इस लिये सर्वज्ञ है ॥

निर्दोषत्वमस्य प्रमाधयन्ति ।

अब सूत्रकार अर्हन्तको निर्दोषताकी सिद्धि करते हैं ।

निर्दोषोऽसौ प्रमाणाऽविरोधिवाक्त्वादिति ।

प्रमाणसे अविरुद्ध बोलनेवाला होनेसे अर्हन् निर्दोष है ।

प्रयोग । अर्हन्निर्दोषः प्रमाणाविरोधिवाक्त्वात् यस्तु न निर्दोषः स न तथा यथा रथ्यापुरुषः प्रमाणाविरोधिवाक्चार्हंस्तस्मात् निर्दोष इति ।

अनुमान प्रयोग कहते है कि प्रमाणाविरोधि नाम प्रमाणसे अविरुद्ध वाणीवाला होनेसे अर्हन् निर्दोष है जो निर्दोष नहीं होता सो प्रमाणाविरोधिवाक् भी नहीं होता जैसे कि रथ्यापुरुष पूर्वोक्त हेतुमान् न होनेसे पूर्वोक्त साध्यवान् भी नहीं है। और अर्हन् तो प्रमाणाविरोधिवाक् है इससे निर्दोष है।

प्रमाणाविरोधिवाक्त्वमेवार्हतः प्रसाधयन्ति।

अब अर्हन्को प्रमाणाविरोधिवाक्त्व नाम अर्हन् प्रमाणसे अविरुद्ध कहनेवाला है इसवार्ताको ही सिद्ध करते है।

तदिष्टस्य प्रमाणेनाबाध्यमानत्वात् तद्वाचस्तेनाविरोधसिद्धिरिति।

अर्हत भगवान्को इष्ट जो है सो प्रमाणसे बाधा नहीं जाता है इस लिये उसकी वाणीको अविरोध सिद्ध होता है।

तस्यार्हत इष्टस्य प्रतिपाद्यतया सम्मतस्यानेकान्ततत्त्वस्य तद्वाच इत्यर्हद्वाचः। अर्हन् सर्वत्र प्रमाणाविरोधिवाक् तत्र प्रमाणाबाध्यमानाभिमतत्त्वत्वाद्यस्याभिमतं तत्त्वं यत्र प्रमाणेन न बाध्यते स तत्र प्रमाणाविरोधिवाग् यथा रोगादौ भिषग्वरो। न बाध्यते च प्रमाणेनार्हतोऽभिमतमनेकान्तादितत्त्वं तस्मात्तत्रासौ प्रमाणाविरोधिवागिति सिद्धमर्हन्नेव सर्वज्ञ इति॥

तस्य नाम अर्हतको इष्ट नाम प्रतिपाद्यतया सम्मत जो अनेकान्तस्वरूप पदार्थ। तद्वाच. शब्दका अर्थ कहते हैं कि अर्हद्वाच.। सर्वत्र प्रमाणसे अबाध्यमानाभिमततत्त्व होनेसे अर्हन् सर्वत्र प्रमाणाविरोधिवाक् है जिसका अभिमततत्त्व जहांपर प्रमाणसे बाध्यमान नहीं होता सो वहापर प्रमाणाविरोधिवाक् होता है जैसे रोगमें (भिषग्वर) वैद्यराज। अर्हत्को अभिमत जो अनेकान्तादितत्त्व है; सो प्रमाणसे बाधित नहीं होते इसलिये वह सर्वत्र पदार्थमें प्रमाणाविरोधिवाक् है जैन भी कहते है कि इसरीतिसे अर्हन् ही सर्वज्ञ है यह सिद्ध भया इति शब्द सूत्रकी व्याख्याकी समाप्तिका द्योतक है एवमन्यत्रापि।

नन्वियं त्रिभुवनभवनान्तर्वर्त्तमानान्तरितानन्तरितपदार्थप्रथा त्वत्तीर्थनाथवृत्तिर्न भवति यतो भूभूधरप्रभृतिपदार्थप्रबन्धविधानद्वारा प्रमथपतेरेवेयमुपपद्यते। यदेतदनुमानमत्र प्ररूप्यते न्यायतात्पर्य्यावबोधप्रधानमनोवृत्तिविद्वद्वृन्देन। विवादपदभूतं भूभूधरादि बुद्धिमद्विधेयम् यतो निमित्ताधीनात्मलाभं यन्निमित्ताधीनात्मलाभं तद्बुद्धिमद्विधेयं यथा मन्दिरं तथा पुनरेतत्तेन तथा। न तावन्निमित्ताधीनात्मलाभत्वं वादिनः प्रतिवादिनो वाऽप्रतीतं यतो भूभूधरादेरात्मी-

गात्मीयनिमित्तजातनिर्वर्त्तनीयताभुवनभाविभवप्रभृत्प्रतीतेन नापि दोलायमानवेदननिमित्त मतिमनिर्वर्त्तनीयेतरान्नरादिपदार्थतोऽत्यन्तव्यावृत्तत्वेन । नापि विरुद्धतावरोधदुर्द्धरमन्नरादितोऽत्यन्तव्यावृत्तत्वेनैव नापि तुरीयव्याप्याभासताप्रतिबद्धमिन्द्रियवेदनेनानुमान नाम्ना राद्धान्ताऽभिधानेन वा मानेनाऽबाधिताऽभिप्रेतधर्म्मधर्म्यनन्तरप्रतिपादितत्वेन । नापि प्रत्यनुमानापमानतानिरन्धनमेतत्परिपन्थिधर्म्मोपपादनपत्यलानुमानाभावेन ननु भवतीद तावदनुमान परिपन्थिधर्मोपपादनप्रत्यलम् । यथा भूताधिभूर्भूभूधरादिविधाता न भवति वपुर्वन्ध्यत्वेन निर्वृतात्मवत् । तदनवदातम् यतोऽत्र निनेनरूपो धर्मी धीधनेन प्रतिपन्नोऽप्रतिपन्नो वा प्ररूपितः । न तावदप्रतिपन्नो यदेवमाधारद्वाराप्रतीतत्वोपद्रवो वपुर्वन्ध्यताव्याप्योपनिपाती भवन निरोद्धु तीर्यते । यदि पुन' प्रतिपन्नोऽय धर्म्मी तदा येन मानेन प्रतिपत्तिर्म मथप्रत्यर्थिनोऽभिधीयते तेन तत्रादिविधानव्युत्पन्नमतेरेवेयमिति तत्रोपादीयमाना वपुर्वन्ध्यता बाधितवरमेवेति न नाम प्रत्यत्तितु पर्याप्नोति । तदेव निमित्ताधीनात्मलाभताव्याप्यमत्यन्तपूतरूप पर्वतादेर्धीमद्धेतुताप्रतिपादनावदातमेवेति । तत्राभिधीयते । यदिद तावन्निमित्ताधीनात्मलाभत्व व्याप्यमालपित तद्द्रव्यद्वारा पर्यायद्वारा वेति भेदोभयी। यद्याद्यः पन्थाः प्रथ्यते तदानीमप्रतीतिर्नामव्याप्योपताप । यतो द्रव्यरूपतया पृथ्वीपर्वतादेर्नित्यत्वमेव प्रतिवादिनाभ्युपेयते ॥

अब त्रयोदशाक्षरवादीके मतको पढकर खण्डन करते है नन्विति शैव प्रश्न करतेहैं कि तीन भुवनरूप (भवन) मकानमें रहनेवाले अनन्तरित और अन्तरित जो पदार्थ हैं सो तुम जैनोंको सम्मतवर्धमानादितीर्थङ्करवृत्ति नहीं हो सकते किन्तु पृथ्वी और पर्वत आदि पदार्थोंके सम्बन्धोपपादनद्वारा प्रमथपति ईश्वरमें ही पूर्वोक्त पदार्थमथावृत्ति हो सकती है। इस विषयमें न्यायके तात्पर्यके बोधमें प्रधानहै मनोवृत्ति जिनकी वैसे विद्वद्वृन्द ऐसा अनुमान कहते हैं। विवादास्पदीभूत भूभूधरादिक बुद्धिमान् पुरुष प्रणीत हैं क्योंकि निमित्ताधीन आत्मलाभवाले होनेसे अर्थात् कार्य होनेसे भूभूधरादिक बुद्धिमद्विधेय है । जो पदार्थ निमित्ताधीन आत्मलाभवाला होता है सो अवश्य बुद्धिमद्विधेय होता है जैसे कि मन्दिर पूर्वोक्त हेतुमान् होनेसे पूर्वोक्त साध्यवान् है । भूभूधरादिक भी वैसे ही है। इसलिये यह भी बुद्धिमद्विधेय ही है॥ भूभूधरादिकोंको निमित्ताधीनात्मलाभत्ववादी अथवा प्रतिवादी किसीको भी अप्रतीतनाम अप्रसिद्ध नहीं है क्योंकि भूभूधरादिकोंको स्वस्वनिमित्तोत्पत्तिकत्व सर्वसाधारण प्रतीत हैं अर्थात् भूभूधरादि पदार्थ अपने अपने कारणोंसे उत्पन्न होते हैं यह बात सर्वसाधारण है इसमें कुछ भी विवाद नहीं मतिमान् पुरुषसे प्रणीत पदार्थोंसे इतर

आकाशादिकोंसे अत्यन्तव्यावृत्त होनेसे अर्थात् आकाशादिरूप विपक्षमें न रहनेसे पूर्वोक्त हेतु व्यभिचारी भी नहीं है आकाशादिकोंमें न रहनेसे ही विरुद्धताके सम्बन्धसे भी दुर्धर नहीं है। तुरीयव्याप्याभासता नाम कालात्ययापदिष्टत्वसे प्रतिबद्ध भी प्रकृत हेतु नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष तथा अनुमान राद्धान्ताभिधान नाम आगमप्रमाणसे अबाधित अभिप्रेत धर्म्मवान् धर्मी है ऐसा अभी हम कह चुके हैं। इसके विरुद्ध धर्म्मके उपस्थापक अनुमानके न होनेसे प्रकृतहेतु सत्प्रतिपक्षित भी नही है। प्रश्न करते है कि क्यों नही प्रतिपन्थि अनुमान ऐसा जो है। अनुमानका आकार लिखते है कि भूतादि नाम भूतपति जो ईश्वर है सो शरीरसे शून्य होनेसे मुक्तात्मकी तरह भूभूधरादिकोंका कर्ता नहीं होसकता शैव कहते हैं कि यह तुह्मारा कहना ठीक नहीं है क्योंकि हम तुमको पूछतेहै कि यहाँ पर बुद्धिमानने तुमने त्रिनेत्ररूपधर्मी (प्रतिपन्न) ज्ञात कहा है अथवा अप्रतिपन्न ही धर्म्मित्वेन कहदिया है। अप्रतिपन्न तो नहीं कहसकते क्योंकि ऐसा कहनेसे आश्रयद्वारा अप्रतीतत्वनामक (उपद्रव) दोष हेतु समीप वृत्तिसन् रुक नहीं सकेगा अर्थात् आश्रयासिद्धिनामक दोष आजावेगा। और यदि धर्म्मी प्रतिपन्न है तब तो जिस प्रमाणसे कामदेवके शत्रु देवदेव ईश्वरकी सिद्धि तुम कहतेहो उस प्रमाणसे (तत्वादि) स्वशरीरादि विधानमें व्युत्पन्नमतिकी ही ईश्वर की सिद्धि होती है इसलिये ईश्वरमें कही हुई वपुर्वन्ध्यता बाधिता ही है इससे उसको हेतुत्वेन कह नहीं सकते अर्थात् जब प्रमाणसे सशरीर ईश्वरकी ही सिद्धि भयी तब ईश्वरमें भूभूधरादि कर्तृत्व निषेधार्थ वपुर्वन्ध्यत्वरूप तुह्मारा हेतु स्वरूपासिद्ध है ईश्वरवादी ही कहते है कि इसलिये पूर्वोक्त रीतिसे सर्वथा निर्दोष जो निमित्ताधीनात्मलाभत्वरूप हेतु है सो पर्वतादिकोंको बुद्धिमज्जन्यत्व साधनमें समर्थ ही है। अब इसमें जैन उत्तर देते है। जैन पूछते है कि जो तुमने निमित्ताधीनात्मलाभत्वरूपहेतु कहा है सो द्रव्यद्वारा कहा है अथवा पर्यायद्वारा कहा है यह तो पहिले कहिये। द्रव्यद्वारा तो नही कहसकते क्योंकि द्रव्यद्वारा तो प्रतिवादी जैनोंने भूभूधरादिकोंको नित्य ही माना है इसलिये अप्रतीतिनामक हेतुदोष प्राप्त होवेगा।

ननु भूभूधराद्यमुत्पादवदवयवित्वेन यदेवं तदेवं यथेन्दीवरमवयवीरूपं पुनरिदं तदुत्पादवदेवेत्यनुमानेन तन्नित्यता निर्मूलोन्मूलितैवेति नैतद्धीमद्वृत्तिविधानप्रधानम्। यतो भूभूधरादेरवयवित्वमवयवारभ्यत्वेन यद्वाऽवयवव्रातवर्तमानतया मन्यते। न प्रथमविधा विबुधाऽवधानधाम यतो न नामैतत्पृथ्वीपृथ्वीधरप्रभृतिद्रव्यमभूतपूर्वमवयववृन्देन निर्वर्तितमिति प्रतिवादिनः प्रतीतिर्विद्यते।यदि पुनरवयववृत्तिभेदोऽभिधीयते तदानीमवयववत्वेन दोलायमानताऽत्र यतोऽवयवोयमवयवो-

यमितीत्थं बुद्धिवेद्यमवयवत्वमनयवितानवृत्ति भवति । न पुनरुत्पादपराधीनं नित्यत्वम् । ननु नाथाऽनेन दुर्भेदप्रबन्धप्र-
तिपादनेन । प्रतीतोऽयमवयवी तावद्वादिवितर्कविवादेन पयपनपादानादिरिति न नाम न प्रतीतोऽपीतरात्मापि तथा
नियमेन प्रतीतो वर्तते । न पुनरुत्पादवानित्यनुमेयतत्तुल्यतद्विरुद्धवृत्तितोपद्रवः । यदि तु पर्यायद्वारा निमित्ताधीनात्म
लाभत्व भूभूधरादेरभिधीयते तदा नरामरादिपर्यायद्वारोत्पद्यमानात्मनोऽपि बुद्धिमदुत्पाद्यत्वमापद्यते । ननु नरामराद्युत्पा-
दनप्रत्ययधर्माधर्मोत्पाद्यानुभवायतनभूता तथाविधा तनुरेवोत्पद्यते । न पुनरात्मा लवमात्रतोऽप्यनादिनिधनत्वेन यदि
पुनरात्माप्युत्पत्तिविपत्तिधर्मा भवति । तदानीं भूतमात्रतत्त्ववादिमतापत्तिरात्मनः पूर्वोत्तरभवानुयायिनोऽभेदिनो ऽन
भ्युपेतत्वेनेति । तच्च बन्धुरं यतो यद्यात्मनोऽभिन्नरूपतैवाऽऽवेद्यते तदाऽन्यतरनरामरादिभवनवत्येवायमपरिमेयात्मी-
यानुभवनीयतत्तद्भवपर्यायप्रबन्धानुभवनेन द्वितीयादिभवानुभववान्न भवितुमुपपद्यते । वेद्यते त्वनेनैव भवपर्यायपरम्प-
रेति तद्रूपतयाऽयमुत्पत्तिमानिति नियम्यते । नाप्येवं भूतमात्रतत्त्ववादितापत्तिरात्मनो द्रव्यरूपतया नित्यताभ्युपा-
येन पूर्वोत्तरभवप्रतीतितः । तन्मतेन तु न नाम द्रव्यतया नित्यं वेदनं वर्तते यतो भूतधर्मतयाऽनेन प्रतिपादितमे-
तत् तथैतदनुमानधर्मीन्द्रियोद्भूतबोधेनाद्वैतो बाध्यते । रूपं ध्वनिरपि नयनोत्थप्रथाप्रत्ययमित्यादिवत् । यतोऽत्र दोला-
यमानविधानतत्परनरव्यापारः । पृथ्वीपृथ्वीधराभ्रतरुपुरन्दरधनुरादिर्भावव्रातो धर्मी प्ररूपितः । तत्र त्वभ्रतरुविद्युदा-
देरिदानीमप्युत्पद्यमानतया वेद्यमानतनोर्विधाता नोपलभ्यते । ननु भवत्येव बाधेयं यद्येतद्विधानावधानप्रधानः
पुमानिन्द्रियप्रभवप्रमालम्बनीभूतोऽभ्युपेतो भवति यावतातीन्द्रियोऽयमिति नायमुपद्रवः प्रभवति तदनभिधानीयम् ।
यतो व्याप्तिप्रतिपादनप्रत्यलं मानमत्रेन्द्रियद्वारोद्भूतं वेदनं तवाभिमतम् । धूमानुमानवत् धूमानुमानेऽपि न पारावारो
द्भवौदर्यतनूनपादितरतनूनपात्तुल्यत्वेन व्याप्तिं प्रतीतेतीन्द्रियोद्भववेदनवेद्यभावालम्बनेनैवाऽनेनानुमानेन भवित-
व्यमन्यथा तु तेन व्याप्तिप्रतीतिर्दुरुपपादैव । ततोऽपि तत्र व्याप्त्यनालम्बनीभूतेन तेन बुद्धिमन्निमित्तेनानुमेयतापि ना
द्रियते । तथात्वेन प्रतिपादितं त्वेतदत्रेन्द्रियबोधावबोध्यतया नियमेनाभ्युपेतव्यम् । यदि तु तथाभ्युपेयते तदा नैतन्नि
मित्त तरुविद्युदादेरुपलभ्यते । ततोऽनेन वेदनेनात्र बाधो भवत्येव । ननु धूमानुमानमत्यादय-तनूनपातोऽप्येवमनेन
वेदनेन बाधो भवति । यतो न तत्रापि विधीयमानानुमानेन प्रमात्रा तनूनपादिन्द्रियवेदनेन वेद्यते । तदमनोरमम् । यतोऽ

त्रानुमातुर्व्यवधिर्विद्यते व्यवधिमान् पुनः पदार्थो नेन्द्रियालम्बनीभवतीति तदनालम्बनीभूतः पर्वततनूनपान्न तेन बाधितुं पार्य्यते। यदा पुनः प्रमाता तत्र प्रवृत्तो भवति तदानीमव्यवधानवानयं तनूनपात्तेनोपलभ्यते । तरुविद्युल्लताआदिबुद्धिमन्निमित्तं तु तत्र प्रवर्तमानेनापि नितरामवधानवतापि नोपलभ्यते । ततो भवति तत्रेन्द्रियोद्भवबोधबाधेति । ततोऽपि तथाविधधर्म्यनन्तरनिमित्ताधीनात्मलाभत्वरूपव्याप्यप्रतिपादनेन त्वन्मतेन तुरीयव्याप्याभत्वोपनिपातः । मन्मतेन त्वन्तर्व्याप्तेरभावेनानियतप्रतिपत्तिनिमित्ततान्नव्याप्यपराभूतिः। तथेदं निमित्ताधीनात्मलाभत्वं यदि तन्मात्रमेव व्याप्यत्वेन प्रतिपाद्यते । तदा नाभिप्रेतपदार्थप्रतीतिनिर्वर्तनपर्य्याप्तमनुपलब्धपूर्वोत्पत्तिव्यापारेन्द्रमूर्द्धो मर्त्यपूर्वत्वप्रतीत्यर्थोपात्तमृन्मयत्ववत् । न नामनिपेन्द्रमूर्द्धोर्मृन्मयत्वमपि भिद्यते । ननु यद्यपि मृन्मयत्वं तुल्यमेवोभयत्रापि तथापि नेन्द्रमूर्द्धोन्यो मानवपूर्वत्वेन प्रतीतो विद्यते । ततो विवादपदापन्नोप्ययं तत्तुल्यत्वेन न मर्त्यनिर्वर्त्यो भवति तन्नावदातं यतोऽत्रापि न भूभूधरभुवनादिप्रायः पदार्थोन्यो बुद्धिमन्निमित्तोपेतः परिभावितो वर्तते । ततो विवादपद्धतिप्रतिबद्धोऽप्ययं न तथा भवितुं लभते। ननु निपादिर्विद्यते बुद्धिमन्निमित्तोपेतः परिभावितोऽतो विवादापन्नोऽपि तथानुमातुमनुरूपः । तदवद्यं यतोऽन्यत्रापि निपादिरेव मानवनिर्वर्त्यो विभावितो विद्यते । ततः पुरन्दरमूर्द्धापि तन्निवर्त्त्येन नितरां भवितव्यम् । ननु नरनिर्मितनिपादितः पुरन्दरमूर्द्धोवैरूप्यमुपलभ्यते । ततो न तत्र मर्त्यनिर्वर्त्यतानुमानमुपपन्नं यद्येवं तदानीमेतद्वैरूप्यं निपादितो भूभूधरभुवनादेरपि परिभाव्यते यतो निपादिनाऽनुपलब्धबुद्धिमद्व्यापारात्मनाप्युपलब्धेन नियमतो निर्वर्त्तितोऽयं मतिमतेति बुद्धिरुत्पाद्यते । न पुनर्भुवनादिना ततो न निमित्ताधीनात्मलाभत्वमात्रं बुद्धिमद्धेतुत्वप्रतीतिविधानबन्धुरम्। यदा तु धरित्रीधरित्रीधरत्रिभुवनादिविधानं न प्रतीतम् । तदानीं त्रिनयनो भुवनभवनान्तर्भाविभावव्रातप्रद्योतनप्रबलवेदनप्रदीपवानितिनिर्धनदानमनोरथप्रथैवेयमिति ॥ त्यादिवचनद्वयेन स्यादिकवचनत्रयेण वर्णैस्तु । त्रिभिरधिकैर्दश भिरयंव्यधायि शिवसिद्धिविध्वंसः ॥ १ ॥ ति, ते, सिटाङस् । तथदधन । पबभम । यरलव ।

ईश्वरवादी प्रश्न करते है कि भूभूधरादिक उत्पत्तिवाले है अवयवि होनेसे, जो अवयवी होता है सो अवश्य उत्पत्तिमान् ही होता है जैसे कि (इन्दीवर) कमल पूर्वोक्त हेतुमान् होनेसे पूर्वोक्त साध्यवान् है भूभूधरादिक अवयवी हैं इसलिये यह उत्पत्तिमान् ही है । इस अनुमानसे भूभूधरादिकको जो तुमने प्रथम नित्यता कही है सो निर्मूल होनेसे उन्मूलित ही है जैन कहते है कि यह तुम्हारा कथन

बुद्धिमानपुरुषोंके चित्तका चमत्कारी नहीं है क्योंकि भूभूधरादिकोंको अवयवित्व तुम अवयवारभ्यत्वेन कहतेहो अथवा अवयवसमू-
हमें वृत्ति होनेसे अवयवित्व कहते हो इन दो भेदोंमेंसे प्रथम भेद तो बुद्धिमानोंके कहने लायक नहीं है। क्योंकि यत पृथ्वी तथा
पर्वतादिक जितने द्रव्य हैं सो अभूतपूर्व नाम नवीन तुच्छ अवयवसमूहसे बनाये नहीं जाते किंतु वह अनादिकालसे वैसे ही सिद्ध
है। ऐसी प्रतिवादी जैनकी प्रतीति विद्यमान है। अब यदि अवयवसमूहवृत्तित्वेन अवयवित्व कहोगे तब तो इसहेतुमें अवयवत्वेन
दोलायमाला रूप आपत्ति नाम पक्षसपक्षविपक्षवृत्तित्वरूप अनेकान्तिकत्वनामक दोष आजावेगा क्योंकि अवयवोऽय अवयवोऽय
इत्याकारक प्रतीतिका विषय अवयवत्व अवयवसमूहवृत्ति होता है परन्तु उत्पत्तिपराधीन नहीं है। क्योंकि उसको नित्यता है।

ईश्वरवादी कहते हैं कि इस दुष्टभेदके करनेका कुच्छ प्रयोजन नही है क्योंकि सब वादिसमूहको पद्म पत्र पात्र तथा दात्रा
दिरूप अवयवी प्रसिद्ध ही है जैन कहते हैं कि अवयवी प्रतीत नहीं है ऐसा नहीं किन्तु प्रतीत ही है परन्तु आत्मा भी तो
नियमेन अवयवितया प्रतीत होता है परन्तु आत्मा उत्पत्तिमान् तो नहीं है इसलिये अनुमेय नाम पक्ष तत्तुल्य सपक्ष तद्विरुद्ध विपक्ष
तद्वृत्तितोपद्रवनाम अनेकान्तिकत्वनामकदोष आवेगा। इस तरह द्रव्यद्वारा तो निमित्ताधीनात्मलाभत्वभूभूधरादिकोंको नहीं कहसकते
अब यदि पर्यायद्वारा कहोगे तब तो मनुष्य तथा देवतादिरूप पर्यायद्वारा उत्पन्न होनेवाले आत्माको भी बुद्धिमदुत्पाद्यत्वकी प्राप्ति
आवेगी। ईश्वरवादी कहते हैं कि मनुष्य तथा देवतादिरूपेण तो धर्म्माधर्म्मसे उत्पन्न होनेवाले अनुभवके आयतन नाम अवच्छेदक
तत् तच्छरीर उत्पन्न होते हैं परन्तु आत्मा तो लवमात्र भी उत्पन्न नहीं होता क्योंकि आत्मा तो अनादि अनन्त है। और यदि
आत्मा भी उत्पत्ति तथा (विपत्ति) नाशवालाहै ऐसा कहोगे तो पूर्व तथा आगामी भवमें अनुयायी एक आत्माके न माननेसें भूतमात्र
तत्ववादी (चार्वाक) के मतका प्रसङ्ग आवेगा जैन कहते है कि यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है क्योंकि यदि आत्माको
अभिन्नरूपता (एकरूपता) ही कहोगे तो मनुष्यभववर्ती अथवा देवभववर्ती यह आत्मा अनन्त जो अपनेको अनुभवनीय भव-
पर्याय उनके प्रत्यक्षके अनुभवनसे द्वितीयादि भवोंके अनुभववाला न हो सकेगा। परन्तु यह आत्मा भवपर्याय परम्पराको अनुभव
तो करता है इसलिये पर्यायरूपसे यह आत्मा उत्पत्तिमान् है ऐसा आचार्योंने निश्चय किया है। पर्यायरूपसे आत्माको अनित्य
कहनेपर भूतमात्रतत्ववादिता भी प्राप्त नहीं होती क्योंकि द्रव्यरूपतया नित्यमाननारूप उपायसे पूर्वोत्तरभवकी प्रतीति होती है।
चार्वाकके मतानुसार तो द्रव्यरूपतया भी वेदन (चेतना) आत्मा इति यावत् नित्य नहीं है क्योंकि उन्होंने तो चेतनाको भूत-

धर्म्मतया कहाहै । जैन कहते है कि एवं ईश्वरवादीने कहे हुए ईश्वरसाधक अनुमानका धर्मी प्रत्यक्षप्रमाणसे अंशमें बाधा जाता है। जैसे कि रूप तथा शब्द यह दोनों चक्षुरिन्द्रियजन्यज्ञानसे जाने जाते है इस अनुमानका धर्म्मी अंशतः बाधा जाताहै । क्योंकि वहां दोलायमान विधानमें तत्पर पुरुषका व्यापार है अब दोलायमानताको ही स्पष्ट करते है ! पृथ्वीपृथ्वीधर तथा अभ्र तरु इन्द्रधनुः आदिक भावसमूह धर्म्मी कहा है उनमेंसे अभ्र और तरु और विद्युतादिक पदार्थ अब भी उत्पन्न होते है परन्तु प्रत्यक्ष सिद्ध शरीरवान् उनका कर्ता तो कोई प्रतीत नहीं होता। ईश्वरवादी कहते है कि भाई यह पूर्वोक्तबाधा तब होसके जब कि इनके रच-नेवाला पुरुष कोई इन्द्रियजन्य ज्ञानका विषय हमने माना होय किन्तु हमने तो उसको अतीन्द्रिय कहा है इसलिये पूर्वोक्त दोष नहीं है । जैन कहते है कि यह तो तुह्मारा कथन कथनीय नहीं है क्योंकि धूमानुमानकी तरह यहापर भी व्याप्तिग्राहकप्रमाण प्रत्यक्ष ही तुह्मारेको अभीष्ट है । धूमानुमानमें भी समुद्राग्नि और औदर्याग्निकी भी तदितर अग्निके तुल्यत्वेन धूमव्याप्ति प्रतीत नहीं है।

इसलिये प्रत्यक्षवेदन और वेद्यभावालंबनत्वेन ही प्रकृत अनुमान भी होवेगा अन्यथा नाम यदि दृश्यत्व न मानोंगे तो इन्द्रियजन्यज्ञानसे व्याप्तिकी प्रतीति दुरुपपाद होवेगी अर्थात् व्याप्ति प्रत्यक्षप्रमाणसिद्ध न होवेगी । इसलिये हेतुमें (अप्रत्यक्षत्वेन) व्याप्तिके अनिरूपक बुद्धिमज्जन्यत्वमें अनुमेयता भी न बन सकेगी। परन्तु बुद्धिमन्निमित्तत्व इस पूर्व अनुमानमें अनुमेयतया कहा तो है इसलिये इसको इन्द्रियजन्यज्ञानका विषय अवश्य मानना ही चाहिये । जब बुद्धिमज्जन्यत्वको प्रत्यक्ष मानलिया तब तरु तथा विद्यु-दादिकोंको बुद्धिमन्निमित्तत्व प्रतीत तो नहीं होता इसलिये ऐन्द्रियप्रत्यक्षसे पूर्वोक्त तुह्मारे स्थापनानुमानमें अंशतः बाधा होती ही है। ईश्वरवादी प्रश्न करते हैं कि भाई ऐसे तो धूमानुमानसे ज्ञातव्य वह्निके धर्म्मीमें भी अंशतः बाधा होवेगी क्योंकि जो प्रमातापुरुष धूमसे वह्निका अनुमान करता है उसको अनुमेय वह्नि अवश्य प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं होती जैन कहते है कि यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि यहांपर तो अनुमातापुरुषका वह्निके साथ व्यवधान है व्यवधानवाले पदार्थका ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं होता अर्थात् व्यवधिमान् पदार्थ प्रायः प्रत्यक्ष योग्य नहीं होता जिसमें प्रत्यक्षकी योग्यता ही नहीं है ऐसे पर्वतीय अग्निकी प्रत्यक्षसे बाधा भी नहीं हो सकती और जब अनुमानकरनेवाला पुरुष उसी अनुमेय वह्निमें प्रवृत्त होता है तब व्यवधानसे शून्य वही अग्नि उस प्रमाताको ऐन्द्रियज्ञानसे भी प्रतीत हो जाती है परन्तु तरु विद्युत् तथा अभ्रादिकोंमें बुद्धिमन्निमित्तत्वके ज्ञानार्थ प्रवृत्तिमान् भी तथा वृक्षादिकोंके मूलदेशमें स्थित भी प्रमाताको वृक्षादिकोंमें बुद्धिमन्निमित्तत्व तो कभी भी ऐन्द्रियज्ञानसे प्रतीत नहीं होता । इसलिये पूर्वोक्त स्थापनानुमानका धर्म्मी

अक्षत बाधित ही है यह हमारा कथन युक्तियुक्तसिद्ध भया । तो भी प्रत्यक्षबाधितधर्म्मधर्म्मी होनेपर भी निमित्ताधीनात्म स्वभावरूपहेतु कहनेसे तुम्हारे मतके अनुसार तो कालात्ययापदिष्ट (बाध) नामक दोष प्राप्तभया और हमारे शास्त्रके अनुसार तो अन्तर्व्याप्तिके न होनेसे अनियतप्रतिपत्तिनिमित्तता नाम अनैकान्तिकरूप नामक दोष ही व्याप्यकी परागूति है अर्थात् हमारे मतमें तो अस्तु निमित्ताधीनात्मलाभत्व मास्तु बुद्धिमज्जन्यत्व ऐसा कहनेपर अनुकूलतर्काभावात् व्याप्ति बन नहीं सकती इसलिये यहाँपर अनैकान्तिक ही दोष है ॥ और भी पूर्वोक्तानुमानमें दोष कहते है कि यदि यह निमित्ताधीन आत्मलाभत्वरूप हेतु केवल निमित्ताधीनात्मलाभत्वेन रूपेण ही हेतु कहोगे तो पहिले नहीं ज्ञात है उत्पत्तिव्यापार जिसका ऐसे इन्द्रमूर्द्धनाम वर्मी (वल्मीक) को मनुष्यजन्यत्व सिद्ध करनेके लिये कहेहुए मृन्मयत्वहेतुकी तरह यह भी हेतु ससाध्यकी सिद्धिमें (पर्य्याप्त) समर्थ न होगा क्योंकि इन्द्रमूर्द्ध नाम पदार्थ भी तो मृन्मयत्व भिन्न नहीं है । अर्थात् इन्द्रमूर्द्धा मानवकृत मृन्मयत्वात् घटवत् यहापर घट तथा वल्मीक इन दोनोंमें तुल्य मृन्मयत्वहेतु होकर भी ससाध्यसिद्धिमें समर्थ नहीं है ऐसे ही प्रकृतहेतु भी न होगा । ईश्वरवादी प्रश्न करते हैं कि यद्यपि घट तथा वल्मीकमें मृन्मयत्व तुल्य भी है तो भी जगत्में कोई दूसरा वल्मीक मानवपूर्वकत्वेन प्रतीत नहीं है इस लिये विवादपदापन्न भी प्रकृत वल्मीक अन्यवल्मीकके तुल्य होनेसे मनुष्यजन्य नहीं है। जैन कहते हैं कि यह तुमारा कथन ठीक नहीं है क्योंकि प्रकृत तुमारे अनुमानमें भी तो भूभूधर तथा भुवनादिपदार्थ दूसरा बुद्धिमज्जन्य कोई प्रतीत नहीं ही है इससे विवादास्पदीभूत प्रकृत भूभूधरादिक भी बुद्धिमज्जन्य नहीं है ऐसा भी तो कहसकेंगे । फिर ईश्वरवादी कहते है कि घटादि पदार्थ बुद्धिमज्जन्य हमने देखे हैं इसलिये विचारसे विवादापन्न भी भूभूधरादिक बुद्धिमज्जन्यत्वेन अनुमान युक्तियुक्त हैं। जैन कहते है कि यह बात तो कहनेलायक ही नहीं है । क्योंकि इन्द्रमूर्द्धा मानवजन्या इस अनुमानमें भी घटादिक ही मानवजन्यत्वेन देखेहुए विद्यमान है इसलिये वल्मीक भी मानवजन्यत्वेन स्वयसिद्ध होजावेगा ईश्वरवादी कहतेहैं कि मनुष्यसे निर्म्मित घटादिकोंकी अपेक्षासे वल्मीकमें विलक्षणता प्रतीत होती है इसलिये वल्मीकमें मनुष्यजन्यत्वानुमान युक्तियुक्त नहीं है जैन कहते हैं कि यदि आकारवैरूप्यसे ही मनुष्यजन्यत्वाजन्यत्व कहोगे तो ऐसा वैरूप्य तो घटादिकोंसे भूभूधरादिकोंमें भी प्रतीत होता है । क्योंकि जिसने बुद्धिमज्जन्यत्व घटमें नहीं भी देखा उसको भी घटको देखनेमात्रसे ही यह घट जरूर किसी बुद्धिमान् पुरुषने रचा है ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । परन्तु भूभूधरादिकोंके देखनेसे तो किसीको भी ऐसा ज्ञान नहीं होता इसलिये केवल निमित्ताधीनात्मलाभत्व-

रूपहेतु बुद्धिमज्जन्यत्वकी सिद्धिमें समर्थ नही है । जब भूभूधरादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति ही सिद्ध न भयी तो फिर त्रिनयन देवदेव महादेव भुवनरूप मकानमें रहनेवाले भावसमूहके प्रकाशमें समर्थ ज्ञानरूपी दीपकवाला है यह जो कथन है सो केवल निर्धन पुरुषके दानमनोरथके सदृश ही है अर्थात् व्यर्थ है इस रीतिसे त्यादि वचनद्वयसे और स्यादि वचनत्रयसे तेरस अक्षरोंसे यह शिवसिद्धिका नाश हमने किया है । १ । आगे तिते इत्यादि त्यादि स्यादि तथा त्रयोदश वर्णोंकी गणना कर दी है ॥

केवलिनः कवलाहारत्वे सर्वविच्वं विरुध्यत इतीष्टवतो नग्नाटान् विघटयितुमाहुः ।

केवलीको यदि केवलाहारत्व नाम केवली भी असदादिवत् अन्नके ग्रासोंको खाताहै ऐसा माननेसे केवलीके सर्वज्ञत्वमें हानि आवेगी ऐसा माननेवाले दिगम्बरोंको रोकनेके लिये सूत्रकार आगेके सूत्रको कहतेभये ।

नच कवलाहारवत्त्वेन तस्याऽसर्वज्ञत्वं कवलाहारसर्वज्ञत्वयोरविरोधादिति ॥

कवलाहार करनेसे भगवानको असर्वज्ञत्व नहीं हो सकता क्योंकि उन (सर्वज्ञत्व व ग्रास)का परस्पर कुछ विरोध नही है ॥

तथाह्यनयोः साक्षात्परम्परया वा विरोधमभिदधीरन्नहीकाः । तत्र यदि साक्षात्पक्षोपक्षेपदीक्षादक्षा विवक्षेयुः क्षपणकास्तत्क्षूणम् नहि सति सार्वज्ञ्ये केवली कवलान् न प्राप्नोति। ग्रासानपि नाहर्तुं शक्नोति। शक्तोऽपि वा विमलकेवलालोकपलायनशङ्कया नाहरतीत्यस्ति सम्भवोन्तरायकेवलावरणकर्म्मणोः समूलकाषंकषणात्। अथ परम्परा कल्पकल्पनास्वल्पतल्पगा जल्पेयुस्तदप्यल्पीयः। यतः किमेवं सति कवलाहारस्य व्यापकं कारणं कार्यं सहचरादि वा सार्वज्ञ्येन विरोधमधिवसेदशेषमपि चैतत्परस्परपरिहारेण सहानवस्थानेन वा विरुध्यते । प्राचीनेन चेत् तदानीं तावकज्ञानेनापि साकं कवलाहारव्यापकादेः परस्परपरिहारस्वरूपविरोधसद्भावाद्भवतोऽपि कवलाहाराभावः स्यादित्यहो पुरुषकारो यत्स्वस्यैव प्रभवितासि द्वितीयेन तु न तावद्व्यापकं व्याहन्यते । कवलाहारस्य हि व्यापकं शक्तिविशेषवशादुदरकन्दराकोणे क्षेपः । सच सति सार्वज्ञ्ये सुतरां सम्भाव्यते वीर्यान्तरायकर्मनिर्मूलोन्मूलनात् । तत्र तत्क्षेपहेतोः शक्तिविशेषस्य सम्भवात् । कारणमपि बाह्यमभ्यन्तरं वा विरोधमधिरोहेत् । बाह्यमपि कवलनीयं वस्तु तदुपहारहेतुपात्रादिकमौदारिकशरीरं वा । न प्रथमं यतो

यदि सर्ववेदिसवेदन कवलनीयपुद्गलैविरोधधुरांधारयेत्तदानीमस्मदादिसंवेदनमपि तथा स्यान्न खलु तरुणतरतरणिकिरण निकरेणान्धकारनिकुरम्ब विरुद्ध प्रदीपालोकेनापि न तथा भवति तथाच करतलतुलिताहारगोचरज्ञानोत्पादेऽस्मदादीनामपि तदभावो भवेदित्यहो किमपि नूतनतत्त्वालोककौशल यदात्मन्यपि नाहारापेक्षा अस्मदादौ तयोर्विरोधावबोध एव हि तत्र तत्प्रतिपत्त्युपायस्तस्यास्मदादीनामगोचरत्वाद्यथास्मदादौ ज्ञानतारतम्यावबोधस्तस्य निःशेषविषयत्वस्य प्रतिपत्तावितिः । पात्रादिपक्षोऽपि नाक्षूण' भगवतामर्हता पाणिपात्रत्वादितरेषामपि केवलिना स्वरूपमात्रेण तत्तद्विरोधदुर्द्धर स्यान्ममकारकारणतया वा तत्रादिम. समनन्तरपक्षप्रहारेणैवोपक्षीणः द्वितीयोऽपि नास्ति निर्मोहत्वेन तेषां तत्र ममकारविरहात् । नच पात्रादिभावे भवितव्यमेवानेनेत्यवश्यम्भावोऽस्ति शरीरभावेऽपि तद्भावप्रसङ्गादितरजनेषु भयभावेऽपि तद्दर्शनात् । औदारिकशरीरमपि न तेन विरोधमध्यूपिवत् केवलोत्पत्तिसमनन्तरमेव तदभावापत्तेः । आभ्यन्तरमपि तत्कारण शरीर कर्म्म वा । न तावत् प्रथम विरुध्यते । भुक्तिहेतोस्तैजसशरीरस्य सार्वज्ञ्येन सार्द्ध त्वयापि सत्त्वस्वीकारात् । कर्म्मापि घात्यघाति वा घात्यपि मोहरूपमितरद्वा । इतरदपि ज्ञानदर्शनावरणे अन्तरायो वा । नाद्यस्तयोर्ज्ञानदर्शनावरणमात्रचरितार्थत्वेन तत्कारणत्वानुपपत्तेः । नापि द्वितीयोऽन्तरायविलयस्यैव तत्कारणत्वात्तस्य च साकल्येन केवलिनस्त्वयापि स्वीकारात् । मोहोऽपि बुभुक्षालक्षणस्तत्कारण सामान्येन वा । प्रथमप्रकारे सर्वत्रापीय तत्कारणमस्मदादावेव वा । प्राच्य. प्रमाणमुद्रादरिद्रः ।

श्वेताम्बर मतानुसारी जैन पूछते हैं कि कवलाहार तथा सर्वज्ञत्वका विरोध निर्लज्ज (नग्नहोनेसे) तुम लोग साक्षात् कहते हो किम्वा परपरासे कहते हो । इन दोनोंपक्षोंमेंसे यदि साक्षात् पक्षके उपन्यासकी दीक्षामें दक्ष निर्लज्ज दिगबर अपनेको कहेंगे तो यह कथन तो उनका ठीक नहीं है । क्योंकि सर्वज्ञत्वके होनेसे केवली भगवान् ग्रासोंको ग्रास ही नही होता ऐसा तो कुछ नियम युक्तिसिद्ध नहीं हे । और ग्रास भी ग्रासोंके ग्रहणमें केवली समर्थ नहीं है अथवा समर्थ हे तो भी विमलकेवलज्ञानके नष्ट हो जानेकी शङ्कासे ग्रहण ही नहीं करता इन विकल्पोंमेंसे किसी भी विकल्पका सम्भव नहीं हे क्योंकि केवलीके अन्तराय तथा केवलावरणकर्मका सर्वथा नाश हो चुका है । यदि कदाचित् परम्परापक्षकी कल्पना दिगबर लोग करेंगे तो वह भी ठीक नहीं है क्योंकि इसमें हम पूछते है कि सर्वज्ञत्वके साथ कवलाहारके व्यापकका विरोध है अथवा कारणका है किंवा कार्यका है

इनमेंसे जो विरोधी है सो भी क्या परस्पर परिहारेण रूपेण है अथवा सहानवस्था-
अथवा कवलाहारके सहचरादिका विरोध है । यदि परस्पर परिहारेण है तब तो तुह्मारे ज्ञानके साथ भी कवलाहार व्यापकादिकोंके परस्पर परिहार
नेन रूपेण विरोधी है । यदि परस्पर परिहारेण है तब तो तुह्मारे ज्ञानके साथ भी कवलाहाराभाव होना चाहिये परन्तु है तो नहीं इसलिये भाई
(इतरेतराभाव) स्वरूप विरोधका सद्भाव होनेसे तुम्हारेको भी कवलाहाराभाव होना चाहिये परन्तु है तो नहीं इसलिये भाई
अहो तुम्हारा तो प्रयत खूब है जोकि तुम अपनेको ही हरा रहे हो । एवं द्वितीय नाम परम्परापक्षमें भी कवलाहारके व्यापकके साथ
तो सर्वज्ञत्वका विरोध नहीं कह सकते । क्योंकि कवलाहारका व्यापक है शक्ति विशेषके वशसे उदररूपी कन्दराके किसी
एकदेशमें प्रक्षेप सो तो सर्वज्ञत्वके होनेसे सुतरां हो सकता है क्योंकि केवलीमें वीर्यान्तरायकर्म्मका सर्वथा नाश हो जानेसे
उदररूपीकन्दराके कोणमें ग्रासके प्रक्षेपका हेतु जो शक्तिविशेष उसका सद्भाव है। अब यदि कारणके साथ कहते हो तो भी क्या
कवलाहारके बाह्यकारणके साथ सर्वज्ञत्वका विरोध है अथवा आभ्यन्तरके साथ है । बाह्य भी क्या कवलनीयवस्तु (जिसका
ग्रास करना है ऐसे अन्नादिक) के साथ विरोध है अथवा उसके खानेके साधन पात्रादिकोंके साथ विरोध कहते हो किंवा
औदारिक शरीरादिकोंके साथ कहते हो । इनमेंसे प्रथमपक्ष तो ठीक नहीं है क्योंकि यदि सर्वज्ञका ज्ञान कवलनीय (खाने योग्य)
वस्तुके पुद्गलोंके साथ विरोधि होवें तो हमारा ज्ञान भी उनके साथ विरोधि होना चाहिये क्योंकि जगतमें भी मध्याह्नकालके सूर्य्यकी
किरणोंके साथ विरुद्ध जो अन्धकार सो प्रदीपालोकके साथ विरुद्ध नहीं है ऐसा नहीं अर्थात् विरुद्ध ही है। इसलिये हाथमें गृहीत अन्नके
ज्ञान हो जानेसे असदादिकोंको भी कवलाहारके अभावकी प्राप्ति होवेगी इसवास्ते भाई यह तुम्हारी तत्वालोकमें नवीन चतुरायी
खूब है। जोकि तुम अपनेमें भी आहारकी अपेक्षा नहीं कहते हो । क्योंकि हमारेमें यदि ज्ञान और कवलाहारका विरोध होय तो
ही केवलीमें भी उनका विरोध सिद्ध होसके दूसरा तो केवलीमें विरोधका साधक कोई उपाय नहीं है क्योंकि वह असदादिकोंसे
जाना नहीं जाता जैसे असदादिकोंमें ज्ञानके तारतम्यका अवबोध है वैसे ही उसके निःशेष विषयत्वकी प्रतिपत्तिमें भी है ।
एवं पात्रादि पक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि भगवन्त जो अर्हन्तहै सो तो पाणिपात्र है अर्थात् हाथोंसे दूसरा उनका कोई पात्र नहीं
है । और सामान्य केवलियोंके ज्ञानके साथ भी पात्रादिकोंका क्या स्वरूपेण ही विरोध है अथवा ममत्वकारणतया है । इनमेंसे
प्रथमपक्ष तो अभी पूर्वकथित पक्षके खंडनसे ही खंडित है । अर्थात् पात्रादिकोंके साथ सर्वज्ञत्वके विरोध माननेसे असदादिकोंके
ज्ञानके साथ भी पात्रादिकोंका विरोध होना चाहिये। द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि केवलियोंको निर्मोह होनेसे पात्रा-

पात्रादिकोंके होनेसे अवश्य

दिकोंमें उनके ममकारका अभाव है। शरीरके होनेपर भी ममकारताकी प्राप्ति आवेगी इसलिये पात्रादिकोंके होनेसे उनमें केवलीका ममकारत्व होवेगा ऐसा तुच्छ नियम नहीं है। क्योंकि असदादिकोंका ममकार शरीर तथा पात्रादिकके होनेसे दोनोंमें देखा जाता है अर्थात् जैसे शरीर होनेपरभी केवलीका उसमें ममकार नहीं है ऐसे ही पात्रादिकके होनेपर भी उनमें उसका ममकार नहीं है। औदारिक शरीर भी केवलज्ञानके साथ विरोधि नहीं है क्योंकि केवलज्ञानकी उत्पत्त्यव्यवहित उत्तर-कालमें ही उसके अभावकी प्राप्ति आजावेगी। अब यदि कवलाहारके आभ्यन्तर कारणका सर्वज्ञत्वके साथ विरोध कहते हो तो भी क्या वह कारणशरीर है अथवा कर्म्म है प्रथमपक्ष तो कह ही नहीं सकते क्योंकि भुक्तिके कारण तैजस शरीरका सर्वज्ञत्वके साथ तुमने भी स्वीकार किया है। कर्म्म भी घातिरूप है अथवा अघातिरूप है घाति भी मोहरूप है अथवा इतर है इतर भी ज्ञानदर्शनावरणरूप है किंवा अन्तरायरूप है। इनमेंसे (आद्य) ज्ञानदर्शनावरणरूप तो नहीं कहसकते क्योंकि उनको तो ज्ञान तथा दर्शनके आवरणमात्रमें ही चरितार्थ होनेसे कवलाहारके कारणत्वका अभाव है। द्वितीयपक्ष भी युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि अन्तराय निलयको ही कवलाहारकी कारणता है सो तो केवलीको तुमने भी सर्वथा माना ही है। मोह भी क्या बुभुक्षा-(खानेकी इच्छा) लक्षण कवलाहारका कारण है कहते हो अथवा मोहत्वेनरूपेण मोहमात्र कारण है। प्रथमपक्षमें हम पूछते है कि सर्वत्र वह बुभुक्षा ही कवलाहारमें कारण है अथवा असदादिकोंमें ही है। प्रथमपक्ष तो प्रमाणरूप मुद्रासे दरिद्र है अर्थात् प्रमाणसिद्ध नहीं है॥

अथ या चेतनक्रिया सेच्छापूर्विकैव यथा सम्प्रतिपन्ना तथाच भुजि क्रियेत्यस्ति प्रमाण। तथाहि प्रथम प्रमाता प्रमिणोति तत इच्छत्यनन्तर यतते ततोऽपि करोतीति। नैव सुप्तमत्तमूर्छितादिक्रियाभिर्व्यभिचारात्। स्ववशचेतनक्रियेति सविशेषणहेतूपादानेऽपि केवलिगतगतिस्थितिनिषद्यादिक्रियाभिर्व्यभिचारात्। द्वितीये तु सिद्धसाध्यः स्मः केवलिनि वेदनीयादिकारणिकाया भुक्तेः सिद्धत्वात्। न सामान्येनापि मोहस्तत्कारणमेव हि गतिस्थितिनिषद्यादीनामपि स एव कारण स्यात् तथाच केवलिनि मोहाभावात् तासामप्यभावोभवेदिति कुतस्तीर्थप्रवृत्तिः स्यात्। अथ गत्यादिकर्म्मंव तत्कारण न मोहस्तर्हि वेदनीयादि कर्म्मैव कवलाहारकारण न मोह इत्यपि प्रतिपद्यताम्।

यदि कदाचित् जो चेतनक्रिया है सो सब इच्छा पूर्विकाही होती है जैसेकि इदानींतन (वर्तमान) असदादिक्रिया इच्छा पूर्विका

है ऐंसे भुजिक्रिया भी चेतन क्रिया होनेसे इच्छा पूर्विका ही है। यह अनुमान बुभुक्षालक्षणमोहको सर्वत्र कवलाहारकी कारणतामें प्रमाण है क्योंकि प्रमातापुरुष पहिले तो पदार्थको जानता है फिर उसकी इच्छा करता है फिर यत करता है तो फिर उसको करता है ऐसा कहोगे तो नही कहना क्योंकि सुप्त तथा मत्त तथा मूर्छितादिकोंकी क्रियाके साथ व्यभिचार है। अर्थात् सुप्तादि पुरुष प्रयुक्त क्रिया चेतनक्रिया है तो भी इच्छा पूर्विका नही है इसलिये जो चेतन क्रिया है सो इच्छापूर्विका है यह व्याप्ति न वन सकी स्ववशचेतनक्रिया ऐसा विशेषणविशिष्टहेतु कहनेपर भी केवलीमें रहनेवाली गति स्थिति तथा निषद्यादिरूप क्रियाओंके साथ व्यभिचार है। द्वितीय नाम असदादावेव तत्कारणं इसपक्षमें तो हम सिद्धसाध्यभये नाम हमारा साध्य सिद्ध होगया। क्योंकि केवलीमें वेदनीयादिकर्मसे उत्पन्न होनेवाली भोजनक्रिया सिद्ध होगयी। सामान्येन भी मोह कवलाहारका कारण नही है क्योंकि ऐंसे तो गति स्थिति तथा निषद्यादिरूप क्रियाओंका भी मोह ही कारण होना चाहिये ऐसा माननेसे केवलीमें मोहके न रहनेसे गत्यादिकोंके भी अभावकी प्राप्ति आवेगी तो फिर तीर्थप्रवृत्ति भी किससे होगी अर्थात् न होगी। यदि कदाचित् गत्यादिकर्म्म ही उनका कारण है परन्तु मोह नही ऐसा मानतेहो तो वेदनीयादिकर्म्म ही कवलाहारका कारण है परन्तु मोह नहीं ऐसा भी मान लीजिये

अथाघातिकर्म्मतत्कारणं किमाहारपर्य्याप्तिर्नामकर्म्मभेदो वेदनीयं वा न द्वयमप्येतत्प्रत्येकं तथा युक्तं तथाविधाहारपर्य्याप्तिनामकर्म्मोदये वेदनीयोदयप्रबलप्रज्वलदौदर्यज्वलनोपतप्यमानो हि पुमानाहारमाहरयति। एवञ्च समुदितं पुनरेतद्भवति तत्कारणं किन्तु न सार्वज्ञ्येन विरुध्यते सर्वज्ञे त्वयापि तदुपगमात्। अथ मोहसहकृतं तत्तत्कारणं तदसङ्गतं गत्यादिकर्म्मणामिवास्यापि मोहसाहायकरहितस्यैव तत्र तत्कारित्वाविरोधात्। अथाशुभप्रकृतय एवैतस्य साहायकमपेक्षन्ते नान्या गत्यादयो ऽशुभप्रकृतिश्चेयमसातवेदनीयरूपेतिचेत्। तत्किमियं परिभाषा। असदादौ तथादर्शनादेवं कल्प्यत इतिचेत् ननु शुभप्रकृतयोप्यसदादौ मोहसहकृता एव स्वकार्यकारणकौशलमवलंबमाना विलोकयाञ्चक्रिरे ततस्ता अपि तथा स्युस्ततो नैतद्द्वयस्य मोहापेक्षस्य तत्कारणत्वं किन्तु स्वतन्त्रस्य तच्चकेवलिन्यविकलमस्त्येव। तन्न कारणं केवलित्वेन विरुध्यते। कार्यं तु यदि विरुद्धं तदा तत्तत्र मोत्यादि। अविकलकारणस्तु तत्रोत्पद्यमानः कवलाहारोऽनिवार्य्यः एव। किञ्च किं नामाहारकार्यं सार्वज्ञ्येन हन्यते रसनेन्द्रियोद्भवमतिज्ञानं ध्यानविघ्नः परोपकार-

करणान्तरायो विसूचिकादिव्याधिरीर्यापथ पुरीषादिजुगुप्सित कर्म्म धातूपनयादिना रिरसा निद्रा वा । नाद्यः पक्ष-स्तावन्मात्रेण रसनेन्द्रियज्ञानासम्भवादन्यथाऽमरनिकरनिरन्तरनिर्मुक्तकुसुमपरिमलादिसम्बन्धात् घ्राणेन्द्रियज्ञानमपि भवेत् । न द्वितीयः केवलिनः शैलेशीआरम्भात्प्राग्ध्यानानभ्युपगमात् । तत्रच कवलाहारास्वीकारात् तद्ध्यानस्य च शाश्वतत्वादन्यथा गच्छतोऽपि कथन्नतद्विघ्न स्यात् । न तृतीयस्तृतीययाममुहूर्तमात्र एव भगवतां भुक्तेः शेषमशेषकालमुपकारावसरान्न चतुर्थ परिज्ञाय हितमिताहाराभ्यवहारात् । न पञ्चमो गमनादिनापीर्यापथप्रसङ्गात् । न षष्ठो यतस्तस्मिन् क्रियमाणे तस्यैव जुगुप्सासम्पद्येतान्येषां वा । न तावत्तस्यैव भगवतो निर्मोहत्वेन जुगुप्साया असम्भवात् । अथान्येषां तत्किमनुजदनुजामरेन्द्रतद्रमणीसहस्रसङ्कुलायां सभायामनशुके भगवत्यासीने सा तेषां न सञ्जायते अथ भगवतः सातिशयत्वान्न तन्नाम्य तेषां तद्धेतुस्तर्हि तत एव तन्नीहारस्य मांसचक्षुषामदृश्यत्वान्न दोषः सामान्यकेवलिभिस्तु विविक्तदेशे तत्करणाद्दोषाभावः । नापि सप्तमाष्टमौ रिरसानिद्रयोर्मोहनीयकार्यत्वाद्भगवति तु तदभावात् । तन्न कार्यमपि तस्य तेन विरुध्यते । नापि सहचरादि यतस्तत्सहचर छद्मस्थत्वमन्यद्वा निगदेत । न तावदाद्यमुभययाद्यविवादास्पदत्वेनासिद्धेः अस्मदादौ तथा दर्शनात् तत्साहचर्यनियमोपगमे गमनादेरपि तत्सहचर स्यात् । अन्यत्तु करवक्त्रचालनादि भवति तत्सहचर नतु केवलित्वेन विरुद्ध । एवमुत्तरचरादिकमपि न केवलित्वेन विरुध्यते इति स्थित कवलाहारसर्वज्ञत्वयोरविरोधादिति हेतुसिद्धिवधूसम्बन्धबन्धुर इति ।

अब यदि अघाति कर्म्मको कवलाहारका कारण कहोगे तो भी क्या आहारपर्याप्ति नामक कर्म्मभेदको कहोगे अथवा वेदनीय नामक कर्म्मको कहोगे सो इन दोनोंमेंसे एक एकको पृथक् २ रूपसे तो कवलाहारका कारण मानना युक्ति सिद्ध नहीं है क्योंकि स्वलक्षणलक्षित आहारपर्याप्तिनामक कर्म्मके उदय होनेसे वेदनीयोदय करके जो प्रबल जलरहा जठराग्नि उससे उपतप्यमान पुरुष ही आहारको खाता है । जब ऐसा है तो फिर यह दोनों ही घटमें दंड चक्र मृत्तिकादिककी तरह समुदित ही कवलाहारमें कारण हैं परन्तु सर्वज्ञत्वके साथ विरुद्ध नहीं हैं । क्योंकि इनको तुमने भी सर्वज्ञमें माना है । यदि कदाचित् मोहसहकृत आहारपर्याप्ति तथा वेदनीय कर्म्मको कवलाहारमें कारणता है ऐसा कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि गत्यादि कर्मोंकी तरह पूर्वोक्त कर्म्मद्वयको भी मोहरूपी सहायकसे विना ही केवलीमें कवलाहारकारित्वका अविरोध है अर्थात् मोहरूपसहकारीके न होनेपर भी जैसे केवलीमें

गत्यादिरूप क्रिया होतीं हैं ऐसे ही कवलाहार भी मोहसे विना ही हो जाता है उसमें कुछ भी विरोध नहीं है । यदिकदाचित् अशुभप्रकृतियें ही मोहके साहाय्य (सहायता) की अपेक्षा रखतीं है परन्तु गत्यादिक शुभप्रकृतियें नही रखतीं कवलाहार जो है सो तो असातवेदनीयरूप नाम दुःखरूप होनेसे अशुभप्रकृति ही है ऐसा कहते हो तो हम पूछते है कि आहार दुःखरूप है यह तुह्मारा कथन सिद्धान्तरूपहै क्या । यदि कदाचित् अस्मदादिकोंमें कवलाहारको असातारूप होनेसे सर्वत्र वैसा कल्पना करते है ऐसा कहते हो तो हम प्रश्न करते है कि अस्मदादिकोंमें तो शुभ प्रकृतियें भी मोहसहकृत ही स्वकार्यकी कारणताको धारण करती हुई अनुभवमें आती है इसलिये केवलीकी भी शुभप्रकृतियें मोहकी अपेक्षा करें करतीं तो नही हैं इसलिये भाई दिगंबर पूर्वोक्त कर्म्मद्वयको मोहापेक्षत्वेन कवलाहारकी कारणता नहीं है किन्तु स्वतन्त्रत्वेन ही कारणता है सो स्वतन्त्र पूर्वोक्त कर्म्मद्वय केवलीमें है ही । इसलिये कवलाहारके कारणका तो सर्वज्ञत्वके साथ विरोध नहीं है । अब यदि कार्यविरुद्ध है तो मोत्यादिरूप कार्यविरुद्ध रहो परंतु अविकल है कारण जिसके वैसे कवलाहारकी उत्पत्तिका तो केवलीमें; निषेध नहीं हो सकता । और भी बात है कि कौनसा कवलाहारका कार्य है जोकि सर्वज्ञत्वके साथ विरोधि है रसनेन्द्रियसे उत्पन्न होनेवाला मतिरूप ज्ञान है अथवा ध्यानविघ्नरूप है किम्वा परोपकारमें विघ्नरूप आहारकार्य सर्वज्ञत्वके साथ विरोधि है अथवा विसूचिकादिव्याधिरूपकार्य है किंवा ईर्यापथ है अथवा पुरीपादि निन्दितकर्म्मरूपकार्य है वा धातुकी वृद्ध्यादिकसे आलस वा निद्रारूप आहारकार्य सर्वज्ञत्वके साथ विरुद्ध है । इनमेंसे प्रथमपक्ष तो ठीक नही है क्योंकि कवलाहारके संबन्धमात्रसे रसनेन्द्रियज्ञानके सम्भवका अभाव है अन्यथा नाम यदि केवलीको भी विपय संबन्धसे ऐन्द्रिय ज्ञान होता है ऐसा मानोंगे तो देव समूहने निरन्तर निर्मुक्त पुप्योंके परिमलादिके सम्बन्धसे घ्राणेन्द्रियजन्य ज्ञान भी होना चाहिये । केवलीको शैलेशी प्रारंभसे पहिले ध्यान नही माना है इसलिये द्वितीयपक्ष भी ठीक नही है । शैलेशीप्रारम्भमें तो कवलाहार नही ही माना है। और केवलीका ध्यान शाश्वत है अन्यथा चल रहे केवलीके ध्यानमें भी विघ्न क्यों नहीं होता। तृतीय पक्ष भी ठीक नही है क्योंकि तृतीय प्रहरके मुहूर्तमात्रमें ही भगवान् केवलीका भोजन होता है बाकी सर्वकालमें उपकारका ही समय है । खूब विचारसे (हित) पथ्य (मित) रुचिपरिमित अन्नको भगवान् खाते हैं इसलिये चतुर्थ पक्ष भी ठीक नहीं है । गमनादिकोंसे भी ईर्य्यापथका प्रसङ्ग आवेगा इसलिये पञ्चमपक्ष भी ठीक नही है। अब यदि षष्ठपक्ष कहोंगे तो भी क्या पुरीपादिकोंके करनेसे केवलीको ही जुगुप्सा होती है अथवा और लोगोंको होती है उसीको तो कह नहीं सकते क्योंकि

भगवान्को निर्मोह होनेसे जुगुप्साका असम्भव है । अब यदि अन्य लोगोंको जुगुप्सा कहोंगे तो हम पूछते हैं कि मनुष्य देत्य और इन्द्रादि देवता तथा उनकी स्त्रियोंसे व्याससभामें वस्त्ररहित (नग्न) बैठे हुए भगवानसे अन्य लोगोंको जुगुप्सा क्यों नहीं होती । यदि कदाचित् भगवान्को सातिशय नाम अतिशय विशिष्ट होनेसे उसका नग्नपना जुगुप्साका हेतु नहीं है ऐसा कहते हो तो भगवान्को सातिशय होनेसे उसका (नीहार) विष्टा अस्मदादिकोंको अदृश्य होनेसे जुगुप्साका कारण नहीं है ऐसा कहनेसे हमको भी कुछ दोष नहीं है । और सामान्य केवली तो एकान्तस्थानमें नीहारादि करते हैं इसलिये कुच्छ भी दोष नहीं है । रिरंसा और निद्रा तो मोहनीयकर्म्मका कार्य है सो मोहनीयकर्म्म भगवान्में नहीं है इसलिये सप्तम तथा अष्टम पक्ष भी ठीक नहीं है । इसलिये कवलाहारका कार्य्य भी सर्वज्ञत्वके साथ विरोधि नहीं है । इसीतरह कवलाहारके सहचरादिक भी सर्वज्ञत्वके साथ विरोधि नहीं हैं क्योंकि हम तुमको पूछते है कि कवलाहारका सहचर छद्मस्थत्व है अथवा कोई दूसरा है । आद्य तो नहीं कहसकते क्योंकि उसको उभयवादीमें अविवादास्पदतया सहचरत्वकी असिद्धि है । अस्मदादिकोंमें उनका सहचार देखनेसे सर्वत्र वैसा नियम कहोंगे तो गमनादिकोंका भी वह छद्मस्थत्व सहचरहोवें । अन्य जो हाथ मुख तथा वस्त्रादि चालन प्रभृति पदार्थ कवलाहारके सहचर है सो बेशक रहें परन्तु वह सर्वज्ञत्वके विरोधि नहीं है । इसीतरह उत्तरचरादिक भी केवलित्वके साथ विरोधि नहीं हैं । जैन कहते हैं कि इस रीतिसे कवलाहारसर्वज्ञत्वयोरविरोधात् यह पूर्वोक्त हमारा हेतु सिद्ध है यह वार्ता सिद्ध भयी इति नाम यह द्वितीय परिच्छेद भी समाप्त होगया ॥

इति श्रीप्रमाणनयतत्वालोकालङ्कारे श्रीरत्नप्रभाचार्यविरचितायां रत्नाकरावतारिकाख्यलघुटीकायां प० यशोधरशर्म्मणा विरचितायां भाषाटीकायां द्वितीय परिच्छेद समाप्त

अथ तृतीय परिच्छेद प्रारभ्यते ॥

प्रत्यक्षानन्तर परोक्षं लक्षयन्ति ।

अब प्रत्यक्ष निरूपणके बाद सूत्रकार परोक्षका निरूपण करते हैं ॥

अस्पष्टं परोक्षमिति ॥

अस्पष्ट जो प्रमाण है सो परोक्ष जानना ।

प्राक् सूत्रितस्पष्टत्वाभावभ्राजिष्णु यत्प्रमाणं तत्परोक्षं लक्षयितव्यं ।

पूर्वकथित स्पष्टत्वके अभाववाला जो प्रमाण है उसको परोक्षप्रमाण समझना ।

अथैतत्प्रकारतः प्रकटयन्ति ।

अव सूत्रकार परोक्षके भेदोंको प्रकट करते है ।

स्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदतस्तत्पञ्चप्रकारमिति ।

स्मरण प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान तथा आगम इन भेदोंसे परोक्षप्रमाण पाच प्रकारका है । **स्पष्टं ।** इसका अर्थ स्पष्ट ही है इसलिये कुच्छ व्याख्या नही लिखते ।

अथैतेषु तावत्स्मरणं कारणगोचरस्वरूपैः प्ररूपयन्ति ।

अव इनमेंसे पहिले स्मरणको कारण विषय और स्वरूपों करके कहते हैं अर्थात् स्मरणके कारण तथा विषय और स्वरूपको कहते हैं ।

तत्र संस्कारप्रबोधसंभूतमनुभूतार्थविषयं तदित्याकारं वेदनं स्मरणमिति ।

पूर्वोक्त परोक्षप्रमाणोंके भेदोंमेंसे प्रवुद्ध संस्कारसे उत्पन्न होनेवाला और अनुभूत नाम प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ज्ञात पदार्थविषयक तत् ऐसे आकारवाला जो ज्ञान उसको स्मरण समझना ।

तत्रेति प्राक्तनेभ्यः संस्कारप्रबोधसम्भूतत्वादिना गुणेन स्मरणं निर्धारयन्ति संस्कारस्यात्मशक्तिविशेषस्य प्रबोधात्फलदानाभिमुख्यलक्षणात्सम्भूतमुत्पन्नमिति कारणनिरूपणं अनुभूतः प्रमाणमात्रेण परिच्छिन्नोऽर्थश्चेतनाचेतनरूपो विषयो यस्येति विषयव्यावर्णनं तदित्याकारं तदित्युल्लेखवत् तदित्युल्लेखवत्ताचास्य योग्यतापेक्षयाऽऽख्यायि यावता

स्मरसि चैत्र कश्मीरेषु वत्स्यामस्तत्र द्राक्षा भोक्ष्यामहे इत्यादि स्मरणे तच्छब्दोल्लेखो नोपलक्ष्यत एव किन्त्विदं स्मरण तेषु कश्मीरेष्विति ता द्राक्षा इति तच्छब्दोल्लेखमर्हत्येव नचैव प्रत्यभिज्ञानेऽपि तत्प्रसङ्गस्तस्य स एवायमित्युल्लेखशेखरत्वा-त्तादिति स्वरूपप्रतिपादनम् ।

पूर्वोक्त परोक्षप्रमाणोंके भेदोंमेंसे स्मरणका संस्कार प्रबोधसम्भूतत्वादिरूप धर्म करके निर्धारण करते है । आत्माकी शक्तिविशेषरूप संस्कारके प्रबोधनाम फल देनेमें अभिमुख हो जानेपर उत्पन्न होनेवाला इसके कहनेसे स्मरणके कारणका (निरूपण) कथन किया, और अनुभूतनाम किसी भी प्रमाणसे ज्ञात जो पदार्थ चेतन अथवा अचेतनरूप उसको विषय करनेवाला इस कहनेसे विषयका (व्यावरणन) कथन किया । तदित्याकार नाम तत् ऐसे उल्लेखनाम शब्द प्रयोगवाला जो ज्ञान उसको स्मरण नामक प्रमाण जानना । स्मरसि चैत्र चैत्र तुम स्मरण करते हो (यदा) जब (वय) हम लोग (कश्मीरेषु) कश्मीर देशोंमें रहतेथे और तत्र वहाँ (द्राक्षा) दाख (उपभोक्षामहे) खातेथे इत्यादि स्मरणोंमें तत् शब्दका (उल्लेख) प्रयोग प्रतीत नहीं होता इसलिये स्मरणमें (तदुल्लेखवत्ता) तत् शब्दका प्रयोग जो है सो योग्यतापेक्षया है अर्थात् तत् शब्दके प्रयोगकी स्मरणोंमें अवश्य योग्यता रहती है इसलिये तदुल्लेखवत्ता कही है तब पूर्वोक्त स्मरणोंमें यद्यपि तदुल्लेखमत्ता प्रतीत नहीं होती तो भी तदु-ल्लेखवत्ताकी योग्यता तेषु कश्मीरेषु और ता द्राक्षा एव रूपसे है ही । स्मरणका ऐसा स्वरूप कहनेसे प्रत्यभिज्ञानमें अतिप्रसङ्ग होगा ऐसा नहीं कहना क्योंकि प्रत्यभिज्ञानका तो स एवाय ऐसा उल्लेख होता है अर्थात् प्रत्यभिज्ञानमें तो इदम् शब्द विशिष्ट तत् शब्दका प्रयोग है और स्मरणमें शुद्ध तत् शब्दका प्रयोग होता है तदित्युल्लेखवत् इस विशेषण करके स्मरणके स्वरूपका कथन किया

अत्रोदाहरन्ति । अत्र सूत्रकार स्मरणका उदाहरण कहते है ।

यथा तत्तीर्थकरबिंबमिति ।

जैसेकि वह जो हमने पहिले तीर्थङ्करकी प्रतिमा देखीथी यह ज्ञान स्मरणरूप है ।

यथेति तदिति यत्प्राक् प्रत्यक्षीकृत स्मृत प्रत्यभिज्ञात वितर्कितमनुमितं श्रुत वा भगवतस्तीर्थङ्करस्य बिंब प्रतिकृतिस्तस्य परामर्शः इत्येवप्रकार तच्छब्दपरामृष्टं यद्विज्ञानं तत् सर्व स्मरणमित्यर्थः ॥

जैसेकि तत् नाम जो पहिले प्रत्यक्ष कियाथा अथवा स्मरण कियाथा वा प्रत्यभिज्ञानसे जानाथा अथवा वितर्कितथा वा अनुमि-
तथा अथवा शब्दसे जानाथा बैसा जो भगवान् तीर्थङ्करका बिंब नाम प्रतिकृतिः उसका ज्ञान है इसप्रकारसे तत् शब्दसे परामृष्ट
नाम तत्शब्दके उल्लेखवाला जो ज्ञान उत्पन्न होता है सो सब स्मरण जानना यह इस सूत्रका अर्थ है ।

येतु यौगाः स्मृतेरप्रामाण्यमध्यगीषत न ते साधु व्यधिषत यतो यत्तावत् केचिदनर्थजत्वादस्यास्तदाम्नासिषुस्तत्र हेतुरभूद्वृष्टिरुदेष्यति शकटमित्याद्यतीतानागतगोचरानुमानेन सव्यभिचार इत्यनुचित एवोच्चारयितुं । परेतु मेनिरे न स्मृतिः प्रमाणं पूर्वानुभवविषयोपदर्शनेनार्थं निश्चिन्वत्या अर्थपरिच्छेदे पूर्वानुभवपारतंत्र्यात् । अनुमानज्ञानं तूत्पत्तौ परापेक्षं स्वविषये तु स्वतन्त्रमेव स्मृतेरिव तस्मात्पूर्वानुभवानुभवसंधानेनार्थप्रतीत्यभावात्तदुक्तं पूर्वविज्ञानविषयविज्ञा-नं स्मृतिरिष्यते पूर्वज्ञानाद्विना तस्याः प्रामाण्यं नावगम्यते । १ । तत्र यत्पूर्वविज्ञानं तस्य प्रामाण्यमिष्यते तदुपस्थान-मात्रेण स्मृतेः स्याच्चरितार्थतेति तदपि न पेशलं स्मृतेरप्युत्पत्तिमात्रे एवानुभवसव्यपेक्षत्वात् । तदाहितसंस्काराત્तदुत्पत्तेः सर्वानुभवभावितभावभासनायामेवाभ्युद्यतत्वादेवं स्वविषयपरिच्छेदे त्वस्याः स्वातन्त्र्यमेव । ननु नात्र स्वातन्त्र्यमस्याः सर्वानुभवभावितभावभासनायामेवाभ्युद्यतत्वादेवं । अथ व्याप्ति तर्हि व्याप्तिप्रतिपादितप्रमाणप्रतिपन्नपदार्थोपस्थापनमात्रे प्रवृत्तेरनुमानस्यापि कुतस्त्या स्वातन्त्र्यसङ्गतिः । अथ व्याप्ति ग्राहकेणानैयत्येन प्रतिपन्नात्तनूनपातो नैयत्यविशेषेणानुमाने परिस्फुरणसम्भवात् कुतो न स्वातन्त्र्यमितिचेत्तर्ह्यनुभवे भूयो विशेषशालिनः स्मरणे तु कतिपयैरेव विशेषैर्विशिष्टस्य वस्तुनो भावात् कुतो नास्यापि तत् स्यात् । ननु तेऽपि विशेषास्तावदनुभूतौ प्रत्यभुरेवान्यथा स्मरणमेव तन्न स्यादितिचेन्नियतदेशोऽपि पावको व्याप्तिग्राहिणि प्रत्यभादेवान्यथा-नुमानमेव तन्न स्यादिति किन्न चेतयसे । अथ तत्र सर्वे सर्वदिकाः सार्वत्रिकाश्च पावकाः प्रस्फुरुः अनुमाने तु स एवैक-श्चकास्तीत्युक्तमितिचेन्ननूत्तरमपि तत्रोक्तमेव माविस्मार्षीः । ननु न सर्वत्रैव कतिपयविशेषावसायव्याकुलं स्मरणं क्वचि-द्यावदनुभूतरूपादि विशेषमपि तस्योत्पत्तेस्ततस्तत्र का गतिरितिचेन्नैवं नहि रूपादय एव विशेषाः वस्तुनः किन्त्वनुभूय-मानतापि नचासौ स्मरणे क्वापि चकास्ति तस्यापि प्राचीनानुभवस्वभावतापत्तेः किन्त्वनुभूततैव भावस्य तत्र भातीति सिद्धमनुमानस्येव स्मरणस्यापि प्रामाण्यं । नच तस्याप्रामाण्येऽनुमानस्यापि प्रामाण्यमुपापादि संबन्धस्याप्रमाणस्मरणसंद-र्शितस्यानुमानानङ्गत्वात् संशयितलिङ्गवत् । नच प्राक् प्रवृत्तसंबन्धग्राहिप्रमाणव्यापारोपस्थापनमात्रचरितार्थत्वान्नस्या

तत्र प्रामाण्येन प्रयोजनमितिवाच्यमप्रमाणस्य तदुपस्थापनेपि सामर्थ्यासम्भवात् किञ्चार्थोपलब्धिहेतुत्व प्रमाणलक्षणं लक्ष्याव्याप्त्या तत्र धारावाहिप्रत्यक्षसेवासाप्यक्षूणमीक्षत एवेति किमन्यैरसत्प्रलापैरिति ॥

जो (योग) नैयायिक स्मृतिको अप्रमाण कहते हैं यह ठीक नहीं कहते क्योंकि जो पहिले कोई लोग स्मृतिको अनर्थज नाम स्मृति स्वविपयीभूत पदार्थसे विना ही उत्पन्न होती है इसलिये प्रमाण नहीं है ऐसा कहते हैं उनका जो अनर्थजत्वरूप हेतु है सो अभूद्वृष्टि उदेष्यति शकट इत्यादिक भूत वा भविष्यत् पदार्थविषयक अनुमानान्तरभावेन व्यभिचारी है इसलिये वह (हेतुत्वेन) कहना उचित नहीं है। दूसरे कोई ऐसा कहते हैं कि पूर्वानुभूत पदार्थके उपदर्शनद्वारा पदार्थको निश्चय करा रही जो स्मृति है सो अर्थपरिच्छेदमें पूर्वानुभवके पराधीन है इसलिये वह प्रमाणरूप नहीं है। अनुमानज्ञान उत्पत्तिमें परापेक्ष है और स्वविषयमें नाम अर्थपरिच्छेदमें तो स्वतन्त्र ही है परन्तु स्मृतिकी तरह अनुमानसे पूर्वानुभवके अनुसन्धान नाम उपस्थितिद्वारा अर्थप्रतीति नहीं होती इसलिये वह तो प्रमाणरूप ही है परन्तु स्मृति नहीं। ऐसा किसी आचार्यने भी कहा है कि (पूर्वविज्ञानविषयविज्ञान) पूर्वज्ञानके विषयको विषयकरनेवाला ज्ञान स्मृति कहाता है पूर्वविज्ञानसे विना स्मृतिको प्रामाण्य युक्तिसे प्राप्त नहीं होता। १। उसमें जो पूर्वविज्ञान है उसको तो प्रामाण्य इष्ट है और स्मृतिको तो पूर्वानुभवके उपस्थापन-मात्रमें चरितार्थता है परन्तु प्रमाणता नहीं है। २। जैन कहते हैं कि यह भी उनका कहना ठीक नहीं है क्योंकि स्मृतिको भी उत्पत्तिमात्रमें ही अनुभवकी अपेक्षा है क्योंकि अनुभवसे उत्पन्न संस्कारसे स्मृति उत्पन्न होती है। परन्तु स्वविषयपरिच्छेदमें तो इसको स्वातन्त्र्य है अर्थात् अनुभवजन्यसंस्कारजन्य होनेसे स्मृतिको उत्पत्त्यंशमें तो अनुभवकी आवश्यकता है परन्तु विषयांशमें अनुभवकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है इसलिये स्मृति भी अनुमानकी तरह प्रमाण ही है। प्रश्न करते हैं कि स्मृतिको विषयप-रिच्छेदमें भी स्वतन्त्रता नहीं है क्योंकि पूर्वानुभूतपदार्थोंके (भासन) प्रकाशमें ही स्मृति उद्यत है। जैन कहते हैं कि ऐसा यदि कहोगे तो व्याप्तिके बोधक प्रमाणसे (प्रतिपन्न) ज्ञात पदार्थके उपस्थापनमात्रमें प्रवृत्त अनुमानको भी स्वातन्त्र्य कैसे हो सकता है अर्थात् अनुमान भी स्मृतिकी तरह अप्रमाण ही रहो। यदि कदाचित् व्याप्तिग्राहक प्रमाणसे तो (अनैयत्य) अनियत देशादि-गत्वेन वह्नि प्रतीत होता है और अनुमानमें नैयत्यविशेषेण प्रतीत होता है तब अनुमानको विषय परिच्छेदमें स्वातन्त्र्य क्यों नहीं ऐसा कहते हो तो हम कहते हैं कि अनुभवमें तो बहुतसे विशेषोंसे विशिष्ट वस्तुका भान होता है और स्मरणमें यत्किञ्चित्

विशेष विशिष्टका भान होता है इसलिये स्मृतिको भी स्वातन्त्र्य क्यों नही है अर्थात् है ही । यदि कदाचित् जो विशेष स्मृतिमें प्रतीत होते है वह अनुभवमें भी अवश्य प्रतीत हुए होगें यदि उन विशेषोंको अनुभूत न माना जावेगा तो स्मरण स्मरण ही न कहावेगा ऐसा कहते हो तो नियतदेश वृत्ति भी अग्नि अनुमानग्राहिप्रमाणमें प्रतीत होती ही है अन्यथा अनुमान अनुमान ही न कहावे ऐसा भी तुम क्यों नही समझते । प्रश्न करते है कि व्याप्तिग्राहिप्रमाणमें तो सर्वदेशकालवृत्ति वह्निमात्रका भान होता है और अनुमानमें केवल पक्षमात्रवृत्ति अग्निकी ही प्रतीति होती है ऐसा जो हम कह चुकें हैं जैन कहते है कि इसका उत्तर भी तो हमने वहां ही कहाथा उसको भूलो मत । प्रश्न करते है कि सब स्थानोंमें अनुभूत विशेषोंमेंसे यत्किञ्चिद्विशेषविषयक ही तो स्मरण नही होता किन्तु कहींक जो रूपादिक विशेष अनुभूतथे उन सभोंको विषय करनेवाला भी स्मरण उत्पन्न होता है तब वहांपर क्या गति है अर्थात् तादृश स्थलमें स्मृतिको स्वातन्त्र्य न बन सकेगा । जैन कहते है कि ऐसा नही कहना क्योंकि वस्तुके केवल-रूपादिक ही तो विशेष नही है किन्तु अनुभूयमानता भी विशेष है सो अनुभूयमानता स्मरणमें कहीं भी प्रतीत नही होती क्योंकि यदि स्मरणमें भी अनुभूयमानता भासेगी तो स्मरणको भी पूर्वानुभवस्वभावताकी आपत्ति आ जावेगी किन्तु स्मरणमें भावकी अनुभू-तता ही प्रतीत होती है इस रीतिसे अनुमानकी तरह स्मरणको भी प्रामाण्य सिद्ध भया । स्मरणको अप्रमाण कहनेसे अनुमानको भी प्रामाण्य नही प्राप्त हो सकता । क्योंकि संशयित हेतुकी तरह अप्रमाणरूप जो व्याप्तिस्मरण सो अनुमानका अंग (अप्रमाणत्वेन) नही हो सकता । प्रश्न करते है कि पहिले सम्बन्धको ग्रहण करनेके लिये प्रवृत्त प्रमाणके व्यापारको उपस्थापनमात्रमें स्मरणको चरितार्थ होनेसे इसके प्रामाण्यकी अनुमानमें कुच्छ आवश्यकता नही है । जैन कहते है कि वैसा नही कहना क्योंकि अप्रमाणरूप स्मरणको सम्बन्धग्राहिप्रमाणके व्यापारस्थापनमें भी सामर्थ्य नही है । और भी रीतिसे स्मरणको प्रामाण्य कहते हैं कि तुमने अर्थके ज्ञानमें जो कारण सो प्रमाण है ऐसा प्रमाणका लक्षण किया है सो लक्षण धारावाहि ज्ञानकी तरह स्मरणको भी दोषरहित देखनेमें आता है इसलिये इसको प्रमाणत्व युक्तिसिद्ध है तो फिर झूठे विवादसे क्या है ।

अथ कारणादिभिः प्रत्यभिज्ञानं ज्ञापयन्ति ।

अब सूत्रकार कारणादि कथनपूर्वक प्रत्यभिज्ञानका बोध कराते है ।

अनुभवस्मृतिहेतुकं तिर्यगूर्द्ध्वतासामान्यादिगोचरं

सङ्कलनात्मकं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानमिति ।

अनुभव तथा स्मृतिसे जन्य और तिर्यक् वा ऊर्द्धतारूप सामान्यविषयक संकलनात्मक जो ज्ञान सो प्रत्यभिज्ञान समझना ।

अनुभवश्च प्रमाणार्पिता प्रतीतिः स्मृतिश्चानन्तरोक्तैव वे हेतुर्यस्येति कारणोपदेशः । तिर्यक् सामान्यश्च गवादिषु गोत्वादि स्वरूपसदृशपरिणामात्मकमूर्द्धतासामान्यश्च परापरविवर्त्तव्यापि मृत्स्नादिद्रव्यमेतदुभयमादिर्यस्य विसदृशपरिणामादेर्द्धर्म्मस्तोमस्य सत्तिर्यगूर्द्धतासामान्यादिर्गोचरो यस्येति विषयाख्यान सङ्कलन विवक्षितधर्म्मयुक्तत्वेन वस्तुनः प्रत्यवमर्शनमात्मा स्वभावो यस्येति स्वरूपनिरूपण ।

प्रमाणसे जन्य जो प्रतीति सो अनुभव कहलाता है और स्मृति तो अभी कह चुके हे यह दोनों ही हैं कारण जिसके इस कहनेसे सूत्रकारने प्रत्यभिज्ञानके कारणका उपदेश किया । गवादिकोंमें गोत्वादिरूप जो सामान्य हे सो तिर्यक् सामान्य कहाता है । और घट कपाल कपालिका आदिरूप पर तथा अपर विवर्तोंमें रहनेवाला जो मृत्स्नादि द्रव्यरूप सामान्य है सो ऊर्द्धता सामान्य कहाता है यह दोनों ही है आदि जिसके ऐसा जो विसदृश परिणामादिरूप धर्म्मोंका समूह वह तीर्यगूर्द्धतासामान्यादि है विषय जिसका । इस कहनेसे प्रत्यभिज्ञानके विषयका कथन किया । सकलन नाम विवक्षितधर्म्मयुक्तत्वेन ज्ञात वस्तुका पुन ज्ञान है स्वरूप जिसका । इस कहनेसे प्रत्यभिज्ञानके स्वरूपका निरूपण किया ।

अत्रोदाहरन्ति । अब इसमें उदाहरण कहते हैं ।

यथा तज्जातीय एवायं गोपिण्डः गोसदृशो गवयः स एवायं जिनदत्त इत्यादीति ।

उदाहरण कहते हैं कि पूर्वानुभूत गोत्व जातिवाला ही यह भी गोपिण्ड हे । गवय गोसदृश होता है । यह वही पूर्वज्ञात जिनदत्त हे । इत्यादिक प्रत्यभिज्ञानके उदाहरण है ।

अत्र तज्जातीय एवायं गोपिण्ड इत्यस्मिंस्तिर्यक्सामान्योदाहरणे दर्शितेऽपि गोसदृशो गवय इति यत्तत्रैवोदाहरणान्तरं तन्नैयायिककदाग्रहनिग्रहार्थं तस्य खलु गोसदृशो गवय इत्युपमानमित्यभिमानः सचायुक्तविधानः । गोविसदृशो

महिष इत्यस्य प्रमाणान्तरत्वापत्तेः । अथ गवये गोसदृग्गवय इति विज्ञानं प्रत्यक्षफलमपि संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्रतिपत्ति-
रूपे फले प्रमाणान्तराप्रसाध्ये साधकतमत्वादुपमानतां प्रतिपद्यते तर्हि महिषे गोविसदृशमहिषोपलक्षणं प्रत्यक्षफलम-
पि तत्रैव तथाविधे फले साधकतमत्वात् प्रमाणान्तरमस्तु । नचैतदुपमानेऽन्तरभावयितुं शक्यमुपमानस्य सादृश्यविषय-
तया व्यवस्थानात् प्रस्तुतस्य तु वैसदृश्यव्यवसायकत्वात् । नच वैसदृश्यावसायस्य संज्ञासंज्ञिसम्बन्धप्रतिपत्तिसाधकत-
मत्वमसिद्धं यतः समहिषमाहेयीमंडले कापि विपिनप्रदेशे नच्छायां छायायां रोमंथायमाने नालिकेरद्वीपवासी कश्चित्
केनचित् प्रेषितस्तद्विपिनप्रतिष्ठगोष्ठान्महिषमानयेति सच तज्ज्ञं तमेव पृष्टवान् कीदृग्महिष इति तेन च गोविसदृशो महि-
ष इत्युक्ते तद्विपिनगोष्ठं प्राप्त आप्तातिदेशवाक्यार्थस्मरणसहकारी तमेव गोभ्यो विसदृशं पशुं पश्यति तमेव महिषशब्दवा-
च्यतया प्रतिपद्यत इति कः प्रतिविशेषो द्वयोरपि संकेतप्रतिपत्तौ तदुक्तं उपमानं प्रसिद्धार्थसाध्यसाधर्म्यात्साध्यसाधनं
तद्वैधर्म्यात्प्रमाणं किं स्यात्संज्ञिप्रतिपादनमिति यदा वा यादृग्गौः तादृग्गवय इति वाक्याहितसंस्कारः प्रतिपत्ता
तुरंगं गोविलक्षणमीक्षमाणो गवयसंज्ञासम्बन्धप्रतिषेधं विधत्ते नायं गवयवाग्वाच्यः पिण्ड इति तदा गवयसंज्ञासम्बन्ध-
प्रतिषेधफलं किमेतत्प्रमाणं स्यात्तत एवंविधसंवेदनानां संकलनात्मकतया प्रत्यभिज्ञानतैवोपपद्यते अन्यथा तु प्रमाणे-
यत्ता प्रलीयेत । यदैव हि यादृग्गौस्तादृग्गवय इति तेन शुश्रुवे तदैव सामान्यतश्चेतसि स्फुरति पिण्डे सम्बन्धप्रतिपत्ति-
रभूत् । यथा पृथुबुध्नोदराकारं वृतकंठं भावं कुम्भं विभावयेरित्याकर्णनात्कुम्भे ततः कान्तारविहारिणोऽस्य गवयसाक्षा-
त्कारे प्राक्तनसामान्याकारसम्बन्धस्मरणे च स एष गवयशब्दवाच्य इति सङ्कलनाज्ञानरूपं प्रत्यभिज्ञानमुन्मज्जति ।
एवं गोविसदृशो महिष इत्याद्यपि तथारूपत्वात्प्रत्यभिज्ञानमेवेति । मीमांसकोऽप्यनेन सदृशः स गौरित्यनधिगतं गवि
सादृश्यमवश्यदुपमानं प्रमाणमाचक्षाणोऽनेन महिषेण विसदृशः स गौरित्यस्यानधिगतमहिषवैसादृश्यव्यवसायकस्य
प्रमाणान्तरताप्रसङ्गेन पराकरणीयः सादृश्याभावो वैसादृश्यमित्यभावप्रमाणपरिच्छेद्यमेवैतदितिचेद्वैसदृश्याभावः सादृश्य-
मितीदमपि तत्परिच्छेद्यमेव किन्नस्यात् यदि वैसदृश्याभावः सादृश्यं स्यात् सगौः सदृशो गवयेनेति विधिमुखेन नोल्लिखे-
दिति चेत्तदितरत्रापि तुल्यं । स एवायं जिनदत्त इति तूर्द्धतासामान्योदाहरणं आदिशब्दात्स एव वह्निरनुमीयते मया

स एवानेनाप्यर्थः कथ्यत इत्यादि स्मरणसचिवानुमानागमादिजन्यं तस्मादीर्घं ह्रस्वमणु महन्नेदीयो दवीयो वेद दूरादय तिग्मतनूनपात् सुरभीद चन्दनमित्यादि च सङ्कलनमात्रोदाहरण मतव्य ।

प्रत्यभिज्ञानके उदाहरण सूत्रमें तज्जातीय एवाय गोपिण्ड इत्याकारक तिर्यक् सामान्यके उदाहरणको कहकर भी सूत्रकारने फिर जो गोसदृशो गवय यह तिर्यक् सामान्यका उदाहरणान्तर कहा है सो नैयायिकके झूठे आग्रहरूप ग्रहके रोकनेके लिये है। (गोविसदृशो महिष) महिष (कैसा) गौसे विलक्षण होता है इसको भी प्रमाणान्तरत्वकी आपत्ति आवेगी इसलिये गोसदृशो गवय यह उपमानरूप प्रमाण है ऐसा जो नैयायिकको अभिमान है सो अयुक्त विधान है अर्थात् पूर्वोक्त दोषसे उपमान भी प्रमाणान्तरमानना ठीक नहीं है। यदि कदाचित् गवयमें गोसदृगवय यहज्ञान प्रत्यक्षका फल है तो भी प्रमाणान्तरसे असाध्य नाम प्रत्यक्षादिरूप कृप्त प्रमाणोंसे सिद्ध न होनेवाले सज्ञासज्ञिसम्बन्धप्रतिपत्तिरूप फल नाम गवयो गवयपदवाच्य इत्याकारक गवयशब्दके शक्तिज्ञानमें साधकतम होनेसे गोसदृशो गवय यह उपमानरूप प्रमाणताको प्राप्त होता है ऐसा कहते हो तो महिषमें गोवैसदृश्यज्ञान प्रत्यक्षका फल है तो भी प्रत्यक्षादि कृप्त प्रमाणोंसे असाध्य महिषो महिषपदवाच्य इत्याकारक सज्ञासज्ञिके सम्बन्धकी प्रतिपत्ति नाम निश्चयरूप फलमें साधकतम होनेसे गोविसदृशो महिष यह भी प्रमाणान्तर होवे अर्थात् गोविसदृशो महिष इसको भी तुल्ययुक्त्या प्रमाणान्तरमानो। गोविसदृशो महिष इसका उपमानमें ही अन्तर्भाव नहीं कर सकते क्योंकि उपमान तो सादृश्यविषयकत्वेन व्यवस्थित है और यह वैसदृश्यका निश्चायक है। वैसदृश्यज्ञानको सज्ञासज्ञिसम्बन्ध (शक्ति) ज्ञानमें साधकतमत्व ही असिद्ध है ऐसा नहीं कहना क्योंकि किसी पुरुषने किसी नालिकेर द्वीपवासीको कहा कि तुम विपिन गोष्ठसे महिषको ले आओ वह नालिकेरद्वीपवासी महिषक नहीं जानताथा इसलिये उस नालिकेरद्वीपवासीने महिषको जाननेवाले उसी प्रयोजक पुरुषको पूछाकि महिष कैसा होता है उसने उत्तर दियाकि गोसे विलक्षण महिष होता है यह सुनकर नालिकेरद्वीपवासी पूर्वोक्त गहनवनके गोष्ठमें प्राप्त भया वहापर पूर्वोक्त उपदेशवाक्यार्थस्मरण सहकृत गोसे विलक्षण महिषको देखकर यही महिषपदवाच्य है ऐसा निश्चय करलेता है। जैन कहते हैं कि गोसदृशो गवय और गोविसदृशो महिष इन दोनोंके शक्तिज्ञान की उत्पत्तिमें क्या विशेष है अर्थात् कुच्छ भी नहीं। उपमानरूप प्रमाणान्तरके खण्डनार्थ किसी आचार्य्यने भी ऐसा ही कहा है क्या कहा है कि प्रसिद्ध अर्थके साधर्म्यसे साध्यके साधनको तुमलोग उपमान कहते हो तब प्रसिद्ध अर्थके वैधर्म्यसे साध्यका

साधक कौनसा प्रमाण होगा । और जब यादृग्गौ तादृग्गवयः इसवाक्यसे जन्य संस्कारवाला पुरुष गौसे विलक्षण अश्वको देखता हुआ अश्वमें नायं गवयपदवाच्यः एवं रूपेण गवयपदकी शक्तिके निषेधका निश्चय करता है तब गवय पदकी शक्तिका निषेधरूप फलका हेतु कौनसा प्रमाण कहोगे क्लृप्त तो बन ही नहीं सकेगा किंतु अतिरिक्त ही मानना पडेगा (तथा च तव सिद्धान्त बाधः) इसलिये जितने वैसे ज्ञान है उन सभोंको संकलनात्मक होनेसे प्रत्यभिज्ञानता ही युक्ति युक्त है । ऐसा न माननेसे तो प्रमाणेयत्ता नाम प्रमाण सख्याका नियम कुच्छ न रहेंगा । जिस प्रकार पृथुवुध्नोदर आकारवाले वृतकण्ठ भावको कुम्भ समझो ऐसा सुननेसे कुम्भपदके सम्बन्ध (शक्ति) का श्रवण कालमें ही (घट) पदार्थमें बोध होता है वैसे ही जिसकालमें गोसदृशो गवयः इस वाक्यको सुनाथा उसी वखत सामान्यरूपसे चित्तमें स्फुरण हो रहे पिण्डमें ग्रामीणको गवय पदके संवन्ध (शक्ति) का ज्ञान हो गयाथा फिर किसीवखत वनमें फिर रहे उसीको गवयका प्रत्यक्ष होनेपर और सामान्यरूपेण ज्ञात सम्बन्धके स्मरणसे सो यह गवय शब्द वाच्य है इत्याकारक सङ्कलनाज्ञानरूप प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न होता है। इसी तरह गोविसदृशो महिषः इत्यादिक स्थलमें भी वुद्धिमानोंने प्रत्यभिज्ञान जान लेना । इसके सदृश वह गौ है यह पहिले अज्ञात जो गौमें सादृश्य उसका बोधक उपमान प्रमाण है ऐसा कह रहा मीमांसक भी इस महिषके विसदृश वह गौ है अनधिगतवैसदृश्यके व्यवसायकको इसको प्रमाणान्तरताके प्रसङ्गसे पराकरणीय है । अर्थात् मीमांसक कहते हैं कि अनेन सदृशः स गौः यह ज्ञान उपमान प्रमाण है क्योंकि इस करके पहिले अज्ञात तत् गौमें रहनेवाले सादृश्यका बोध होता है इसमें जैन कहते है कि उनका यह कथन ठीक नही है क्योंकि ऐसा माननेसे तो पूर्व अज्ञात तत् गोनिष्ठ वैसदृश्यके निश्चायक अनेन महिषेण विसदृशः स गौः इसको भी प्रमान्तरताकी आपत्ति आवेगी । यदि कदाचित् सादृश्याभाव ही वैसदृश्य है इसलिये वह तो अभाव (अनुपलब्धि) रूप प्रमाणसे ही जाना जाता है उसके ज्ञानार्थ प्रमाणान्तरकी कुच्छ भी आवश्यकता नही है ऐसा तुम लोग मीमांसक कहते हो तो हम कहते हैं कि वैसदृश्याभाव सादृश्य है सो अभावप्रमाणसे वेद्य है वैसा भी क्यों न मान लिया जायँ । यदि कदाचित् जेकर वैसदृश्याभाव सादृश्य होवे तो स गौः सदृशो गवयेन इत्यादि विधिमुखेन प्रतीत न होवें ऐसा कहते हो तो यह तो सादृश्याभाव वैसदृश्यमें भी तुल्य ही है ॥ पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञानके उदाहरण सूत्रमें जो स एवायं जिनदत्तः ऐसा कहा है सो तो ऊर्द्धता सामान्यका उदाहरण है । और सूत्रमें जो आदि शब्द कहा है उससे (स एव वह्निरनुमीयते मया) उसी वह्नीका मैं अनुमान करता हूं । यह भी

उसी पदार्थको कहता है इत्यादिक स्मरण सहकृत अनुमान तथा आगमादिजन्य और तस्माद्दीर्घं ह्रस्वमणुमहन्नेदीयो दवीयो वेद दूरादय तिग्मतनूनपात् सुरभीद चन्दन इत्यादिक सकलनमात्रके उदाहरण मानने।

अथ कथ प्रत्यभिज्ञाप्रामाण्यमशक्यन्तशास्या. शक्या. शमयितु ते हि प्राहुः दलितकररुहशिरोरुहशिखरादिवत्सर्वत्र भ्रातैवेयमिति। अहो तर्कतर्कणकार्कश्यमभीपामेव हि विहायस्तलावलम्बमानमृगाङ्कमण्डलयुगलावलोकितप्रत्यक्षवत्सकलमपि प्रत्यक्ष भ्रांतिमत्कि न भवेत्। अथ लक्षणयुक्ते बाधासम्भवे तल्लक्षणमेव दूषित भवति सङ्कलन हि प्रत्यभिज्ञानचिह्न तदयुक्त। अपिच कररुहादौ प्रत्यभिज्ञानमबाध्यतेति तल्लक्षणमेव बाधित प्रत्यक्षे तु यत्र बाधा न तत्र तल्लक्षणमक्षूणं क्षणदाप्रियद्वयावलोकनायामभ्रान्तत्वाभावायत्र तु तदक्षूण न तत्र बाधा स्तम्भादिप्रत्यक्षवदितिचेन्नैव न खलु सङ्कलनमात्रमेव प्रत्यभिज्ञाप्रमाणलक्षणमाचक्ष्महे किन्तु स्वपरव्यवसायिज्ञानत्वरूपप्रमाणसामान्यलक्षणसद्भावे सति यत्सङ्कलन। नच कररुहादिवेदने तदस्ति विशिष्टस्य विपर्ययशून्यस्यावसायस्याभावादिति कथ लक्षणयुक्तेऽस्मिन्नपि बाधरोध' स्यात् क्षणभगुरत्वाद्भावानामैक्यग्रहीतिर्भ्रान्तिरेवेतिचेत् अत्र तावत् क्षणभङ्गभङ्ग एवाभङ्गुरमुत्तर अस्तु वा क्षणभङ्गस्तथापि नैयत्यैव नि शेषप्रत्यभिज्ञाप्रामाण्यमुत्तुत्सयितु शक्य। तथाहि पदार्थेषु किमैक्यगृहीतिभ्रान्तिनिमित्तमिष्यते। अपरापरोत्पादुकक्षणाना सादृश्यमितिचेत् तत्कि सादृश्यमस्तिकिंचित्तथाचेत् कचित्तेन सदृशोयमितिप्रत्यभिज्ञाभगवती भजतामभीलुका तर्हि प्रामाण्य। नास्त्येव सादृश्य विलक्षणत्वात्स्वलक्षणानामितिचेदिदानीमपि क पलायसे। एव तर्हि तस्माद्विलक्षणोयमिति प्रत्यभिज्ञा प्रामाण्यमास्तिघुवीत। वैलक्षण्यमपि नास्ति परमाणुप्रचयमात्रत्वात्समस्तवस्तूनामितिचेत् नन्वेवमपि तस्मादय महानल्पो वा प्रचय इत्यादिप्रत्यभिज्ञा भवतु प्रामाण्यशोभाभारभागिनी। प्रचयोऽपि न कश्चिन्नीलपीतादिपरमाणूनामेव तात्त्विकत्वादितिचेदहो उत्तमर्णाकीर्णदुर्गताधमर्ण इवाय स्वय तत्तदुक्तमपलप्यापलप्य निनक्षुभिक्षु'। यदि हि सादृश्यादिक न किञ्चिदस्ति कथ तर्हि त्वयैवोच्चरीचक्रे। विकल्पोत्प्रेक्षालक्ष्यमस्ति नतु बाह्य ग्राह्यमिति चेन्नीलपीतादिविशेषोऽपि तथैवास्तु बहिस्तदभावे कथ नैयत्येन विकल्पोल्लेख इति चेत्सादृश्यादौ कथं। वासनातश्चेदन्यत्रापि तत एवास्तु। वासनायामपि नैयत्येनोद्बोधक किञ्चिद्बहिरेष्टव्यमितिचेत्को नामात्र परिपथी किन्तु सादृश्यादिकमपि स्वीकुरु। ततो नीलपीतादिविशेषो वा बहिस्त्यज्यतां सादृश्यादिकमपि वा मन्यतां नान्यथा प्रमाणमुद्रामृष्यते।

सिद्धे चैवं सादृश्यादौ यत्र पूर्वाकारेण संकलनं तत्र प्रत्यभिज्ञाप्रमाणमन्यत्र तु प्रत्यक्षमेव माभूद्वा बहिः सादृश्यादि तथाप्यनुमानवत्प्रमाणमेवेयं नह्यनुमानपरिच्छेद्यमप्यग्नित्वादिसामान्यं बहिरस्ति तथापि यथा प्रणालिकया तद्विकल्पस्याग्न्यादिस्वलक्षणे प्रतिबन्धात्तत्प्रमाणमेवं सादृश्यादेरसत्वेऽपि सदृशादिस्वलक्षणे तद्विकल्पस्य प्रतिबन्धात्किन्नेयमपि तपस्विनी तथा स्यात् । अथायमनेन सदृश इति प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षं वा । कचित् किञ्चिदिति ब्रूमः । अनुभूततया परोक्षमप्येकं साक्षादिवाध्यवस्यतः पश्यतश्चापरं प्रत्यभिज्ञैवेयं भवतिच परोक्षस्यापि साक्षादिवाध्यवसाये प्रत्यक्षसर्वनाम्नः परामर्शः । एषोग्निरनुमीयते । अयमस्य वाक्यस्यार्थ इति । उभयन्तु प्रत्यक्षेण लक्षयतः प्रत्यक्षमेवैतदिति ॥

अब असमर्थ विचारे शाक्य नाम बौद्ध प्रत्यभिज्ञा प्रमाणके खण्डनमें समर्थ कैसे हो सकते हैं अर्थात् जब तार्किक शिरोमणि नैयायिक ही इसका खंडन न कर सके तो फिर बौद्ध विचारे तो क्या ही कर सकेंगे क्योंकि बौद्ध ऐसा कहते है कि (दलित) काटे हुए (कररुह) नख और (शिरोरुह) केशोंके शिखरादिकोंकी तरह सर्वत्र प्रत्यभिज्ञा भ्रान्तिरूप ही है अर्थात् जैसे नख वा केशोंके काट देनेपर भी तदेव नखशिखरं यह प्रत्यभिज्ञा भ्रान्तिरूप उत्पन्न होती है बैसे ही सर्वत्र प्रत्यभिज्ञा भ्रान्तिरूप ही उत्पन्न होती है । जैन कहते हैं कि भाई अहो इन बौद्धोंकी तर्कतर्कणमें खूब कर्कशता है । क्योंकि ऐसा माननेसे तो (विहायस्तल) आकाशमें अवलम्बमान चन्द्रद्वयको विषय करनेवाले प्रत्यक्षकी तरह सब प्रत्यक्ष भ्रान्तिरूप ही है ऐसा भी क्यों न सिद्ध होगा अर्थात् जैसे तुम कहते हो कि तदेव कररुहशिखरं इस प्रत्यभिज्ञाको भ्रान्तिरूप होनेसे प्रत्यभिज्ञामात्र भ्रांतिरूप ही है बैसे ही हम कहते है कि आकाशे एतत् चन्द्रद्वयं इत्याकारक प्रत्यक्षको भ्रान्तिरूप होनेसे प्रत्यक्षमात्र भ्रान्तिरूप है बैसा भी क्यों न कह सकेंगे । यदि कदाचित् लक्षणयुक्त पदार्थमें बाधा होनेसे वह लक्षण ही दूषित होता है सङ्कलन जो है सो प्रत्यभिज्ञानका चिन्ह (लक्षण) है इसलिये यह अयुक्त है । और कररुहादिकोंमें प्रत्यभिज्ञान बाधा जाता है इससे उसका लक्षण ही बाधित है प्रत्यक्षमें तो जहाँ बाधा है वहाँ प्रत्यक्षका लक्षण भी समन्वित नही है क्योंकि चन्द्रद्वयदर्शनादिरूप बाधित स्थलमें अभ्रान्तत्वाभाव नाम भ्रान्तत्व है और जिसस्थलमें प्रत्यक्षलक्षण है उसस्थलमें बाधा भी नही है जैसे कि स्तम्भादिप्रत्यक्षमें लक्षण है तो बाधा नही है । जैन कहते है कि तुम ऐसा कहते हो तो नही कहना क्योंकि हमलोग केवल सङ्कलनात्मकत्व ही प्रत्यभिज्ञानका लक्षण नही कहते है किन्तु स्वपरव्यवसायिज्ञानरूप प्रमाण सामान्यके लक्षणका सद्भाव होनेपर जो सङ्कलनात्मक है सो

प्रत्यभिज्ञान है ऐसा कहते है । करुद्यादिकोंके पूर्वोक्त ज्ञानमें एतादृश प्रत्यभिज्ञाका लक्षण नहीं है क्योंकि उसमें विपर्ययशून्यत्व-रूप व्यवसायित्व नहीं है जैन ही कहते है कि इसलिये प्रत्यभिज्ञानलक्षणयुक्त इस प्रत्यभिज्ञाका प्रमाणमें भी बाध कैसे है अर्थात् नहीं है । यदि कदाचित् भाव पदार्थोंको क्षणभंगुर होनेसे ऐक्य प्रतीति सर्वत्र भ्रान्तिरूप ही है ऐसा तुम कहते हो तो इसमें तो क्षणभङ्गवादका भङ्ग ही असल उत्तर है । तुष्यतु दुर्जनन्यायसे कहते है कि अथवा क्षणभङ्ग मान रहे तो भी तुम लोग क्षणभङ्ग माननेमात्रसे सर्वथा प्रत्यभिज्ञाका खण्डन नहीं कर सकते । क्यों नहीं कर सकते सो कहते हैं कि पदार्थमें ऐक्य प्रतीतिरूप भ्रान्तिका निमित्त कोनसा पदार्थ तुमको अभीष्ट है सो तो कहो । यदि अपर अपर उत्पन्न होनेवाले क्षणोंका सादृश्य ऐक्य प्रतीतिरूप भ्रान्तिमें कारण है ऐसा तुमलोग बौद्ध कहते हो तो हम पूछते है कि सादृश्य भी तुच्छ पदार्थ है क्या । यदि है ऐसा कहते हो तब तो किसी स्थलमें तेन सदृश अयं इत्याकारक प्रत्यभिज्ञानरूपप्रमाण भी निर्बाध सिद्ध हो जायगा । और यदि सब क्षणोंको विलक्षण २ होनेसे सादृश्य तुच्छ पदार्थ नहीं है ऐसा तुम कहते हो तो जैन कहते है कि ऐसा माननेपर भी क्या तुम प्रत्यभिज्ञा प्रमाणको न मानकर कहीं भाग जावोगे अर्थात् तो भी तुमको प्रत्यभिज्ञाप्रमाण मानना ही पड़ेगा । क्योंकि सादृश्य न माननेपर भी (तस्माद्विलक्षणोऽयं) यह उससे विलक्षण है इत्याकारिका प्रत्यभिज्ञा प्रामाण्यको धारण करें अर्थात् तस्माद्विलक्षणोऽयं इत्याकारक प्रत्यभिज्ञानरूप प्रमाण तो फिर भी तुमको मानना ही पडेगा । सर्व वस्तु परमाणु पुञ्जरूप ही है इसलिये वैलक्षण्य भी तुच्छपदार्थ नहीं है ऐसा यदि तुम लोग कहते हो तो हमलोग जैन कहते हैं कि सादृश्य तथा वैलक्षण्य न माननेपर भी यह उससे महान् है अथवा अल्प है इत्यादिरूप प्रत्यभिज्ञा प्रामाण्य शोभाके भारको धरनेवाली होवे अर्थात् अयं अस्मान्महानल्पो वा इत्यादिरूप ही प्रत्यभिज्ञानप्रमाण सिद्ध हो जावेगा । यदि कदाचित् केवल नील पीतादि परमाणू ही तात्विक पदार्थ है इसलिये प्रमाण भी तुच्छ पदार्थ नहीं है ऐसा तुम कहते हो तो जैन कहते हैं कि अहो भाई आश्चर्य है कि साहूकारसे दबाये हुए देनदारकी तरह सत्य कथितका अपलाप (नहीं है २ ऐसा कह कर) कर करके नष्ट होनेकी इच्छा वाला है यह भिक्षु नाम बौद्ध । क्योंकि यदि सादृश्यादि पदार्थ नहीं है तो तुमने ही उनको मानकर उत्तर कैसे किया था सादृश्यादि पदार्थ जो है सो विकल्पोत्प्रेक्षारूप्य नाम केवल आरोपित ही है परन्तु वास्तव भाव नहीं है । अर्थात् सादृश्यादिक मृगतृष्णावत् केवल कल्पित ही पदार्थ है परन्तु तात्विक नहीं है ऐसा तुम लोग कहते हो तो हम कहते हैं कि नील-

पीतादि विशेष भी विकल्पोत्प्रेक्षालक्ष्य ही है परन्तु तात्विक नही है ऐसा भी क्यो न मान लिया जाँय । यदि कदाचित् नीलपीतादि बाह्य पदार्थोंके न माननेसे नैयत्येन विकल्पोल्लेख कैसे हो सकेगा अर्थात् न हो सकेगा । इसलिये नीलपीतादि बाह्य पदार्थ अवश्य तात्विक मानने ही चाहिये ऐसा तुम कहते हो तो हम पूछते हैं कि सादृश्यादिकोंमें भी नैयत्येन विकल्पोल्लेख कैसे होगा । यदि वासनासे कहोगे तो हम कहते है कि नीलपीतादिकोंमें भी वासनासे ही नैयत्येन विकल्पोल्लेख क्यो न होगा । यदि वासनामें भी नैयत्येन उद्बोधक कुच्छ मानना चाहिये ऐसा कहते हो तो हम कहते हैं कि इस बातका विरोधि कौन है किन्तु हमारा ऐसा कहना है कि नीलपीतादिरूप विशेषोंकी तरह सादृश्यको भी तात्विक पदार्थ मानो । अर्थात् लिखते है कि यातो नीलपीतादि विशेष बाह्य छोडदो अथवा सादृश्यादि भी बाह्य विशेष मानलेवो अन्यथा तुम प्रामाणिक न कहावोंगे । जैन ही कहते है कि एवं रीत्या सादृश्यादि पदार्थोंके सिद्ध हो जानेपर जिसस्थानमें पूर्वाकारेण सङ्कलन होता है वहाँ प्रत्यभिज्ञानरूप प्रमाण जानना अन्यत्र तो प्रत्यक्ष ही समझना । अब फिर तुष्यतु दुर्जन न्यायसे ही कहते हैं कि अथवा सादृश्यादि बाह्य पदार्थ तात्विक न रहे । तो भी अनुमान प्रमाणकी तरह प्रत्यभिज्ञा भी प्रमाण ही है । अनुमानसे परिच्छेद्य अग्नित्वादिरूप सामान्य बाह्य कुच्छ पदार्थ नहीं है तो भी जैसे प्रणालिकाद्वारा अनुमान विकल्पका अग्न्यादि स्वविषयमें सम्बन्ध होनेसे अनुमान प्रमाण है ऐसे ही सादृश्यादिकोंको न होनेपर भी सदृशादि स्वलक्षण (विषय) में प्रत्यभिज्ञान विकल्पके सम्बन्ध होनेसे प्रत्यभिज्ञा प्रमाण भी क्यों न होगा । अब वादी प्रश्न पूछते है कि अयं अनेन सदृशः इत्याकारक जो ज्ञान है सो प्रत्यभिज्ञानरूप है अथवा प्रत्यक्षरूप है । उत्तर कहते हैं कि कहीक प्रत्यक्षरूप है और कहीं प्रत्यभिज्ञास्वरूप है । अनुभूततासे परोक्ष भी एक पदार्थको साक्षात्की तरह निश्चयकर रहे और दूसरेको देख रहे पुरुषको तो यह प्रत्यभिज्ञा ही है । परोक्षके भी साक्षात्की तरह अध्यवसायमें भी प्रत्यक्षसर्वनाम करके परामर्श होता ही है जैसेकि एषोऽग्निरनुमीयते यह अग्नि अनुमान किया जाता है और अयमस्य वाक्यस्यार्थः इस वाक्यका यह अर्थ है इत्यादि स्थलोंमें परोक्ष भी अग्न्यादिकोंमें एषः अयं इत्यादि प्रत्यक्ष सर्वनामका प्रयोग सर्वानुभव सिद्ध है॥

तर्कमपि कारणगोचरस्वरूपैः प्ररूपयन्ति ।

अब सूत्रकार तर्करूप प्रमाणका भी कारण तथा गोचर नाम विषय और स्वरूप करके प्ररूपण करते हैं ।

उपलम्भानुपलम्भसम्भवं त्रिकालीकलितसाध्यसाधनसं-

वंधाग्यालम्बनमिदमस्मिन्नसत्येव भवतीत्याद्याकार संव
दनमूहापरनामा तर्क इति ।

उपलम्भ और अनुपलम्भसे उत्पन्न होनेवाला और त्रिकालमें होनेवाले जो साध्य तथा साधन उनके संबन्धको विषय करनेवाला यह पदार्थ इस पदार्थके होनेसे ही होता है इत्यादि आकारवाला जो ज्ञान सो ऊहापर नामवाला तर्करूप प्रमाण समझना ॥

उपलभानुपलम्भाभ्यां प्रमाणमात्रेण ग्रहणाग्रहणाभ्यां सम्भव उत्पत्तिर्यस्येति कारणकीर्त्तनम् त्रिकालिकलितयो. कालत्रयीवर्तिनो' साध्यसाधनयोर्गम्यगमकयो' सम्बन्धो ऽविनाभावो व्याप्तिरित्यर्थ' स आदिर्यस्याशेपदेशकालवर्त्तिवाच्यवाचकसम्बन्धस्य स आलम्बन गोचरो यस्य तत्तथेति विपयाविष्करणं इदमस्मिन् सत्येव भवतीत्यादिशब्दादिदमस्मिन्नसति न भवत्येवेत्याकार साध्यसाधनसम्बन्धालम्बनमेव जातीय' शब्द एवं जातीयस्यार्थस्य वाचक' सोऽपि तथाभूतस्तथाभूतस्य वाच्य इत्याकारं वाच्यवाचकभावालंबन च संवेदनमिहोपादीयत इति स्वरूपप्रतिपादन। एवं रूप यद्विज्ञान स तर्क' कीर्त्यते ऊह इति च संज्ञा तर लभते ।

सूत्रमें जो उपलम्भानुपलम्भाभ्या है उसका अर्थ कहते है कि प्रमाणमात्रसे जो ग्रहण नाम प्रतीति और अग्रहण नाम अप्रतीति उनसे है सम्भवनाम उत्पत्ति जिसकी इतना कहनेसे तर्कके कारणका कथन किया । त्रिकाली कलित नाम त्रिकालमें होनेवाले जो साध्य और साधन नाम गम्य और गमक उनका जो सम्बन्ध नाम अविनाभाव अर्थात् व्याप्ति वह है आदि जिसके ऐसा जो अशेप देश तथा कालवृत्ति (वाच्य) पदार्थ तथा (वाचक) शब्द उनका सम्बन्ध सो है आलम्बन नाम विषय जिसका ऐसाभूत इस कहनेसे तर्कके विषयका आविष्करणनाम प्रगटपणा अर्थात् बोध कराया । यह इसके होनेसे ही होता है इत्यादि आकारवाला यहाँपर जो आदि शब्द है उससे (इद अस्मिन्नसति न भवत्येव) यह इसके न होनेसे नहीं ही होता इस आकारका भी ग्रहण समझ लेना । और साध्यसाधनके संबन्धका आलंबन एवजातीय (इस जातिवाला) जो शब्द है सो एवजातीय अर्थका वाचक है और एवजातीय जो अर्थ है सो एवजातीय शब्दका वाच्य है इत्याकार वाच्यवाचकभावको विपयकरनेवाला ज्ञान भी

वैसा कौन नहीं मानता अर्थात् हमारा यही तो कथन है क्योंकि हमने उपलम्भ तथा अनुपलम्भसे उत्पन्न होनेवाला तर्करूप विकल्प जो माना है । किन्तु हमारा कथन है कि व्याप्तिके निश्चयमें तर्क ही प्रमाण मानना चाहिये । यदि कदाचित् प्रत्यक्षविकल्पत्वेन प्रवर्तमान जो तर्क है सो प्राक् प्रवृत्त प्रत्यक्षके व्यापारको ही अभिमुख करता है इसलिये प्रत्यक्ष ही व्याप्तिज्ञानमें प्रमाण है परन्तु तर्क नहीं है ऐसा कहते हो तो हम कहते हैं कि अनुमान भी तो लिङ्गग्राहिप्रत्यक्षके व्यापारको ही अभिमुख करता है इसलिये प्रत्यक्ष ही वह्निके ज्ञानमें कारण है परन्तु अनुमान नहीं है वैसा भी क्यों न होवे ॥

अथ कथमेवं वक्तुं शक्यं लिङ्गप्रत्यक्षं हि लिङ्गगोचरमेवानुमानं तु साध्यगोचरमिति कथं तद्व्यापारमाभिमुखयेत्तर्हि प्रत्यक्षं पुरोवर्त्तिस्वलक्षणेक्षणक्षुण्णमेव तर्कविकल्पस्तु साध्यसाधनसामान्यावमर्शमनीषीति कथं सोऽपि तद्व्यापारमुद्दीपयेत् । अथ सामान्यमसामान्यमेवासत्त्वादिति कथं तत्र प्रवर्तमानस्तर्कः प्रमाणं स्यादितिचेत् अनुमानमपि कथं स्यात्तस्यापि सामान्यगोचरत्वाव्यभिचारात् । अन्यत्सामान्यलक्षणं सोऽनुमानस्य विषय इति धर्मकीर्तिना कीर्तनात् । तत्त्वतोऽप्रमाणमेवैतद्व्यवहारेणैवास्य प्रामाण्यात् । सर्व एवायमनुमानानुमेयव्यवहारो बुद्ध्यारूढेन धर्मधर्मिन्यायेनेतिवचनादितिचेत्तर्कोऽपि तथास्तु अथ नायं व्यवहारेणापि प्रमाणं सर्वथा वस्तुसंस्पर्शपराङ्मुखत्वादितिचेदनुमानमपि तथास्तु अवस्तुनिर्भासमपि परंपरया पदार्थप्रतिबन्धात्प्रमाणमनुमानमितिचेत्किन्न तर्कोऽपि । अवस्तुत्वं च सामान्यस्याद्यापि केसरिकिशोरवक्रक्रोडदंष्ट्राङ्कुराकर्षणायमानमस्ति सदृशपरिणामरूपस्यास्य प्रत्यक्षादिपरिच्छेद्यत्वादिति तत्त्वत एवानुमानं तर्कश्च प्रमाणं प्रत्यक्षवदिति पाषाणरेखा ॥

यदिकदाचित् लिङ्गग्राही जो प्रत्यक्ष है सो तो लिङ्ग विषयक ही होता है और अनुमान साध्यविषयक होता है इसलिये अनुमान जो है सो लिङ्गग्राही प्रत्यक्षके व्यापारको अभिमुख कैसे कर सकता है अर्थात् नहीं कर सकता इसलिये पूर्वोक्त तुम्हारा कथन ठीक नहीं है ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि प्रत्यक्ष तो पुरोवृत्ति स्वविषयके ही देखनेमें नाम जाननेमें समर्थ है और तर्करूप जो विकल्प है सो तो यावत्साध्यसाधनके ज्ञानमें समर्थ है इसलिये तर्क भी प्रत्यक्षके व्यापारको कैसे उद्दीपन कर सकेगा अर्थात् न कर सकेगा । यदि सामान्य तो न होनेसे असामान्य ही है इसलिये सामान्यमें प्रवर्तमान जो तर्क सो प्रमाण कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि अनुमानको भी तो सामान्य गोचरत्वका अव्यभि-

नार है इससे अनुमान भी प्रमाण कैसे हो सकेगा अर्थात् नहीं हो सकता। अनुमान सामान्य विषयक है इसमें बौद्धाचार्य धर्म्मकीर्तिका भी प्रमाण है सो लिखते है कि अन्यत् प्रसगात् घटपटादिरूपक्षणोंसे अन्य जो है सो सामान्य है सो सामान्य अनुमानका विषय है ऐसा धर्म्मकीर्तिका कथन है। यदि कदाचित् तत्त्व अनुमान अप्रमाण ही है केवल व्यवहार मात्रसे ही इसको प्रामाण्यता है क्योंकि अनुमान अनुमेय यह सर्व व्यवहार बुद्धिमें आरूढ धर्मधर्मिन्यायसे है परतु वास्तविक नहीं है ऐसा कहते हो तो हम कहते हैं कि तर्क भी व्यवहारेण ही प्रमाण रहो। यदि तर्क व्यवहारसे भी प्रमाण नहीं है क्योंकि यह वस्तुके साथ सबन्धसे सर्वथा शून्य है ऐसा तुम लोग बौद्ध कहते हो तो हम कहते हैं कि अनुमान भी अत एव व्यवहारेणापि प्रमाण न रहो। यदि कदाचित् अवस्तु निर्भास नाम अवस्तुरूप सामान्यका बोधक भी अनुमान परपरया वस्तुके साथ सम्बद्ध होनेसे प्रमाण है ऐसा कहते हो तो हम कहते है कि अवस्तु निर्भास भी तर्क परपरया वस्तुके साथ सबद्ध होनेसे प्रमाण क्यों न होवे। और सामान्यको अवस्तुत्व तो अभी भी केसरी सिंहके बच्चेके मुखसे दष्ट्रा दान्तोंके निकालनेके सदृश है अर्थात् जैसे केसरीके बच्चेके मुखसे दात नहीं निकाल सकते वैसे ही सामान्यको अवस्तुत्व भी सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि सदृशपरिणाम लक्षण सामान्य प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध है। जैन ही कहते हैं कि प्रत्यक्षकी तरह अनुमान और तर्क यह दोनो तात्विक प्रमाण ही हैं यह कथन पाषाण रेखाके सदृश है नाम इसका कोई भी खडन नहीं कर सकता॥

अत्रोदाहरन्ति। इसमें उदाहरण कहते है।

यथा यावान्कश्चिद्धूमः स सर्वो वह्नौ सत्येव भवतीति तस्मिन्नसत्यसौ न भवत्येवेति।

जैसे जो कोई ससार मात्रमें धूम है सो सब अग्निके होनेसे ही होता है यह तर्क है और अग्निके न होनेसे नहीं ही होता यह भी तर्क ही है॥

अनयोराद्यमुदाहरणमन्वयव्याप्तौ द्वितीय तु व्यतिरेकव्याप्तौ।

इस सूत्रमें प्रथम दृष्टान्त तो अन्वय व्याप्तिमें है और द्वितीय व्यतिरेक व्याप्तिमें है ऐसा जानना।

हैं। और व्याप्तिको भी हम पक्षेण ही नही कहते है कि जिसवास्ते व्याप्तिसिद्धिके लिये धर्म्ममें पक्षत्वका आरोप हमलोग करते होवें। किंतु व्याप्ति तो साध्यधर्म्मेण ही हमने कही है। प्रश्न करते है कि आनुमानिक प्रतीतिमें साध्यविशिष्टधर्म्मी साध्य होता है और व्याप्तिमें तो धर्म्म साध्य होता है ऐसा मूलकारस्वय कहेगे इसलिये एकस्थलमें तो साध्यत्वगोण ही भया जैन कहते है कि यदि तुम ऐसा कहतेहो तो नही कहना क्योंकि पूर्वोक्त दोनोंस्थलोमें साध्यके मुख्य लक्षण होनेसे साध्यत्वको मुख्यत्व ही है प्रश्न करते है कि यहां दो साधनीय कौन है उत्तर कहते है कि भाई व्याप्ति भी परको प्रतीत नही है इसलिये उसके प्रतिपादन करके धर्म्मविशिष्ट धर्म्मीको यह प्रतिपादनीय है यदि कदाचित् अनुमानप्रमाणके निषेधार्थ हम कोई हेतु नहीं देते ऐसा तुम लोग कहते हो तब तो अप्रामाणिक जो तुम तुम्हारा इष्ट सिद्ध कैंसे होगा अर्थात् विना प्रमाणसे अनुमानका खण्डन नही हो सकेगा। जैन ही कहते है कि इसलिये अनुमानप्रमाणका निषेध कभी भी सिद्ध नही होसकता। यदि अनुमान प्रमाण नही है इसमें गौणत्वरूपहेतु है तो अनुमानका बाध कैसे हो सकता है और अनुमानप्रमाण नही हैं इसमें यदि हेतु नहीं है तो भी अनुमानका बाधन कैंसे हो सकता है अर्थात् नही होसकता ऐसा किसी आचार्यका वचन भी है। और हम पूछते है कि यदि प्रत्यक्षमें भी अर्थक्रियाके संवादसे प्रामाण्यका निर्णय होता है तुम कहते हो तो अनुमानको प्रामाण्य क्यों न सिद्ध होगा अर्थात् अवश्य सिद्ध होगा।

तत्र स्वार्थं व्यवस्थापयन्ति।

दोप्रकारके अनुमानोमेंसे पहिले सूत्रकार स्वार्थानुमानका व्यवस्थापन करते है।

तत्र हेतुग्रहणसम्बन्धस्मरणकारणकसाध्यविज्ञानं स्वार्थमिति ॥

पूर्वोक्त दो अनुमानोंमेंसे हेतुग्रहण और सम्बन्ध स्मरण है कारण जिसका वैसा जो साध्यका विज्ञान सो स्वार्थानुमान जानना ॥

हिनोत्यन्तर्भावितणिजर्थत्वाद्गमयति परोक्षमर्थमिति हेतुरनन्तरमेव निर्दिश्यमाणलक्षणस्तस्य ग्रहणं प्रमाणेन निर्णयः। संबन्धस्मरणं च यथैव संबंधो व्याप्तिनामा प्राक् तर्केणातर्कि तथैव परामर्शस्ते कारणं यस्य तत्तथा। साध्यस्याख्यास्यमानस्य विशिष्टं संशयादिशून्यत्वेन ज्ञानं स्वार्थमनुमानं मन्तव्यम् ॥

हिनोति नाम हनधातुको अन्तरभावित णिजर्थ होनेसे गमयति परोक्षमर्थं नाम जो परोक्ष अर्थका बोध करावे उसको कहिये हेतु जिसका अभी आगे लक्षण कहेंगे उसका ग्रहणनाम प्रमाणसे निर्णय सम्बन्धस्मरणनाम जिसप्रकार व्याप्तिरूप सम्बन्ध पहिले तर्कसे जानाथा वैसे ही जो सम्बन्धका ज्ञान वह दोनों ही हैं कारण जिसके ऐसा जो आगे निर्दिश्यमानस्वरूपवाला साध्य उसका जो विज्ञान नाम विशिष्ट ज्ञान अर्थात् संशयादिशून्यत्वेन ज्ञान सो स्वार्थानुमान जानना।

हेतुस्वरूपं निरूपयन्ति। अब सूत्रकार हेतुके स्वरूपका निरूपण करते हैं।

निश्चितान्यथानुपपत्त्येकलक्षणो हेतुरिति।

निश्चित जो अन्यथा अनुपपत्ति नाम साध्यसे विना असिद्धि वही है एकलक्षण जिसका सो हेतु जानना।

अन्यथा साध्यं विना अनुपपत्तिरेव न मनागप्युपपत्तिः प्रयत्नानन्तरीयकत्वे साध्ये विपक्षैकदेशवृत्तेरनित्यत्वस्यापि गमकत्वापत्तेः ततो निश्चिता निर्णीतान्यथानुपपत्तिरेवैका लक्षणं यस्य स तादृशो हेतुर्ज्ञेयः। अन्यथानुपपत्तिश्चात्र हेतुप्रक्रमात्साध्यधर्म्मेणैव सार्द्धं ग्राह्या तेन तदितरार्थान्यथानुपपन्नैः प्रत्यक्षादिज्ञानैर्नातिव्याप्तिः।

अन्यथा नाम साध्यसे विना अनुपपत्ति ही नाम थोडी भी न उपपत्ति प्रयत्नानन्तरीयकत्वसाध्यमें विपक्षैकदेशमें वृत्ति अनित्यत्वको भी गमकत्वकी प्राप्ति होवेंगी इसलिये निर्णीत अन्यथानुपपत्ति ही हे एक लक्षण जिसका ऐसा जो सो हेतु समझना। यहा पर हेतुप्रसङ्गसे अन्यथानुपपत्ति साध्यके साथ ही ग्रहण करनी इससे साध्यसे अन्य जो घटादि पदार्थ उनसे अन्यथा अनुपपन्न जो प्रत्यक्षादि ज्ञान उनमें अतिव्याप्ति नहीं है।

एतद्व्यवच्छेद्यं दर्शयन्ति।

अब सूत्रकार इसके व्यवच्छेद्यको कहते हैं।

न तु त्रिलक्षणकादिरिति॥

बौद्धादि संमत त्रिलक्षणकादिरूप हेतु नहीं है।

त्रीणि पक्षधर्म्मत्वं सपक्षसत्त्वं विपक्षासत्त्वादीनि लक्षणानि यस्य सौगतसंमतस्य हेतोरादिशब्दाद्यौगसङ्गीतपञ्चलक्षण-

अतिव्याप्ति नहीं है। जैन कहते है कि ऐंसा कहनेवाले जो नैयायिक हैं वह भी निश्चितान्यथानुपपत्तिसे अतिरिक्त कुच्छ हेतु लक्षण नहीं कहते इसलिये वही एक लक्षण रहो। क्योंकि अनौपाधिक संबन्धको व्याप्ति कह देनेसे कुच्छ दोष नहीं है कि जिसके हटानेके लिये वाकी लक्षणका कथन सार्थक होवे ॥

पक्षधर्म्मत्वाभावे रसवतीधूमोऽपि पर्वतसप्तार्चिषं गमयेदित्यभिदधानो वौद्धो न वुद्धिमान् यतः पक्षधर्म्मत्वभावेऽपि किं नैष तत्र तं गमयेत्। ननु कौतुकमेतत्कथं हि नाम पक्षधर्म्मतोपगमे रसवतीधर्म्मः सन् धूमो महीध्रकंधराधिकरणं धनंजयं ज्ञापयत्विति चेदेवं तर्हि जलचन्द्रोऽपि न नभश्चन्द्रमाजिज्ञपत् जलचन्द्रस्य जलधर्म्मत्वात्। अथ जलनभश्चन्द्रान्तरालवर्त्तिनस्तावतो देशस्यैकस्य धर्मित्वेन जलचन्द्रस्य तद्धर्म्मत्वनिश्चयात् कुतो न तत् ज्ञापकत्वमितिचेदेवं तर्हि रसवतीपर्वतान्तरालवर्तिवसुन्धराप्रदेशस्य धर्म्मित्वमस्तु तथाच महानसधूमस्यापि पर्वतधर्म्मतानिर्णयाज्जलचन्द्रवत्कथं न तद्गमकत्वं स्यात्। पक्षधर्म्मता खलूभयत्रापि निमित्तं ततो यथासौ स्वसमीपदेशे धूमस्य धूमध्वजं गमयतोऽम्लानतनुरास्ते तथा व्यवहितदेशेपि पर्वतादौ तदवस्थैवान्यथा जलचन्द्रेऽपि नासौ स्याद्देशव्यवधानात्। अथ नायमेवात्र गमकत्वाङ्गं किन्तु कार्यकारणभावोऽपि कार्यश्च किमपि कीदृशं तदिह कृपीटजन्मा स्वसमीपदेशमेव धूमकार्यमर्जयितुमधीशानो नभश्चन्द्रस्तु व्यवहितदेशमपीति न महानसधूमो महीधरकंधराकोणचारिणमाशुशुक्षणिं गमयतीतिचेनन्वेवं धूमस्तद्देशेनैव पावकेनान्यथानुपपन्नो नीरचन्द्रमा पुनरतद्देशेनापि नभश्चन्द्रेणेत्यन्यथानुपपत्तिनिर्णयमात्रसद्भावादेव साध्यसिद्धेः सद्भावात् किं नाम जलाकाशमृगाङ्कमण्डलादेर्द्धर्म्मित्वकल्पनाकदर्थनमात्रनिमित्तत्वेन पक्षधर्म्मतावर्णनेन। यौगस्याप्येवमेव पक्षधर्म्मत्वानुपयोगो दर्शनीयः ॥

यदि पक्षधर्म्मत्व हेतुका लक्षण न कहेंगे तो महानसवृत्ति धूम भी पर्वतमें अग्निका बोध करावें ऐसा कहरहा जो बौद्ध सो वुद्धिमान् नही है क्योंकि पक्षधर्म्मत्वके होनेपर भी महानसीयधूम पर्वतमें अग्निका बोध क्यों नहीं कराता। बौद्ध कहते हैं कि भाई यह तो बडा आश्चर्य है क्योंकि पक्षधर्म्मताके माननेपर महानसका धर्म्मरूपधूम पर्वतमें वह्निका अनुमापक कैसे होसके अर्थात् नहीं होसकता जैन कहते हैं कि तुमलोग यदि ऐसा कहते हो तब तो फिर जलचन्द्र भी (नभ) आकाशचन्द्रका बोधक न होवें क्योंकि जलचन्द्र तो जलधर्म्म है। यदि जलचन्द्र तथा नभश्चन्द्रके मध्यवृत्तिदेशको एकधर्म्मी होनेसे जलचन्द्रको भी तद्धर्मनि-

श्रय हो जानेसे जलचन्द्रको नभश्चन्द्रका बोधकत्व क्यों नहीं है ऐसा कहते हो तो हम कहते है कि महानस तथा पर्वतके मध्य-
वृत्ति पृथवीरूप प्रदेशको भी धर्म्मित्व रहो। एव सति महानसधूमको भी पर्वतधर्म्मताके निर्णय होनेसे जलचन्द्रकी तरह महानसीय
धूमको पर्वतमें वह्न्यनुमापकत्व क्यों न होवे। पक्षधर्म्मता तो सर्वत्र निमित्त है इसलिये वह पक्षधर्म्मता जेसे ससमीपदेशमें अग्निके
बोधक धूममें है वैसे ही व्यवहितदेशपर्वतादिवृत्ति–अग्निके बोधक धूममें भी विद्यमान है अन्यथा देशका व्यवधान
होनेसे जलचन्द्रमें भी पक्षधर्म्मता न रहें। यदि कदाचित् यहाँपर केवल पक्षधर्म्मता ही गमकत्वाङ्ग नहीं है किंतु कार्यकारणभाव
भी है सो कार्य्य कोई केसा होता है और कोई केसा सो यहाँ अग्नि तो स्वसमीपवृत्ति ही धूमको उत्पन्न करनेमें समर्थ है और
नभश्चन्द्र तो दूरदेशवृत्ति भी जलचन्द्रको उत्पन्न कर सकता है इसलिये जलचन्द्र तो नभश्चन्द्रका बोधक होता है परन्तु
महानसीयधूम पर्वतमें वह्निका अनुमापक नहीं होता। जो कहते है कि तुम ऐसा कहते हो तो हम कहते है कि धूम तो स्वदेश
वृत्ति ही अग्निके साथ अन्यथानुपपन्न हे ओर नीरचन्द्र नभश्चन्द्रके साथ भी है इत्याकारक अन्यथानुपपत्तिके निर्णयमात्रसे ही
(जलचन्द्रस्य नभश्चन्द्रबोधकत्व तथा महानसीयधूमस्य पर्वते अबोधकत्वरूप) हमारा अभीष्ट सिद्ध हो जाता है तो फिर जलाकाश
तथा चन्द्रमडलमध्यवृत्ति प्रदेशको एकधर्म्मित्व कल्पनारूप कष्टमात्र निमित्तक पक्षधर्म्मताके वर्णनका क्या प्रयोजन हे अर्थात्
कुच्छ भी नहीं। नेयायिकको भी इसीतरह पक्षधर्म्मका हेतुमें अनुपयोग दिखादेना।

सपक्षसत्वमप्यनौपयिक सत्वादेरगमकत्वापत्ते यस्तु पक्षाद्बहिष्कृत्य किमपि कुटादिक दृष्टान्तयति तस्यापूर्व पा-
ण्डित्यप्रकार कुटस्यापि पटादिवत् निवादास्पदत्वेन पक्षाद्बहि'करणानुपपत्तेस्तथाच कथमय निदर्शनतयोपदर्श्येत।
प्रमाणान्तरात्तत्रैव क्षणिकत्व प्राक् प्रसाध्य निदर्शनतयोपादानमितिचेन्नतु तत्रापि कः सपक्षीकरिष्यते यदि क्षणिकत्व-
प्रसाधनपूर्व पदार्थांतरमेव तदा दुर्वारमनवस्थाकदर्थनमन्यथातु न सपक्ष कश्चित्। यत एव च प्रमाणात् क्षणिकत्वनि-
ष्टंकन कुटे प्रकट्यते तत एव पटादिपदार्थांतरेष्वपि प्रकट्यता किमपरप्रमाणोपन्यासालीकप्रागल्भ्यप्रकाशनेन। यस्तु
साध्यधर्म्मवान् सपक्ष इति सपक्ष लक्षयित्वा पक्षमेव सपक्षमाचक्षीत साध्यधर्मवत्तया हि सपक्षत्व साध्यत्वेनेष्टतया तु
पक्षत्व नच विरोधो वास्तवस्य सपक्षत्वस्येच्छांव्यवस्थितेन पक्षत्वेन निराकर्तुमशक्यत्वादिति। स महात्मा निश्चित निर्विण्ण.।
पक्षो हि साध्यधर्म्म-
सत्वादेः क्षणिकत्वाद्यनुमाने सपक्षसत्वावमायवेलायामेव साध्यधर्म्मस्यावबोधेनानुमानानर्थक्यात्

शङ्कितविपरीतानध्यवसितवस्तूनां साध्यताप्रतिपत्त्यर्थमप्रतीतवचनमिति ।

शङ्कित और विपरीत तथा अनध्यवसित वस्तुओंको साध्यतासिध्यर्थ साध्यके लक्षणमें अप्रतीतत्वका निवेश किया है ।

एवंविधमेव साध्यमन्यथा साधनवैफल्यात् ।

एतल्लक्षणविशिष्ट ही साध्य होता है अन्यथा साधन ही निष्फल हो जावेगा ॥

अनिराकृतत्वं सफलयन्ति ।

अब सूत्रकार साध्यके लक्षणमें प्रविष्ट अनिराकृतत्वका साफल्य कहते हैं ।

प्रत्यक्षादिविरुद्धस्य साध्यत्वं मा प्रसज्यतामित्यनिराकृतग्रहणमिति ।

प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे विरुद्ध धर्म्मको साध्यत्वकी प्राप्ति न होवे इसलिये साध्यलक्षणमें अनिराकृतत्वका ग्रहण किया है ॥

प्रत्यक्षादिविरुद्धस्य धनंजयादौ शैत्यादेः ।

प्रत्यक्षादि विरुद्ध जैसे अग्निमें शैत्यकी सिद्धि ।

अभीप्सितत्वं व्यञ्जयन्ति ।

अब साध्यके लक्षणकी कुक्षिमें प्रविष्ट अभीप्सितत्वको सूत्रकार साफल्यद्वारा प्रगट करते हैं ।

अनभिमतस्यासाध्यत्वप्रतिपत्तये अभीप्सितपदोपादानमिति ।

साध्यत्वेन जो इष्ट न होवे उसको असाध्यत्व सिध्यर्थ अभीप्सितत्वपदका साध्यके लक्षणमें प्रवेश किया है ।

अनभिमतस्य साधयितुमनिष्टस्य ।

सूत्रमें जो अनभिमत कहा है उसका सिद्ध करनेके लिये अनिष्ट ऐसा अर्थ है ।

साध्यत्वं सूत्रत्रयेण विषयविभागेन संगिरन्ते ।

अब तीन सूत्रोंसे ग्रंथकार साध्यत्वको विषयविभागके साथ कहते हैं ।

व्याप्तिग्रहणसमयापेक्षया साध्यं धर्म्म एवान्यथा तदनुपपत्तेरिति ।

व्याप्तिग्रहणके समयकी अपेक्षासे धर्म्म ही साध्य है अन्यथा नाम धर्म्ममात्रको यदि साध्य न कहेंगे तो व्याप्तिकी अनुपपत्ति होवेगी ।

एतदेव भावयन्ति ।

इसीको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं ।

नहि यत्र यत्र धूमस्तत्रतत्र चित्रभानोरिव धरित्रीधरस्याप्यनुवृत्तिरस्तीति ।

जहाँ जहाँ धूम है वहाँ वहाँ अग्नि है यहाँपर अग्निकी तरह पर्वतकी भी अनुवृत्ति नहीं है । इसलिये यहाँ धर्म्म ही साध्य है परन्तु धर्म्मी नहीं है ।

व्यक्तमेतत् ।

इस सूत्रका अर्थ स्पष्ट ही है इसलिये इसकी कुच्छ व्याख्या हम नहीं लिखते ।

आनुमानिकप्रतिपत्त्यवसरापेक्षया तु पक्षापरपर्य्यायस्तद्विशिष्ट प्रसिद्धो धर्म्मीति ।

आनुमानिक नाम अनुमानजन्य यथार्थ प्रतीतिकालकी अपेक्षासे तो पक्ष है अपर नाम जिसका ऐसा जो व्याप्तिकालीन साध्यरूप धर्म्मविशिष्ट प्रसिद्ध धर्म्मी है सो साध्य कहाता है ।

आनुमानिकी प्रतिपत्तिरनुमानोद्भवा प्रमितिः । तद्विशिष्टो व्याप्तिकालापेक्षया साध्यत्वेनाभिमतेन धर्म्मेण विशिष्टः ।

सूत्रमें जो आनुमानिकप्रतिपत्ति है उसका अर्थ अनुमानजन्यप्रमा है और तद्विशिष्ट नाम व्याप्तिकालकी अपेक्षासे साध्यत्वेन अभिमत धर्म्मविशिष्ट ॥

प्रसिद्धो धर्म्मीत्युक्तमथ यतोऽस्य प्रसिद्धिस्तदभिदधति ।

पूर्वसूत्रमें प्रसिद्धो धर्म्मी नाम प्रसिद्धधर्म्मी ऐसा कहाथा। अब जिससे धर्म्मीकी प्रसिद्धि होती है सो सूत्रकार कहते हैं।

धर्मिणः प्रसिद्धिः क्वचिद्विकल्पतः कुत्रचित्प्रमाणतः क्वापि विकल्पप्रमाणाभ्यामिति ॥

धर्म्मीकी प्रसिद्धि कहींक तो विकल्पसे और कही प्रमाणसे और कही विकल्पप्रमाण दोनोंसे होती है।

विकल्पोऽध्यवसायमात्रं।

अध्यवसायमात्रको किकल्प कहते है।

अथात्र क्रमेणोदाहरन्ति।

अब विकल्पादिकोंसे धर्म्मीकी सिद्धिमें क्रमसे सूत्रकार उदाहरण कहते हैं।

यथा समस्ति समस्तवस्तुवेदी क्षितिधरकन्धरेयं धूमध्वजवती ध्वनिः परिणतिमानिति।

दृष्टान्त कहते है कि जैसे समस्त पदार्थोंको जाननेवाला नाम सर्वज्ञ कोई जगत्में है और यह पर्वतकी कन्दरा अग्निवाली है और शब्द परिणतिमान् है।

अत्राद्योदाहरणे धर्मिणो विकल्पेन सिद्धिर्नहि हेतुप्रयोगात्पूर्वं विकल्पं विहाय विश्वजित्कुतोऽपि प्रासिध्यत्। द्वितीये प्रमाणेन प्रत्यक्षादिना क्षितिधरकन्धरायास्तदानीं संवेदनात्तृतीये तूभाभ्यां नहि श्रूयमाणादन्येषां देशकालस्वभावव्यवहितध्वनीनां ग्राहकं किञ्चित्तदानीं प्रमाणं प्रवर्तत इति विकल्पादेव तेषां सिद्धिः। ननु नास्ति विकल्पसिद्धो धर्म्मी तन्मात्रेण सिद्धेः कस्याप्यसम्भवादन्यथाहंप्रथमिकया प्रमाणपर्येषणप्रयासाः परीक्षकाणामकक्षीकरणीय एव भवेत्। प्रमाणमूलतायां पुनरेतस्य प्रमाणसिद्धप्रकारेणैव गतार्थत्वादिति सोऽयं स्वयं विकल्पसिद्धं धर्मिणमाचक्षाणः परोक्तं प्रत्याचक्षाणश्च नियतमुत्स्वप्नायते। यदिहि विकल्पसिद्धो धर्म्मी नास्त्येव तदा नास्ति विकल्पसिद्धो धर्म्मी तन्मात्रेण सिद्धेः कस्याप्यस-

म्भवादित्यत्र कथं तमेवानोचथा । परोपगमादयमस्त्येवेतिचेत् यदि परोपगम प्रमितिस्तदा कथमय प्रतिषेधविधिर्भवेद-थ तथा न तदापि यत्नोच्यतां कथमय प्रतिषेधविधिर्भवेत् । तस्मात् प्रमाणात्पृथग्भूतादपि विकल्पादस्ति काचित्तथा-विधा सिद्धिर्यामनाश्रयता तार्किकेण न क्षेमेणासितु शक्यत इति ॥

इस सूत्रमें जो प्रथम उदाहरण कहा है उसमें धर्म्मीकी सिद्धि विकल्पसे है क्योकि हेतु प्रयोगसे पहिले विकल्पको छोडकर और किसीसे भी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं है। द्वितीय दृष्टान्त प्रमाणसे धर्म्मीकी प्रसिद्धिस जानना क्योंकि प्रत्यक्षसे ही हेतु प्रयोगसे पूर्व क्षिति-धरकधरा ज्ञात है । तृतीय तो विकल्प और प्रमाण दोनोंसे धर्म्मीकी सिद्धिमें कहा है ऐसा जानना क्योंकि श्रूयमाणसे अन्य देश काल स्वभावसे व्यवहित शब्दोंका ग्राहक कोई भी प्रमाण उसकालम प्रवृत्त नहीं होता इसलिये उनकी सिद्धि विकल्पसे ही होती है । नैयायिक प्रश्न करते है कि विकल्पमात्रसे किसीकी सिद्धि नही होती इसलिये विकल्पसिद्ध धर्म्मी नही है यदि विकल्पसे भी पदार्थसिद्धि मान ली जावेगी तो हम असल प्रामाणिक होवें अथवा हम पहिले प्रमाणको जानलेवें ऐसा जो परीक्षक पुरुषोंका प्रयास है सो व्यर्थ ही हो जावेगा । और यदि विकल्पको प्रमाणमूल कहोगे तब तो प्रमाणसिद्ध ही धर्म्मी भया परन्तु प्रमाणसे भिन्न विकल्पमात्रसे तो सिद्ध न भया । जैन कहते हैं कि सो यह विचारा नैयायिक स्वय तो विकल्पसिद्ध धर्म्मीको कहरहा और दूसरेसे कथितको खडन कररहा अवश्य स्वप्नकी वार्ता ही करता है । क्योंकि यदि विकल्पसिद्ध धर्म्मी नहीं ही है तो विकल्पमात्रसे किसीकी भी सिद्धि नही होती इससे विकल्पसिद्धधर्म्मी नहीं है यहाँपर विकल्प सिद्धधर्मी ही स्वय नैयायिकने पक्षत्वेन कैसे कहाथा । यदि दूसरोंके माननेसे विकल्पसिद्धधर्म्मी है ही ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते है कि यदि दूसरोंका मानना प्रमाण-सिद्ध है तब तो इसका निषेध कैसे हो सकता है और यदि दूसरोंका मानना प्रमाणसिद्ध नहीं है तो भी (धर्म्मिण असत्वादेव) इसका प्रतिषेध कैसे हो सकता है सो कहो अर्थात् नहीं हो सकता । इसलिये प्रमाणसे पृथग्भूत भी विकल्पसे कोई एक ऐसी पदार्थसिद्धि अवश्य है कि जिसको न मानकर नैयायिक सुखसे बैठ नहीं सकते ।

अधुना परार्थानुमानं प्ररूपयन्ति ।

अब सूत्रकार परार्थानुमानका प्ररूपण करते है ।

पक्षहेतुवचनात्मकं परार्थमनुमानमुपचारादिति ।

पक्ष तथा हेतुका वचन स्वरूप परार्थानुमान उपचारसे कहा जाता है । प्रतिपाद्यापेक्षया तु धूमो-

पक्ष हेतुवचनात्मकत्वं च परार्थानुमानस्य व्युत्पन्नमतिप्रतिपाद्यापेक्षयात्रोक्तमतिव्युत्पन्नमतिप्रतिपाद्यापेक्षया तु धूमो-
पक्ष हेतुवचनात्मकत्वं च परार्थानुमानस्य व्युत्पन्नमतिप्रतिपाद्यापेक्षयात्रोक्तं बाहुल्येन तत्प्रयोगाभावात्तु नैतत् साक्षात्सूत्रे सूत्रितमुपलक्षितं तु
ऽत्र दृश्यत इत्यादिहेतुवचनमात्रात्मकमपि तद्भवति बाहुल्येन तत्प्रयोगाभावात्तु नैतत् साक्षात्सूत्रे सूत्रितमुपलक्षितं तु
ऽत्र दृश्यत इत्यादिहेतुवचनमात्रात्मकमपि तद्भवति यद्वक्ष्यन्ति मन्दमतींस्तु व्युत्पादयितुं दृष्टांतो-
द्रष्टव्यं । मन्दमतिप्रतिपाद्यापेक्षया तु दृष्टान्तादिवचनात्मकमपि तद्भवति यद्वक्ष्यन्ति मन्दमतींस्तु व्युत्पादयितुं दृष्टांतो-
पनयनिगमनान्यपि प्रयोज्यानीति । पक्षहेतुवचनस्य च जडरूपतया मुख्यतया प्रामाण्यायोगे सत्युपचारादित्युक्तं
कारणे कार्योपचारादित्यर्थः प्रतिपाद्यगतं हि यत्ज्ञानं तस्य कारणं पक्षादिवचनं कार्ये कारणोपचाराद्वा प्रतिपादकगतं
हि यत्स्वार्थानुमानं तस्य कार्यं तद्वचनमिति ।

यहांपर स्वार्थानुमानको पक्षहेतुवचनात्मकत्व जो कहा है सो व्युत्पन्नबुद्धिवाले प्रतिपाद्य पुरुषोंकी अपेक्षासे कहा है और अतिबुद्धि-
मान प्रतिपाद्योंकी अपेक्षासे तो धूम यहाँ दीखता है इत्याद्याकारक हेतुवचनरूप भी परार्थानुमान होता है बहुधा इसका प्रयोग
नहीं होता है इसलिये इसका सूत्रमें आचार्यने साक्षात् ग्रहण नही किया तो भी इसको उपलक्षित तो समझना । और मन्दमतिप्रति-
पाद्यकी अपेक्षासे तो दृष्टान्तादिवचनात्मक भी परार्थानुमान होता है । मन्दमति पुरुषोंको बोध करानेके लिये तो दृष्टांत और उपनय
तथा निगमन भी कहने चाहिये ऐसा सूत्रकार अगाडी स्वयं कहेंगे । पक्ष और हेतुके वचनको जड रूप होनेसे उनको मुख्य-
तया प्रामाण्य बन नही सकता इसलिये उपचारसे ऐसा सूत्रकारने कहा अर्थात् कारणमें कार्यके उपचारसे पक्षहेतुवचनको अनुमान
प्रामाण्यता है क्योंकि प्रतिपाद्य पुरुषगत जो ज्ञान है उसका कारण है पक्षादि वचन इससे कारणे कार्योपचार सिद्ध भया । अथवा प्रति-
पादकमें जो स्वार्थानुमान उसका कार्य है पक्षहेतुवचन इसलिये कार्यमें कारणके उपचारसे पक्षहेतुवचनको अनुमान प्रामाण्यता
है ऐसा उपचारात् का अभिप्राय जानना ॥

संप्रति व्याप्तिपुरःसरं पक्षधर्म्मतोपसंहारं तत्पूर्विकां वा व्याप्तिमाचक्षाणान् भिक्षून् पक्षप्रयोगमङ्गीकर्तुमाहुः ।

अब व्याप्तिपुरःसर पक्षधर्म्मतोपसंहार अथवा पक्षधर्म्मतोपसंहारपूर्विका व्याप्तिको कह रहें भिक्षु (बौद्ध) ओंको पक्ष वचनके
अंगीकार करवानेके लिये अगाडीके सूत्रको सूत्रकार कहते है ।

साध्यस्य प्रतिनियतधर्म्मिसंबन्धिताप्रसिद्ध्ये हेतोरुपसंहारवचनवत् पक्षप्रयोगोप्यवश्यमाश्रयितव्य इति ।

जैसे हेतुके उपसंहारवचनको प्रतिनियतधर्मधर्म्मितासिध्यर्थ माना है वैसे ही साध्यकी प्रतिनियत धर्मधर्म्मिताकी सिद्धिके लिये पक्षप्रयोग भी अवश्य मानना चाहिये ।

यथा यत्र धूमस्तत्र धूमध्वज इति हेतो सामान्येनाधारप्रतिपत्तावपि पर्वतादिविशिष्टधर्म्मिधर्म्मताधिगतये धूमश्चात्रेत्येवरूपमुपसंहारवचनमवश्यमाश्रियते सौगतैस्तथा साध्यधर्म्मस्य नियतधर्मधर्म्मिताप्रतिपत्तये पक्षप्रयोगोप्यवश्यमाश्रयितव्य इति ।

जैसे जिस स्थानमें धूम होता है उस स्थानमें अग्नि अवश्य होती है इसप्रकार हेतुका सामान्यतया आधार प्रतीत हो जानेपर भी पर्वतादिरूप विशेष धर्मिकी धर्म्मता सिद्धिके लिये धूम यहाँ है इत्याकारक उपसंहार वचनको बौद्धोंने अवश्य माना है वैसे ही साध्यरूपधर्म्मकी नियतधर्म्मिधर्म्मतासिद्ध्यर्थ पक्षप्रयोग भी अवश्य मानना ही चाहिये ॥

अमुमेवार्थं सोपालम्भं समर्थयन्ति ।

इसी बातको उपालम्भसहित समर्थन करते हैं ।

त्रिविधं साधनमभिधायैव तत्समर्थनं विदधानः कः खलु न पक्षप्रयोगमङ्गीकुरुते इति ।

तीन प्रकारके साधनको कहकर ही हेतुके समर्थनको नाम निर्दोषत्वेन साध्यसिद्धिपक्षत्वको कह रहा कौन भला पुरुष पक्षप्रयोगको अङ्गीकार नहीं करता ।

त्रिविधं कार्यस्वभावानुपलम्भभेदात् तस्य साधनस्य समर्थनमसिद्धतादिव्युदासेन स्वसाध्यसाधनसामर्थ्योपदर्शनं नह्यसमर्थितो हेतुः साध्यसिद्ध्यङ्गमतिप्रसङ्गात् । ततः पक्षप्रयोगमनङ्गीकुर्वता तत्समर्थनरूपं हेतुमभिधायैव तत्समर्थनं

विधेयं हंत हेतुरिह जल्प्यते नचेदस्तु कुत्र सत्यसमर्थनाविधिः तर्हि पक्ष इहजल्प्यते नचेदस्तु कुत्र समर्थनाविधिः प्राप्यते ननु विचारतःस्फुटं पक्ष एव किमतस्तदा तर्हि हेतुरुपलभ्यते ततोऽनुक्त एव तदसौ समर्थ्यतां मन्दमतिप्रतिपत्तिनिमित्तं सौगत हेतुमथाभिदधीथाः मन्दमतिप्रतिपत्तिनिमित्तं तर्हि न किं परिजल्पसि पक्षं ।

कार्य स्वभाव तथा अनुपलम्भ इन भेदोंसे त्रिविध तस्य नाम साधनस्य समर्थनं नाम असिद्धतादिरूप दोषोंको हटाकर स्वसाध्यके साधनमें सामर्थ्यको दिखाना क्योंकि असमर्थित जो हेतु है सो अतिप्रसङ्गदोषसे साध्यसिद्धिका अङ्ग नही होता इसलिये पक्षप्रयोगको अङ्गीकार न कर रहे पुरुषने तत्समर्थनरूप हेतुको न कहकर ही हेतुका समर्थन करना चाहिये । यदि यहॉ हेतु न कहेगे तो समर्थनाविधि कहां होगी अर्थात् न हो सकेगी वैसा ही उत्तर भी कहते है कि यदि यहाँपर पक्ष न कहेगे तो भी समर्थनाविधि कहॉ होगी । यदि कदाचित् विचारसे यह पक्ष है ऐसा स्फुट हो जावेगा तो फिर उसके कहनेकी क्या ही आवश्यकता है जैन कहते हैं कि तुम लोग ऐसा कहते हो तो हम कहते है कि वैसे ही विचारसे हेतु भी ज्ञात हो सकेगा इसलिये अनुक्त ही हेतुका समर्थन करना चाहिये । जैन कहते है कि हे बौद्ध यदि कदाचित् तुम लोग मंदबुद्धिवाले पुरुषोंके लिये हेतु कहना चाहिये ऐसा कहते हो तो हम पूछते है कि मंदमति पुरुषोंके लिये ही पक्षको भी क्यो नही कहते ।

अथ प्रत्यक्षस्यापि पारार्थ्यं समर्थयन्ते ।

अव आचार्य प्रत्यक्षके भी पारार्थ्यका समर्थन करते है ॥

प्रत्यक्षपरिच्छिन्नार्थाभिधायिवचनं परार्थं प्रत्यक्षं परप्रत्यक्षहेतुत्वादिति ।

परपुरुषके प्रत्यक्षमें हेतु होनेसे प्रत्यक्षपरिच्छिन्न नाम प्रत्यक्षसे ज्ञात पदार्थके कहनेवाला जो वचन सो परार्थ प्रत्यक्ष समझना ॥

यथानुमानप्रतीतोऽर्थः परस्मै प्रतिपाद्यमानो वचनरूपापन्नः परार्थमनुमानमुच्यते तथा प्रत्यक्षप्रतीतोऽपि तथैव परार्थं प्रत्यक्षमित्युच्यतां परप्रत्यायनस्योभयत्राप्यविशिष्टत्वादिति ।

जैसे अनुमानसे ज्ञात पदार्थका दूसरे पुरुषके बोधार्थ जो कथन तद्रूप वचनको परार्थानुमान तुम लोग कहते हो वैसे ही

प्रत्यक्षमतीत पदार्थको दूसरेके प्रत्यक्ष बोधार्थ जो वचन उसको परार्थ प्रत्यक्ष भी कहो क्योंकि दूसरेको बोध कराना तो दोनों जगह तुल्य ही है ॥

एतदुल्लिखति ।

अब परार्थप्रत्यक्षको उल्लेखद्वारा सूत्रकार कहते है ।

यथा पश्य पुरः स्फुरत्किरणमणिखंडमंडिताभरणभारिणीं जिनपतिप्रतिमामिति ।

जैसे कि देखो सामने देदीप्यवान किरणोंवाले मणियोंके खण्डोंसे सुशोभित भूषणोंसे व्याप्त जिनपतिकी प्रतिमाको ।

एवं स्मरणादेरपि यथासम्भवं पारार्थ्यं प्रतिपत्तव्यं तथाच वदन्ति सस्मदो दाशरथिर्भवन् भवान् परिव्यक्तमदः । भावय सएवाय मुनिः पूर्वनमस्कृत इत्यादि ॥

इस सूत्रका अर्थ स्पष्ट ही है । इसीप्रकार स्मरणादिकोंको भी यथासम्भव पारार्थ्य बुद्धिमानोंने जान लेना जैसे कि कहा भी है कि तुमको स्मरण है यहाँ दाशरथि होते भये और तुम याद करोकि यह वही मुनि है कि जिसको हमने पहिले नमस्कार करी थी इत्यादि और भी जान लेने ।

प्रासङ्गिकमभिधाय पक्षहेतुवचनात्मकं परार्थमनुमानमितिप्रागुक्तं समर्थयन्ते ।

प्रसङ्ग क्रमसे प्राप्त प्रत्यक्षपारार्थ्यादिकको कहकर अब पूर्वकथित पक्षहेतुवचनस्वरूप जो परार्थानुमान है उसका समर्थन कहते है ।

पक्षहेतुवचनलक्षणमवयवद्वयमेव परप्रतिपत्तेरङ्गं न दृष्टान्तादिवचनमिति ॥

परप्रतिपत्ति नाम दूसरेके बोधमें पक्ष हेतु वचनरूप जो अवयवद्वय है वही अङ्गनाम कारण है परन्तु दृष्टान्तादि वचन नहीं है ॥

आदिशब्देनोपनयनिगमनादिग्रहः । एवं च यथ्यास्युपेतपक्षधर्म्मतोपसंहाररूपं सौगतैः । पक्षहेतुदृष्टान्तस्वरूपं भाट्टप्राभाकरकापिलैः । पक्षहेतुदृष्टान्तोपनयनिगमनलक्षणं नैयायिकवैशेषकाभ्यामनुमानमाम्नायि तदपास्तं व्युत्पन्नमतीन्प्रति पक्षहेतुवचसोरेवोपयोगात् ।

सूत्रमें जो आदि शब्द है उससे उपनय तथा निगमनादिकोंका ग्रहण जानना ऐसा कहनेसे व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मतोपसहार-रूप जो सौगतोंने और पक्ष हेतु तथा दृष्टांतस्वरूप भट्ट और प्रभाकर (मीमांसकभेद) तथा कापिल नाम सांख्याचार्य्योंने एवं पक्षहेतुदृष्टान्तोनयनिगमनस्वरूप नैयायिक और वैशेषिकोंने अनुमान कहा है उसका खंडन किया क्योंकि व्युत्पन्नमति नाम बुद्धिमानोंके लिये केवल पक्षवचन तथा हेतुवचनका ही उपयोग है ।

पक्षप्रयोगं प्रतिष्ठाप्य हेतुप्रयोगप्रकारं दर्शयन्ति ॥

पक्षप्रयोगको स्थापन करके अब आचार्य हेतु प्रयोगके प्रकारको कहते है ।

हेतुप्रयोगस्तथोपपत्त्यन्यथानुपपत्तिभ्यां द्विप्रकार इति ।

साध्यके होनेसे उपपत्ति और न होनेसे अनुपपत्ति इन भेदोंसे हेतुप्रयोग दो प्रकारका होता है वैसा समझना ।

तथैव साध्यसम्भवप्रकारेणैवोपपत्तिरन्यथा साध्याभावप्रकारेणानुपपत्तिरेवान्यथानुपपत्तिः ।

तथैवनाम साध्यसम्भवप्रकारसे ही उपपत्ति तथोपपत्ति कही जाती है और अन्यथानाम साध्याभाव प्रकारसे अनुपपत्ति ही अन्यथानुपपत्ति समझनी ।

अमू एव स्वरूपतो निरूपयन्ति ।

तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्तिको ही आचार्य निरूपण करते हैं ।

सत्येव साध्ये हेतोरुपपत्तिस्तथोपपत्तिः असति साध्ये हेतोरनुपपत्तिरेवान्यथानुपपत्तिरिति ।

साध्यके होनेसे ही जो हेतुकी उपपत्तिनाम अस्तित्व सो तथोपपत्ति कही जाती है और साध्यके न होनेसे हेतुकी अनुपपत्ति ही नाम सर्वथा न होना ही अन्यथानुपपत्ति समझनी ।

निगदव्याख्यानं प्रयोगतोऽपि प्रकटयन्ति ।

पूर्वकृतव्याख्यानको प्रयोगद्वारा भी प्रकट करते हैं ।

यथा कृशानुमानयं प्राक्प्रदेशः सत्येव कृशानुमत्त्वे धूमवत्त्वस्योपपत्तेरसत्यनुपपत्तेर्वेति।

जैसे कि यह प्राक्प्रदेश अग्निमान् है क्योंकि अग्निमान् होनेसे ही धूमवत्वकी उपपत्ति होती है अथवा अग्निमत्वके न होनेसे धूमवत्वकी अनुपपत्ति ही होती है।

एतदपि तथैव अमुयो' प्रयोगौ नियमयन्ति।

आगेके सूत्रसे भी पूर्व रीतिसे ही इनके प्रयोगका नियम करते हैं॥

अनयोरन्यतरप्रयोगेणैव साध्यप्रतिपत्तौ द्वितीयप्रयोगस्यैकत्रानुपयोग इति।

पूर्वोक्त प्रयोगद्वयमेंसे एकसे ही साध्यकी सिद्धि हो जाती है इसलिये एक स्थानमें द्वितीय प्रयोगका अनुपयोग है।

अयमर्थः प्रयोगयुग्मेपि वाक्यविन्यास एव विशिष्यते नार्थः सचान्यतरप्रयोगेणैव प्रकटीबभूवेति किमपरप्रयोगेणेति।

इस सूत्रका यह तात्पर्य है कि दोनों प्रयोगोंके करनेसे भी केवल वाक्यविन्यासका ही आधिक्य होता है परन्तु कुच्छ अर्थका आधिक्य नहीं है क्योंकि अर्थ तो एक प्रयोगसे भी प्रगट हो चुका है इसलिये द्वितीय प्रयोगकी क्या आवश्यकता है अर्थात् कुछ नहीं।

अथ यदुक्तं न दृष्टान्तादिवचनं परप्रतिपत्तेरङ्गमिति तत्र दृष्टान्तवचनं तावन्निराचिकीर्षवस्तद्धि किं परप्रतिपत्त्यर्थं परैरंगीक्रियते किं वा हेतोरन्यथानुपपत्तिनिर्णीतये यद्वाविनाभावस्मृतये इति विकल्पेषु प्रथमं विकल्पं तावद्दूषयन्ति।

अब जो पहिले कहा था कि दृष्टान्तादिवचन परप्रतिपत्तिका अंग नहीं है उनमेंसे पहिले दृष्टान्त वचनको खण्डन करनेकी इच्छावाले सूत्रकार यह दृष्टान्तवचनको नैयायिकादिक क्या परप्रतिपत्त्यर्थ अंगीकार करते है अथवा हेतुकी अन्यथानुपपत्ति निर्णयार्थ कहते हैं यद्वा अविनाभावस्मृत्यर्थ कहते हैं इन विकल्पोंमेंसे पहिले प्रथम विकल्पमें दूषण कहते हैं।

न दृष्टांतवचनं परप्रतिपत्तये प्रभवति तस्यां पक्षहेतुवचनयोरेव व्यापारोपलब्धेरिति ॥

दृष्टांतवचन जो है सो परप्रतिपत्तिके लिये आवश्यकीय नही है क्योंकि परप्रतिपत्तिमें तो केवल पक्षहेतुवचनोंका ही व्यापार प्रतीत होता है ।

प्रतिपन्नाविस्मृतसम्बन्धस्य हि प्रमातुरग्निमानयं देशो धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेरित्येतावतैव भवत्येव साध्यप्रतीतिरिति ।

पूर्वज्ञातसंवन्ध (व्याप्ति) जिसको विस्मृत नही भया वैसे प्रमाता पुरुषको यह देश अग्निमान् है क्योंकि धूमवत्त्वकी अन्यथानुपपत्ति होती है केवल इतने पक्ष हेतु वचनसे ही साध्यप्रतीति हो ही जाती है इसलिये परप्रतिपत्त्यर्थ दृष्टांतवचनकी कुच्छ भी आवश्यकता नही है ॥

द्वितीयं विकल्पं परामृशन्ति ।

अब द्वितीय विकल्पका खण्डन करते है ।

न च हेतोरन्यथानुपपत्तिनिर्णीतये यथोक्ततर्कप्रमाणादेव तदुपपत्तेरिति ॥

हेतुकी अन्यथानुपपत्तिनिर्णयके लिये भी दृष्टांतवचनकी कुच्छ आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह तो यथोक्त नाम पूर्वोक्त लक्षणलक्षित तर्कप्रमाणसे ही उपपन्न हो जाती है ।

प्रभवतीतियोगः ।

प्रभवति इस पदका पूर्वसूत्रसे यहांपर भी संवंध करलेना ।

अत्रैवोपपत्त्यंतरमुपवर्णयन्ति ।

इसीमें युक्त्यन्तरको भी आचार्य कहते हैं ॥

नियतैकविशेषस्वभावे च दृष्टान्ते साकल्येन व्याप्तेरयोगतो विप्रतिपत्तौ तदन्तरापेक्षायामनवस्थितेर्दुर्निवारः समवतार इति ।

और नियतैक स्वरूपदृष्टान्तमें नाम एक धूमव्यक्तिमें एक वह्निकी व्याप्तिके बोधक दृष्टान्तमें साकल्येन व्याप्तिके अयोग होनेसे विवाद होनेपर दृष्टान्तान्तरकी अपेक्षा होवेगी तब अनवस्थाका हटाना कठिन होगा अर्थात् अनवस्थारूप दोष आ जावेगा ।

प्रतिनियतव्यक्तौ हि व्याप्तिनिश्चयः कर्तुमशक्यस्ततो व्यक्त्यन्तरे व्याप्त्यर्थं पुनर्दृष्टान्तान्तरं मृग्यं तस्यापि व्यक्तिरूपत्वेनापरदृष्टान्तापेक्षायामनवस्था स्यात् ।

एक दृष्टान्तसे व्यक्तिव्यक्तिमें व्याप्तिका निश्चय तो हो नहीं सकता इसलिये व्यक्त्यन्तरमें व्याप्ति निश्चयके लिये अवश्य दृष्टान्तान्तर ढूंढना चाहिये एवं उसको भी व्यक्तिरूप होनेसे दृष्टान्तान्तरकी अपेक्षा होनेपर अनवस्था प्राप्त भयी ॥

तृतीयविकल्पं पराकुर्वन्ति ।

अब तृतीयविकल्पका सूत्रकार खण्डन करते हैं ॥

नाप्यविनाभावस्मृतये प्रतिपन्नप्रतिबन्धस्य व्युत्पन्नमतेः पक्षहेतुप्रदर्शनेनैव तत्प्रसिद्धेरिति ।

अविनाभाव (व्याप्ति) की स्मृतिके लिये भी दृष्टान्तवचनकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि जिस व्युत्पन्नमतिवाले पुरुषको पूर्व व्याप्तिका ज्ञान हो चुका है उसको केवल पक्ष और हेतुके प्रदर्शनमात्रसे ही अविनाभावकी स्मृतिका सम्भव हो सकता है ॥

दृष्टान्तवचनं प्रभवतीति योगः ।

यहाँपर भी पूर्व सूत्रकी तरह दृष्टान्तवचन प्रभवति इसका संबन्ध कर लेना ।

अमुमेवार्थं समर्थयन्ते ।

अब सूत्रकार इसी अर्थका समर्थन करते हैं ।

अन्तरव्याप्त्या हेतोः साध्यप्रत्यायने शक्तावशक्तौ च बहिर्व्याप्तेरुद्भावनं व्यर्थमिति ।

साध्यनिश्चयमें अन्तर व्याप्ति करके हेतुको समर्थ होनेपर भी और न होनेपर भी उभयथा बहिर्व्याप्तिका उद्भावन व्यर्थ है ।

अयमर्थः अंतरव्याप्तेः साध्यसंसिद्धिशक्तौ बाह्यव्याप्तेर्वर्णनं वंध्यमेव । तत्पुत्रोऽयं बहिर्वक्त्येवंरूपस्वरान्यथानुपपत्तेरित्यत्र बहिर्व्याप्त्यभावेऽपि गमकत्वस्य । स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवदित्यत्र तु तद्भावेप्यगमकत्वस्योपलब्धेरिति ।

इस सूत्रका यह अभिप्राय है कि अंतर व्याप्तिको साध्यसिद्धिमें समर्थ होनेपर बहिर्व्याप्तिका वर्णन व्यर्थ ही है और अंतरव्याप्तिको साध्यसिद्धिमें असमर्थ होनेपर भी बाह्यव्याप्तिका उपवर्णन व्यर्थ है । क्योंकि यह अमुकका पुत्र बोलता है क्योंकि एवंविधस्वरकी अन्यथानुपपत्ति है यहाँपर बहिर्व्याप्तिके न होनेपर भी गमकता और वह अन्य मित्रातनयकी तरह मित्रातनय होनेसे श्याम है यहाँपर बाह्य व्याप्तिके होनेपर भी अंतरव्याप्तिके न होनेसे अगमकताकी उपलब्धि होती है ॥

अथैतयोः स्वरूपमाहुः ।

अब सूत्रकार अंतरव्याप्ति और बहिर्व्याप्तिके स्वरूपको कहते हैं ।

पक्षीकृत एव विषये साधनस्य साध्येन व्याप्तिरंतरव्याप्ति-रन्यत्र तु बहिर्व्याप्तिरिति ।

पक्षीकृतनाम जिसको पक्ष किया है उसी विषयमें जो साध्यकी साधनके साथ व्याप्ति सो अंतरव्याप्ति कही जाती है । और जो पक्षसे अन्यत्र साध्यकी साधनमें व्याप्ति है सो बहिर्व्याप्ति समझनी ।

यथानेकान्तात्मकं वस्तु सत्वस्य तथैवोपपत्तेरित्यग्निमानयं देशो धूमवत्त्वाद्य एवं स एवं यथा पाकस्थानमिति च ।

दोनों प्रकारकी व्याप्ति दृष्टांत द्वारा कहते हैं कि जैसे सत्वकी अन्यथानुपपत्ति होनेसे वस्तुमात्र अनेकान्तात्मक है यहाँपर वस्तुमात्रको पक्ष होनेसे अंतर्व्याप्ति ही है और अग्निमानयं देशो धूमवत्त्वात् जो जो धूमवान् होता है सो सो अग्निमान् अवश्य होता ही है जैसेकि महानस यहाँपर पक्षातिरिक्त महानसमें व्याप्ति होनेसे बहिर्व्याप्ति है ।

उपनयनिगमनयोरपि परप्रतिपत्तौ सामर्थ्यं कदर्थयन्ति ।

अब सूत्रकार उपनय और निगमनकी भी परप्रतिपत्तिमें समर्थ नहीं है इस बातको कहते है ।

नोपनयनिगमनयोरपि परप्रतिपत्तौ सामर्थ्यं पक्षहेतुप्रयोगादेव तस्याः सद्भावादिति ।

उपनय और निगमनकी भी परप्रतिपत्तिमें सामर्थ्य नहीं है क्योंकि परप्रतिपत्तिका तो पक्ष और हेतुके प्रयोगसे ही सद्भाव है।

न केवलं दृष्टांतस्येत्यपेरर्थः ।

सूत्रमें जो अपि शब्द है उसका ऐसा अभिप्राय है कि केवलदृष्टान्तकी ही परप्रतिपत्तिमें सामर्थ्य नहीं ऐसा नहीं किंतु उपनय और निगमनकी भी नहीं है ।

एतदेवाहुः ।

अब सूत्रकार इसी बातको कहते है ।

समर्थनमेव परं परप्रतिपत्त्यङ्गमास्तां तदन्तरेण दृष्टान्तादिप्रयोगेपि तदसम्भवादिति ।

हेतुका समर्थन ही परम परप्रतिपत्तिका अंग है क्योंकि उसके न होनेसे दृष्टान्तादिकोंके होनेपर भी परप्रतिपत्ति नहीं होती ।

प्रयुज्यापि हि दृष्टान्तादिकं समर्थनं हेतोरवश्यं वक्तव्यमितरथा साध्यसिद्ध्यसम्भवादिति तदेवाभिधीयतां किं दृष्टान्तादिवचनेनेति ।

जब कि दृष्टान्तादिकोंको कहकर भी हेतुका समर्थन अवश्य कहना ही चाहिये क्योंकि अन्यथा साध्यसिद्धि न हो सकेगी तब जैन कहते हैं कि हे नैयायिकादिक तुम हेतुके समर्थनको ही करो परन्तु दृष्टान्तादिवचनकी क्या आवश्यकता है अर्थात् कुच्छ भी नहीं है ।

व्युत्पन्नानाश्रित्य परार्थमनुमानमभिधाय मन्दमतीनुद्दिश्य तत्प्रपञ्चयन्ति ।

व्युत्पन्नमतिवाले पुरुषोंको आश्रय (उद्देश्य) रख करके परार्थानुमानको कहकर अब मंदमति पुरुषोंको उद्देश्य रखकर कहते हैं ॥

मन्दमतींस्तु व्युत्पादयितुं दृष्टान्तोपनयनिगमनान्यपि प्रयोज्यानीति ।

मन्दमतिवाले पुरुषोंको बोध करानेके लिये तो दृष्टांत और उपनय और निगमन भी कहने चाहिये ।

अपिशब्दात्पक्षहेतू पक्षादिशुद्धयश्च पञ्च ग्राह्याः । तत् उत्कृष्टं दशावयवं परार्थानुमानमित्युक्तं भवति मध्यमं तु नवावयवादारभ्य यावद्व्यवयवं जघन्यं पुनः साधनमात्रोपन्यासस्वरूपं प्रतिपाद्यानां मंदव्युत्पन्नातिव्युत्पन्नत्वात् । तदुक्तं अन्यथानुपपत्त्येकलक्षणं लिंगमिष्यते प्रयोगपरिपाटी तु प्रतिपाद्यानुसारत इत्यादि ।

सूत्रमें जो अपि शब्द है उससे पक्ष हेतु तथा वक्ष्यमाणलक्षणाः पक्षादिशुद्धिये पांच इन सभोंका ग्रहण करना । इसलिये उत्कृष्ट अनुमान दश अवयवोंवाला होता है ऐसा कहाजाता है और मध्यम अनुमान नव अवयवोंसे लेकर दो अवयवोंतक होता है और जघन्यनाम निकृष्ट अनुमान केवल हेतु मात्र कथनस्वरूप होता है क्योंकि प्रतिपाद्य (जिनको बोध कराना है वैसे) पुरुषोंको मन्द व्युत्पन्न तथा अति व्युत्पन्न होनेसे । ऐसा किसी आचार्यने भी कहा है अन्यथानुपपत्त्येकलक्षण ही हेतु इष्ट है और प्रयोगपरिपाटी तो प्रतिपाद्यपुरुषोंके अनुसारसे होती है इत्यादि ॥

अथ दृष्टांतं प्रकटयन्ति ।

अब सूत्रकार दृष्टान्तको प्रगट करते है ।

प्रतिबन्धप्रतिपत्तेरास्पदं दृष्टांत इति ।

व्याप्तिस्मरणका जो स्थान सो दृष्टांत जानना ।

प्रतिबन्धोऽव्याप्तिरविनाभावस्तत्स्मरणस्थानं महानसादिर्दृष्टांतो ज्ञेयः ।

प्रतिबंधनाम है व्याप्ति नाम अविनाभावका उसके स्मरणका स्थान जो महानसादि सो दृष्टात समझना ॥

भेदतोऽमु दर्शयन्ति ।

अथ सूत्रकार दृष्टान्तके भेदोंको कहते है ।

स द्वेधा साधर्म्यतो वैधर्म्यतश्चेति ।

पूर्वलक्षणलक्षित जो दृष्टात है सो साधर्म्य और वैधर्म्य इन भेदोंसे दो प्रकारका होता है ।

समानो धर्म्मो यस्यासौ सधर्म्मा विसदृशो धर्म्मो यस्यासौ विधर्म्मा तयोर्भाव साधर्म्य वैधर्म्य च तत । समान है धर्म्म जिसका उसको कहिये सधर्म्मा एव विसदृश है धर्म्म जिसका उसको कहिये विधर्म्मा उनका जो भाव उसको कहिये साधर्म्य और वैधर्म्य तत नाम इन भेदोंसे दृष्टान्त दो प्रकारका है ।

आद्य प्रकारमाहु ।

अब सूत्रकार दृष्टान्तके प्रथम प्रकारको कहते है ।

यत्र साधनधर्म्मसत्तायामवश्य साध्यधर्म्मसत्ता प्रकाश्यते स साधर्म्यदृष्टान्त इति । यथा यत्र धूमस्तत्र वह्निर्यथा महानस इति ।

जहाँपर साधनरूप धर्म्मकी सत्तासे अवश्य साध्यरूप धर्मकी सत्ता प्रकाशित होवे सो साधर्म्य दृष्टात जानना । जैसे कि जहाँ धूम होता है वहाँ अवश्य अग्नि होती है जेसे कि धूमवान् महानस अवश्य अग्निमान् होता है ।

द्वितीयभेद दर्शयन्ति ।

अब सूत्रकार दृष्टांतके द्वितीयभेदको कहते है ।

यत्र तु साध्याभावे साधनस्यावश्यमभाव प्रदर्श्यते स वैधर्म्यदृष्टात इति । यथाग्न्यभावे न भवत्येव धूमो यथा जलाशय इति ।

जहाँपर साध्यके अभावसे अवश्य साधनका अभाव दिखाया जावे उसको वैधर्म्यदृष्टांत कहा जाता है। जैसे अग्निके न होनेसे अवश्य धूम नही ही होता जैसे कि जलाशय वह्निमान् न होनेसे धूमवान् नही ही है।

उपनयं वर्णयन्ति।

अब उपनयका वर्णन करते है।

हेतोः साध्यधर्म्मिण्युपसंहरणमुपनयः इति। यथा धूमश्चात्र प्रदेश इति ॥

हेतुका जो साध्यधर्म्मी (पक्ष) में उपसंहरण नाम पुनः कथन उसको उपनय कहा जाता है। जैसे कि वह वह्निव्याप्तिविशिष्ट धूम इस प्रदेशमें है।

निगमनं लक्षयन्ति।

अब सूत्रकार निगमनका लक्षण करते हैं।

साध्यधर्म्मस्य पुनर्निगमनमिति।

साध्यरूप धर्म्मका साध्यधर्मीमें पुनः उपसंहरणको निगमन समझना।

साध्यधर्म्मिण्युपसंहरणमितियोगः।

इस सूत्रमें साध्यधर्म्मिण्युपसंहरणं इस पदका पूर्व सूत्रसे योग कर लेना।

यथा तस्मादग्निरत्रेति।

जैसे कि वह्निव्याप्यधूमवान् होनेसे यह प्रदेश अग्निवाला है।

पक्षवचनादीनां पूर्वाचार्यप्रवर्तितां संज्ञां कथयन्ति।

अब सूत्रकार पूर्व आचार्योंने कही हुई पक्षवचनादिकोंकी संज्ञाओंको कहते है ॥

एते पक्षप्रयोगादयः पंचाप्यवयवसंज्ञया कीर्त्यन्त इति।

यह पूर्वोक्त पक्षप्रयोगादिक पाँच भी अवयव इस नामसे बोले जाते हैं।

अपिशब्दात्तद्बुद्धीनामप्यवयवसंज्ञा विज्ञेया ।

सूत्रमें जो अपि शब्द है उससे पूर्वोक्त पाच अवयवोंसे जन्य ज्ञानोंकी भी अवयवसंज्ञा आचार्यने कही ऐसा जानना ।

प्रागुक्तमेव हेतु प्रकारतो दर्शयन्ति ।

अब सूत्रकार प्रागुक्त जो हेतु है उसीके भेदोंको कहते है ।

उक्तलक्षणो हेतुर्द्विप्रकार उपलब्ध्यनुपलब्धिभ्यां भिद्यमानत्वादिति ।

प्रागुक्तलक्षणलक्षित जो हेतु है सो उपलब्धि और अनुपलब्धि इन भेदों करके भिद्यमान होनेसे दो प्रकारका होता है ऐसा जानना ।

अथैतयोः साध्यमाहुः ।

अब सूत्रकार इन दोनों हेतुओंके साध्यको कहते हैं ।

उपलब्धिर्विधिनिषेधयो. सिद्धिनिबन्धनमनुपलब्धिश्चेति ।

उपलब्धि और अनुपलब्धि यह दोनों प्रकारके हेतु विधि और निषेधकी सिद्धिमें समर्थ हेतु हैं ऐसा जानना ।

यथा चैतदेव तथा वक्ष्यन्ति ।

इस वार्ताको सूत्रकार आगे सब स्पष्ट करेंगे।

विधिमभिदधति ।

अब सूत्रकार विधिको कहते हे ।

विधि सदंश इति ॥

वस्तुका जो सदंश है सो विधि नामसे कहा जाता है ।

सदसदंशात्मनो वस्तुनो योय सदंशो भावरूपः स विधिरित्यभिधीयते ।

सत् और असत् उभयस्वरूप वस्तुका जो सदंश नाम भावरूप है सो विधि इस नामसे बोला जाता है ।

प्रतिषेधं प्रकटयन्ति ।

अब सूत्रकार प्रतिषेधको प्रकट करते है ।

प्रतिषेधोऽसदंश इति ॥

वस्तुका जो असदंश है सो प्रतिषेध समझना ।

तादृशस्यैव वस्तुनो योयमसदंशोऽभावस्वभावः स प्रतिषेध इति गीयते ॥

सत् असत् उभयस्वरूप वस्तुका जो असत् अंशनाम अभाव स्वभाव है सो प्रतिषेध इस नामसे कहा जाता है ।

अस्यैव प्रकारानाहुः ।

अब सूत्रकार प्रतिषेधके ही अवान्तर भेदोंको कहते हैं ।

स चतुर्द्धा प्रागभावः प्रध्वंसाभावः इतरेतराभावोऽत्यन्ताभावश्चेति ।

वह प्रतिषेध प्रागभाव प्रध्वंसाभाव तथा इतरेतराभाव (अन्योन्याभाव) और अत्यन्ताभाव इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है ऐसा जानना ॥

प्राग् पूर्वं वस्तूत्पत्तेरभावः प्रध्वंसश्चासौ अभावश्च इतरस्येतरस्मिन्नभावः अत्यंतं सर्वदाभावः । विधिप्रकारास्तु प्राक्तनैर्नोचिरेऽतः सूत्रकृद्भिरपि नाभिदधिरे ।

वस्तुकी उत्पत्तिसे पूर्वजो अभाव सो प्रागभाव समझना और प्रध्वंस वही जो अभाव सो प्रध्वंसाभाव बोला जाता है । और इतरका जो इतरमें अभाव सो इतरेतराभाव कहा जाता है एवं अत्यंतनाम सर्वदा जो अभाव सो अत्यंताभाव जानना । प्रश्न है कि पहिले विधिके भेदोंको कहना चाहिये था सो न कहकर निषेधके भेदोंको क्यों कहा उत्तर कहते है कि विधिके प्रकार (अवांतरभेद) तो पूर्व आचार्योंने नही कहे हैं इसलिये सूत्रकारोंने भी नहीं कहे ।

तत्र प्रागभावमाविर्भावयन्ति ।

उन चारोंमेंसे प्रागभावको प्रगट करते हैं ।

यन्निवृत्तावेव कार्यस्य समुत्पत्तिः सोऽस्य प्रागभाव इति ।

जिसकी निवृत्ति होनेसे ही कार्यकी उत्पत्ति होती है सो उस कार्यका प्रागभाव कहा जाता है ।

यस्य पदार्थस्य निवृत्तावेव सत्यां न पुनरनिवृत्तावप्यतिव्याप्तिप्रसक्तेरन्धकारस्यापि निवृत्तौ क्वचिद्‌ज्ञानोत्पत्तिदर्शनादन्धकारस्यापि ज्ञानप्रागभावत्वप्रसंगात् । नचैवमपि रूपज्ञानं तन्निवृत्तावेवोत्पद्यत इति तत्प्रत्ययस्य तत्त्वप्रसक्तिरिति वाच्यमतीन्द्रियदर्शिनि नक्तचरादौ च तद्भावेऽपि तद्भावात् । स इति पदार्थः अस्येति कार्यस्य ।

जिसपदार्थकी निवृत्ति होनेपर ही उत्पन्न होवे परन्तु अनिवृत्तिमें न होवे ऐसा अर्थ जानना अन्यथा अतिव्याप्तिरूप दोष आवेगा क्योंकि कहींक अंधकारकी निवृत्ति होनेसे ज्ञानकी उत्पत्ति अनुभवमें आती है इसलिये अंधकारको भी ज्ञान प्रागभावत्वकी प्राप्ति होवेगी । ऐसा कहनेसे भी रूपज्ञान अंधकारकी निवृत्ति होनेपर ही उत्पन्न होता है इसलिये अंधकारको रूप ज्ञानके प्रागभावत्वकी प्राप्ति होवेगी ऐसा नहीं कहना क्योंकि अतीन्द्रियदर्शी (योगी) और नक्तचर उलूक प्रभृति जीवोंमें अंधकारके होनेपर भी रूपज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है । सूत्रमें जो स शब्द है उससे पदार्थ समझना और अस्य पदका अर्थ कार्य समझना ॥

अत्रोदाहरन्ति ।

अब सूत्रकार इसमें उदाहरण कहते हैं

यथा मृत्पिंडनिवृत्तावेव समुत्पद्यमानस्य घटस्य मृत्पिंड इति ।

जैसे कि मृत्पिंडकी निवृत्तिसे ही उत्पद्यमान घटका मृत्पिंड प्रागभाव है ।

प्रध्वंसाभाव प्राहुः ।

अब सूत्रकार प्रध्वंसाभावको कहते हैं ।

यदुत्पत्तौ कार्यस्यावश्यं विपत्तिः सोऽस्य प्रध्वंसाभावइति ।

जिसके उत्पन्न होनेसे अवश्य कार्यका नाश होवे सो प्रध्वंसाभाव कहा जाता है ।

यस्य पदार्थस्योत्पत्तौ सत्यां प्रागुत्पन्नकार्यस्यावश्यं नियमेनान्यथातिप्रसंगात् विपत्तिर्विघटनं सोऽस्य कार्यस्य प्रध्वंसाभावोऽभिधीयते ।

जिसपदार्थकी उत्पत्ति होनेसे जिस कार्यका नियमेन विघटन (स्वरूपहानि) होवे सो पदार्थ उस कार्यका प्रध्वंसाभाव कहा जाता है । यहाँपर नियमेन न कहेंगे तो अतिव्याप्ति होगी ।

उदाहरंति ।

अब सूत्रकार इसके उदाहरणको कहते हैं ।

यथा कपालकदंबकोत्पत्तौ नियमतो विपद्यमानस्य कलशस्य कपालकदम्बकमिति ।

जैसेकि कपालकदंबक (कपालसमूह) के उत्पन्न होनेसे अवश्य नाश होनेवाले घटका वह कपालकदंब प्रध्वंसस्वरूप है !

इतरेतराभावं वर्णयन्ति ।

अब सूत्रकार इतरेतराभावका वर्णन करते है ।

स्वरूपांतरात् स्वरूपव्यावृत्तिरितरेतराभाव इति ।

स्वरूपांतरसे जो स्वरूपकी व्यावृत्ति सो इतरेतराभाव कहा जाता है ।

स्वभावान्तरान्नपुनः स्वस्वरूपादेव तस्याभावप्रसक्तेः स्वरूपव्यावृत्तिः स्वस्वभावव्यवच्छेद इतरेतराभावोऽन्यापोह नामा निगद्यते ।

स्वभावान्तरसे जो स्वरूपव्यावृत्ति ऐसा समझना परंतु स्वस्वरूपसे ही नहीं क्योंकि यदि स्वस्वरूपसे ही कहेंगे तो उसके अभावकी ही प्राप्ति आजावेगी स्व स्वरूपव्यावृत्तिनाम स्व स्वभावका व्यवच्छेद जो है सो इतरेतराभाव अपोह अन्यनामवाला कहा जाता है ।

उदाहरणमाहु: ।

अब सूत्रकार इसके उदाहरणको कहते है ।

यथा स्तम्भस्वभावात्कुम्भस्वभावव्यावृत्तिरिति ।

जैसेकि कुम्भस्वभावसे स्तम्भस्वभावकी व्यावृत्ति होती है ।

अत्यन्ताभावमुपदिशन्ति ।

अब सूत्रकार अत्यन्ताभावको दिखाते है ।

कालत्रयापेक्षिणी तादात्म्यपरिणामनिवृत्तिरत्यन्ताभाव इति ।

भूत भविष्यत् और वर्तमानरूप कालत्रयमें ही जिसके तादात्म्यपरिणामकी निवृत्ति होवे सो अत्यन्ताभाव इस नामसे कहा जाता है ।

अतीतानागतवर्तमानरूपकालत्रयेऽपि यासौ तादात्म्यपरिणामनिवृत्ति एकत्वपरिणतिव्यावृत्तिः सोऽत्यन्ताभावोऽभिधीयते ।

अतीत अनागत तथा वर्तमानरूपकालत्रयमें भी जो तादात्म्यपरिणामनिवृत्ति नाम एकत्वपरिणामकी व्यावृत्ति (एक स्वरूप न होना सो अत्यन्ताभाव कहा जाता है ।

निदर्शयन्ति ।

अब सूत्रकार इसका दृष्टान्त दिखाते है ।

यथा चेतनाचेतनयोरिति ।

जैसे कि चेतन और अचेतनका कदापि एक स्वरूप न होनेसे अभाव है ।

न खलु चेतनमात्मतत्त्वमचेतनपुद्गलात्मकतामचकलत् कलयति कलयिष्यति वा तच्चैतन्यविरोधात् । नाप्यचेतनं पुद्गल चेतनस्वरूपतामचेतनत्वविरोधात् ।

चेतन जो आत्मतत्व है सो अचेतन पुद्गलात्मकताको प्राप्त हुआ भी नहीं और होता भी नहीं होवेगा भी नहीं क्योंकि

तन्निष्ठ चैतन्यका अचेतनत्वके साथ विरोध है । एवं अचेतनत्वका चैतन्यके साथ विरोध होनेसे अचेतन पुद्गल भी चेतनस्वरूप-
ताको नही प्राप्त होते ।

अथोपलब्धि प्रकारतो दर्शयन्ति ।

अब सूत्रकार उपलब्धिके अवान्तर भेदोंको दिखाते है ।

उपलब्धेरपि द्वैविध्यमविरुद्धोपलब्धिर्विरुद्धोपलब्धिश्चेति ।

अविरुद्धोपलब्धि और विरुद्धोपलब्धि इन भेदोंसे उपलब्धिके भी दो भेद हैं ।

न केवलमुपलब्ध्यनुपलब्धिभ्यां भिद्यमानत्वेन हेतोर्द्वैविध्यमित्यपेरर्थः । अविरुद्धो विरुद्धश्चात्र साध्येन सार्द्धं द्रष्ट-
व्यस्ततस्तस्योपलब्धिरिति ।

केवल उपलब्धि और अनुपलब्धि इन भेदोंसे हेतुके ही दो भेद नहीं हैं किंतु सूत्रोक्त क्रमसे उपलब्धिके भी दो भेद हैं यह
अपि शब्दका अर्थ है । यहाँपर अविरुद्धोपलब्धि और विरुद्धोपलब्धि साध्यके साथ समझनी ।

आद्याया भेदानाहुः ।

अब सूत्रकार अविरुद्धोपलब्धिके भेदोंको कहते हैं ।

तत्राविरुद्धोपलब्धिर्विधिसिद्धौ षोढेति ।

पूर्वोक्त दो भेदोंमेसे अविरुद्धोपलब्धि विधिसिद्धिमें छः प्रकारकी है ।

तानेव व्याख्यायन्ति ।

अब सूत्रकार उन्हीं भेदोंकी व्याख्या करते है ।

साध्येनाविरुद्धानां व्याप्यकार्य्यकारणपूर्वचरोत्तरचरसहचराणामुपलब्धिरिति ।

साध्यके साथ अविरुद्ध जो पूर्वचरादिक उनकी उपलब्धि इस तरह छ. भेद जानने ।

ततो व्याप्याविरुद्धोपलब्धिः कार्याविरुद्धोपलब्धिः कारणाविरुद्धोपलब्धिः पूर्वचराविरुद्धोपलब्धिः उत्तरचराविरुद्धो-

पलब्धि' सहचराविरुद्धोपलब्धिरिति पद् प्रकारा॰ भवंति । अत्र हि साध्यं शब्दस्य परिणामित्वादि तस्याविरुद्ध व्याप्यादि प्रयत्नान्तरीयकत्वादिवक्ष्यमाण तदुपलब्धिरिति ।

व्याप्य अविरुद्धोपलब्धि और कार्य अविरुद्धोपलब्धि २ कारण अविरुद्धोपलब्धि ३ पूर्वचर अविरुद्धोपलब्धि ४ उत्तरचर अविरुद्धोपलब्धि ५ एव सहचरअविरुद्धोपलब्धि ६ इस रीतिसे उपलब्धि छ प्रकारकी होती है ।

अत्र भिक्षुर्भाषते विधिसिद्धौ स्वभावकार्ये एव साधने साधीयसी न कारण तस्यावश्यतया कार्योत्पादकत्वाभावात् प्रतिबद्धावस्थस्य मर्मुरावस्थस्य वा धूमस्यापि धूमध्वजस्य दर्शनात् अप्रतिबद्धसामर्थ्यमुग्रसामग्रीक च तद्गमकमितिचेदेवमेतत् किन्तु नैतादृशमर्वाग् दृशावसातु शक्यमिति तन्निराकर्तुं कीर्तयति ।

यहाँपर भिक्षु (बौद्ध) ऐसा कहते है कि विधिकी सिद्धिमें स्वभाव और कार्य ही हेतु ठीक है परन्तु कारणरूप हेतु कहना ठीक नहीं क्योंकि कारणको अवश्यतया कार्योत्पादकत्वका अभाव है। क्योंकि प्रतिबद्धावस्थ अथवा मर्मुरावस्थ धूमवाला भी अग्नि देखा जाता है।

यदि कदाचित् अप्रतिबद्धसामर्थ्य और उग्रसामग्रीक ही वह उसका गमक (बोधक) होता है ऐसा तुम कहते हो तो बौद्ध कहते हैं कि ऐसा कहना तो ठीक है परन्तु ऐसा अर्वाग्दृष्टि (बाह्यदृष्टि) वाले पुरुष निश्चय नहीं कर सकते । ऐसे बौद्धके अभिप्रायका खडन करनेके लिये सूत्रकार आगेका सूत्र कहते है ॥

तमस्विन्यामास्वाद्यमानादाम्रादिफलरसादेकसामग्र्यनुमित्या रूपाद्यनुमितिमभिमन्यमानैरभिमतमेव किमपि कारणं हेतुतया यत्र शक्तेरप्रतिस्खलनमपरकारणसाकल्यंचेति ।

अधेरी रात्रिमें आस्वाद्यमान आम्रादिकोंके फलरससे जो एक सामग्रीकी अनुमिति उससे रूपादिकोंकी अनुमितिको मान रहें बौद्धोंको भी कोई एक हेतु कारणतया अभिमत ही है जिसमें शक्तिका अप्रतिबन्ध और अपरकारणसाकल्य भी निश्चय कर सकते हैं ।

तमस्विन्यामितिरूपाप्रत्यक्षत्वसूचनाय शक्तेरप्रतिस्खलनं सामर्थ्यस्याप्रतिबंधः। अपरकारणसाकल्यं शेषनिःशेषसह-
कारिसंपर्कः रजन्यां रस्यमानात्किल रसात्तज्जनकसामग्र्यनुमानं ततोऽपि रूपानुमानं भवति। प्राकृतनो हि रूपक्षणः
सजातीयरूपांतरक्षणलक्षणं कार्य्यं कुर्वन्नेव विजातीयं रसलक्षणं कार्य्यं करोतीति प्राक्तनरूपक्षणात् सजातीयोत्पाद्य-
रूपक्षणांतरानुमानं मन्यमानैः सौगतैरनुमतमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यस्मिन् सामर्थ्याप्रतिबन्धः कारणान्तरसाकल्यं च
निश्चेतुं शक्यते। अथ नैतत्कारणात्कार्यानुमानं किंतु स्वभावानुमानमदः ईदृशरूपांतरोत्पाद्यसमर्थमिदं रूपमीदृशरस-
जनकत्वादित्येवं तत्स्वभावभूतस्यैव तज्जननसामर्थ्यस्यानुमानादिति चेन्नन्वेतदपि प्रतिबन्धाभावकारणान्तरसाकल्यनिर्ण-
यमन्तरेण नोपपद्यत एव। तन्निश्चये तु यदि कारणादेव तस्मात् कार्यमनुमाप्यते तदाकिं नाम दुश्चरितं चेतस्वी विचारये-
त्। एवमस्त्यत्र छाया छत्रादित्यादीन्यव्यभिचारनिश्चयादनुमानान्येवेत्युक्तं भवति।

सूत्रमे जो तमस्विन्यां कहा है सो रूपके अप्रत्यक्षत्व सूचनार्थ है शक्तेरप्रतिस्खलनं नाम सामर्थ्यका अप्रतिबंध अपरकारण साक-
ल्यं नाम बाकीके संपूर्ण सहकारि कारणोंका संपर्क अंधेरी रात्रिमें चाखेगये रससे तज्जनका (रसजनका) सामग्रीका अनुमान
होता है उससे फिर रूपका अनुमान होता है। क्योंकि प्राक्तननाम पूर्वकालीन जो रूप क्षण है सो सजातीयरूपान्तरक्षणरूप
कार्यको उत्पन्न करता हुआ ही विजातीय रसस्वरूप कार्यको करता है इसप्रकार प्राक्तन रूपक्षणसे सजातीय जो कार्यरूप रूपक्ष-
णान्तर उसके अनुमानको मान रहें जो बौद्ध उन्होंने कोई एक कारण भी हेतुतया माना ही है जिसमें सामर्थ्यका अप्रतिबन्ध
और कारणान्तर साकल्य भी निश्चय कर सकते है। यदि कदाचित् यह अनुमान कारणसे कार्यका अनुमान नहीं है किंतु
स्वभावानुमान है। क्योंकि यह रूप ईदृश रसका उत्पादक होनेसे ईदृश रूपान्तरके उत्पादनमें समर्थ है इस तरह उसके स्वभाव-
भूत ही तज्जनन सामर्थ्यका यह अनुमान है ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि यह भी प्रतिबंधाभाव और कारणान्तर साक-
ल्यके निश्चयसे विना नही ही हो सकता। और उसके निश्चयमें यदि पूर्वोक्त कारणसे ही कार्य्यका अनुमान करते हो तो फिर
क्या ही कहनाथा कारणात् कार्यानुमान सिद्धभया। एवं यहाँपर छत्र होनेसे छाया है इत्यादिक भी अनुमान ही हैं क्योंकि इनमें
अव्यभिचारका निश्चय है इसलिये पूर्वोक्तानुमान युक्तियुक्त है यह वार्ता कही जाती है।

अथ पूर्वचरोत्तरचरयोः स्वभावकार्यकारणहेत्वनन्तरभावाद्भेदान्तरत्वं समर्थयन्ते।

अब सूत्रकार पूर्वचर और उत्तरचर स्वरूप हेतुओंका स्वभाव तथा कार्य और कारण इन हेतुओंमें अन्तरभाव होनेसे भिन्न हेतुता है इसका समर्थन करते हैं।

पूर्वचरोत्तरचरयोर्न स्वभावकार्यकारणभावौ तयोः कालव्यवहितावनुपलम्भादिति ।

पूर्वचर और उत्तरचरका स्वभाव या कार्यकारणभावस्वरूप नहीं है क्योंकि स्वभाव और कार्यकारणभावका कालव्यवधानमें अनुपलम्भ होता है।

साध्यसाधनयोस्तादात्म्येसति स्वभावहेतौ तदुत्पत्तौ तु कार्ये कारणे चान्तरभावो विभाव्यते नचैतेस्तत्तादात्म्य हि समसमयस्य प्रयत्नानन्तरीयकत्वपरिणामित्वादेरुपपन्न । तदुत्पत्तिश्चान्योन्यमव्यवहितस्यैव धूमधूमध्वजादेः समधिगता नतु व्यवहितकालस्यातिप्रसक्तेः ।

साध्य और साधनके तादात्म्य होनेसे तो स्वभाव हेतुमें और तदुत्पत्ति होनेसे कार्य वा कारणमें पूर्वचरोत्तरचरका अन्तरभाव हो सकता है सो इनका नहीं है क्योंकि तादात्म्य तो समानकालमें होनेवाले प्रयत्नानतरीयकत्व परिणामित्वात् इत्यादिकोंका बन सकता है। और तदुत्पत्ति जो है सो भी अन्योन्य अव्यवहित नाम कालव्यवधानसे शून्य जो धूम और अग्न्यादिक हैं। उन्हींकी मानी है अन्यथा अतिप्रसंगदोष होवेगा। इसलिये पूर्वचरोत्तरचरका स्वभावादिकोंमें अन्तरभाव नहीं होता।

ननु कालव्यवधानेपि कार्यकारणभावो भवत्येव जाग्रद्बोधप्रबोधयोर्मरणारिष्टयोश्च तथा दर्शनादिति प्रतिजानानं प्रज्ञाकरं प्रतिक्षिपति ।

अब सूत्रकार कालव्यवधानमें भी कार्यकारणभाव होता ही है जैसेकि जाग्रदवस्थाकालीन बोध और प्रबोध (सुप्तोत्थितज्ञान) का है अरिष्ट और मरणका भी है क्योंकि ऐसा ही देखा जाता है इसप्रकारकी प्रतिज्ञा कर रहे प्रज्ञाकर नामक किसी आचार्यका खंडन करनेके निमित्त सूत्र कहते हैं।

न चातिक्रान्तानागतयोर्जाग्रद्दशासंवेदनमरणयोः प्रबोधोत्पातौ

प्रति कारणत्वं व्यवहितत्वेन निर्व्यापारत्वादिति ।

यथाक्रमेण अतीत और अनागत जो जाग्रद्दशापन्न संवेदन और मरण उनको प्रबोध और अरिष्टमें कारणता नही है क्योंकि उनको व्यवहित होनेसे निर्व्यापारता है ।

अयमर्थः जाग्रद्दशासंवेदनमतीतं सुप्तावस्थोत्तरकालभावि ज्ञानं वर्तमानं प्रतिमरणं चानागतं ध्रुववीक्षणादिकमरिष्टं सांप्रतिकं प्रतिव्यवहितत्वेन व्यापारपराङ्मुखमिति कथं तत्र कारणत्वमवलंबेत । निर्व्यापारस्यापि तत्कल्पने सर्वं सर्वस्य कारणं स्यात् ।

इस सूत्रका यह अभिप्राय है कि जाग्रद्दशाका संवेदन तो अतीत भया और सुप्तावस्थासे उत्तरकालमें होनेवाला ज्ञान तो वर्तमान है एवं मरण तो अनागत है और ध्रुववीक्षणादिरूप जो अरिष्ट है सो वर्तमान है इनको परस्पर व्यवहित होनेसे व्यापार पराङ्मुखता है अर्थात् तत्तत्की उत्पत्तिकालमें तत्तत्का अभाव है इसलिये कोई भी किसीकी उत्पत्तिमें व्यापारशाली नही हो सकता इसलिये पूर्वोक्त बोधादिक प्रबोधादिकोंके कारण कैसे हो सकें अर्थात् नहीं हो सकते । यदि निर्व्यापार नाम कार्योत्पत्तिमें व्यापारशून्यको भी कारणमानलमेंगे तव तो फिर सभी सभके कारण होवें । (सर्वत्र निर्व्यापारत्वाविशेषेण विनिगमाभावात्।)

इदमेव भावयन्ति ।

अव सूत्रकार इसीका भावन (दृष्टांतादिप्रदर्शनद्वारा निर्णय) कराते है ।

स्वव्यापारापेक्षणी हि कार्यं प्रति पदार्थस्य कारणत्वव्यवस्था कुलालस्येव कलशं प्रतीति ।

जिस प्रकार कुलालनिष्ठा घटकारणता कुलालव्यापारापेक्षा है इसी तरह कार्यमात्रके प्रति पदार्थकी कारणत्वव्यवस्था स्व (कारण) व्यापारापेक्षणीया है ।

अन्वयव्यतिरेकावसेयो हि सर्वत्र कार्यकारणभावस्तौ च कार्यस्य कारणव्यापारसव्यपेक्षावेव युज्येते कुम्भस्येव कुम्भकारव्यापारसव्यपेक्षाविति ।

कार्यकारणभाव जो है सो सर्वत्र अन्वय और व्यतिरेकसे निश्चित होता है और अन्वयव्यतिरेक जो हैं सो कार्यके कारण व्यापाराधीन ही होते हैं जैसेकि कुम्भके कुलाल व्यापाराधीन हैं।

ननु व्यतिक्रान्तानागतयोर्व्यवहितत्वेपि व्यापारः कथं न स्यादित्यारेकामपरयन्ति।

अब सूत्रकार अतीत और अनागत पदार्थोंको व्यवहित (व्यवधानवाले) होनेपर भी उनका व्यापार क्यों नहीं होता इस कुतर्कका उत्तर कहते हैं।

नच व्यवहितयोस्तयोर्व्यापारपरिकल्पनं न्याय्यमतिप्रसक्तेरिति।

व्यवहित जो अतीत अनागत जाग्रद्दशासंवेदन और मरण उनका व्यापार कल्पना करना न्याय नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे अतिप्रसंग नाम अतिव्याप्तिरूप दोष आता है।

अतिप्रसक्तिमेव भावयन्ति।

अब सूत्रकार पूर्वोक्त अतिव्याप्तिरूप दोषको प्रगट करते हैं।

परंपराव्यवहितानां परेषामपि तत्कल्पनस्य निवारयितुमशक्यत्वादिति।

यदि व्यवहित भी जाग्रदवस्था कालीन ज्ञानादिकोंका व्यापार मान लेंगे तो फिर और भी कारणत्वेन अनभिमत अतीतादि पदार्थोंके व्यापारकी कल्पनाका निवारण नहीं कर सकेंगे।

इतरेषामपि रावणशंखचक्रवर्त्यादीनां तत्कल्पनस्य व्यापारकल्पनस्य। अथान्वयव्यतिरेकसमधिगम्यः कार्य्यकारणभावस्ततो व्यवधानाविशेषेपि यस्यैव कार्यमन्वयव्यतिरेकावनुकरोति तदेव तत्कारणमन्यथा व्यवधानाविशेषेऽपि किं न काष्ठकृशानुवत् तत्र स्थित एव शर्कराकणनिकरोऽपि धूमकारणं स्यात् ततो नातिप्रसंग इति चेन्नन्वन्वयस्तद्भावे तद्भावः सचात्र तावन्नास्त्येव जाग्रद्दशासंवेदनमरणयोरभावे एव सर्वदा तत्कार्य्योत्पादात्। अथ स्वकाले सतोरेव तयोस्तत्कार्य्यो-

त्पत्तेरन्वयः कथं न स्यादितिचेत् तर्हीदृशोयं रावणादिभिरप्यस्यास्त्येव । सत्यमस्त्येव व्यतिरेकस्तु रिक्त इतिचेन्ननु कोयं व्यतिरेको नाम तदभावेऽभाव इतिचेत्स तर्हि जाग्रद्दशासंवेदनादेः कथं स्यात्तदभाव एव सर्वदा प्रबोधादेर्भावात् । स्वकालेत्वभावस्तस्य नास्त्येवेति कथं व्यतिरेकः सिद्धिमधिवसेदिति न व्यवहितयोः कार्य्यकारणभाव इति ।

परेषामपि नाम रावणशंखचक्रवर्त्यादिकोंको भी तत्कल्पनस्य नाम व्यापारकल्पनस्य । यदि कदाचित् अन्वय और व्यतिरेकसे कार्यकारणभाव जाना जाता है इसलिये व्यवधानके अविशेष होनेपर भी जिसके साथ कार्य अन्वयव्यतिरेकका अनुकरण करता है वहीं उसका कारण कहलाता है अन्यथा अन्यवधानके अविशेष नाम तुल्य होनेपर भी काष्ठ और (कृशानु) अग्निकी तरह तद्देशवृत्ति ही शर्कराकण (रेतेके कणके) समूह भी धूमका कारण क्यों नही होता । बौद्ध ही कहते है कि इसलिये तुमने जो अतिव्याप्ति कही है सो नहीं है जैन कहते हैं कि तुम ऐसा कहते हो तो हम कहते हैं कि तत्सत्वे तत्सत्व ही तो अन्वय-है सो तो यहाँ नाम जाग्रद्बोध और प्रबोधमें और मरणारिष्टमें नहीं ही है क्योंकि जाग्रद्दशासंवेदन और मरणके अभाव-कालमें ही तो सर्वदा (यथाक्रमेण तवाभिमत) इनके कार्य उत्पन्न होते हैं । यदि कदाचित् स्वकालमें विद्यमान ही जाग्रद्दशा-संवेदन और मरणके होनेसे पूर्वोक्त कार्य्य उत्पन्न होते हैं इसलिये अन्वय क्यों नही है अर्थात् है ही ऐसा कहते हो अर्थात् यदि स्वकाले तत्सत्वे तत्सत्वं अन्वयः तुम कहते हो तो ईदृश अन्वय तो रावण शंखचक्रवर्त्यादिकोंके साथ भी प्रबोधादिकोंका है ही । बौद्ध कहते है कि ठीक रावणशंखचक्रवर्त्यादिकोंके साथ भी अन्वय है तो भी व्यतिरेक तो नहीं है जैन कहते हैं कि तुम ऐसा कहते हो तो हम पूछते हैं कि व्यतिरेक तुम किसको कहते हो । यदि तत् असत्वे तत् असत्वको व्यतिरेक कहते हो तब तो ईदृश व्यतिरेक जाग्रद्दशासंवेदन आदिकोंका भी स्वस्वकार्य्योंके साथ कैसे हो सकता है अर्थात् नही हो सकता क्योंकि जाग्रद्दशासंवेदन आदिकोंके अभावकालमें ही तो सर्वदा प्रबोध आदिकोंकी उत्पत्ति होती है । और स्वकालमें तो उसका अभाव है: ही नहीं इसलिये व्यतिरेक सिद्धिको कैसे धारणकरे अर्थात् तत् असत्वे तत् असत्व कहनेसे तो जाग्रद्बोध और मरणका स्वस्व-कार्यके साथ न बनसका और स्वकाले तत् असत्वे तत् असत्व तो कह ही नहीं सकते (क्योंकि असम्भवत्वापत्तेः) इसलिये व्यतिरेक भी कैसे सिद्ध होय सके अर्थात् नहीं हो सकता जैन ही कहते हैं कि इसलिये व्यवहित पदार्थोंका कार्यकारणभाव सिद्ध नही हो सकता ॥

सहचरहेतोरपि स्वभावकार्यकारणेषु नान्तर्भाव इति दर्शयन्ति ।

अब सूत्रकार सहचरस्वरूप हेतुका भी स्वभाव कार्य कारणरूपहेतुओंमें अन्तरभाव नहीं है इस बातको कहते हैं ।

सहचारिणोः परस्परस्वरूपपरित्यागेन तादात्म्यानुपपत्तेः सहोत्पादेन तदुत्पत्तिविपत्तेश्च सहचरहेतोरपि प्रोक्तेषु नानुप्रवेश इति ।

सहचारि पदार्थोंका परस्पर स्वरूपपरित्यागनाम भिन्न २ स्वरूप होनेसे तो तादात्म्य नहीं है और साथ ही उत्पन्न होनेसे तदुत्पत्तिरूप संबंधकी विपत्तिनाम तदुत्पत्तिरूप संबन्ध भी नहीं बनसकता इसलिये सहचरहेतुका भी पूर्वोक्त स्वभाव या कार्यकारणरूपहेतुओंमें अंतर्भाव नहीं होता ।

यदि हि सह संचरणशीलयोर्वस्तुनोस्तादात्म्यं स्यात्तदा परस्परपरिहारेण स्वरूपोपलम्भो न भवेदथ तदुत्पत्तिस्तदा पौर्वापर्येणोत्पादप्रसंगात् सहोत्पादो न स्याच्चैवं ततो नास्य प्रोक्तेषु स्वभावकार्यकारणेष्वन्तर्भावः ।

यदि सहचरनाम साथ ही रहनेवाले पदार्थोंका परस्पर तादात्म्य होवे तो परस्पर भिन्न २ रूपतया प्रतीत न होवें इससे इनका तादात्म्य तो नहीं कह सकते अब यदि तदुत्पत्ति कहते हो तब तो इनकी पौर्वापर्येणनाम आगेपीछे उत्पत्ति होनी चाहिये परन्तु साथ ही उत्पत्ति न होनी चाहिये वैसा है तो नहीं अर्थात् उत्पत्तितो इनकी साथ ही होती है इसलिये सहचरहेतुका प्रोक्तोंमें नाम स्वभाव तथा कार्य एवं कारणरूप हेतुओंमें अंतर्भाव नहीं होता ।

इदानीं मन्दमतिव्युत्पत्तिनिमित्तं साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां पंचावयवां व्याप्याविरुद्धोपलब्धिमुदाहरन्ति ।

अब सूत्रकार मन्दमति पुरुषोंकी व्युत्पत्तिमें निमित्त और साधर्म्य तथा वैधर्म्यासे पाँच अवयवोंवाली व्याप्याविरुद्धोपलब्धिका उदाहरण कहते हैं ।

ध्वनि परिणतिमान् प्रयत्नानन्तरीयकत्वात् यः प्रयत्नानन्तरीयकः स परिणतिमान्यथा स्तंभो यो वा न परिणतिमान् स न प्रयत्नानन्तरीयको यथा वा-

ध्येयः प्रयत्नानन्तरीयकश्च ध्वनिस्तस्मात्परिणतिमानिति व्याप्यस्य साध्येनाविरुद्धस्योपलब्धिः साधर्म्येण वैधर्म्येण चेति ।

(ध्वनि) शब्द परिणतिमान् है क्योंकि प्रयत्नानन्तरीयकनाम प्रयतजन्य होनेसे जो प्रयत्नजन्य होता है सो सब परिणतिमान् ही होता है जैसे कि स्तंभ है अथवा जो परिणतिमान् नही होता सो प्रयत्नानन्तरीयक भी नही होता जैसेकि वांध्येयनाम वन्ध्यापुत्र और ध्वनि जो है सो प्रयत्नानन्तरीयक है इसलिये परिणतिमान् है यह व्याप्यकी साध्यके साथ अविरुद्धकी उपलब्धि साधर्म्येण और वैधर्म्येण है ।

अत्र ध्वनिः परिणतिमानिति साध्यधर्म्मविशिष्टधर्म्यभिधानरूपा प्रतिज्ञा प्रयत्नानन्तरीयकत्वादिति हेतुः यः प्रयत्नानन्तरीयक इत्यादौ तु व्याप्तिप्रदर्शनपूर्वौ साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां स्तम्भवान्ध्येयरूपौ दृष्टान्तौ प्रयत्नानन्तरीयकश्च ध्वनिरित्युपनयस्तस्मात्परिणतिमानिति निगमनं । यद्यपि व्याप्यत्वं कार्यादिहेतुनामप्यस्ति साध्येन व्याप्यत्वात्तथापि तन्नेह विवक्षितं किन्तु साध्येन तदात्मीभूतस्याकार्यादिरूपस्य प्रयत्नानन्तरीयकत्वादेः स्वरूपमित्यदोषः ।

इस सूत्रमें ध्वनिः परिणतिमान् यह साध्यधर्मविशिष्टधर्म्मीका कथन स्वरूपा प्रतिज्ञा है और प्रयतानन्तरीयकत्व यह हेतु है और यः प्रयत्नानन्तरीयकः इत्यादि तो व्याप्तिदर्शनपूर्वक साधर्म्य और वैधर्म्यकरके स्तम्भ और वान्ध्येयरूप दृष्टान्त है और प्रयत्नानन्तरीयकश्च ध्वनिः यह उपनय है एवं तस्मात् परिणतिमान् यह निगमन है ऐसा बुद्धिमानोंने जानना । प्रश्नप्रदर्शनपूर्वक उत्तर कहते है कि यद्यपि साध्यके साथ व्याप्यहोने कार्यादिरूपहेतुओंको भी व्याप्यता है तो भी वह यहाँ विवक्षित नही है किन्तु साध्यकेसाथ तदात्मीभूत जो अकार्यादिरूप प्रयत्नानन्तरीयकत्वादिक है उनका ही स्वरूप यहाँपर विवक्षित है । इसलिये कार्यादिहेतुओंका स्वरूप न कहनेसे भी यहांपर कुच्छ दोप नही है ।

अथ कार्य्याविरुद्धोपलब्ध्यादीनुदाहरन्ति ।

अब सूत्रकार कार्य अविरुद्धोपलब्धि आदिकोंका उदाहरण कहते हैं ।

अस्त्यत्र गिरिनिकुंजे धनंजयो धूमसमुपलंभादितिकार्यस्येति ।

धूमका समुपलम्भनाम यथार्थ बोध होनेसे इस पर्वतके निकुंजमें अग्नि है यह साध्यके साथ कार्यकी अविरुद्धोपलब्धि है ।

साध्येनाविरुद्धस्योपलब्धिरिति पूर्वसूत्रादिहोत्तरत्र चानुवर्तनीय ।

पूर्वसूत्रसे इससूत्र और अगाडीके इष्ट सूत्रोंमें साध्येन अविरुद्धस्योपलब्धि इसका अध्याहार करलेना ।

भविष्यति वर्षं तथाविधवारिवाहविलोकनादितिकारणस्येति ।

आगे वर्षा होवेगी क्योंकि वैसा ही बादल देखा जा रहा है, यह कारणकी साध्यके साथ अविरुद्धकी उपलब्धि है ।

तथा विधेति सातिशयोन्नतत्वादि धर्म्मोपेतत्व गृह्यते ।

सूत्रमें जो तथाविध शब्द है उससे सातिशय और उन्नतत्वादिधर्म्मोंसे युक्त ऐसा अर्थ जानना ।

उदेष्यति मुहूर्तांते तिष्यतारका पुनर्वसूदयदर्शनादिति पूर्वचरस्येति ।

पुनर्वसुके उदयका दर्शन है इसलिये दो घडीके बाद तिष्यनामक तारा उदय होवेगा यह साध्यके साथ अविरुद्ध पूर्वचरका दृष्टांत समझना ।

तिष्यतारकेति पुष्यनक्षत्र ।

तिष्यतारका पुष्यनक्षत्रको कहते हैं ।

उदगुर्मुहूर्तात्पूर्वफाल्गुन्युत्तरफाल्गुनीनामुद्गमोपलब्धेरित्युत्तरचरस्येति ।

उत्तरफाल्गुनीके उदयकी उपलब्धि है इसलिये दो घडी पहिले पूर्वाफाल्गुनीका उदय हो चुका है यह साध्यके साथ अविरुद्ध उत्तरचरका दृष्टांत है ।

अस्तीह सहकारफले रूपविशेष समास्वाद्यमानरसविशेषादिति सहचरस्येति ।

इस आम्रके फलमें रूपविशेष है क्योंकि समास्वाद्यमान रसविशेष होनेसे यह साध्यकेसाथ अविरुद्ध सहचरका दृष्टांत है ।

इयञ्च साक्षात् षोढाऽविरुद्धोपलब्धिरुक्ता परम्परया पुनः सम्भवन्तीयमत्रैवान्तर्भावनीया । तद्यथा कार्यकार्याविरुद्धोपलब्धिः कार्याविरुद्धोपलब्धौ । अभूदत्र कोशः कलशसमुपलम्भादिति कोशस्य हि कार्यं कुशूलः तस्य चाविरुद्धं कार्यं कुम्भ इति एवमन्या अप्यत्रैवान्तर्भावनीयाः ।

यह साक्षात् अविरुद्धोपलब्धि छः प्रकारकी कही है और परम्परया तो जो अविरुद्धोपलब्धियें होतीं हैं सो तो इन्हींमें अन्तर भूत होतीं है । तद्यथा, कार्यकार्यविरुद्धोपलब्धि जो है सो कार्यविरुद्धोपलब्धिमें ही अंतर्भूत होती है उसका दृष्टांत है कि यहाँपर कोश होता भया क्योंकि यहांपर कलशकी उपलब्धि होती है यहांपर कोशका कार्य है कुशूल उसका अविरुद्ध कार्य है कुम्भ । इसीप्रकार अन्य भी अनिर्दिष्ट अविरुद्धोपलब्धियोंका पूर्वोक्त अविरुद्धोपलब्धियोंमें अंतर्भाव करलेना ।

अधुना विरुद्धोपलब्धिभेदानाहुः ।

अब सूत्रकार विरुद्धोपलब्धिके भेदोंको कहते हैं ।

विरुद्धोपलब्धिस्तु प्रतिषेधप्रतिपत्तौ सप्तप्रकारेति ।

प्रतिषेधके निश्चयमें कारणभूत विरुद्धोपलब्धि तो सात प्रकारकी होती है ।

प्रथमप्रकारं प्राक् प्रकाशयन्ति ।

अब सूत्रकार पहिले प्रथम भेदको प्रकाश करते हैं ।

तत्राद्या स्वभावविरुद्धोपलब्धिरिति ।

पूर्वोक्त सात प्रकारकी विरुद्धोपलब्धिमें प्रथम स्वभावविरुद्धोपलब्धि जाननी ।

प्रतिषेध्यस्यार्थस्य यः स्वभावः स्वरूपं तेन सह यत् साक्षाद्विरुद्धं तस्योपलब्धिः स्वभावविरुद्धोपलब्धिः ।

प्रतिषेध्य जो अर्थ (पदार्थ) उसका जो स्वभावनाम स्वरूप उसकेसाथ जो साक्षाद्विरुद्ध उसकी जो उपलब्धि सो स्वभावविरुद्धोपलब्धि कही जाती है ।

एतामुदाहरन्ति ।

अब सूत्रकार इसका उदाहरण कहते हैं ।

यथा नास्त्येव सर्वथैकान्तोऽनेकान्तस्योपलम्भादिति ।

सर्वथा एकांत नहीं ही है क्योंकि अनेकान्तकी उपलब्धि होती है ।

नन्वयमनुपलब्धिहेतुरेव युक्तो यावान् स्पष्टो हि सर्वथैकान्तानेकान्तयोः साक्षाद्विरोधो भावाभावयोरिव । अथ निरुक्तिरियं प्रतिषेधः स सर्वोऽनुपलब्धिरितिवचनादितिचेत्तन्मलीमसं समुपलम्भाभावस्यात्र हेतुत्वेनानुपन्यासात् । अथ द्वयो सर्वथैकान्तानेकान्तयोर्वह्निशीतस्पर्शयोरिव प्रथमं विरोधः स्वभावानुपलब्ध्या प्रतिपन्न, इत्यनुपलब्धिमूलत्वात् स्वभावविरुद्धोपलब्धेरनुपलब्धिरूपत्वं युक्तमेवेतिचेत्तर्हि साध्यधर्म्मिणि भूधरादौ साधने च धूमादावध्यक्षीकृतेसतीदमप्यनुमानं प्रवर्तत इति प्रत्यक्षमूलत्वादिदमपि प्रत्यक्षं किं न स्यादिति ।

प्रश्न करते हैं कि जो कोई प्रतिषेध है सो भाव और अभावकी तरह एकान्त और अनेकांतका साक्षाद्विरोध स्पष्ट ही है । सब अनुपलब्धि ही है इसवचनरूप प्रमाणसे विरुद्धोपलब्धिरूप जो हेतु है सो अनुपलब्धिरूप हेतुमानना ही ठीक है जैन कहते हैं कि यह पूर्वोक्त कथन अत्यंत युक्तिशून्य है । क्योंकि यहांपर समुपलम्भाभावको हेतु नहीं कहा है । यदिकदाचित् विरुद्ध जो सर्वथैकांत और अनेकांत हैं उनका वह्नि और शीतस्पर्शकी तरह पहिले विरोध स्वभावानुपलब्धिसे जाना जाता है इसलिये अनुपलब्धिमूलक होनेसे स्वभाव विरुद्धोपलब्धिको अनुपलब्धिरूप मानना युक्ति युक्त ही है जैन कहते हैं कि तुम ऐसा कहते हो तो हम कहते हैं कि साध्यधर्म्मी पर्वत आदिकोंके और धूम आदि हेतुओंके प्रत्यक्ष होनेसे ही यह भी अनुमान प्रवृत्त होता है इसलिये इसको प्रत्यक्ष मूलक होनेसे यह भी प्रत्यक्षरूप ही क्यों न होवे ।

विरुद्धोपलब्धेराद्यप्रकारं प्रदर्श्य शेषानाख्यांति ।

विरुद्धोपलब्धिके आद्य भेदको कहकर अब ग्रंथकार बाकीके छ भेदोंको कहते हैं ।

प्रतिषेध्यविरुद्धव्याप्तादीनामुपलब्धयः षडिति ।

प्रतिषेध्यनाम जिसका प्रतिषेध करना है उसकेसाथ विरुद्ध जो पदार्थ हैं उनके व्याप्तादिकोंकी छः उपलब्धिये होती है ।

प्रतिषेध्येनार्थेन सह ये साक्षाद्विरुद्धास्तेषां ये व्याप्तादयो व्याप्यकार्यकारणपूर्वचरोत्तरचरसहचरास्तेषामुपलब्धयः षड्भवन्ति । विरुद्धव्याप्तोपलब्धिर्विरुद्धकार्योपलब्धिर्विरुद्धकारणोपलब्धिर्विरुद्धपूर्वचरोपलब्धिर्विरुद्ध उत्तरचरोपलब्धि-र्विरुद्धसहचरोपलब्धिश्चेति ।

प्रतिषेध्यके साथ जो साक्षाद्विरुद्ध पदार्थ हैं उनके जो व्याप्तादिक नाम व्याप्य कार्य कारण पूर्वचर उत्तरचर और सहचर इनकी छः उपलब्धियें होती हैं । उन्हींका नाम कहते है विरुद्धव्याप्तोपलब्धि १ विरुद्धकार्योपलब्धि २ विरुद्धकारणोपलब्धि ३ विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि ४ विरुद्धउत्तरचरोपलब्धि ५ और छठी विरुद्धसहचरोपलब्धि कही जाती है इसप्रकारसे छः भेद समझने ।

क्रमेणासामुदाहरणान्याहुः ।

अवसूत्रकार यथाक्रमसे इनके उदाहरणोंको कहते है ।

विरुद्धव्याप्तोपलब्धिर्यथा नास्त्यस्य पुंसः तत्वेषु निश्चयस्तत्र संदेहादिति ।

विरुद्धव्याप्तोपलब्धिका दृष्टान्त है कि जैसे इसपुरुषको तत्वोंमें निश्चय नही है क्योंकि इसको उनमें संदेह है ।

अत्र हि जीवादितत्वगोचरो निश्चयः प्रतिषेध्यस्तद्विरुद्धश्चानिश्चयस्तेन व्याप्तस्य सन्देहस्योपलब्धिः ।

इस अनुमानमें जीव आदि तत्वविषयक निश्चय प्रतिषेध्य है उसका विरुद्ध है अनिश्चय उसके व्याप्य संदेहकी उपलब्धि है ।

विरुद्धकार्योपलब्धिर्यथा न विद्यतेऽस्य क्रोधाद्युपशान्तिर्वदनविकारादेरिति ।

विरुद्धकार्योपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे इसपुरुषको क्रोध आदिकोंकी शांति नही है क्योंकि इसके मुख आदिकोंका विकार है ।

वदनविकारस्ताम्रतादिरादिशब्दादधरस्फुरणादिपरिग्रहः अत्र च प्रतिषेध्यः क्रोधाद्युपशमस्तद्विरुद्धस्तदनुपशम-स्तत्कार्यस्य वदनविकारादेरुपलब्धिः ।

मुखविकार ताम्रतादि समझने और इसमें प्रविष्ट आदिशब्दसे अधरस्फुरण आदिकोंका ग्रहण करना यहाँपर प्रतिषेध्य है क्रोध आदिकोंका उपशम उसका अविरुद्ध है क्रोधादिकोंका अनुपशम उसके कार्य मुखविकारादिकोंकी उपलब्धि है ।

विरुद्धकारणोपलब्धिर्यथा नास्य महर्षेरसत्यं वच समस्ति रागद्वेषकालुष्याकलंकितज्ञानसंपन्नत्वादिति ।

विरुद्धकारणोपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे इस महर्षिका असत्यवचन नहीं है क्योंकि यह कालुष्यसे अकलंकित ज्ञानयुक्त है ।

प्रतिषेध्येन ह्यसत्येन सह विरुद्धं सत्यं तस्य कारणं रागद्वेषकालुष्याकलंकितज्ञानं तत्कुतश्चित् सूक्ताविधानादेः सिध्यत्सत्यं साधयति तच्च सिध्यदसत्यं प्रतिषेधयति ।

यहांपर प्रतिषेध्य जो असत्य है उसके साथ विरुद्ध है सत्य उसका कारण जो रागद्वेषकालुष्यसे अकलंकित ज्ञान है सो किसी सूक्ताभिधाननाम किसी रचनाविशेषसे सिद्ध होता हुआ सत्यको सिद्ध करदेता है और वह सिद्ध होता हुआ असत्यका निषेध करदेता है ।

विरुद्धपूर्वचरोपलब्धिर्यथा नोद्गमिष्यति मुहूर्तांते पुष्यतारा रोहिण्युद्गमादिति ।

विरुद्धपूर्वचरोपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे रोहिणिके उदय हो जानेसे अब मुहूर्तके बाद पुष्यतारा उदय न होगा ।

प्रतिषेध्योऽत्र पुष्यतारोद्गमः तद्विरुद्धो मृगशीर्षोदयस्तदनंतरं पुनर्वसूदयस्यैव भावात् तत्पूर्वचरो रोहिण्युदयस्तस्योपलब्धिः ।

यहांपर प्रतिषेध्य है पुष्यताराओंका उद्गम उससे विरुद्ध है मृगशीर्षका उदय क्योंकि उससे पहिले पुनर्वसुका ही उदय होता है उससे पूर्वचर है रोहिणिका उदय उसकी उपलब्धि है ।

विरुद्धोत्तरचरोपलब्धिर्यथा नोद्गान्मुहूर्तात्पूर्वं मृगशिरः पूर्वफाल्गुन्युदयादिति ।

विरुद्ध उत्तरचरकी उपलब्धिका दृष्टांत कहते हैं कि जैसे मुहूर्तसे पहिले मृगशिरका उदय नहीं भया क्योंकि पूर्वफाल्गुनीका उदय हो रहा है ।

प्रतिषेध्योऽत्र मृगशीर्षोदयस्तद्विरुद्धो मघोदयोऽनन्तरमार्द्रोदयादेरेव भावात्तदुत्तरचरः पूर्वफाल्गुन्युदयस्तस्योपलब्धिः ।

यहांपर प्रतिषेध्य हैं मृगशीर्षका उदय उससे विरुद्ध है मघाका उदय क्योंकि उसके अनंतर आर्द्राका ही उदय होता है उससे उत्तरचर है पूर्वफाल्गुनीका उदय उसकी उपलब्धि है

विरुद्धसहचरोपलब्धिर्यथा नास्त्यस्य मिथ्याज्ञानं सम्यग्दर्शनादिति ।

विरुद्ध सहचरोपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे इसपुरुषको सम्यग्दर्शनहोनेसे मिथ्याज्ञान नही है ।

प्रतिषेध्येन हि मिथ्याज्ञानेन सह विरुद्धं सम्यग्ज्ञानं तत्सहचरं सम्यग्दर्शनं तच्च प्राण्यनुकंपादेः कुतश्चित् लिङ्गात् प्रसिध्यत् सहचरं सम्यग्ज्ञानं साधयति ।

यहांपर प्रतिषेध्य जो मिथ्याज्ञान है उसके साथ विरुद्ध है सम्यग्ज्ञान उसका सहचर जो सम्यग्दर्शन है सो प्राणियोंमें दया आदिक किसी हेतुसे सिद्ध होता हुआ अपने सहचर सम्यग्ज्ञानको सिद्ध करता है ॥

इयं च सप्तप्रकारापि विरुद्धोपलब्धिः प्रतिषेध्येनार्थेन साक्षाद्विरोधमाश्रित्योक्ता परंपरया विरोधाश्रयणेन त्वनेकप्रकारा विरुद्धोपलब्धिः संभवन्त्यत्रैवाभियुक्तैरंतर्भावनीया । तद्यथा कार्यविरुद्धोपलब्धिर्व्यापकविरुद्धोपलब्धिः कारणविरुद्धोपलब्धिरिति त्रयं स्वभावविरुद्धोपलब्धौ । तत्र कार्यविरुद्धोपलब्धिर्यथा नात्रदेहिनि दुःखकारणमस्ति सुखोपलंभादिति ।

यह जो सातप्रकारकी विरुद्धोपलब्धि कही है सो साक्षाद्विरोधका आश्रयण करके कही है परंपरया विरोधको आश्रयणकरनेसे तो अनेक प्रकारकी विरुद्धोपलब्धि होती है सो उसका तो बुद्धिमानोंने इहींमें अंतर्भाव करलेना । अंतर्भावनीय विरुद्धोपलब्धियोंको ही कहते है कि कार्यविरुद्धोपलब्धिः १ व्यापकविरुद्धोपलब्धिः २ कारणविरुद्धोपलब्धिः यह तीन परंपरया विरुद्धोपलब्धिये स्वभावविरुद्धोपलब्धियोंमें अंतर्भूत जाननी । इन तीनोंमेंसे कार्यविरुद्धोपलब्धिका दृष्टांत कहते है कि जैसे इस आत्मामें दुःखका कारण नही है क्योंकि सुखकी जो प्रतीति होती है । यहांपर साक्षात् तो सुख और दुःखका परस्पर विरोध है और प्रतिषेध्यस्वभाव जो दुःखका कारण है उसके साथ तो परंपरया है ।

व्यापकविरुद्धोपलब्धिर्यथा न सन्निकर्षादिः प्रमाणमज्ञानत्वादिति । साक्षादत्रज्ञानत्वाज्ञानत्वयोर्विरोधः प्रतिषेध्यस्वभावेन तु ज्ञानत्वव्याप्येन प्रामाण्येन व्यवहितः ।

व्यापक विरुद्धोपलब्धिका दृष्टांत कहते है कि जैसे अज्ञानस्वरूपहोनेसे सन्निकर्षादिक प्रमाणस्वरूप नहीं है। यहापर साक्षाद्विरोध तो ज्ञानत्व और अज्ञानत्वका है और प्रतिषेध्यस्वभाव जो ज्ञानत्वव्याप्य प्रामाण्य है उसके साथ तो परपरया विरोध है।

कारणविरुद्धोपलब्धिर्यथा नास्य रोमहर्षादिविशेषवान् समीपवर्तिपावकविशेषादिति । अत्र पावकः साक्षाद्विरुद्धः शीतेन प्रतिषेध्यस्वभावेन तु रोमहर्षादिना शीतकार्येण पारम्पर्येण ।

कारणविरुद्धोपलब्धिका दृष्टांत कहते है कि जैसे यह पुरुष रोमहर्षादिरूप विशेषवान् नहीं है क्योंकि इसके समीपमें अग्नि विशेष है। यहापर अग्नि और शीत परस्पर साक्षाद्विरुद्ध है परतु प्रतिषेध्यस्वभाव जो रोमहर्षादिक शीतका कार्य है उसके साथ तो अग्नि परपरया विरुद्ध है।

येतु नास्त्यस्य हिमजनितरोमहर्षादिविशेषो धूमात् प्रतिषेध्यस्य हि रोमहर्षादिविशेषस्य कारणं हिमं तद्विरुद्धोऽग्निस्तत्कार्यं धूम इत्यादयः कारणविरुद्धकार्योपलब्ध्यादयो विरुद्धोपलब्धेर्भेदास्ते यथासंभवं विरुद्धकार्योपलब्ध्यादिष्वन्तर्भावनीया ।

और जो यहापर धूम होनेसे हिम बरफ वा शरदीसे जनित रोमहर्षादिक नहीं है इस अनुमानमें प्रतिषेध्य जो रोमहर्षादि विशेष है उसका कारण है हिम उससे विरुद्ध है अग्नि उसका कार्य है धूम इत्यादिक कारणविरुद्धकार्योपलब्ध्यादिक विरुद्धोपलब्धिके भेद हैं सो यथासभव (नाम जो जिसमें होसके) विरुद्धकार्योपलब्ध्यादिकोंमें अतर्भूत करलेने।

सम्प्रत्यनुपलब्धिं प्रकारतः प्राहुः ।

अब सूत्रकार अनुपलब्धिके भेदोंको कहते है।

अनुपलब्धेरपि द्वैरूप्यमविरुद्धानुपलब्धिर्विरुद्धानुपलब्धिश्चेति ।

अनुपलब्धिके भी दो भेद है एक तो अविरुद्धानुपलब्धि और एक विरुद्धानुपलब्धि।

अविरुद्धस्य प्रतिषेध्येनार्थेन सह विरोधमप्राप्तस्यानुपलब्धिरेव विरुद्धानुपलब्धिरपि ।

अविरुद्धनाम प्रतिषेध्यपदार्थके साथ विरोधको अप्राप्तकी जो अनुपलब्धिनाम अज्ञान उसको कहीये अविरुद्धोपलब्धि एव विरुद्धनाम प्रतिषेध्यपदार्थके साथ विरोधको प्राप्तकी जो अनुपलब्धि उसको विरुद्धानुपलब्धि कहा जाता है।

संप्रत्यविरुद्धानुपलब्धेर्निपेधसिद्धौ प्रकारसंख्यामाख्यान्ति ।

अब सूत्रकार निपेधसिद्धिमें समर्थ अविरुद्धानुपलब्धिके भेदोंकी संख्याको कहते है ।

तत्राविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधावबोधे सप्तप्रकारेति ।

प्रतिपेधके ज्ञानमें हेतुभूत अविरुद्धानुपलब्धि सात प्रकारकी होती है ।

अमूनेव प्रकारान् प्रकटयन्ति ।

अब सूत्रकार इन्हीं भेदोंको कहते है ॥

प्रतिषेध्येनाविरुद्धानां स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वचरोत्तरचरसहचराणामनुपलब्धिरिति ।

प्रतिपेध्यपदार्थके साथ अविरुद्ध जो स्वभाव व्यापक कार्य कारण पूर्वचर उत्तरचर सहचर इनकी अनुपलब्धि । इस प्रकार सात प्रकार भए ।

एवंच स्वभावानुपलब्धिर्व्यापकानुपलब्धिः कार्यानुपलब्धिः कारणानुपलब्धिः पूर्वचरानुपलब्धिः उत्तरचरानुपलब्धिःसहचरानुपलब्धिश्चेति ।

इसप्रकार स्वभाव अनुपलब्धिः १ व्यापक अनुपलब्धि २ कार्य अनुपलब्धि ३ कारण अनुपलब्धि ४ पूर्वचर अनुपलब्धि ५ उत्तरचरअनुपलब्धि ६ सहचरअनुपलब्धि ७ यह सातप्रकार अनुपलब्धिके जानने ।

क्रमेणामूदाहरंति ।

अब सूत्रकार क्रमसे इनके उदाहरण कहते हैं ।

स्वभावानुपलब्धिर्यथा नास्त्यत्र भूतले कुम्भ उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य तत्स्वभावस्यानुपलम्भादिति ।

स्वभावानुपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे इसभूतलमें घट नही है क्योंकि उपलब्धिलक्षणप्राप्तनाम ज्ञानविषयकी योग्यताको प्राप्त भी घटके स्वभावका अनुपलंभ है ।

उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्येति उपलब्धिर्ज्ञानं तस्या लक्षणानि कारणानि चक्षुरादीनि तैर्ह्युपलब्धिर्लक्ष्यते जन्यत इति यावत् तानि प्राप्तो जनकत्वेनोपलब्धिकारणांतर्भावात् सतथा दृश्य इत्यर्थस्तस्यानुपलम्भात् ।

सूत्रमें जो उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्य पद है उसका अर्थ कहते है कि उपलब्धि नाम है ज्ञानका उसके जो लक्षण नाम कारण चक्षुरादि इन्द्रिय क्योंकि चक्षुरादिकोसे उपलब्धि उत्पन्न होती है ।

व्यापकानुपलब्धिर्यथा नास्त्यत्र प्रदेशे पनसः पादपानुपलब्धेरिति ।

व्यापकानुपलब्धिका दृष्टांत कहते है कि जैसे यहाँपर वृक्ष कोई प्रतीत नहीं होता इसलिये यहाँपर पनस (वृक्षविशेष) नहीं है ।

कार्यानुपलब्धिर्यथा नास्त्यत्राप्रतिहतशक्तिकं बीजमङ्कुरानवलोकनादिति ।

कार्यानुपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे यहाँपर अप्रतिहतशक्तिवाला बीज नहीं है क्योंकि अंकुरकी प्रतीति नही होती ।

अप्रतिहतशक्तिकत्वं हि कार्यं प्रत्यप्रतिबद्धसामर्थ्यत्वं कथ्यते तेन बीजमात्रेण न व्यभिचारः ।

कार्यके प्रति अप्रतिबद्धसामर्थ्यको अप्रतिहतशक्तिकत्व कहते हैं इसलिये बीजमात्रको हेतुकरनेसे जो व्यभिचार था सो नहीं है ।

कारणानुपलब्धिर्यथा न संत्यस्य प्रशमप्रभृतयो भावास्तत्वार्थश्रद्धानाभावादिति ।

कारणानुपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे इसको प्रशमसे आदिलेकर जो भाव है सो नहीं है क्योंकि इसको तत्व अर्थ श्रद्धाका अभाव है ।

प्रशमप्रभृतयो भावा इति प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकंपास्तिक्यलक्षणा जीवपरिणामविशेषः । तत्वार्थसंधानं सम्यग्दर्शनं तस्याभावः कुतोऽपि देवद्रव्यभक्षणादेः पापकर्मणः सकाशात् सिध्यंस्तत्वार्थश्रद्धानकार्यभूतानां प्रशमादीनामभावं गमयति ॥

प्रशमादिकभावोंका नाम कहते है कि प्रशम १ संवेग २ निर्वेद ३ अनुकंपा ४ आस्तिक्य ५ यह पांच प्रशमादि भाव हैं सो आत्माका ही परिणाम विशेष है। तत्वार्थसंधाननाम सम्यग्दर्शन उसका अभाव किसी देवद्रव्यभक्षणादिपापकर्म्मसे सिद्ध होता हुआ तत्वार्थश्रद्धानके कार्यरूप प्रशम आदिकोंके अभावका बोध करादेता है ॥

पूर्वचरानुपलब्धिर्यथा नोद्गमिष्यति मुहूर्तांते स्वातिनक्षत्रं चित्रोदयादर्शनादिति।

पूर्वचरानुपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे मुहूर्तके वाद स्वातिनामक नक्षत्र उदय न होगा क्योंकि चित्रानामक नक्षत्रके उदयका अदर्शन है।

उत्तरचरानुपलब्धिर्यथा नोदगमत् पूर्वभाद्रपदा मुहूर्त्तात् पूर्वमुत्तरभाद्रपदोद्गमानवगमादिति।

उत्तरचरानुपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे अवी पूर्वभाद्रपदनामक नक्षत्र उदय नही भया क्योंकि मुहूर्तसे पहिले उत्तरभाद्रपदाका उदय नही भया है।

सहचरानुपलब्धिर्यथा नास्त्यस्य सम्यग्ज्ञानं सम्यग्दर्शनानुपलब्धेरिति ॥

सहचरानुपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे इसको सम्यग्ज्ञान नहीं है क्योंकि इसमें सम्यग्दर्शनकी अनुपलब्धि है।

इयञ्च सप्तधाप्यनुपलब्धिः साक्षादनुपलम्भद्वारेण परंपरया पुनरेषा संभवंत्यत्रैवान्तर्भावनीया। तथाहि नास्त्येकांतनिरन्वयं तत्वं तत्र क्रमाक्रमानुपलब्धेरिति या कार्यव्यापकानुपलब्धिर्निरन्वयतत्वकासार्थक्रियारूपस्य यद्व्यापकं क्रमाक्रमरूपं तस्यानुपलम्भसद्भावात् सा व्यापकानुपलब्धावेव प्रवेशनीया एवमन्या अपि यथासंभवमास्वेव संभवन्ति।

यह जो सातप्रकारकी अनुपलब्धि कही है सो साक्षात् अनुपलम्भद्वारा कही है परंपरासे तो इसके अनेक भेद है सो इन्हीमे अंतर्भाव करलेने। परंपरया अनुपलब्धिके भेदोंको दिखाकर इन्हीमें अंतर्भाव करते है कि जैसे एकात निरन्वयद्रव्य नही है क्योंकि उसमे क्रमाक्रमकी अनुपलब्धि होती है इत्याकारक जो कार्यव्यापकानुपलब्धि है क्योंकि अर्थक्रियारूप जो निरन्वय-

तत्कार्य है उसका व्यापक जो स्मारम्भ है उसका अनुपलभ है सो यह व्यापकानुपलब्धिमें ही प्रवेशनीया है अर्थात् इसका व्यापकानुपलब्धिमें ही अंतर्भाव होता है। इसीप्रकार और भी जो परपरया अनुपलब्धिय हैं उनका इहीमें अंतर्भाव होता है सो बुद्धिमानोंने स्वय करलेना।

विरुद्धानुपलब्धि विधिसिद्धौ भेदतो भाषते।

अवसूत्रकार विधिकी सिद्धिमे हेतुभूत विरुद्धानुपलब्धिके भेदोंको कहते है।

विरुद्धानुपलब्धिस्तु विधिप्रतीतौ पंचधेति।

विधिकी प्रतीतिमें हेतु जो विरुद्धानुपलब्धि सो पाच प्रकारकी है।

तानेव भेदानाहु,

अबसूत्रकार उहीं भेदोंको कहते है।

विरुद्धकार्यकारणस्वभावव्यापकसहचरानुपलम्भभेदादिति।

विरुद्धकार्य कारण स्वभाव व्यापक सहचर इनभेदोंसे विरुद्धानुपलब्धि पाच प्रकारकी है। विरुद्धकार्यानुपलब्धिर्विरुद्धकारणानुपलब्धिर्विरुद्धस्वभावानुपलब्धिर्विरुद्धव्यापकानुपलब्धिर्विरुद्धसहचरानुपलब्धिश्चेति। ततश्च विधेयेनार्थेन विरुद्धानां कार्यकारणस्वभावव्यापकसहचराणामनुपलभा अनुपलब्धयस्तेर्भेदो विशेपस्तस्मात्। विधेयपदार्थके साथ विरुद्ध जो कार्य्य कारण स्वभाव व्यापक सहचर इनका जो अनुपलभनाम अनुपलब्धिये उनसे जो विशेष उससे विरुद्धानुपलब्धिके पाच प्रकार है। उहीं भेदोंको लिखते है विरुद्धकार्यानुपलब्धि १ विरुद्धकारणानुपलब्धि २ विरुद्धस्वभावानुपलब्धि ३ विरुद्धव्यापकानुपलब्धि ४ विरुद्धसहचरानुपलब्धि ५ यह विरुद्धानुपलब्धिके पाच भेद हैं।

क्रमेणैतासामुदाहरणानाहु।

अबसूत्रकार क्रमसे इहींके उदाहरणोंको कहते हैं।

विरुद्धकार्यानुपलब्धिर्यथात्र शरीरिणि रोगातिशयः समस्ति नीरोगव्यापारानुपलब्धेरिति ।

विरुद्धकार्यानुपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे इस शरीरीमें रोगका अतिशय है क्योंकि नीरोगनाम रोगशून्यपुरुषके व्यापारकी अनुपलब्धि है ।

विधेयस्य रोगातिशयस्य विरुद्धमारोग्यं तस्य कार्यं विशिष्टो व्यापारस्तस्यानुपलब्धिरियं ।

यहाँपर विधेय है रोगातिशय उसका विरुद्ध है आरोग्य उसका कार्य है विशिष्टव्यापार उसकी अनुपलब्धि यह है ।

विरुद्धकारणानुपलब्धिर्यथा विद्यतेऽत्र प्राणिनि कष्टमिष्टसंयोगाभावादिति ।

विरुद्धकारणानुपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे इसप्राणिमें कष्ट है क्योंकि इसमें इष्टवस्तुके संबंधका अभाव है ।

अत्र विधेयं कष्टं तद्विरुद्धं सुखं तस्य कारणमिष्टसंयोगस्तस्यानुपलब्धिरेषा ।

यहाँपर विधेय है कष्ट उससे विरुद्ध है सुख उसका कारण है इष्टसंयोग उसकी यह अनुपलब्धि है ।

विरुद्धस्वभावानुपलब्धिर्यथा वस्तुजातमनेकांतात्मक-मेकांतस्वभावानुपलंभादिति ।

विरुद्धस्वभावानुपलब्धिका दृष्टांत कहते है कि जैसे वस्तुमात्र अनेकांतस्वरूप है क्योंकि वस्तुका एकांतस्वभाव प्रतीत नही होता ।

वस्तुजातमंतरंगो वहिरंगश्च विश्ववर्ती पदार्थसार्थः । अम्यते गम्यते निश्चीयत इत्यंतो धर्म्मः न एकोऽनेकः अनेकश्चासावंतश्चानेकांतः स आत्मा स्वभावो यस्य वस्तुजातस्य तदनेकांतात्मकं सदसदानेकधर्म्मात्मकमित्यर्थः । अत्र हेतुः एकांतस्वभावस्य सदसदाद्यन्यतरधर्म्मावधारणस्वरूपस्यानुपलंभादिति । अत्र विधेयेनानेकांतात्मकत्वेन सह विरुद्धः सदाद्येकांतस्वभावस्तस्यानुपलब्धिरसौ ।

वस्तुजातका अर्थ है कि भतरंग और बहिरंग जो वस्तुजातनाम वस्तुसमूह अर्थात् वस्तुमात्र । अब अनेकांतशब्दका अर्थ कहते हैं कि अन्तनाम जिसका निश्चय होवे उसको कहिये अंतनाम धर्म्म यह अंतशब्दका अर्थ भया अब अनेक शब्दका अर्थ लिखते हैं कि एक जो न होवे उसको कहिये अनेक इन दोनोंशब्दोंका कर्म्मधारयसमास करके अर्थ कहते हैं कि अनेक ही जोहोवें अंतनाम धर्म्म उनको कहिये अनेकांत सो अनेकांत है स्वभाव जिसवस्तुसमूहका उसको कहिये अनेकांतात्मकनाम सत् और असत् स्वरूप यह अनेकांतात्मकशब्दका अर्थ भया । इसमें सत् और असदादिक अनेकधर्म्मोंमसे एक किसी धर्म्मका अवधारणस्वरूप जो एकांतस्वभावका अनुपलम्भ है सो हेतु है । यहापर विधेय जो अनेकांतात्मकत्व है उसके साथ विरुद्ध है सदादि एकांतस्वभाव उसकी यह अनुपलब्धि है ।

विरुद्धव्यापकानुपलब्धिर्यथा अस्त्यत्र छाया उष्णानुपलब्धेरिति ।

विरुद्धव्यापकानुपलब्धिका दृष्टांत है कि जैसे यहापर छाया है क्योंकि यहा उष्णप्रतीत नहीं होता ।

विधेयया छायया विरुद्धस्तापस्तद्व्यापकमौष्ण्य तस्यानुपलब्धिरिय ।

यहापर विधेय है छाया उसमे विरुद्ध है ताप उसका व्यापक है औष्ण्य उसकी यह अनुपलब्धि है ।

विरुद्धसहचरानुपलब्धिर्यथास्त्यस्य मिथ्याज्ञानं सम्यग्दर्शनानुपलब्धेरिति ।

विरुद्धसहचरानुपलब्धि है कि जैसे इसपुरुषको मिथ्या ज्ञान है क्योंकि इसमें सम्यग्दर्शन नहीं देखा जाता ।

विधेयेन मिथ्याज्ञानेन विरुद्ध सम्यग्ज्ञान तत्सहचर सम्यग्दर्शन तस्यानुपलब्धिरेषा ।

इति प्रमाणनयतत्त्वालोकालकारे श्रीरत्नप्रभाचार्यविरचिताया रत्नाकरावतारिकाख्यलघुटीकाया स्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानस्वरूपनिर्णयो नाम तृतीय परिच्छेद ॥

यहापर विधेय जो मिथ्याज्ञान उसके साथ विरुद्ध है सम्यग्ज्ञान उसका सहचर है सम्यग्दर्शन उसकी अनुपलब्धि है ॥

इति श्रीरत्नाकरावतारिकाया वशीधरशर्मणा कृताया भाषाटीकाया तृतीय परिच्छेद ।

अथ चतुर्थः परिच्छेदः प्रारभ्यते ।

संप्रति परोक्षस्य पंचमं प्रकारमागमाख्यं बहुवक्तव्यत्वात् परिच्छेदांतरेणोपदिशन्ति ।

अत्र आगमनामक जो परोक्षका पंचम प्रकार है उसको बहुवक्तव्य होनेसे सूत्रकार परिच्छेदांतरसे कहतेहैं ।

आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागम इति ।

आप्तपुरुषके वचनसे उत्पन्नभया जो अर्थका संवेदन (यथार्थज्ञान) उसको बुद्धिमानपुरुष आगम कहतेहैं ॥

आप्तः प्रतिपादयिष्यमाणस्वरूपः तद्वचनाज्जातमर्थज्ञानमागमः । आगम्यन्ते मर्यादयावबुध्यन्ते अर्था अनेनेत्यागमः ।

आप्तका स्वरूप आगे कहेंगे उस आप्तके वचनसे उत्पन्न होनेवाला जो अर्थका ज्ञान उसको आगमप्रमाण समझना ग्रंथकार आगमशब्दका व्युत्पत्तिपूर्वक अर्थ लिखतेहैं कि मर्यादासे जानाजाय अर्थ जिससे सो आगम ।

ननु यद्यर्थसंवेदनमागमस्तर्हि कथमाप्तवचनात्मकोऽसौ सिद्धांतविदां प्रसिद्धः इत्याशंक्याहुः ।

यदि आगमप्रमाण अर्थसंवेदनस्वरूप है तो सिद्धांतवेत्ताओंके मध्यमें आप्तवचनस्वरूप आगमप्रमाण कैसे प्रसिद्धहै इस आशंकाको दूर करनेके लिये सूत्रकार आगेका सूत्र कहतेहै ।

उपचारादाप्तवचनं चेति ।

उपचारसे आप्तवचन भी आगमप्रमाण कहाजाताहै ।

प्रतिपाद्यज्ञानस्य ह्याप्तवचनं कारणमिति कारणे कार्योपचारात्तदप्यागम इत्युच्यत अनन्योपायख्यापनार्थं । अत्रैवं-वदन्ति काणादाः शब्दोऽनुमानं व्याप्तिग्रहणबलेनार्थप्रतिपादकत्वाद्धूमवदिति । तत्र हेतोरामुखे कूटाकूटकार्षापणनिरूपण-प्रवणप्रत्यक्षेण व्यभिचारस्तथाभूतस्यापि तत्प्रत्यक्षस्यानुमानरूपतापायात् । आः कथं प्रत्यक्षंनामभूत्वा व्याप्तिग्रहणपुरःसरं पदार्थं परिच्छिद्यादुन्मीलितं हि चेल्लोचनं जातमेव परीक्षकाणां कूटाकूटविवेकेन प्रत्यक्षमिति क्व व्याप्तिग्रहणावकाश इति चेत्तदेवान्यत्रापि प्रतीहि । तथाहि—समुच्चारितश्चेद्ध्वनिर्जातमेव जनस्य शब्दार्थसंवेदनमिति क्व व्याप्तिग्रहणावकाश इति ।

एव तर्हि नालिकेरद्वीपवासिनोऽपि पनसशब्दात्तदर्थसंवित्तिः स्यादितिचेत्किंनापरीक्षकस्यापि कार्षापणे कूटाकूटविवेकेन प्रत्यक्षोत्पत्तिः। अथ यावानेतादृशविशेषकलितकलेवरः कार्षापणस्तावानदोषः कूटोऽकूटो वा निष्टंकनीयस्त्वयेत्युपदेशसहायकापेक्ष चक्षुरादि तद्विवेके कौशलं कलयति नचापरीक्षकस्याय प्राक् प्रावर्तिष्टेतिचेत्तर्हि शब्दोऽपि यावान् पनसशब्दस्तावान् पनसार्थवाचक इति संवित्तिसहायस्तत्प्रतिपादने पटीयान्नच नालिकेरद्वीपवासिनः प्रागियं प्रादुरासीदिति कथं तस्य तत्प्रतीतिः स्यात्। अथैतादृशसंवेदनं व्याप्तिसंवेदनरूपमेव तदपेक्षायाश्च शब्दार्थज्ञानमनुमानमेव भवेदितिचेत् कूटाकूटकार्षापणविवेकप्रत्यक्षमपि किं न तथा तत्रापि तथाविधोपदेशस्य व्याप्त्युल्लेखरूपत्वात्। अथ व्याप्तेः प्राक् प्रवृत्तावपि तदानीमभ्यासदशापन्नत्वेनानपेक्षणात्प्रत्यक्षमेवैतत्तदपेक्षायां तु भवत्येवैतदनुमानं। कूटोऽयं कार्षापणस्तथाविधविशेषसमन्वितत्वात् प्राक्प्रेक्षितकार्षापणवदितिचेदेतमेव समस्तमन्यत्रापि विदांकरोतु भवान्नखल्वभ्यासदशायां कोपि व्याप्तिं शब्देऽप्यपेक्षते सहसैव तद्‌ज्ञानोत्पत्तेः। अनभ्यासे तु कोनाम नानुमानतां मन्यते यथा कस्यचित् विस्मृतसकेतस्य कालांतरे पनसशब्दश्रवणे यः पनसशब्दः स आमूलफलग्राहिविटपविशेषवाचको यथा यज्ञदत्तोक्तः प्राक्तनस्तथाचायमपि देवदत्तोक्त इति।

प्रतिपाद्यपुरुषप्रतिज्ञानका आप्तवचन कारण है इसलिये कारणमें कार्योपचारसे आप्तवचन भी आगमप्रमाण कहा जाताहै यहां पर कणादमतानुयायी लोग ऐसा कहतेहैं कि शब्द जो प्रमाण है सो अनुमान ही है क्योंकि यह धूमकी तरह व्याप्तिग्रहणके बलसे अर्थका बोधकहै। जैन कहतेहैं कि ऐसा तुमारा कथन ठीक नहीहै क्योंकि इस हेतुका कूटाकूट नाम सच्चा झूठा सुवरणसिद्ध करनेवाले प्रत्यक्षमें व्यभिचारहै क्योंकि तथाभूतनाम व्याप्तिग्रहणके बलसे अर्थके प्रतिपादक भी इस प्रत्यक्षमें अनुमानस्वरूपताका अभाव है। नैयायिक कहतेहैं कि अहो भाई जैन तुमलोग क्या कहतेहो क्योंकि प्रत्यक्ष होकर व्याप्तिग्रहणपूर्वक पदार्थका बोधक कैसे होयसक अर्थात् नही होसकता क्योंकि जिसवख्त नेत्र खोले उसीवख्त परीक्षक पुरुषोंको कूटाकूटविवेकसे प्रत्यक्ष होजाताहै इसलिये उसमें व्याप्तिग्रहणका अवकाश ही कहाहै अर्थात् नहीं है। जैन कहतेहैं कि हे नैयायिक यदि तुमलोग ऐसा कहते हो तो यही शब्दमें भी तुल्य ही समझलेना। वही कहतेहैं कि जिसवख्त शब्द उच्चारण किया उसीवख्त पुरुषको शब्दार्थका बोध होजाताहै इसलिये व्याप्तिग्रहणका अवकाश कहाहै अर्थात् नहीहै। नैयायिक कहतेहै कि यदि शब्दोच्चारणमा-

त्रसे ही अर्थका बोध होजाता होय तो नालिकेरद्वीपवासी पुरुषको भी पनसशब्दसे उसके वाच्य अर्थकी प्रतीति होनी चाहिये जैन कहतेहैं कि भाई हम पूछतेहैं कि अपरीक्षक पुरुषोंको भी सुवर्णमें कूटाकूट विवेकेन प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता। यदि कदाचित् जो कोई सुवर्ण ऐसे ऐसे विशेषोंवाला होवें सो सब तुमने सच्चा वा झूठा समझलेना इत्याकारक उपदेशरूप सहायक सहकृत जो चक्षुरादिकहै सो कूटाकूटविवेकमें कुशलताको धारण करतेहै सो उपदेश अपरीक्षक पुरुषको पहिले नहीं भया था इसलिये अपरीक्षकको तादृशप्रत्यक्ष उत्पन्न नही होता ऐसा कहते हो तो हम कहतेहैं कि शब्द भी जो जो पनसशब्द है सो सब पनसरूप अर्थका वाचकहै इत्याकारक ज्ञान सहकृत ही अर्थके ज्ञानमें समर्थहै सो ज्ञान नालिकेरद्वीपवासीको पहिले नहीं भयाथा इसलिये उसको पनसशब्दसे पनसपदार्थका बोध कैसे होसकें अर्थात् नहीं होसकता। यदिकदाचित् पूर्वोक्त ज्ञान व्याप्तिज्ञानरूप ही है सो जब शब्दार्थज्ञानको उसकी अपेक्षा मान ली तो फिर शब्दार्थज्ञान अनुमान ही भया ऐसा तुम कहते हो तो हम कहतेहै कि कूटाकूटकार्षापणविवेक प्रत्यक्ष भी अनुमानस्वरूप क्यों नही है अर्थात् होना चाहिये क्योंकि वहाँपर भी पूर्वोक्त उपदेशको व्याप्त्युल्लेखस्वरूपता ही है। यदिकदाचित् व्याप्तिके पहिले प्रवृत्त होजानेपर भी तदानी अभ्यासदशापन्न होनेसे व्याप्तिकी अनपेक्षा है इसलिये यह ज्ञान प्रत्यक्षस्वरूप ही है। और उसकी अपेक्षामें तो यह अनुमानस्वरूप ही होताहै जैसेकि यह सुवर्णकूट है क्योंकि कूटसुवर्णवृत्तिविशेषोंसे युक्त है जैसे कि पहिले हमने एक कूट सुवर्ण देखा था ऐसा तुम कहतेहो तो भाई वही सर्व वार्ता शब्दमें भी तुम जानो क्योंकि अभ्यासदशाकालमें शब्दमें भी कोई पुरुष व्याप्तिकी अपेक्षा नही करताहै क्योंकि शब्दोच्चारणके बाद ही शाब्दबोध होजाताहै। और अनभ्यासदशामें तो कौनसा भला शाब्दबोधस्थलमें अनुमानता नही मानता। जैसेकि विस्मृतसंकेतको किसी पुरुषको कालांतरमें पनसशब्दके श्रवण करनेसे ऐसा होताहै कि जो पनसशब्द है सो वृक्षविशेषका वाचक है जैसे कि प्राक्तन यज्ञदत्तोक्त शब्द था वैसेही यह भी है।

एवं च पक्षैकदेशे सिद्धसाध्यता शब्दोऽनुमानमित्यत्र सकलवाचकानां पक्षीकृतानामेकदेशस्यानुमानरूपतया स्वीकृतत्वात् यस्त्वागमरूपतया स्वीकृतः शब्दस्तत्राभ्यासदशापन्नत्वेन व्याप्तिग्रहणापेक्षैव नास्त्यन्यथा कूटाकूटकार्षापणविवेकप्रत्यक्षवदिति सिद्धं। किंच वाचामनुमानमानतामातन्वानोऽसौ कथं पक्षधर्म्मतादिकमादर्शयेत्। चैत्रः ककुब्दाद्यर्थविवक्षावान् गोशब्दोच्चारणकर्तृत्वादहमिवेतीत्थमितिचेत् नन्वतो विवक्षामात्रस्यैव प्रतीतिः स्यात्तथाच कथमर्थे प्रवृ-

त्तिर्भवेत् । विवक्षातोऽर्थसिद्धीतिचेन्नैवमसास्तु व्यभिचारादनाप्तानामन्यथापि तदुपलब्धे. । अथ यथाप्रोक्ताच्छब्दात्तथाप्तविवक्षातोऽक्षूणैवार्थसिद्धिर्भविष्यतीतिचेत्सत्य प्रतीत्यन्तराव्यवहितस्यैवार्थसंवेदनाद्यथा लोचनव्यापारे सति रूपस्य । अप्रिचाप्रतीतिकैतादृक्कल्पनामहापातक क्रियतांनाम यदि नान्या गति स्यात् । अस्तिचेय शब्दस्य स्वाभाविकवाच्यवाचकभावस्वभावसम्बधद्वारेणार्थप्रत्यायकत्वोपपत्ते. एतच्च स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यामितिसूत्रे निर्णेष्यते ॥

एव सति पूर्वोक्त शब्दको अनुमानरूपता साधक तुम्हारे अनुमानमें पक्षैकदेशावच्छेदेन सिद्धसाध्यतारूप दोष भी है । क्योंकि शब्दोनुमान यहाँपर पक्षीकृत जितने शब्द है उनके एकदेशनाम किसी २ शब्दको नाम अनभ्यासदशया हमने भी अनुमानरूपता मानी ही है और जो शब्द हमने आगमरूपतया स्वीकार कियाहै उसमें तो अभ्यासदशापन्न होनेसे व्याप्तिज्ञानकी अपेक्षा ही नहीं है अन्यथा कूटाकूटसुवर्णके निश्चायक प्रत्यक्षके साथ व्यभिचारापत्ति आजावेगी एव हेतुकी असिद्धि भयी । और विवादास्पद जो शब्द है सो अनुमानरूप नही है क्योंकि कूटाकूटसुवर्णके विवेचक प्रत्यक्षकी तरह अनुमानकी सामग्रीसे भिन्नसामग्रीक यह है इससे शब्दप्रमाण सिद्ध भया । और भी बात है कि शब्दको अनुमानप्रमाणता स्वीकारकरनेवाले नैयायिक लोग पक्षधर्मता आदिक कैसे कहतेहै । यदि कदाचित् चैत्र जो है सो गोशब्दका उच्चारण कररहा है इसलिये यह ककुद्मादिवाले पदार्थकी विवक्षावालाहै जैसे कि मै ककुदादिवाले पदार्थकी विवक्षावाला गोशब्दका उच्चारण करता हू इसप्रकार कहते हो तो हम कहते है कि इससे तो विवक्षामात्रकी ही प्रतीति होतीहै तब अर्थमे प्रवृत्ति कैसे होसके । यदिकदाचित् विवक्षासे अर्थसिद्धि कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि इसका तो व्यभिचार है क्योंकि अनाप्तपुरुषोंको अर्थसे विना भी विवक्षा देखतेहै । यदिकदाचित् जैसे कथितशब्दसे वैसी ही आप्तपुरुषकी अर्थ विवक्षासे अवश्य अर्थसिद्धि होती ही है ऐसा कहते हो तो यह तो तुम्हारा कहना ठीक है परंतु यह जो परपरा है सो अप्रतीति पराहत है क्योंकि शब्दके श्रवण होते ही प्रतीत्यन्तरके व्यवधानसे विना ही अर्थका बोध होताहुआ अनुभवमें आताहै जैसेकि नेत्रके व्यापार होते ही रूपका ज्ञान होजाता है । और भी वार्ता है कि अप्रतीतिसिद्ध वैसी कल्पनारूप महापातक तब करो यदि और कोई गति न बनसके सो अन्यगति तो यहाँपर है क्योंकि शब्दको स्वाभाविकवाच्यवाचकभावस्वभावसवन्धद्वारा अर्थप्रत्यायकत्वकी उपपत्ति है । यह सब वार्ता स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्या इत्यादिक सूत्रमें सूत्रकार स्वय कहेंगे ॥

उदाहरन्ति ।

अब सूत्रकार शब्दका उदाहरण कहतेहै ।

समस्त्यत्र प्रदेशे रत्ननिधानं सन्ति रत्नसानुप्रभृतय इति ।

इस स्थानमें रत्नोंका निधान (खजाना) है और रत्नोंके पर्वत प्रभृति पदार्थ जगतमेंहै ।

वक्ष्यमाणलौकिकजनकादि लोकोत्तरतीर्थकराद्यपेक्षया क्रमेणोदाहरणोभयी ।

अगाढी आप्तोंके दो भेद कहेंगे एक तो लौकिक जनकादि (पिता प्रभृति) और एक लोकोत्तर तीर्थकरादि उन दोनोंकी अपेक्षासे सूत्रकारने दो उदाहरण कहे है ।

आप्तस्वरूपं प्ररूपयन्ति ।

अब सूत्रकार आप्तके स्वरूपको कहतेहैं ।

अभिधेयं वस्तु यथावस्थितं यो जानीते यथाज्ञानं चाभिधत्ते स आप्त इति ।

जो पुरुष अविधेयवस्तुको यथार्थरूपसे जानताहै और जैसे जानता है वैसे ही कहता है सो आप्त कहाजाता है ।

आप्यते प्रोक्तोऽर्थोऽस्मादित्याप्तः । यद्वा आप्तीरागादिदोपक्षयः सा विद्यते यस्येत्यर्शादित्वादिति आप्तः । जानन्नपि हि रागादिमान् पुमानन्यथापि पदार्थान् कथयेत् तद्व्यवच्छित्तये यथाज्ञानमिति । तदुक्तं आगमो ह्याप्तवचनमाप्तिं दोपक्षयं विदुः क्षीणदोपोऽनृतं वाक्यं न ब्रूयाद्धेत्वसंभवादिति । अभिधानं च ध्वनेः परंपरयाप्यत्र द्रष्टव्यं तेनाक्षरविलेखनद्वारेण कोपदर्शनमुखेन करपल्लवादिचेष्टाविशेपवशेन वा शब्दस्मरणाद्यः परोक्षार्थविपयं विज्ञानं परस्योत्पादयति सोप्याप्त इत्युक्तं भवति सच स्मर्यमाणः शब्द आगम इति ।

आप्यते नाम जिसके कहनेसे पदार्थका यथार्थबोध होवे उसको कहिये आप्त अथवा आप्तिनाम रागादिदोपोंका क्षय सो दोपक्षयरूप आप्ति जिसमें रहे इसप्रकार अर्श आदिकसे अच्प्रत्यय होकर आप्त सिद्ध भया । रागादिदोपोंवाला पुरुष पदार्थको जान-

तादृशा भी अन्यथा कभी अन्यथा कहदेताहै इसलिये उसका व्यवच्छेद करनेकेलिये यथाज्ञान यह विशेषण कहाहै। यहीं बातोंको पुष्ट करनेकेलिये किसी आचार्यका वचन भी कहतेहैं। आप्तका वचन आगम प्रमाण है और दोषोंके क्षयको आप्ति समझना क्षीणदोषोंवाला जो पुरुष है सो अनृतवाक्य नाम झूठा वाक्य नहीं बोलता क्योंकि उसमें झूठके हेतुभूत दोष नहीं है। और शब्दको यथाभिधानता परंपरासे भी जानी इसलिये अक्षरविलेखनद्वारा और सकोपमुखदर्शनसे और हाथप्रभृति पदार्थोंकी चेष्टासे जो शब्दका स्मरण उससे परोक्षपदार्थविषयक ज्ञानको जो दूसरे लोगोंको उत्पन्न करावे सो भी आप्त कहाजाता है। और अक्षरविलेखनादिद्वारा जिस शब्दका स्मरण भया है वह शब्द आगम कहाजाता है।

कस्मादमूदृशस्यैवाप्तत्वमित्याहुः।

पूर्वसूत्रकृतलक्षणविशिष्टको ही आप्तत्व क्यों है सो कहतेहैं।

तस्य हि वचनमविसंवादि भवतीति।

जिसवास्ते पूर्वोक्तलक्षणविशिष्ट पुरुषका ही वचन अविसंवादि नाम अव्यभिचारि होताहै इसलिये वही आप्त है।

यो हि यथावस्थिताभिधेयवेदी परिज्ञानानुसारेण तदुपदेशकुशलश्च भवति तस्यैव वचनं यस्माद्विसंवादशून्यं संजायते मूढवञ्चकवचने विसंवादसंदर्शनात्। ततो यो यस्यावञ्चकः स तस्याप्त इति ऋष्यार्य्यम्लेच्छसाधारणं वृद्धानामाप्तलक्षणमनूदितं भवति।

जो पुरुष यथावस्थित पदार्थके जाननेवाला होताहै और यथाज्ञातको तथैव ही कहनेमें कुशल होताहै उसीका जिसवास्ते वचन विसंवादसे शून्य होताहै क्योंकि मूढ और वंचक पुरुषोंके वचनमें विसंवाद देखाजाता है इसलिये जो जिसका अवंचक है सो उसका आप्त है। यह ऋषि आर्य और म्लेच्छसाधारण वृद्धोंके आप्तलक्षणका ही कथन भया।

आप्तभेदौ प्रदर्शयन्ति।

अब सूत्रकार आप्तके भेदोंको कहतेहैं।

स च द्वेधा लौकिको लोकोत्तरश्चेति।

सो आप्त लौकिक और लोकोत्तर इन भेदोंसे दो प्रकारका होताहै ।

लोके सामान्यजनरूपे भवो लौकिकः लोकादुत्तरः प्रधानं मोक्षमार्गोपदेशकत्वाल्लोकोत्तरः ।

लोकनाम सामान्यजनरूपमें जो होवे सो लौकिक समझना और लोकसे जो उत्तरनाम मोक्षमार्गका उपदेशक जो सो लोकोत्तर समझना ।

तावेव वदन्ति ।

उन दोनोंको कहतेहैं ।

लौकिको जनकादिर्लोकोत्तरस्तु तीर्थकरादिरिति ।

मातापिताप्रभृति जो है सो लौकिक समझने और लोकोत्तर तीर्थंकर आदि जानने ।

प्रथमादिशब्देन जनन्यादिग्रहः द्वितीयादिशब्देन तु गणधरादिग्रहणं । येतु श्रोत्रियाः श्रुतेरपौरुषेयत्वे पौरुषं स्फो-
रयांचक्रुस्ते कीदृशीं श्रुतिममूमस्थाय किं वर्णरूपामानुपूर्वीरूपां वा । यदि प्राचीकीं तदस्पष्टमुपरिष्टादकारादिपौद्गलिको
वर्ण इत्यत्र विशस्यमानत्वादस्याः । अथोदीचीनां तर्हि तत्र तत्प्रतीतौ प्रत्यक्षमनुमानमर्थापत्तिरागमो वा प्रमाणं प्रणि-
गद्येत न प्रत्यक्षमस्य तादात्विकभावस्वभावावभासमात्रचरित्रपवित्रत्वात् संबद्धं वर्तमानंच गृह्यते चक्षुरादिनेतिवचनात् ।
यैव श्रुतिर्मया प्रागध्यगायि सैवेदानीमपीति प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षमक्षूणं लक्ष्यत एवास्याः सदात्वमवद्योतयदितिचेन्नन्वसौ
समुदायमात्रमिदं कलेवरमित्यादितोऽकायितागमेष्वप्येकरसैवास्तीति तेऽपि तथा स्युस्तथाच तत्पठितानुष्ठाननिष्ठापटि-
ष्टता विप्राणामपि प्राप्नोत्यन्यथा प्रत्यवायसम्भवात् । अथात्रेयमभिधानानन्तरानुपलंभेन बाध्यते किंन श्रुतावपि अभि-
व्यक्त्यभावसंभवी तदानीमनुपलम्भः श्रुतौ नाभावनिबन्धन इतिचेत्किन्न नास्तिकसिद्धान्तेऽप्येवमिति सकलं समानं ।
किंच अनुभवानुचरणचतुरं प्रत्यभिज्ञानमनुभवश्च प्रायेण प्रत्यभिज्ञान्ताद्भवि किं जातिस्मृत्यादिमतः कस्यापि कतिपय-
भवविषयां च प्रभावयितुं प्रभुरिति कथमनादौ काले केनापि नेयं श्रुतिः सूत्रितेति प्रकटयितुं पटीयसीयं स्यात् तन्न-
तत्र प्रत्यक्षं क्षमते ।

सूत्रमें जो प्रथम आदि शब्द है उससे माता प्रभृतिका ग्रहण करना और द्वितीय आदिशब्दसे तो गणधर आदिकोंका ग्रहण

जो वेदको माननेवाले मीमासकादिक वेदको अपौरुषेयत्व सिद्ध करनेके लिये पुरुषार्थ करते हैं उनको हम पूछते हैं
समझना। यदि वर्णरूपाको
अब कि यह कैसी श्रुतिको मानकर नित्य कहते हैं क्या वर्णरूपाको अथवा आनुपूर्वीरूपाको मानकर कहते हैं। यदि वर्णरूपाको मानकर कहते हैं तो यह कथन तो ठीक नहीं है क्योंकि अगाड़ी अकारादि पौद्गलिको वर्ण यहाँपर इसको खंडन करेंगे। अब यदि आनुपूर्वीरूपाको मानकर कहते हो तो हम पूछते है कि ईदृशश्रुतिमें नित्यत्वका साधक प्रत्यक्षप्रमाण है अथवा अनुमान है या अर्थापत्ति है किंवा आगमप्रमाण तुम कहते हो। इनमेंसे प्रत्यक्ष तो नहीं कह सकते क्योंकि प्रत्यक्षको तो वर्तमानकालीन पदार्थोंके ग्रहणमें ही सामर्थ्य है क्योंकि संबद्ध जो वर्तमान सो चक्षुरादिकोंसे ग्रहण किया जाता है ऐसा किसी आचार्यका वचन है। यदिकदाचित् जो श्रुति मैंने पूर्वकालमें गायन कीथी उसीका अब भी गायन किया है इत्याकारक प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्ष श्रुतिको नित्यत्व सिद्ध करताहुआ निरंतर देखा जाता है ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते है कि भूतोंका समुदायमात्र ही यह शरीर है परंतु शरीरवान् आत्मा कोई नहीं है इत्यादिक नास्तिकोंके आगमोंमें भी तादृशप्रत्यभिज्ञानरूप प्रत्यक्ष निराबाध है इसलिये नास्तिकोंके आगमकों भी नित्यत्वसिद्ध होवेगा तब नास्तिकागममें पठित मर्यादाका पालन विप्रों (वेदपाठियों) को भी प्राप्त भया अन्यथा प्रत्यवाय (दोष) का संभव होगा। यदिकदाचित् अभिधानके बाद अनुपलंभसे नास्तिकागमोंमें जो प्रत्यभिज्ञान है सो बाधाजाता है ऐसा कहते हो तो हम कहते है कि वेदमें भी वैसे ही क्यों नहीं बाधाजाता यदि अभिधानके बाद वेदमें अनभिव्यक्तिप्रयुक्त अनुपलंभ है परंतु अभावप्रयुक्त तो नहीं है ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते है कि नास्तिकसिद्धान्तमें भी ऐसा ही क्यों नहीं है इसप्रकार उभयत्र सब समान ही है। और भी कहते हैं कि प्रत्यभिज्ञान जो है सो अनुभवानुसरण चतुर है अर्थात् अनुभवसे प्रत्यभिज्ञान होता है और अनुभव जो है सो प्राय प्रत्यभिज्ञातसे होता है क्या जातिस्मृत्यादिवाले किसीको भी अनेक भवविषया प्रत्यभिज्ञाको उत्पन्न करनेमें समर्थ हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता इसलिये अनादिकालमें भी किसीने वेदको नहीं रचा इसकी सिद्धिमें प्रत्यभिज्ञा कैसे समर्थ हो सकती है। इसलिये श्रुतिको नित्यत्वसिद्धिमें प्रत्यक्षप्रमाण तो नहीं कहसकते।

नाप्यनुमानं तद्धि कर्त्रस्मरणं वेदाध्ययनवाच्यत्वं कालत्वं वा तत्रैतेषु सर्वेष्वपि प्रत्यक्षानुमानागमबाधितत्वेन तावत्पक्षदोषः। तत्र प्रत्यक्षबाधस्तावत्तथाविधमठपीठिकाप्रतिष्ठशठवठराध्वर्यूद्गातृहोतृप्रायप्रचुरखंडिकेषु यजुःसामर्चं उच्चैः-

प्रत्यक्षं प्रादुरस्तीति तेन चापौरुपेयत्वपक्षो वाध्यते। अभिव्यक्तिसद्भा-स्तरां युगपत्पूत्कुर्वत्सु कोलाहलममीकुर्वंतीति वर्णयिष्यमाणवर्णव्यक्तिव्यपाक-वादेवेयं प्रतीतिरितिचेत्तर्हि हंसपक्षादिहस्तकेष्वपि किं नेयं तथेति तेऽपि नित्याः स्युः। पुरुपो हि परिभाव्याभि-रणं चेहाप्यनुसन्धानीयं। श्रुतिः पौरुषेयी वर्णाद्यात्मकत्वात् कुमारसंभवादिवदित्यनुमानवाधः शंखसमुद्रमेघादिभ्योऽपौ-धेयभावस्वभावं तदनुगुणां ग्रंथवीथीं ग्रथ्नाति तदभावे तु कौतस्कुतीयं संभवेद्यदिहि रुपेयेभ्योपि कदाचित् तदात्मकं वाक्यमुपलभ्येत तदात्रापि संभाव्येत न चैवं। अथ वर्णाद्यात्मकत्वमात्रं हेतुः चिकीर्पितं चेत्तदानीमप्रयोजकं वल्मीकस्य कुलालपूर्वकत्वे साध्ये मृद्विकारत्ववत्। अथ लौकिकश्लोकादिविलक्षणं तत्तर्हि विरुद्धं साधनशून्यंच कुमारसम्भवादिनिदर्शनं तत्रैव साध्ये विशिष्टमृद्विकारत्ववत् कूटदृष्टांतवचेतिचेन्नैतच्चतुरस्रं यतस्तन्मात्रमेव हेतुर्नचाप्रयोजकं विशिष्टवर्णाद्यात्मकत्वस्यैव काप्यसम्भवाहुश्रवदुर्भणत्वादेस्तु श्रुतेर्विशेपस्य नांग्रास्त्या-ष्ट्राररिराष्ट्रेण भाष्ट्रेणादंष्ट्रिणो जनाः धार्तराष्ट्राः सुराष्ट्रेन महाराष्ट्रे तु नोष्ट्रिण इत्यादौ लौकिकश्लोकेपि सविशेपस्य सद्भा-वात्। अभ्यधिष्महिच यत्कौमारकुमारसम्भवभवाद्वाक्यान्न किंचित्कचिद्वैशिष्ट्यं श्रुतिषु स्थितं तत इमाः स्युः कर्तृ-शून्याः कथमिति।

अनुमानप्रमाणसे भी श्रुतिमें नित्यता सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि उसमें हेतु कर्त्रस्मरणरूप है वा वेदाध्ययनवाच्यत्वरूप है किंवा कालत्वरूप है इन सभोंमें प्रत्यक्ष अनुमान और आगमवाध होनेसे पहिले तो पक्षदोप ही है। इनमेंसे पहिले प्रत्यक्षवाध कहते है कि मठपीठिकामें बैठे हुए जो शठवठर अध्वर्यु उद्गातृहोतृ प्रभृति (यज्ञीय ब्राम्हण विशेप) ब्राम्हणोंके ऋग् यजुः प्रभृति वेदोंको उच्चस्वरसे पढनेपर यह लोग कोलाहल करते है ऐसा प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है इससे अपौरुपेयत्वपक्ष वाधाजाता है। यदिकदाचित् अभिव्यक्तिके सद्भावमात्रसे यह प्रतीति होती है ऐसा तुमलोग कहते हो तो हम कहते है कि एवं नास्तिक सि-द्धांतवाक्योंमें भी अभिव्यक्तिसद्भावाभावसे प्रतीत्यप्रतीति होती है इसलिये वह भी नित्य ही क्यों न होवें। और अगाडी वर्ण-व्यक्तिका खंडन करेंगे सो भी यहाँपर समझ लेना। प्रत्यक्ष वाध दिखाकर अव अनुमान वाध कहते है श्रुति. पौरुपेयी नाम पुरुपप्रणीता है क्योंकि वर्णादिस्वरूप होनेसे जैसे कि वर्णादिस्वरूप होनेसे कुमारसंभवादिक अनित्य है यह अनुमानवाध है। क्योंकि पुरुप ही अभिधेयपदार्थके स्वरूपको जानकर तदनुसार ग्रंथवीथीको (रचनाको) रचता है (इत्यनुभवसिद्धं) इसलिये

पुरुषके न होनेसे तो वेदरूप अक्षररचना किससे हो सकती है अर्थात् नहीं हो सकती । और यदि अपौरुषेय गख समुद्र मेघा दिकोंसे भी कदाचित् वह (अक्षररचना) होती होय तब तो वेदवाक्यमें भी अपौरुषेयत्वकी संभावना मान ली जायँ सो ऐसा तो हम कहीं नहीं देखते । अब वेदको नित्य माननेवाले मीमांसक कहते है कि यदि पूर्वोक्त नित्यत्वबाधकानुमानमें वर्णाद्यात्मकत्व मात्र ही हेतु हमको अभीष्ट है ऐसा तुमलोग कहते हो तब तो इसमें अप्रयोजकत्वरूप दोष है जैसेकि वल्मीकको कुलाल पूर्वकत्वरूप साध्यमें मृद्विकारत्वरूप हेतु है । अब यदि लौकिकश्लोकादि विलक्षणत्वरूप हेतु तुमलोग कहते हो तब तो विरुद्ध है और कुमारसम्भवादिरूप दृष्टांत साधनशून्य भी है जैसे कि उसी (कुलालपूर्वकत्व) साध्यमें विशिष्टमृद्विकारत्व (तन्मात्रवृत्तिधर्मविशिष्ट मृद्विकारत्व) रूप जो हेतु है सो विरुद्ध है और घटरूप जो दृष्टांत है सो साधनशून्य भी है । जैन कहते है कि भाइ मीमांसक वैसा तुमने नही कहना क्योंकि हम वर्णाद्यात्मकत्वमात्र ही हेतु कहते है उसमें अप्रयोजकत्व भी नहीं है क्योंकि विशिष्टवर्णाद्यात्मकत्व तो कहीं भी नहीं है । और दु श्रवदुमणत्वादिक तो नाप्नास्त्वाग्नारिराप्रेण इत्यादि लौकिक श्लोकोंमें भी देखे ही जाते हैं । इसी वार्ताको किसी आचार्यने भी कहा है कि जब कुमारसम्भवके वाक्यसे श्रुतिमें कुछ भी विशेष नही है तब वह श्रुति कर्तृशून्य नाम नित्य कैसे हो सकती है अर्थात् नही हो सकती इति अनुमानबाध ।

प्रजापतिर्वेदमेकमासीन्नाहरासीन्न रात्रिरासीत्सतपोऽतप्यत तस्मात्तपनाच्चत्वारो वेदा अजायन्तेति सकर्तृप्रतिपादकागमबाधः । ननु नायमागमः प्रमाणं भूतार्थाभिधायकत्वात् कार्य एव ह्यर्थे वाचां प्रामाण्यमन्वयव्यतिरेकाभ्यां लोके कार्यान्वितेषु पदार्थेषु पदानां शक्त्यवगमादितिचेत्तदश्लील । कुशलोदर्ककर्कशः साधूपास्यसमग इत्यादेर्भूतार्थस्यापि शब्दस्य लोके प्रयोगोपलम्भात् । अथात्रापि कार्यार्थतैव तस्मादत्र प्रवर्तितव्यमित्यवगमादिति चेत्तर्ह्यवगम उपदेशिक उपदेशिकार्थकृत्यो वा भवेत् । न तावदाद्यस्तथाविधोपदेशाश्रवणात् । द्वितीयस्तु स्यात्र पुनस्तत्रोपदेशस्य प्रामाण्यमस्य स्वार्थप्रमामात्रचरितार्थत्वात् । प्रतिपादकत्वेनैव प्रमाणानां प्रामाण्यादन्यथा प्रवृत्ताविव तत्साध्येऽर्थेपि प्रामाण्यप्रसंगात् । प्रत्यक्षस्य च विवक्षितार्थवचत्साध्यार्थक्रियापि प्रमेया भवेत्तस्मात्पुरुषेच्छाप्रतिबद्धवृत्तिः प्रवृत्तिरस्तु मावाभूत् प्रमाणेन पदार्थपरिच्छेदश्चेत्कारणस्तावतैव प्रेक्षावतोऽपेक्षाबुद्धेः पर्यवसानात् पुण्य प्रामाण्यमस्यावसेय यद्वास्तु तस्मादत्र

प्रवर्त्तितव्यमित्यवगमात् कुशलोदर्केत्यादिवाक्यानां प्रामाण्यं किंतु तद्वदेव वेदकर्तृप्रतिपादकागमस्यापि प्रामाण्यं प्रासांक्षीदेवेति सिद्ध आगमबाधोऽपि ॥

और प्रजापतिर्वेदमेकमासीत् इत्यादि श्रुतिमें ही तपकर रहा ब्रह्मा ही वेदका कर्ता कहा है इसलिये वेदके नित्यत्वमें सकर्तृत्वप्रतिपादक आगम बाध है। अब यदि कदाचित् यह आगम भूत अर्थका अभिधायक (कहनेवाला) है इसलिये प्रमाण ही नही है क्योंकि लोकमें अन्वयव्यतिरेकसे कार्यान्वितपदार्थोंमें ही पदोंकी शक्तिका निश्चय होता है इसलिये कार्य अर्थमें ही शब्दोंको प्रामाण्य है ऐसा तुम लोग कहते हो तब यह तो तुम्हारा कथन ठीक नही है क्योंकि कुशलोदर्केत्यादिक भूत अर्थके वाचकका भी लोकमें प्रयोग देखा जाता है। यदिकदाचित् तस्मात्तत्र प्रवर्तितव्यं इसके अवगमसे यहांपर भी कार्यार्थितया ही प्रवृत्ति है ऐसा तुम लोग कहते हो तो हम पूछते है कि वह अवगम उपदेशिक नाम उपदेश प्राप्त है अथवा उपदेश प्राप्त अर्थसे प्राप्त है। इनमेंसे आद्यपक्ष तो नही कह सकते क्योंकि वैसा उपदेश कहीं भी वेदमें पाया नहीं जाता। द्वितीय पक्ष तो बेशक रहो परंतु उसमें उपदेशको प्रामाण्य नही है क्योंकि उपदेशवाक्यको तो स्वार्थ (अपने अर्थ) की प्रमा (यथार्थज्ञान) मात्रमें ही चरितार्थता है क्योंकि प्रमाणोंको जो प्रामाण्यता है सो प्रतिपादकत्वेन ही है अन्यथा नाम यदि प्रतिपादकत्वमात्रेण ही प्रमाणोंको प्रामाण्य न मानकर उपदेशिकार्थप्राप्त अवगममें भी उपदेशको प्रामाण्य मान लिया जावेगा तब तो प्रवृत्तिकी तरह प्रवृत्तिसे साध्य अर्थमें भी प्रामाण्यका प्रसंग आवेगा। और प्रत्यक्षका जैसे विवक्षित अर्थ प्रमेय है वैसे ही तत्साध्या अर्थक्रिया भी प्रमेया होनी चाहिये। इसलिये पुरुषेच्छाप्रतिबद्धवृत्ति नाम पुरुषकी इच्छा होनेसे ही होनेवाली प्रवृत्ति होवे अथवा न होवे किन्तु जिस वखत प्रमाणने पदार्थका परिच्छेद किया उसी वखत प्रेक्षावान् पुरुषकी अपेक्षाबुद्धिके पर्यवसान (अंत) हो जानेसे उसको पुण्यरूप प्रामाण्य समझ लेना। अब तुष्यतु दुर्जनन्यायसे कहते है कि अथवा तस्मादत्र प्रवर्तितव्यं इस अवगमसे कुशलोदर्केत्यादि लौकिक वाक्योंमें प्रामाण्य रहो परन्तु इसीतरह वेदके कर्ताके प्रतिपादक आगमको भी प्रामाण्य अवश्य प्राप्त होगा। इस रीतिसे आगम बाध भी वेदके नित्यत्वमें सिद्ध भया ॥

यत्तु कर्त्रस्मरणं साधनं तदविशेषणं सविशेषणं वा वर्ण्येत प्राक्तनं तावत् पुराणकूपप्रासादारामविहारादिभिर्व्यभिचारि तेषां कर्त्रस्मरणेऽपि पौरुषेयत्वात्। द्वितीयं तु संप्रदायाव्यवच्छेदे सति कर्त्रस्मरणादिति व्यधिकरणासिद्धं कर्त्रस्म-

रणस्य श्रुतेरन्यतराश्रये श्रुसि वर्त्तनात् । अथापौरुपेयी श्रुतिः संप्रदायाव्यवच्छेदे सत्यस्मर्यमाणकर्तृकत्वादाकाशवदित्यनु-
मानरचनायामनवकाशा व्यधिकरणासिद्धिमवमेवमपि विशेषणसंदिग्धासिद्धतापत्ते । तथाह्यादिमतामपि प्रासादादीना
सम्प्रदायो व्यवच्छिद्यमानो विलोक्यते अनादेस्तु श्रुतेरन्यवच्छेदी सम्प्रदायोऽद्यापि विद्यत इति मृतकमुष्टिबंधनमन्वकार्पीत्
तथा च कथ न संदिग्धासिद्ध विशेषण । विशेष्यमप्युभयासिद्ध वादिप्रतिवादिभ्यां तत्र कर्तुं स्मरणात् ।

और जो कर्त्रस्मरणरूपहेतु तुमने वेदकी नित्यतामें कहा है सो किंचिद्विशेषण शून्यनाम शुद्ध ही हेतुत्वेन कहा है अथवा
सविशेषण कहा है निर्विशेषण तो यह हेतु प्राचीनकूप और प्राचीन मकान वा आरामादिकोंमें व्यभिचारी है क्योंकि उनके
कर्त्ताका स्मरण नहीं है तो भी उनको पौरुपेयत्व है। और द्वितीयनाम सम्प्रदायाव्यवच्छेदेसति कर्त्रस्मरणात् यह हेतु तो व्यधिकर-
णासिद्ध है क्योंकि कर्त्रस्मरण जो है सो श्रुतिसे अन्य जो पुरुषरूप आश्रय है उसमें रहता है। यदिकदाचित् आकाशकी तरह
सम्प्रदायाव्यवच्छेदेसत्यस्मर्यमाणकर्तृक होनेसे श्रुति पौरुपेयी है ऐसी अनुमान रचनाके करनेसे व्यधिकरणासिद्धिका अवकाश नहीं
है ऐसा तुम कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि ऐसे भी विशेषणसंदिग्धताकी आपत्ति है। क्योंकि आदिमान भी प्रासादादिकोंके
सम्प्रदायका व्यवच्छेद देखा जाता है तब अनादिसिद्ध श्रुतिका अव्यवच्छेदी सम्प्रदाय आजतक भी विद्यमान है यह कथन तो
मृतक पुरुषके मुष्टिबंधनका अनुकरण करता है अर्थात् जैसे मृतक पुरुषका मुष्टिबंधन नहीं हो सकता वैसे ही यह कथन भी नहीं
बनसकता एवसति विशेषण संदिग्धासिद्ध क्यों नहीं अर्थात् है ही । एव विशेष्य भी उभयासिद्ध है क्योंकि वादी और प्रतिवादी
दोनोंको ही वेदके कर्त्ताका स्मरण है।

ननु श्रोत्रिय' श्रुतौ कर्तारं स्मरन्तीति मृषोद्य श्रोत्रियापशदाः खल्वमीतिचेत् ननु यूयमाम्नायमाम्नासिष्ट तावत्तो यो
वै वेदांश्च प्रहिणोतीति प्रजापतिः सोम राजानमन्वसृजत् ततस्त्रयो वेदा अन्वसृजन्तेति च स्वयमेव स्वस्य कर्तारं स्मारय-
न्तीं श्रुतिं विश्रुतामश्रुतामिवगणयतो यूयमेव श्रोत्रियापशदाः किं न स्यात । किंच क एव माध्यंदिनतित्तिरिप्रभृतिमु-
नीनामांकिता' काश्चन शाखास्तत्कृतत्वादेव मन्वादिस्मृत्यादिवत् । उत्सन्नानां तासां कल्पादौ तैर्दृष्टत्वात्प्रकाशितत्वाद्वा
तन्नामचिह्ने अनादिकालेऽनन्तमुनिनामांकितत्व तासा स्यात् । जैनाश्च कालासुरमेतत्कर्तारं स्मरंति । कर्तृविशेषे विप्रति-
पत्तेरप्रमाणमेवैतत्स्मरणमितिचेन्नैव यतो यत्रैव विप्रतिपत्तिस्तदेवाप्रमाणमस्तु न पुन. कर्तृमात्रस्मरणमपि वेदस्याध्ययन

सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकं वेदाध्ययनवाच्यत्वादधुनाध्ययनं यथा ॥१॥ अतीतानागतौ कालौ वेदकारविवर्जितौ कालत्वात्तद्यथा कालो वर्तमानः समीक्ष्यत इति कारिकोक्तेर्वेदाध्ययनवाच्यत्वकालत्वेऽपि हेतू कुरंगशृंगभंगुरं कुरंगाक्षीणां चेत इति वाक्याध्ययनं गुर्वध्ययनपूर्वकमेतद्वाक्याध्ययनवाच्यत्वादधुनातनाध्ययनवदतीतानागतौ कालौ प्रक्रांतवाक्यकर्तृवर्जितौ कालत्वाद्वर्तमानकालवदितिवदप्रयोजकत्वादनाकर्णनीयौ सकर्णानां ॥

यदिकदाचित् श्रुतिमें श्रोत्रिय (वेदपाठी ब्राह्मण) लोग कर्ताका स्मरण करते हैं यह तो कथन झूठा है क्योंकि वैसा कहनेवाले श्रोत्रिय नहीं है किन्तु वह तो श्रोत्रियापशद है ऐसा तुम कहते हो तब हम जैन कहते हैं कि यूयमाम्नायमाम्नासिष्ट इत्यादिक स्वयमेव अपने कर्ताका स्मरण करा रही अच्छीतरै श्रवण करी गयी श्रुतिको न श्रवण की हुईकी तरह मान रहे तुम ही श्रोत्रियापशद क्यो नहीं हो। और भी युक्ति कहते हैं कि माध्यंदिन और तित्तिरी प्रभृति मुनियोंके नामोंसे अंकित के एक वेदकी शाखाए है सो तत्तत् ऋषियोंसे कृत ही हैं जैसे कि मन्वादिनामोंसे अंकित मनुस्मृति प्रभृतिग्रंथ मन्वादिकृत हैं। यदिकदाचित् कल्पके आदिकालमे (उत्सन्न) नजदीक देशमें स्थित तत्तत् शाखाओंको उन्होने देखनेसे अथवा प्रकाश करनेसे तन्नामाङ्कितत्व है अर्थात् कल्पके आदिकालमें उन उन ऋषियोंने तत्तच्छाखाओंको सबमे पहिले देखा था अथवा प्रकाश किया था इसलिये तत्तन्मुनियोंके नामसे ही तत्तच्छाखाए प्रसिद्ध भयीं ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि ऐसे तो अनादिकालमें अनंत मुनिनामांकित शाखाओंको होना चाहिये। और जैन तो कालासुरको ही वेदका कर्ता स्मरण करते हैं। यदि कर्ता विशेषमें विवाद होनेसे यह जैनोंका स्मरण प्रमाणरूप नहीं है ऐसा तुम कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि जिस अंशमें विप्रतिपत्ति है वहां अप्रमाण रहो परंतु कर्तामात्रका स्मरण भी तो अप्रमाण नहीं हो सकता। वेदका अध्ययनमात्र गुरुके अध्ययनके अनन्तर होता है क्योंकि वेदाध्ययनवाच्यहोनेसे जो २ वेदाध्ययन वाच्य है सो सब गुर्वध्ययनपूर्वक ही है जैसे कि अबका वेदाध्ययन गुर्वध्ययनपूर्वक ही है। और अतीत तथा अनागत जो काल हैं सो काल होनेसे वेदकार नाम वेदके कर्तासे वर्जित हैं जैसे कि वर्तमानकाल काल होनेसे वेदके कर्तासे वर्जित है अर्थात् इसमे वेद नित्य ही है जैन कहते हैं कि इस कारिकामें कथित जो वेदाध्ययनवाच्यत्व और कालत्वरूप हेतु है सो भी कुरंगशृंगभंगुरं कुरंगाक्षीणां चेतः (स्त्रियोंका चित्त कुरंगशृंगकी तरह भंगुर है) इस वाक्यका अध्ययन एतद्वाक्याध्ययन वाच्य होनेसे गुर्वध्ययनपूर्वक होता है। और अतीत तथा अनागत जो काल हैं सो काल होनेसे कुरंगशृंग

इत्यादिक वाक्यके कर्तासे शून्य है जैसे कि वर्तमानकाल पूर्वोक्त वाक्यके कर्तासे वर्जित है इसकी तरह बुद्धिमान पुरुषोंको अनाकर्णनीय नाम सुनने योग्य नहीं हैं ।

अथार्थापत्तेरपौरुषेयत्वनिर्णयो वेदस्य तथाहि संवादविसंवाददर्शनादर्शनाभ्यां तावदशेषनिःशेषपुरुषैः प्रामाण्येन निर्णायि तन्निर्णयश्चास्य पौरुषेयत्वे दुरापो यतः शब्दे दोषोद्भवस्तावद्वक्त्रधीन इति स्थितिः । तदभावः क्वचित्तावद्गुणवद्वक्तृकत्वतः तद्गुणैरपकृष्टानां शब्दे संक्रान्त्यसम्भवात् । वेदेतु गुणवान्कर्ता निर्णेतुं नैव शक्यते ततश्च दोषाभावोऽपि निर्णेतुं शक्यतां कथं । वक्त्रभावेतु सुज्ञानो दोषाभावो विभाव्यते २ । यस्माद्वक्तुरभावेन न स्युर्दोषा निराश्रयः । ततः प्रामाण्यनिर्णयान्यथानुपपत्तेरपौरुषेयोऽयमिति । अस्तु तावदत्र कृपणपशुपरम्पराप्राणव्यपरोपणप्रगुणप्रचुरोपदेशापवित्रत्वादप्रमाणमेवैष इत्यनुत्तरोत्तरप्रकारः । प्रामाण्यनिर्णयेऽप्यस्य न साध्यसिद्धिर्विरुद्धत्वाद्गुणवद्वक्तृकतायामेव वाक्येषु प्रामाण्यनिर्णयोपपत्तेः । पुरुषो हि यथा रागादिमान् मृषावादी तथा सत्यशौचादिमानवितथवचनः समुपलब्धः श्रुतौ तु तदुभयाभावेनैरर्थक्यमेव भवेत् कथं वक्तुर्गुणित्वनिश्चयः छन्दसीतिचेत् कथं पितृपितामहप्रपितामहादेरप्यसौ ते स्याद्येन तदुक्तान्यस्ताक्षरथेणैः परपर्योपदेशस्य चानुसारेण प्राग्देवनिधानादौ निःशङ्कः प्रवर्त्तेथाः कचित्संवादाच्चेदत एवान्यत्रापि प्रतीहि कारीर्यादौ संवाददर्शनात् कादाचित्कविसंवादस्तु सामग्रीवैगुण्यात् त्वयापि प्रतीयत एव प्रतीताप्तोपदिष्टमन्त्रवत् प्रतिपादितश्च प्राक् रागद्वेषाज्ञानशून्यपुरुषविशेषनिर्णयः ।

अब यदि अर्थापत्तिरूपप्रमाणसे वेदके अपौरुषेयत्वका निश्चय होता है तथाहि । संवाद (सफलप्रवृत्ति) विसंवाद (निष्फल प्रवृत्ति) के यथाक्रमेण देखने और न देखनेसे ही वेदको सब प्रामाण्येन निर्णय करते है सो उसका निर्णय तो इसको पौरुषेयत्व माननेसे नहीं हो सकता क्योंकि शब्दमें जो दोषका उद्भवनाम दोषका होना है सो वक्ताके अधीन है ऐसी स्थितिनाम मर्यादा है किसी शब्दमें जो दोषका अभाव है सो तो गुणवान् वक्ता होनेसे है । क्योंकि उस (वक्ता) के गुणासे अपकृष्टनाम दबाये हुए दोषोंका संक्रम शब्दमें नहीं हो सकता । वेदमें तो गुणवान् कर्ताका निर्णय नहीं कर सकते । इसलिये दोषाभावका भी निश्चय कैसे कर सकते है और जब वेदका कोई कर्ता ही न माना तब तो स्वतःसिद्ध ही दोषाभावका ज्ञान हो जावेगा । क्योंकि यतः वक्ताके न होनेसे दोष निराश्रय नहीं रह सकते । इसलिये प्रामाण्यनिर्णयकी अन्यथानुपपत्तिसे वेद अपौरुषेय ही है । जैन कहते

हैं कि अच्छा वेदमें दीन बेचारे पशुओंकी परंपराके प्राणोंके नाशमें प्रवीण अनेक उपदेश हैं इसलिये अपवित्र होनेसे वेद अप्रमाण ही रहो इसलिये तुम्हारा जो उत्तर है सो ठीक नहीं है। अथवा ऐसा (प्रमाण) मानने पर भी विरुद्ध होनेसे साध्यसिद्धि नहीं होती क्योंकि गुणवान् वक्ता होनेसे ही वाक्यमें साध्यका निश्चय होता है। यतः जिसप्रकार रागादिमान् पुरुष (मृषावादी) झूठा होता है इसीप्रकार सत्यशौचादिमान् अवितथवचन अनुभवमें आता है और वेदमें तो दोनों प्रकारके वक्ताके न होनेसे वेदको निरर्थकता ही होगी। यदिकदाचित् वेदके वक्तामें गुणित्वका निश्चय कैसे हो सकेगा अर्थात् नहीं हो सकता ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि पितृपितामहप्रभृति पूर्व पुरुषोंमें भी तुमको गुणित्वका निश्चय कैसे होता है कि जिससे तुम निःशंक उनके लिखे अक्षरोंको देखकर अथवा उपदेशपरंपरासे उनके लेने देने द्रव्यमें निःशङ्क प्रवृत्त हो जाते हो। यदि कदाचित् किसी स्थलमें संवाद होनेसे पितृपिताहादिकोंमें गुणित्वका निश्चय होता है ऐसा तुम कहते हो तो वैसे ही वेदमें भी गुणित्वका निश्चय तुम जानो। क्योंकि कारीर्यादि (वृष्टिनिमित्तकयागादि) कर्म संवाद देखा जाता है। कहींक जो विसंवाद है सो तो सामग्रीके वैगुण्य (विरुद्धादि) से तुम लोगोंने भी माना ही है जैसे कि निश्चित आप्तपुरुषने कहे हुए मंत्रमें सामग्री वैगुण्यादिकसे कहींक विसंवाद होता है। और रागद्वेष तथा अज्ञानसे शून्य पुरुष विशेषका निर्णय तो हम पहिले कह ही चुके हैं।

किंचास्य व्याख्यानं तावत्पौरुषेयमेवापौरुषेयत्वे भावनानियोगादिविरुद्धव्याख्याभेदाभावप्रसंगात् तथा च को नामात्र विश्रंभो भवेत्। कथंचैतद्ध्वनीनामर्थनिर्णीतिर्लौकिकध्वन्यनुसारेणेतिचेत्तर्हि न पौरुषेयत्वनिर्णीतिरपितत्रोभयस्यापि विभावनादन्यथा त्वर्द्धजरतीयं न च लौकिकार्थानुसारेण मदीयोऽर्थः स्थापनीय इति श्रुतिरेव स्वयं वक्ति नच जैमिन्यादावपि तथा कथयति प्रत्यय इति पौरुषेयवचसामर्थोऽप्यन्य एव कोऽपि संभाव्येत। पौरुषेयीणामपि म्लेच्छार्यवाचामेकार्थो नास्ति किंपुनरपौरुषेयवाचां ततः परमकृपापीयूषप्लावितांतःकरणः कोऽपि पुमान्निर्दोषः प्रसिद्धार्थैर्ध्वनिभिः स्वाध्यायं विधाय व्याख्यातीदानींतनग्रंथकारवदिति युक्तं पश्यामः अयोनामन्न छंदः स्वीकुरुषे प्रमाणमथचेत्तद्व्याख्यानिश्चायकं किंचिद्विश्वविदं न जल्पसि ततो ज्ञातोऽस्य मूल्यकगीति। आगमोपि नागोरूपेयत्वमाख्याति पौरुषेयत्वाविष्कारिण एवास्योक्तवत् मन्त्रात्। अपिचेयमानुपूर्वी पिपीलिकादीनामिव देशकृताङ्कुरपत्रकंदलकांडादीनामिव कालकृता वा

वर्णाना वेदे न सभवति तेषा नित्यव्यापकत्वात् । क्रमेणाभिव्यक्तेः सा सभवतीति चेत्तर्हि कथमपौरुषेयी भवेदभिव्यक्तिः पौरुषेयत्वादिति सिद्धा पौरुषेयी श्रुति' ।

और भी वात है कि कदाचित् वेदको अपौरुषेयमानो तो भी इसकी व्याख्या तो पौरुषेय ही है क्योंकि यदि व्याख्या अपौरुषेय होवे तो भावना और नियोगादिरूप विरुद्ध व्याख्या भेदके अभावका प्रसग होवे एवसति वेदमें क्या विश्वास रहा । और भी हम पूछते हैं कि वेदके शब्दोंके अर्थका निर्णय कैसे होता है यदि लौकिक शब्दोंकी तरह तुम कहोगे तो हम कहते हैं कि पौरुषेयत्वका निर्णय भी वेदमें लौकिक शब्दवत् ही क्यों नहीं होता क्योंकि उसमें तो दोनोंकी ही प्रतीति होती है अन्यथा नाम यदि लौकिकशब्दोंमें सिद्ध एकको तो मानोगे और दूसरे धर्मको न मानोगे तो अर्धजरतिन्यायका प्रसग आवेगा । इसलिये परमरूपारूप पीयूष (अमृतसे) शवित है अत करण जिसका नाम परमकृपालु कोईएक निर्दोषपुरुष प्रसिद्ध अर्थवाले शब्दोंसे व्याध्यायका विधान करके व्याख्या करता है जैसे कि इदानींतन ग्रथकार व्याख्या करते हैं जैन ही कहते हैं कि यह वात हम युक्तियुक्त समझते हैं । और हम कहेंगे भी क्या कि हे मीमासक तुम यदि वेदको प्रमाण मानते हो और उसके अर्थका निश्चायक कोई सज्जन नहीं मानते हो तब तो भाई इस वेदकी मूल्यकथी वात हो गयी इति । आगम भी वेदको अपौरुषेयत्व नहीं कहता है किन्तु पौरुषेयत्वको ही प्रगट करनेवाले आगमका सद्भाव है । वेदकी नित्यतामें और भी दोष कहते हैं कि यह जो वर्णोंकी आनुपूर्वी है सो पिपीलिकादिकोंकी तरह देशकृता और अकुर पत्र तथा कदल आदिकोंकी तरह कालकृता नहीं हो सकती क्योंकि तवमते वर्णोंको नित्यत्व और व्यापकत्व है । यदि कदाचित् क्रमेण अभिव्यक्तिके स्वीकारसे पूर्वोक्त देशकाल व्यवस्था वन सकती है ऐसा तुम लोक कहते हो तब हम कहते हैं कि यह अभिव्यक्ति पौरुषेयी होनेसे अपौरुषेयी कैसे हो सकती है जैन ही कहते हैं कि इसप्रकार श्रुतिपौरुषेयी सिद्ध गयी ।

आप्त प्ररूप्य तद्वचन प्ररूपयन्ति ।

आप्तका निरूपणकरके अव सूत्रकार आप्त वचनका निरूपण करते हैं ।

वर्णपदवाक्यात्मकं वचनमिति ।

वर्ण पद तथा वाक्यस्वरूप वचन होता है अर्थात् वर्णस्वरूप पदस्वरूप और वाक्यस्वरूप वचन होता है ।

उपलक्षणं चैतत्प्रकरणपरिच्छेदादीनामपि ।

सूत्रमें जो वर्णाद्यात्मकत्व वचनको कहा है सो प्रकरणपरिच्छेदादिकोंका भी उपलक्षक है ।

तत्र वर्णं वर्णयन्ति ।

उनमेंसे अब सूत्रकार वर्णका वर्णन करते है ।

अकारादि पौद्गलिको वर्ण इति ।

पुद्गलद्रव्यसे आरब्ध अकारादि वर्ण जानने ।

पुद्गलैर्भाषावर्गणापरमाणुभिरारब्धः पौद्गलिकः अत्र याज्ञिकाः प्रज्ञापयन्ति वर्णस्यानित्यत्वमेव तावद्दुरापं कुतस्तरां पुद्गलारब्धत्वमस्य स्यात् । तथाहि स एवायं गकार इति प्रत्यभिज्ञा शब्दो नित्यः श्रावणत्वात् शब्दत्ववदित्यनुमानं शब्दो नित्यः परार्थं तदुच्चारणान्यथानुपपत्तेरित्यर्थापत्तिश्चेति प्रमाणानि दिनकरकरनिकरनिरंतरप्रसरपरामर्शोपजातज्ञं-भारंभाम्भोजानीव मनःप्रसादमस्य नित्यत्वमेव द्योतयन्ति । तदनघं यतः प्रत्यभिज्ञानं तावत्कथञ्चिदनित्यत्वेनैवाविना-भावमाभेजानमेकांतैकरूपतायां ध्वनेः स एवायमित्याकारोभयगोचरत्वविरोधात् । कथमात्मनि तद्रूपेऽपि स एवाहमिति प्रत्यभिज्ञेतिचेत्तदशस्यं तस्यापि कथंचिदनित्यस्यैव स्वीकारात् । प्रत्यभिज्ञाभासश्चायं प्रत्यक्षानुमानाभ्यां बाध्यमानत्वात् प्रदीपप्रत्यभिज्ञावत् । प्रत्यक्षं हि तावदुत्पेदेच विपेदेच वागियमिति प्रवर्तते । न च प्रत्यभिज्ञानेनैवेदं प्रत्यक्षं बाधिष्यत इत्यभिधानीयमस्यानन्यथासिद्धत्वात् । अभिव्यक्तिभावाभावाभ्यामेवेयं प्रतीतिरितिचेन् कुटकटककटाहकटाक्षादावपि किं नैवं तथा । कुंभकारमुद्गरादिकारणकलापव्यापारोपलंभात्तदुत्पत्तिविपत्तिस्वीकृतौ तालुवातादिहेतुव्यापारप्रेक्षणादक्षरेष्वपि तत्स्वीकारोऽस्तु । तालुवातादेरभिव्यत्त्यनभिव्यक्तिमात्रहेतुत्वे कुलालादेरपि तदस्तु ननाभिव्यक्तिभावाभावाभ्यां तथा प्रतीतिरुपपादि । दिनकरमरीचिराजीव्यज्यमाने धनतरतिमिरनिकराकीर्यमाणे च कुम्भादावुत्पादि व्ययादि चायमिति प्रतीत्युपपत्तेः । तिमिरावरणवेलायामपि स्पार्शनप्रत्यक्षेणास्योपलंभान्न तथेयमितिचेत्तर्हि नोपालम्भस्तदा किं वक्ष्यसि अथ क्वापि तिमिरादेस्तत्सत्वानिरोधित्वावधारणात सर्वत्रानभिव्यक्तिदशायां तत्सत्वं निश्चीयत इतिचेत्किमाद्यतदशायां

शब्दस्य सत्वनिर्णायकं न किंचित्प्रमाणमस्ति ओमितिचेत्तर्हि साधकप्रमाणाभावादसत्वमस्तु । अस्त्येव प्रत्यभिज्ञादिक तदितिचेन्नास्य प्रत्यक्षबाधितत्वेनोन्मतुमशक्तेः उन्मज्जनेपि व्यक्तिभावाभावयो कुम्भादाविवात्राप्युदयव्ययाध्यवसायो न स्यादस्तिचाय तस्मादनन्यथासिद्धप्रत्यक्षप्रतिबद्ध एवेति निश्चीयते ।

पुद्गलद्रव्यसे जो आरब्ध होवे उसको पौद्गलिक कहा जाता हे यहा (याज्ञिक) मीमासक ऐसा कहते है कि पहिले वर्णोंको अनित्यत्व ही नही है तो फिर शब्दम पौद्गलिकत्व कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता अब प्रथकार मीमासक मतमें शब्दको नित्यत्व सयुक्तया कहते है । यह वही गकार है इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा और शब्दत्वकी तरह श्रावण नाम श्रोत्रेन्द्रियज ज्ञानका विषय होनेसे शब्द भी नित्य है इत्याकारक अनुमान एव दूसरे पुरुषके लिये शब्दके उच्चारणकी अन्यथानुपपत्ति होनेसे शब्द नित्य है यह अर्थापत्ति इसप्रकार यह तीन प्रमाण सूर्यदेवकी किरणोंके प्रसारके देखनेसे खिले हुए पद्म मन प्रसादकी तरह शब्दको नित्यत्व ही द्योतन करते है । जैन कहते हैं कि उनका यह कथन कहनेलायक नहीं है क्योंकि इनमेंसे पहिले प्रत्यभिज्ञान जो है सो तो विषयको कथञ्चित् अनित्य होनेसे ही होता हे क्योंकि शब्दको एकान्तेन नित्य होनेसे स एवाय इत्याकारक उभयगोचरत्वका विरोध है । यदि एकात नित्य भी आत्मामें स एवाह इति प्रत्यभिज्ञा कैसे होती है ऐसा तुम लोग कहते हो तो यह कथन तो ठीक नहीं है क्योंकि आत्माको भी तो कथञ्चित् हमने अनित्य ही माना है । और पूर्वोक्त जो प्रत्यभिज्ञा तुम कहते हो सो तो प्रत्यभिज्ञाभास है क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान इनसे बाध्यमान है जेसे कि प्रदीपकी प्रत्यभिज्ञा बाध्यमाना हे । प्रत्यक्ष बाध कहते है यह वाक् उत्पन्न होती है ओर नष्ट होती हे इसप्रकार प्रत्यक्ष उत्पन्न होता हे । प्रत्यभिज्ञानसे ही यह प्रत्यक्ष बाधा जावेगा ऐसा नहीं कहना क्योंकि प्रत्यक्ष तो अनन्यथा सिद्ध है यदि कदाचित् अभिव्यक्तिके होने न होनेसे ही यह प्रतीति होती हे ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि घट (कट) चटाई कटाह ओर कटाक्षआदिकोंमें भी उत्पन्न नष्ट इत्यादि प्रतीति अभिव्यक्ति भावाभावसे ही क्यों नहीं होती अर्थात् एवरीत्या जगत्स्थ सर्व पदार्थ नित्य ही मान लो । यदि कुभकार और मुद्गरादिरूप कारण कलापके व्यापारके देखनेसे घटादिकोंकी उत्पत्ति और नाश तुम मानोंगे तो हम कहते है कि तालुवातादिरूप हेतुओंके व्यापारके देखनेसे अक्षरोंमें भी उत्पत्ति और नाश स्वीकार करो । और यदि तालुवातादिकोंको शब्दकी अभिव्यत्तयनभिव्यक्तिमात्रमें हेतुता स्वीकार करोंगे तो हम कहते हैं कि कुलाल आदिकोंको

भी अभिव्यक्तनभिव्यक्तिमें ही हेतुता रहो । अभिव्यक्तिके भावाभावसे घटादिकोंमें उत्पादि और व्यपादिनाम उत्पन्नः और नष्टः यह प्रतीति नही हो सकती क्योंकि सूर्यके आलोकसे प्रतीयमान और अंधकारके समूहसे व्याप्त जो घटादिक हैं उनमें भी यथाक्रमेण उत्पादि और व्यपादि यह प्रतीति नहीं होती है । यदि कदाचित् तिमिरावरणनाम अंधकार व्याप्तदशामें भी स्पार्शन प्रत्यक्षके होनेसे तद्दशामें तादृशप्रतीति नही होती ऐसा तुम लोग कहते हो तो हम कहते है कि जब स्पार्शन प्रतीति नहीं होती तब क्या कहोगे । यदि किसी एक स्थानमें तिमिर (अंधकार) आदिकोंको घट आदिक पदार्थोंमें अविरोधित्वका निश्चय होनेसे सर्वत्र ही अनभिव्यक्ति दशामें घटादिकोंके सत्वका निश्चय होता है ऐसा तुम कहते हो तो हम जैन कहते है कि हम तुमको पूछते है कि आवृतावस्थामें शब्दका निश्चायक कोई प्रमाण नही है क्या । यदि नहीं है तो साधक प्रमाणके न होनेसे तद्दशायां शब्दका असत्व ही रहो । यदि प्रत्यभिज्ञादिक प्रमाण है ही ऐसा कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि प्रत्यभिज्ञाको प्रत्यक्ष बाधित होनेसे यहा प्रमाणत्वेन नही कह सकते अथवा इस प्रमाणसे यहां निश्चय हो भी जावे तो भी जैसे व्यक्तिके भाव और अभावसे घटादिकोंमें उत्पाद व्यय और ध्रौव्य यह निश्चय नही होता एवं यहां (शब्दमें) भी न होना चाहिये होता तो है इसलिये अन-न्यथासिद्ध जो प्रत्यक्ष उससे पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञारूप प्रमाण प्रतिबद्ध ही है ।

अनित्यः शब्दः तीव्रमन्दतादिधर्म्मोपेतत्वात् सुखदुःखादिवदित्यनुमानबाधः व्यंजकाश्रितास्तीव्रतादयस्तत्र भान्तीति चेत् किं तत्र व्यंजकं । कोष्ठवायुविशेषाध्वनय इति चेत् कथं तर्हि तद्धर्म्माणां तेषां श्रावणप्रत्यक्षप्रतिभासः स्यात् ध्वनीनामश्रावणत्वेन तद्धर्म्माणामप्यश्रावणत्वात् । न खलु मृदुसमीरलहरीतरंग्यमाणनिःकंपपयोभाजनादौ प्रतिबिंबित-मुखादिगतत्वेन तरलत्वमिव माधुर्यमप्यचाक्षुपं चक्षुः प्रत्यक्षेण प्रेक्षते । श्रोत्रग्राह्य एव कश्चिदर्थः शब्दस्य व्यंजकस्तीव्रत्वादिधर्म्मवाननित्यश्रेण्यत इति चेन्न तस्यैव शब्दत्वात् श्रोत्रग्राह्यत्वं हि शब्दलक्षणं तल्लक्षणयुक्तस्य च तस्य ततोऽर्थान्तरत्वमयुक्तं । किं च कस्य किं कुर्वतोऽमी व्यंजका ध्वनयो भवेयुः शब्दस्य श्रोत्रस्योभयस्य वा संस्कारमितिचेत् कोयं संस्कारोऽत्र रूपांतरोत्पत्तिरावरणविपत्तिर्वा आद्यश्चेत् कथं न शब्दश्रोत्रयोरनित्यत्वं स्यात् स्वभावान्यत्वरूपत्वात्तस्य । अथ रूपं धर्म्मो धर्म्मधर्म्मिणोश्च भेदात्तदुत्पत्तावपि न भावस्वभावान्यत्वमिति चेन्नतु धर्म्मांतरोत्पादेपि भावस्वभावो जनयद्रूपस्वरूपस्तादृगेव चेत्तदा पटादिनेव श्रोत्रेण घटादेरिव ध्वनेर्नोपलम्भः संभवेत् । तत्संबन्धिनस्तस्य करणाददोप

कथंचिदविष्वग्भावान्नान्यो भवितुमर्हतीति तदात्मकध-
इति चेत् स तावत् संबंधो न संयोगस्तस्याद्रव्यत्वात् समवायस्तु कथंचिदविष्वग्भावान्नान्यो भवितुमर्हतीति तदात्मकध-
र्मोत्पत्तौ धर्मिणोऽपि कथंचिदुत्पत्तिरनिवार्या । आवरणापगम संस्कार' क्षेमकार इति चेत् स तर्हि शब्दस्यैव समा-
व्यते ततश्चैकनावरणाविगमे समग्रवर्णाकर्णन स्यात् प्रतिवर्णं पृथगावरणमिति यस्यैवावरणविरमण तस्यैवोपलब्धिरितिचे-
त्तन्नावितथमपृथग्देशवर्तमानैकेन्द्रियग्राह्याणा प्रतिनियतावरणावार्यत्वविरोधात् । यत्खलु प्रतिनियतावरणवार्यं तत्पृ-
थग्देशे वर्तमानमनेकेन्द्रियग्राह्य च दृष्ट यथा घटपटौ यथा वा रूपरसाविति । अपृथग्देशे वर्तमानैकेन्द्रियग्राह्यत्वादेन
च नास्य प्रतिनियतव्यंजकव्यंग्यत्वमपि ।

प्रत्यक्षबाध कहकर अब ग्रंथकार अनुमानबाध कहते है सुख और दुःखादिकोंकी तरह तीव्रमन्दतादिधर्मोपेत होनेसे शब्द अनित्य है इत्याकारक अनुमानसे पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञाम बाध है । यदि कदाचित् तीव्रतादिक जो धर्म है सो व्यंजकाश्रित है वही शब्दमें प्रतीत होते हैं परंतु शब्दमें नहीं है ऐसा तुम कहते हो तो हम पूछते हैं कि शब्दमें व्यंजक क्या है यदि कोष्ठवायुवि-शेषध्वनिये ही व्यंजक है तो उन ध्वनियोंके धर्मभूत तीव्रतादिकोंका श्रावण प्रत्यक्ष कैसे हो सकेगा अर्थात् न होना चाहिये क्योंकि ध्वनियोंको अश्रावण होनेसे तद्धर्मभूत तीव्रतादिकोंको भी श्रावणत्व नहीं हो सकता । क्योंकि मृदुसमीरलहरी (वायु) से तरंगोवाले कंपरहित जलके पात्रमें प्रतिबिंबित मुखादिगत तरलत्वकी तरह अचाक्षुष माधुर्यको भी चक्षु नहीं देखता है । यदि कदाचित् श्रोत्रग्राह्य ही कोई एक पदार्थ शब्दका व्यंजक तीव्रतादिधर्मवान् और अनित्य हमको इष्ट है ऐसा तुम कहते हो तो नहीं घटना क्योंकि उसीको शब्दरूपता है । क्योंकि श्रोत्रग्राह्यत्व ही शब्दका लक्षण है सो तादृशलक्षणयुक्त जो व्यंजक है उसको शब्दसे भिन्न मानना अयुक्त है । और भी बात है कि किसको क्या कर रही यह ध्वनिये व्यंजक होती है । शब्दके अथवा श्रोत्रके वा उभयके संस्कारको करती है ऐसा कहते हो तो हम पूछते हैं कि यहा संस्कार क्या है क्या रूपांतरकी उत्पत्तित्व है अथवा आवरण विपत्तिरूप है । यदि रूपांतरोत्पत्तिरूप कहते हो तो शब्द और श्रोत्रको अनित्यत्व क्यों न होवे क्योंकि उस (अनित्यत्वको) स्वभावान्यत्वरूपता है । यदि रूप है धर्म धर्म और धर्मीका है भेद इसलिये रूपांतरकी उत्पत्ति होनेपर भी भावस्वभावान्यत्व नहीं होता ऐसा तुम कहते हो तो हम पूछते है कि धर्मांतरके उत्पन्न होनेपर भी भावस्वभावको न उत्पन्न करता हुआ रूपस्वरूप यदि वैसा ही है तब तो पटादिकोंकी तरह श्रोत्रेन्द्रियसे घटादिकोंकी तरह (ध्वनि) शब्दका (उपलम्भ)

ज्ञान न होवे । यदि उसका संबंधि यह किया जाता है इसलिये दोष नही है ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि इनका संबंध संयोग तो नहीं कह सकते क्योंकि उसको द्रव्यरूपता नही है । और समवाय तो कथंचित् अविष्वग्भावसे अन्य नही हो सकता इसलिये धर्म्मीस्वरूप धर्म्मकी उत्पत्ति माननेपर धर्म्मीकी भी कथंचित् उत्पत्ति अनिवार्या नाम हट नही सकती । यदि कदाचित् आवरणापगमरूप संस्कार ही क्षेमकर नाम हमारा अभीष्ट साधक है ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते है कि ईदृशसंस्कार तो शब्दका ही संभावित होता है सो जब एक जगह शब्दमें आवर्णका नाश भया तो समग्र वर्ण सुने जाने चाहिये । यदि वर्ण २ में भिन्न २ आवरण हैं इसलिये जिस वर्णके आवरणका नाश भया उसीका बोध होता है ऐसा तुम कहते हो तो यह कथन तो ठीक नही है क्योंकि एक देशवृत्ति और एक इन्द्रियसे ग्राह्योंको भिन्न २ आवरणोंसे आवार्यमाणत्व (आच्छादितत्व) का विरोध है क्योंकि जो जो पदार्थ प्रतिनियत आवरणोंसे आवार्यमाण होते है सो सो पदार्थ पृथग् पृथक् देशमें वर्तमान और अनेकेन्द्रिय ग्राह्य देखे जाते है जैसे कि घट और पट अथवा रूप और रस एवं च अपृथग्देशवर्तमान और एकेन्द्रिय ग्राह्य होनेसे ही शब्दको प्रतिनियतव्यंजक व्यंग्यत्व नही है ।

अस्तु वैतत् तथाप्ययमभिव्यज्यमानः सामस्त्येन प्रदेशतो वा व्यज्येत नाद्यः पक्षः क्षेमंकरः सकलशरीराणां युगपत्तदुपलम्भापत्तेः । द्वितीयविकल्पे तु कथं सकर्णस्यापि सम्पूर्णवर्णाकर्णनं भवेन्न खलु निखिलावृत्तांगराजांगनानामपटुपठनापनीयमानवसनांचलत्वेन चलनांगुलीयकोटिप्रकटनायां विकस्वरशरीपकुसुमसुकुमारसमग्रविग्रहयष्टिनिष्टंकनं विशिष्टेक्षणानामपीक्ष्यते । प्रदेशाभिव्यक्त्यैंचास्य सप्रदेशत्वं प्रसज्यते ततो व्यंजकस्य कस्यचित् शब्दे संभवाभावात् तद्गत एव तीव्रतादयः इति नासिद्धो हेतुः । यदपि श्रावणत्वादित्यनुमानं तदपि कांतकीर्तिप्रथाकामः कामयेत् स्वमातरं ब्रह्महत्यां च कुर्वीत स्वर्गकामः सुरां पिबेदित्याद्यानुपूर्व्या सव्यभिचारं नित्यैवेयमिति चेत्तर्हि प्रेरणावत्प्रामाण्यप्रसंगस्तदर्थानुष्ठानाश्रद्धाने च प्रत्यवायापत्तिः । उदात्तस्वरिततीव्रमंदसुस्वरविस्वरत्वादिधर्म्मैश्च व्यभिचारस्तेषां नित्यत्वे सदाप्येकाकारप्रत्ययप्रसक्तेः । नित्यत्वेप्यमीषामभिव्यक्तिकादाचित्कीतिचेत्तदचारु परस्परविरुद्धानामेकत्र समावेशासंभवात् प्रभाकरेण तु शब्दत्वास्वीकारादुभयविकलश्च तं प्रत्यत्र दृष्टांतः । अथ भट्ट एवेत्थमनुमानयति प्रभाकरस्तु देशकालभिन्ना गोशब्दव्य-

प्रतिबधा-
त्तिदुद्य एक गोशब्दगोचरा गौरित्युत्पद्यमानत्वाद्घोचारितगोशब्दबुद्धिर्यदिनिवदतीतिनेत्तदप्यनवदातमत्र
भावतडित्तुनित्यत्वसिद्धावप्येवविधानुमानस्य कर्तुं शक्यत्वात् ।

अथवा शब्दको प्रतिनियतव्यजक व्यग्यत्व रहो तो भी अभिव्यज्यमान यह (शब्द) सामस्त्येन अभिव्यक्त होता है अथवा एकदेशेन होता है इनमेंसे आद्य (सामस्त्येन) पक्ष तो ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे तो सब शरीरियोंको एक ही कालमें उस (अभिव्यक्तशब्द) की प्रतीति होनी चाहिये (प्रतिबन्धकी भूतस्यावरणस्य नष्टत्वात्) और द्वितीय पक्षमें तो किसी भी पुरुषको सपूर्णतया किसी भी वर्णका आकर्णन (सुनना) कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता । क्योंकि सपूर्ण आच्छादित हैं अगजिनके वैसी राजस्त्रियोंके मूर्खतासे वस्त्रके हट जानेसे चलनअगुलीकोटीके प्रकट होनेसे प्रफुल्लित शिरीषपुष्पकी तरह कोमल समग्र शरीरका बोध बुद्धिमानोंको भी होता हुआ नहीं देखा जाता । अर्थात् एकदेश मात्रके प्रकटनेसे समग्रका बोध नहीं हो सकता जैसे की किसी राजस्त्रीके वस्त्र हट जानेसे अगुलीमात्रके देखनेसे उसके सर्व शरीरका बोध नहीं होता और भी बात है कि यदि शब्दको एकदेशेन अभिव्यक्त मानोगे तो इसको सप्रदेशत्वकी प्राप्ति भी होगी जैन ही कहते हैं कि इसप्रकार पूर्वोक्त दोषोंके होनेसे शब्दमें किसी भी व्यजकके सभवका अभाव है इसलिये तीव्रतादिक धर्मोंको शब्दमें ही युक्ति सिद्ध होनेसे पूर्वोक्त हमारा हेतु असिद्ध नहीं है । और जो तुमने शब्दमें नित्यत्व सिद्धिके लिये श्रावणत्वरूप हेतु कहा है सो तो सुन्दर कीर्तिकी कामनावाला पुरुष स्वमातामें कामना करे और ब्रह्महत्या भी करे एव स्वर्गकाम पुरुष सुरापान करे इत्यादिरूप आनुपूर्वी करके सव्यभिचार है अर्थात् इत्यादि आनुपूर्व्यवच्छेदेन व्यभिचारी है । और यदि यह पूर्वोक्त वाक्यानुपूर्वी भी नित्य ही है वैसा तुम लोग कहते हो तब तो प्रेरणा (वेदवाक्य) की तरह इसको भी प्रामाण्यकी प्राप्ति होवेगी और पूर्वोक्त वाक्योंसे रचित अर्थमें श्रद्धा न करनेसे प्रत्यवाय (पाप) की प्राप्ति भी होगी । और उदात्त स्वरित तीव्र मद सुस्वर (अच्छास्वर) विस्वरत्व (खरावस्वर) आदि धर्मों करके व्यभिचार भी है क्योंकि शब्दोंको नित्य होनेसे सदैव एकाकार ही प्रतीत होने चाहिये । यदि कदाचित् इनको नित्य होनेसे भी पूर्वोक्त धर्मोंकी अभिव्यक्ति कादाचित्की नाम किसी काल विशेषमें होनी है ऐसा तुम कहते हो तो यह कथन तो ठीक नहीं क्योंकि परस्परविरुद्धधर्मोंका एकमें समावेश (स्थिति) नहीं हो सकती । और प्रभाकर (प्रभा प्रथ त करोति य स) ने तो शब्दत्वमाना ही नहीं है इसलिये उसके प्रति तो यहा दृष्टात (साध्य

हेतु) उभय विकल है। यदि कदाचित् ऐसा अनुमान तो भट्ट ही करते हैं प्रभाकर तो जिसप्रकार आज उच्चरित गोशब्द व्यक्ति की बुद्धि गौः इसप्रकार उत्पद्यमान होनेसे एक गोशब्द विषयक है इसीप्रकार भिन्न २ देशकालमें होनेवाली भी गौः एवंरूपेण उत्पद्यमान होनेसे एक गोशब्द विषयक ही है ऐसा अनुमान करते हैं ऐसा तुम लोग कहते हो तो यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा अनुमान तो तडित्तंतु (विजलीका शलाका) में भी नित्यत्व सिद्धिके लिये कह सकते हैं। एवं रीत्या अनुमान तो शब्दकी नित्यत्व सिद्धिमें प्रमाण नहीं कह सकते ॥

याप्यर्थापत्तिः प्रत्यपादि तत्रायमर्थोऽनित्यत्वेसति यो गृहीतसंबंधः शब्दः स तदैव ध्वंसे इति व्यवहारकालेऽन्य एवागृहीतसम्बन्धः कथमुच्चार्येत उच्चार्यते च तस्मान्नित्य एवायमिति तदयुक्तमनेन न्यायेनार्थस्यापि नित्यत्वकतापत्तेर-न्यथा बाहुलेये गृहीतसंबन्धोऽपि गोशब्दः शाबलेयादिष्वगृहीतसंबंधः कथं प्रतिपत्तिं कुर्यात् सामान्यस्यैव शब्दार्थत्वाद्-दोष इति चेन्न लंबकंबलः ककुद्मानावृतशृंगश्चायं गौरिति सामानाधिकरण्याभावप्रसक्तेस्ततः सामान्यविशेषात्मैव शब्दार्थः स च नैकांतेनान्वेतीति न नित्यैकरूपोऽभ्युपेयः स्यात्। कथं च धूमव्यक्तिः पर्वते पावकं गमयेत् धूमत्वसामान्यमेव गमकमितिचेद्वाचकमपि सामान्यमेवास्तु अथ शब्दत्वं गोशब्दत्वं क्रमाभिव्यज्यमानगकारादिकं वा तद्भवेदाद्यपक्षे प्रतिनियतार्थप्रतिपत्तिर्न स्यात् सर्वत्र शब्दत्वस्याविशेषात्। गोशब्दत्वं तु नास्त्येव गोशब्दव्यक्तेरेकस्याः कस्याश्चित् तदाधारभूताया असंभवात् क्रमेण व्यज्यमानं हि वर्णद्वयमेतत् क्रमाभिव्यज्यमानत्वादिपक्षोपलंभनी गन्धादिसामान्य-स्याविद्यमानत्वात् सर्वत्र गकारादेरेकत्वात्। अत्रोच्यते अस्तु तार्तीयिकः कल्पो न च गकारादेरेकत्वं गर्गभर्गवर्गखर्गादौ भूयांसोमी गकारा इति तद्भेदोपलंभात्। व्यंजकभेदादयमितिचेदकाराद्यशेषवर्णानामप्येकत्वे एक एव वर्णः स्यात् अथ यथा अयमपि गकारोऽयमपि गकार इत्येकाकारा प्रतीतिस्तथा नाकाराद्यशेषवर्णेष्वपीतिचेन्नैवं अयमपि वर्णोऽयमपि वर्ण इत्येकप्रत्ययपरामर्शोत्पत्तेः। सामान्यनिमित्तक एवायमितिचेत्तर्हि गकारादावपि तथास्तु।

और यदि अनित्य जो गृहीतसंबंध शब्द था सो तो उसी कालमें अनित्य होनेसे नाश हो जायेगा इसलिये व्यवहारकालमें अगृहीतसंबंध दूसरा ही शब्द भया सो उसका उच्चारण कैसे कर सकोगे (न तु संबंधस्य कुत्राप्यगृहीतत्वात्) परंतु उच्चारण करते तो हैं इसलिये शब्द नित्य ही है इत्याकारक अर्थापत्तिरूपप्रमाण शब्दके नित्यत्वमें तुम कहते हो तो ठीक नहीं क्योंकि इस

न्यायसे तो अश्वको भी नित्यत्व और एकत्वकी आपत्ति आवेगी अन्यथा नाम अर्थको नित्य एक न माननेसे बाहुलेयगौम गृहीत संबंध भी शब्द शाबलेय आदिकमें अगृहीतसंबंध शाबलेयादिकका निश्चय कैसे करा सकेगा अर्थात् न करा सकेगा। (तत्र सम्बधग्रहादिति भाव) यदि कदाचित् सामान्य ही शब्दका अर्थ है इसलिये पूर्वोक्त दोष नहीं है ऐसा तुम कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि यह गौ लम्बकम्बल और ककुद्मान् एवं अनूतशृंग है इत्यादि सामानाधिकरण्येन प्रतीति न होनी चाहिये जैन ही कहते हैं कि इसलिये सामान्यविशेष उभय ही शब्दका अर्थ है सो एकांतेन उचित नहीं होता इसलिये वह नित्य एकरूप नहीं है। और ऐसे तो धूमव्यक्ति पर्वतमें वह्नीका बोधक भी कैसे हो सकेगी अर्थात् तुम जैसे कहते हो कि जिसमें संबंधगृहीत भया था सो तो उसीकालमें नष्ट हो जावेगा तो व्यवहारकालमें दूसरा अगृहीत संबंध ही शब्द होगा तो उसका उच्चारण कैसे कर सकोगे वैसे ही हम भी कहते हैं कि जिस धूममें संबंध गृहीत भया था सो तो पर्वतमें नहीं है तो वह वह्निबोधक कैसे होगा यदि कदाचित् धूमत्वरूपसामान्य ही बोधक है ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि वाचक भी सामान्य ही रहो। प्रश्न पूछते हैं कि शब्दत्व ही वाचक है तुम कहोगे अथवा गोशब्दत्व कहोगे किंवा क्रमेण प्रतीयमान गत्व और औत्व ही वाचक कहते हो इनमेंसे आद्यपक्षमें तो प्रतिनियत पदार्थज्ञान न होगा अर्थात् केवल गोशब्दसे ही गौका ही बोध न होगा क्योंकि सर्व शब्दोंमें शब्दत्वका अविशेष है। और गोशब्दत्व तो है ही नहीं क्योंकि उसका आश्रय कोई एक गोशब्दव्यक्ति नहीं है किंतु क्रमेण अभिव्यज्यमान वर्णद्वय ही गोशब्द है। एवं क्रमेणाभिव्यज्यमान इत्यादिरूप तृतीयपक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि गकारादिक सर्वत्र एक ही हैं इसलिये गत्वादिसामान्य ही नहीं है। इसमें उत्तर कहते हैं कि अच्छा तृतीय विकल्प रहो और जो तुम गकारादि कोंको एकता कहते हो सो तो नहीं है क्योंकि गर्गभर्गसर्ग और वर्गादिकोंमें अनेक गकारोंके देखनेसे भेद प्रतीयमान हो रहा है। यदि कदाचित् व्यंजकभेदसे वह भेद मालूम होता है परंतु वास्तविक भेद नहीं है वैसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि अकार आदि संपूर्ण वर्णोंमें भी व्यंजकभेदसे ही भेद रहो एवं सति जगतमें एक ही वर्ण हैं ऐसा क्यों नहीं मान लेते। यदि कदाचित् जैसे गकारमें (अयमपि गकार अयमपि गकार) यह भी गकार है यह भी गकार है इसप्रकार एकाकार प्रतीति होती है वैसे अकारादि संपूर्ण वर्णोंमें भी नहीं होती इसलिये एक ही वर्ण नहीं मान सकते ऐसा तुम कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि (अयमपि वर्ण) यह भी वर्ण है इत्याकारक एकाकार बोध होता ही है। यदि कदाचित् यह एकाकार ज्ञान तो

सामान्य निमित्तक ही है ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि गकारादिकोंमें भी सामान्य निमित्तका ही एकाकारा प्रतीति रहो।

अथेकारेकारादौ विशेपोऽनुभूयते नतु गर्गादिगकारेषु तेषां तुल्यास्यप्रयत्नादित्वादितिचेदेवं तर्हि सहर्ष हेषंते हरिहरितिहामीरहरय इत्यादि हकारात् कंठ्याद्धकिजिह्मादिहकारस्य ह उरस्याद्धनिजिह्मादौ वर्गपंचमसंयुत इतिवचनादुरस्यत्वेन स्थानभेदप्रतीतेस्ततो भिन्नोयं वर्णो भवेत्। न च गकारे नास्ति विशेपावभासस्तीव्रोऽयं मंदोयं गकार इति तीव्रतादिविशेपश्रवणात् व्यंजकगतास्तीव्रतादयस्तत्र स्फुरंतीतिचेत्कृतोत्तरमेतत्। अकारेकारादावप्यनुभूयमानः सम विशेपस्तद्गत एवास्तु तथाचैक एव वर्णः किं न भवेत् माभूद्वा विशेपावभासो गकारेषु भेदानभासस्तु विद्यत एव बहवोऽमी गकार इति प्रतीतेः भवतिच विशेपावभासं विनापि भेदस्फूर्तिः। सर्पपराशौ गुरुलाघवादिविशेपानभासं विनापि तद्भेदप्रतिभासवदिति सिद्धो गकारभेदस्तथा च तदादिनर्णवर्तिसामान्यानामेव वाचकत्वमस्तु। तत्वतस्तु गोशब्दत्वमेव सदृशपरिणामात्मकं वाचकं क्रमाभिव्यज्यमानं वर्णद्वयमेवैतन्नैकागोव्यक्तिरिति च न वाच्यं नित्यत्वाप्रसिद्धावव्याप्यस्योत्तरस्य त्कर्परकोटिसंटंकिसंटंकितगोढायमानत्वात्। तस्मात्क्रमोत्पदिष्णुतद्गकारादिपर्यायोपहितभापाद्रव्यात्मको गोशब्द एव सदृशपरिणामात्मा वाचकोऽस्तु तथा च क्षीणार्थापत्तिः॥

यदि कदाचित् गर्गादि गकारोंका तुल्य आस्यप्रयत्नादि है इसलिये उनका तो भेद नहीं है और अकार तथा एकारादिकोंमें तो विशेप अनुभवमें आता है इसलिये जो तुमने एक एव वर्णः स्यात् यह दोप कहा था सो नहीं है जब कहते है कि तुम ऐसा कहते हो तो हम कहते हैं कि ऐसे तो सहर्ष हेषंते हरिहरितिहामीरहरय. इत्यादिकोंमें कंठस्थानवाले हकारसे ह उरस्याद्धकिजिह्वादौ वर्गपंचमसंयुतः इस वचन प्रमाणसे उरःस्थानवाले यदि और जिह्वादिकोंके हकारका स्थानभेद प्रतीत होनेसे यह वर्ण परस्पर भिन्न ही है। और गकारोंमें परस्पर विशेप प्रतीत नहीं होता ऐसा भी नहीं कहना क्योंकि यह गकार तीव्र है और यह मंद है इसप्रकार तीव्रतादि विशेपोंकी प्रतीति होती है। यदि कदाचित् व्यंजकगत ही तीव्रतादिक उनमें प्रतीत होते है परन्तु वास्तविक नहीं ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते है कि इसका उत्तर तो हम कह चुके हैं क्योंकि अकारेकारादिकोंमें भी अनुभवमान तत्तद् विशेप व्यंजकगत ही प्रतीत होवें तब जगतमें एक ही वर्ण क्यों न होवे। अथवा गकारोंमें विशेपका बोध न भी

होय तो भी भेदावभाग तो नियमार ही है क्योंकि यह बहुत गकार है ऐसी प्रतीति होनी है । विशेषाभाससे विना भी भेदकी प्रतीति होती ही है जैसे कि सरसोंमें परस्पर (गौरव लाघव) बडाई छुटाईके न होनेसे भी उनके भेदकी प्रतीति होती है । इसप्रकार गकारोंका परस्पर भेद सिद्ध भया तब गकारादि वर्णवर्ति सामान्योंको ही वाचकता रहो । वस्तुत तो गोशब्दत्व ही सदृशपरिमाणरूप वाचक है क्रमेण अभिव्यज्यमान वर्णद्वय ही गो शब्द है परंतु एक कोई गोशब्द व्यक्ति नहीं है वैसा नहीं कहना । क्योंकि नित्यत्वकी असिद्धि होनेसे यह तुम्हारा कथन अवतक भी सिद्ध नहीं हो सका इसलिये क्रमसे उत्पन्न होनेवाले तद्गकारादिपर्यायोंसे उपहित भाषाद्रव्यात्मक गो शब्द ही सदृशपरिणामस्वरूप वाचक है जब ऐसा सिद्ध भया तो पूर्वोक्त शब्दको नित्यत्वसाधक अर्थापत्तिरूप तुम्हारा प्रमाण क्षीण हो गया ।

अस्त्वनित्यो ध्वनिः किंतु नाथ पौद्गलिक' सङ्गच्छत इति यौगा. सगिरमाणा सप्रणयनीनामेव गौरवार्हाः यत'कोन हेतुः स्पर्शशून्याश्रयत्वमतिनिनिबिडप्रदेशे प्रवेशनिर्गमयोरप्रतिघातः पूर्वपश्चाचावयवानुपलब्धि सूक्ष्ममूर्तद्रव्यांतराप्रेरकत्व गगनगुणत्व वा । नाद्य' पक्षो यत शब्दपर्यायस्याश्रये भाषावर्गणारूपे स्पर्शाभावो न तावदनुपलब्धिमात्रात्प्रसिध्यति तस्य सव्यभिचारत्वात् । योग्यानुपलब्धिस्त्वसिद्धा तत्र स्पर्शस्यानुद्भूतत्वेनोपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वाभावादुपलभ्यमानग-धाधारद्रव्यवत् । अथ घनसारगधसारादौ गधस्य स्पर्शाव्यभिचारनिश्चयादत्रापि तन्निर्णयेप्यनुपलभादनुद्भूतत्व युक्त नेतरत्र तन्निर्णायकाभावादितिचेन्माभूत्तावत्तन्निर्णायक किंचित् किंतु पुद्गलानामुद्भूतानुद्भूतस्पर्शानामुपलब्धेः शब्देऽपि पौद्गलिकत्वेन परैः प्रणिगद्यमाने बाधकाभावे च सति संदेह एव स्यात्तत्वभावनिश्चयस्तथाच सदिग्धासिद्धो हेतु' । नच नास्ति तन्निर्णायक तथाहि शब्दाश्रय स्पर्शवाननुवातप्रतिवातयोर्विप्रकृष्टनिकटशरीरिणोपलभ्यमानानुपलभ्यमानेन्द्रि-यार्थत्वात्तथाविधगधाधारद्रव्यवदिति ।

ध्वनिरूप शब्द अनित्य रहो किंतु वह पौद्गलिक नहीं हो सकता ऐसे कह रहा जो नैयायिक है सो जैन कहते है कि प्रेम वतीनियोंके ही गौरवार्ह है अर्थात् नैयायिक शब्दको अनित्य मानकर भी पौद्गलिक नहीं मानते सो उनको जैन कहते है कि उनका यह कहना ठीक नहीं क्योंकि उनको हम पूछते हैं कि इसके अपौद्गलिकत्वमें कौन हेतु है क्या स्पर्शशून्याश्रयत्व है अथवा अतिनिबिड प्रदेशमे प्रवेश और उससे निकलनेका प्रतिघात रूप हेतु है किंवा (पूर्व) पहिले और पीछे अवयवोंकी अनुपलब्धि

ही हेतु है अथवा सूक्ष्ममूर्तद्रव्यांतरका अप्रेरकत्व है किंवा गगनगुणत्वरूप हेतु है । इनमेंसे प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं क्योंकि शब्दपर्यायके आश्रय भाषावर्गणामें स्पर्शाभाव अनुपलब्धिमात्रसे तो सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि अनुपलब्धिमात्रको तो सव्यभिचारित्व है अर्थात् अनुपलब्धि होनेपर भी पदार्थ सत्ता कही होती है इसलिये अनुपलब्धिमात्रसे तो पूर्वोक्त शब्दपर्यायाश्रयमें स्पर्शाभाव नही कह सकते । और योग्यानुपलब्धि तो यहां असिद्ध है क्योंकि भाषावर्गणारूप शब्दपर्यायाश्रयमें स्पर्शको अनुद्भूत होनेसे उपलब्धि लक्षण प्राप्तत्वका अभाव है जैसे उपलभ्यमान गंधके आधार पुष्परज प्रभृति द्रव्योंके स्पर्शको अनुद्भूत होनेसे उपलब्धिलक्षणप्राप्तत्वका अभाव है । यदि कदाचित् घनसार और गंधसार प्रभृति द्रव्योंमें गंधका स्पर्शके साथ अव्यभिचार निश्चय होनेसे यहाँपर गंधके निश्चयसे स्पर्शके निश्चय हो जानेपर भी उपलब्ध न होनेसे अनुद्भूतत्व युक्त है परंतु शब्दके आश्रयमें तो मानना युक्ति युक्त नही है क्योंकि वहां उसके निर्णायक प्रमाणका अभाव है ऐसा तुम कहते हो तो हम जैन कहते हैं कि अच्छा वैशक उसका निर्णायक कोई प्रमाण नही किंतु उद्भूत और अनुद्भूत स्पर्शवाले पौद्गलिकोंकी उपलब्धि होनेसे शब्दमें भी पौद्गलिकत्व होनेसे और वादियोंने कहे हुए बाधकके न होनेसे संदेह ही रहेगा परंतु स्पर्शाभावका तो निर्णय न होगा एवं च सति पूर्वोक्त शब्दमें अपौद्गलत्वसाधक जो स्पर्शशून्याश्रयत्वरूप हेतु है सो संदिग्धासिद्ध भया । और उसका कोई निर्णायक नही है यह कहना भी ठीक नही क्योंकि जिसप्रकार अनुवात (अनुकूलवायु) और प्रतिवात (प्रतिकूल वायु के होनेसे दूर देशवृत्ति और नजदीक देशवृत्ति शरीरियोंकरके यथाक्रमेण उपलभ्यमान (इन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषय) और अनुपलभ्यमान इन्द्रियार्थ होनेसे गंधका आधार द्रव्य स्पर्शवाला होता है वैसे ही प्रकृत हेतुवाला होनेसे शब्दका आश्रय भी स्पर्शवान् ही है इस प्रमाणसे उसमें स्पर्श सिद्ध है ।

द्वितीयकल्पेपि गंधद्रव्येण व्यभिचारः वर्त्यमानजात्यकस्तूरिकाकर्पूरकसीरजादिगंधद्रव्यं हि पिहितकपाटसंपुटापवरकस्यांतर्विशति बहिश्च निःसरति नचापौद्गलिकं । अथ तत्र सूक्ष्मरंध्रसंभवेनातिनिविडत्वाभावात् तत्प्रवेशनिःकाशावत एव तदल्पीयस्तान्नत्त्रपावृतद्वारदशायामिव तदेकार्णवत्वं सर्वथानीरंध्रे तु प्रदेशे नैतौ संभवत इतिचेदेवं तर्हि शब्देऽपि सर्वस्य तुल्ययोगक्षेमत्वादसिद्धता हेतोरस्तु। पूर्वं पश्चाचावयवानुपलब्धिः सौदामिनीदामोल्कादिभिरनैकांतिकी। सूक्ष्ममूर्तद्रव्यांतराप्रेरकत्वमपि गंधद्रव्यविशेषसूक्ष्मरजोधूमादिभिर्व्यभिचारि नहि गंधद्रव्यादिकमपि नसि निविशमानं

तद्विवरद्वारदेशोऽज्झिप्रसथुप्रेरकं प्रेक्ष्यते । गगनगुणत्व त्वसिद्ध तथाहि न गगनगुण' शब्दोऽसदादिप्रत्यक्षत्वाद्रूपादिव-
दिति पौद्गलिकत्वसिद्धि' पुनरस्य शब्द पौद्गलिक इन्द्रियार्थत्वात् रूपादिवदेवेति ।

और जो तुमने अतिनिनिडप्रदेशमें प्रवेश और निर्गमका अप्रतिघातरूप द्वितीयहेतु कहा है वह भी गधके आश्रय द्रव्यावच्छे-देन व्यभिचारी है । क्योंकि पीस होरहे कस्तूरी कपूर और केशर प्रभृति गधद्रव्य भी चदकिये कपाटोंके भीतर प्रवेश करते हैं और बाहर भी निकलते हैं परतु अपौद्गलिक तो नहीं हैं । यदिकदाचित् वहा सूक्ष्मरध्रोंके सभवसे अतिनिविडत्वका अभाव है इसलिये वहा गधके प्रवेश और निगम हो सकते है इसीसे वह गध धीरे २ निकलता है परतु खुले हुए दरवाजेकी तरह बहुत नहीं निकलता अर्थात् यदि विना ही रध्रोंसे पूर्वोक्त स्थलमें गधका प्रवेश और निर्गम होता होय तो जैसे खुले हुए दरवाजेमेंसे गधका प्रवेश निर्गम होता है वैसे ही वहा भी होना चाहिये होता तो नहीं इससे अवश्य वहा सूक्ष्मरध्र ही है । और सर्वथा नीरध्र प्रदेशमें गधका प्रवेश और निर्गम हो ही नहीं सकता वैसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि यह सब वार्ता तो शब्दमें भी तुल्य ही है इसलिये यह हेतु असिद्ध ही रहो । और जो (पूर्व) पहिले और पीछे अवयवोंकी अनुपलब्धि रूप हेतु अपौद्ग-लिकत्व साधक तुमने कहा है सो भी विजली तथा उल्कादिकोंमें व्यभिचारी होनेसे ठीक नहीं है । एव सूक्ष्ममूर्तद्रव्यातरप्रेरकत्व रूप हेतु भी गधद्रव्यविशेषकी सूक्ष्मधूली तथा धूमावयवच्छेदेन व्यभिचारी है क्योंकि गधद्रव्य प्रभृति पदार्थ भी नासिकामें प्रवेश करते हुए नासिकाके (द्वारदेश) छिद्रमें उत्पन्न केशोंको प्रेरणा करते नहीं देखे जाते । और गगनगुणत्व रूप हेतु तो असिद्ध है (तथाहि) असिद्धि कहते हैं शब्द रूपादिकोंकी तरह असदादिकोंके प्रत्यक्षका विषय होनेसे गगनका गुण नहीं है इस अनुमानसे गगनगुणत्व शब्दमें असिद्ध है । शब्दमें पौद्गलिकत्व साधक अनुमान कहते हैं कि शब्द रूपादिकोंकी तरह इन्द्रियार्थ होनेसे पौद्गलिक ही है ।

पदवाक्ये व्याकुर्वन्ति ।

अब सूत्रकार पद और वाक्यकी व्याख्या करते हैं ।

वर्णानामन्योन्यापेक्षाणा निरपेक्षा संहति पदं पदाना तु वाक्यमिति ।

अन्योन्यनाम परस्पर अपेक्षा रखनेवाले वर्णोंकी निरपेक्षा नाम पदांतरवृत्ति वर्णकी अपेक्षा न रखनेवाली जो सहति नाम मेल सो पद समझना एवं पूर्वोक्त विशेषण विशिष्टा जो पदोंकी सहति सो वाक्य कहा जाता है।

वर्णौच वर्णाश्चेत्येकशेषाद्ब्रह्मसंबोधने क इत्यादौ द्वयोः गौरित्यादौ बहूनां च वर्णानामन्योन्यापेक्षाणां पदार्थप्रतिपत्तौ कर्तव्यायां परस्परं सहकारितया स्थितानां निरपेक्षा पदांतरवर्तिवर्णनिवर्तितोपकारपराङ्मुखी संहतिर्मेलकः पदमभिधीयते। पद्यते गम्यते स्वयोग्योर्थोऽनेनेति व्युत्पत्तेः प्रायिकत्वाच्च वर्णद्वयादेरेव पदत्वं लक्षितं यावता विष्णुवाचकैकाक्षराकारादिकमपि पदांतरवर्त्तितोपकारपराङ्मुखत्वरूपेण निरपेक्षत्वलक्षणेन पदत्वेन लक्षितं द्रष्टव्यं पदानां पुनः स्वोचितवाक्यार्थप्रत्यायने विधेयेऽन्योन्यनिर्मितोपकारमनुसरतां वाक्यान्तरस्थपदापेक्षारहिता संहतिर्वाक्यमभिधीयते। उच्यते स्वसमुदितोऽर्थोऽनेनेति व्युत्पत्तेः ॥

यहांपर वर्णौ च वर्णाश्च इस प्रकारसे एकशेष समास करनेसे ब्रह्माके वाचक कशब्दके संबोधन कमें दो वर्णोंकी और गौः इत्यादिकोंमें बहुत वर्णोंकी पद सज्ञा जाननी अब सूत्रस्थ अन्योन्यापेक्षाणांका अर्थ कहते है अन्योन्यापेक्षाणां नाम पदार्थकी प्रतिपत्ति (बोध) के करनेमें परस्पर सहकारितया स्थित और निरपेक्षा नाम पदांतरमें रहनेवाले अक्षरसे उत्पन्न होनेवाले उपकारसे शून्या जो सहति. नाम मेलक (मेल) उसको पद कहा जाता है। क्योंकि पद्यते नाम जाना जावे स्वयोग्य अर्थ जिससे ऐसी पद शब्दकी व्युत्पत्ति है और प्रायेण वर्णद्वयादिकोंको ही पदत्व होता है और विष्णुवाचक एक अक्षर स्वरूप जो अकार आदिक शब्द है उनको भी पदांतरवर्त्ति वर्णसे जन्य उपकारशून्यत्व रूप जो निरपेक्षत्व स्वरूप पदत्व उससे लक्षित समझना। एवं स्वउचित वाक्यार्थके बोधमे अन्योन्य निर्मित उपकारका अनुसरण कर रहे पदोंकी जो वाक्यातरमें स्थित पदोंकी अपेक्षासे रहिता संहति उसको वाक्य कहा जाता है क्योकि जिससे अपना संपूर्ण अर्थ कहा जाय ऐसी वाक्य शब्दकी व्युत्पत्ति है।

अथ संकेतमात्रेणैव शब्दोऽर्थं प्रतिपादयति नतु स्वाभाविकसंबंधवशादिति गदतो नैयायिकान् समयादपि नायं वस्तुवदतीति वदतः सौगतांश्च पराकुर्वन्ति।

अब सूत्रकार संकेतमात्रसे ही शब्द अर्थको प्रतिपादन कर देता है परंतु स्वाभाविक संबंधवशसे नही करता ऐसा कह रहे नैयायिक और संकेतसे भी यह वस्तुको नही कहता ऐसा कह रहे सौगतों (बौद्धों) का खंडन करनेके लिये सूत्र कहते है।

स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यामर्थबोधनिबंधन शब्द इति ।

स्वाभाविक सामर्थ्य और समय नाम संकेत इन दोनोंसे अर्थके बोधका कारण शब्द होता है ॥

स्वाभाविक सहजं सामर्थ्यं च शब्दस्यार्थप्रतिपादनशक्तिर्योग्यतानाम्नी । समयश्च संकेतस्ताभ्यामर्थप्रतिपत्तिकारणं शब्द इति । तत्र नैयायिकान् प्रत्येव विधेयानुवाद्यभावो यमर्थबोधनिबंधनं शब्दोऽभ्युपगतोऽस्ति स स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यां द्वाभ्यामपि न पुनः समयादेव केवलात् । समयो हि पुरुषायत्तवृत्तिर्नैव पुरुषेच्छया वस्तुनियमो युज्यतेऽन्यथा तदिच्छाया अव्याहतप्रसरत्वादर्थोऽपि वाचकः शब्दोऽपि वाच्य स्यात् । अथ गत्वौत्वादिसामान्यसंबंधो यस्य भवति स वाचकत्वे योग्य इतरस्तु वाच्यत्वे । यथा द्रव्यत्वादिविशेषेऽप्यग्नित्वादिसामान्यविशेषवत एव दाहजनकत्वं न जलत्वादिसामान्यविशेषवत इतिचेत्तदयुक्तमतींद्रियां शक्तिं विना अग्नित्वादेरपि कार्यकारणभावनियामकत्वानुपपत्ते. । अग्नित्व हि दाहवह्निजातीयकारणनन्यकार्येष्वपि तुल्यरूप न हि दाह प्रत्येवाग्नेरग्नित्व यथा पुत्रापेक्ष पितुः पितृत्व ततश्चाग्निर्दाहवत् पिपासापनोदमपि विदध्यादिति नातीन्द्रियां शक्तिमंतरेणाग्नित्वादीनां कार्यकारणभावव्यवस्थाहेतुत्वं तद्वदेवच गत्वौत्वादिसामान्यानामपि न वाच्यवाचकभावनियमहेतुत्वमिति नियामिका शक्ति स्वीकर्तव्यैव ।

सूत्रमें जो स्वाभाविक शब्द है उसका अर्थ है कि सहज नाम स्वजनककारणेतरानन्य सामर्थ्य नाम शब्दकी योग्यता नामवाली अर्थप्रतिपादनमें शक्ति और समय नाम संकेत इन दोनों सहकारियों करके अर्थकी प्रतिपत्ति (ज्ञान) में कारण शब्द है यह इस सूत्रका अर्थ भया । (अब टीकाकार यहांपर किसको कोन विधेय है और कौन अनुवाद्य है सो कहते हैं) कि यहां नैयायिकोंके प्रति इस प्रकार विधेय और अनुवाद्यभाव है । अर्थके ज्ञानमें कारण शब्द माना है सो स्वाभाविक सामर्थ्य और संकेत इन दोनोंसे ही होता है परन्तु केवल संकेतसे ही नहीं । क्योंकि संकेत करना तो पुरुषके अधीन है सो पुरुषेच्छामात्रसे तो वस्तुका नियम युक्ति युक्त नहीं है यदि पुरुषेच्छा मात्रसे वस्तुनियम युक्त होवे तो पुरुषेच्छाकी प्रवृत्तिको सर्वत्र अव्याहत होनेसे शब्द तो वाच्य और अर्थ वाचक होवे । यदि कदाचित् गत्व और औत्व आदि सामान्योंका संबंध जिसमें होवे सो तो वाचकत्वमें योग्य होता है और उससे जो भिन्न होय सो वाच्यत्वके योग्य होवे है जैसे कि द्रव्यत्वादि रूप सामान्यके अविशेष

(तुल्य) होनेपर भी अग्नित्वादिरूप सामान्यविशेष नाम अग्नित्वादिरूप विशेष सामान्यवालेको ही दाहजनकता है परंतु जलत्वादिरूप सामान्य विशेषवालेको नहीं है । ऐसा तुम कहते हो तो जैन कहते हैं कि ऐसा नहीं कहना क्योंकि अतीन्द्रिय शक्तिसे विना अग्नित्वादिकोको भी कार्यकारणभावनियामकता नहीं हो सकती क्योंकि अग्नित्व तो दाहकी तरह विजातीयकारणजन्य कार्योंमें भी तुल्यरूप ही है । जिस प्रकार पिताको पितृत्व पुत्रकी अपेक्षया है इस प्रकार दाहके प्रति ही अग्निको अग्नित्व तो नहीं है इसलिये अग्नि दाहरूप कार्यकी तरह पिपासापनोद नाम तृपाशांति भी करें जैन ही कहते हैं कि इसलिये भाई नैयायिक अतीन्द्रिया शक्तिसे विना अग्नित्वादिकोंको कार्यकारण व्यवस्थाकी हेतुता नहीं हो सकती । इसी तरह गत्व औत्व आदि सामान्योंको भी वाच्यवाचकभावके नियमकी हेतुता नहीं हो सकती इसलिये उसकी नियामिका अतीन्द्रियाशक्ति अवश्यमाननी ही चाहिये ।

अथ किमनेनातीन्द्रियशक्तिकल्पनाक्लेशेन करतलानलसंयोगादिसहकारिकारणनिकरपरिकरितं कृपीटयोनिस्वरूपं हि स्फोटघटनपाटवं प्रकटयिष्यति किमवशिष्टं यदनया करिष्यते । तथा च जयंतः स्वरूपादुद्भवत्कार्यं सहकार्युपबृंहितात् नहि कल्पयितुं शक्यं शक्तिमन्यामतीन्द्रियां ? । यच्चोक्तमग्निर्दाहवत् पिपासापनोदमपि विदध्यादिति तन्न सन्नहि वयमद्य किंचिदभिनवं भावानां कार्यकारणभावमुत्थापयितुं शक्नुमः किंतु यथाप्रवृत्तमनुसरामः । नह्यसदिच्छया आपः शीतं शमयंति कृशानुर्वा पिपासां किंतु तत्र दाहादावन्वयव्यतिरेकाभ्यां वा वृद्धव्यवहाराद्वा ज्वलनादेरेव कारणत्वमवगच्छाम इति तदेव तदर्थिनः उपाददाहे न जलादि । तदेतदतथ्यं यतो यथा भूतादेव विभावसोर्दाहोत्पत्तिः प्रतीयते तथाभूतादेव मणिमंत्रयंत्रतंत्रौपध्यादिसंनिधाने सति न प्रतीयते यदि हि दृष्टमेव रूपं स्फुटं स्फोटं घटयते तत्तदानीं तस्य समस्तस्य सद्भावात्तदनुत्पादो न स्यादस्ति चासौ ततो दृष्टरूपस्य व्यभिचारं प्रपंचयन्नतींद्रियायाः शक्तेः सत्वं समर्पयति । तथा च स्वरूपात्काप्यनुत्पद्यत्तत्सहकार्युपबृंहितात् किं न कल्पयितुं शक्तं शक्तिमन्यामतीन्द्रियां ? यत्तूक्तं दाहादावन्वयव्यतिरेकाभ्यां वा वृद्धव्यवहाराद्वा ज्वलनादेरेव कारणत्वमवगच्छाम इति तदुक्तिमात्रमेव यत एव हि दाहदहनयोः कार्यकारणभावनियमः प्रसिद्धिपद्धतिप्रतिबद्ध एव तत एव प्रसंगः प्रवर्तते । यदि हि कृशानुः स्वरूपमात्रादेव दाहमुत्पादयेत्तर्हि तदविशेपादुदन्यापनोदमपि विदध्यादिति । अथ न मणिमन्त्रादिप्रतिबंधकनैकट्ये स्फोटानुत्पत्तिरदृष्टं रूपमाक्षिपति यथाह्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव धृतसामर्थ्यो दहनो दाहहेतुस्तथा प्रतिबंधकाभावोऽपि सच प्रतिबंधकप्रयोगे

निनिष्टा इति सामग्रीवैगुण्यादेव दाहस्यानुत्पत्तिर्नतु शक्तिवैकल्यादितिचेत्तदयुक्तं यत प्रतिबन्धकाभावो भावादेकांतव्य तिरिक्तः कथं कार्यं कुर्यात् कूर्मरोमराजिवत् ।

यद्किंचाचित् अतीन्द्रियशक्तिकी कल्पनारूप क्लेशसे क्या है अर्थात् अतीन्द्रिया शक्तिके माननेकी क्याही आवश्यकता है क्योंकि करतल (हथयारी) और अग्निके सयोग आदि सहकारिकारणसमूहविशिष्ट अग्निस्वरूप ही स्फोट (फोला) को उत्पन्न करनेमें सामर्थ्य हो सकेगा। तो फिर वाकी कौनसा कार्य अवशिष्ट है कि जो इस शक्तिसे किया जावे अर्थात् कोई भी न होनेसे शक्ति कल्पना व्यर्थ है । इसी वार्ताको जयत नामक आचार्यने भी कहा है कि सहकारिकारणविशिष्ट स्वरूपसे ही कार्य उत्पन्न हो जाता है इसलिये उससे अलग कोई दूसरी अतीन्द्रिया शक्ति माननी युक्तियुक्त नहीं है ' । और जो तुमने कहा है कि अग्नि दाहकी तरह तृणनिवृत्ति भी करें सो कहना तो ठीक नहीं है क्योंकि हम लोग आप नया तुच्छ भावोंका कार्यकारणभाव खडा नहीं करसकते हैं किंतु यथा प्रवृत्तके अनुसरण करते हुए व्यवहार कर रहे हैं । हमारी इच्छासे जल शीतको नहीं हटाता और अग्नि तृणको भी नहीं हटा सकती किंतु (उन) दाहादिकोंमें अन्वयव्यतिरेकसे अथवा वृद्धव्यवहारसे अग्न्यादिकोंको ही कारणता हम निश्चय करते हैं इसलिये दाहकेलिये हम उसीको ग्रहण करते हैं परतु जलादिकको नहीं । जैन कहते है कि यह कहना तो ठीक नहीं है क्योंकि जिस प्रकारके (सहकारिकारणविशिष्ट) अग्निसे दाहकी उत्पत्ति प्रतीत होती है वैसे ही अग्निसे मणि (चन्द्रकांता) मन्त्र यन्त्र तन्त्र तथा औषधि आदिकोंके संनिधान (समीपवृत्ति) होनेसे वह (दाहोत्पत्ति) नहीं प्रतीत होती । यदि दृष्टकारण ही स्फोटको उत्पन्न करें तो मण्यादिकोंके सन्निधान कालमें भी उन सब कारणोंके सद्भाव होनेसे स्फोटकी अनुत्पत्ति न होनी चाहिये अनुत्पत्ति होती तो है इसलिये वह अनुत्पत्ति स्फोटके साथ दृष्टरूपके व्यभिचारको प्रगट करती हुई अतीन्द्रिया शक्तिके सत्वका समर्थन (सिद्धि) करती है । एवं सति ऐसा भया कि सहकारिकारणविशिष्टस्वरूपसे कहीं कार्य उत्पन्न नहीं होता इससे दृष्टसे अन्या अतीन्द्रिया शक्ति क्यों नहीं मानसकते अर्थात् अवश्य माननी चाहिये । और जो तुमने कहा है कि दाहादिकोंमें अन्वयव्यतिरेकसे अथवा वृद्ध व्यवहारसे अग्न्यादिकोंको ही कारणताका हम निश्चय करते हैं सो यह तो उक्ति मात्र ही है क्योंकि जिसवास्ते ही दाह और दहन (अग्नि) का कार्यकारणभावनियम प्रसिद्ध ही है इसीसे तो शक्तिकल्पनाका प्रसंग होता है क्योंकि यदि अग्नि स्वरूपमात्रसे ही दाहको उत्पन्न करती होय तो स्वरूपाविशेषात् उदन्या नाम पिपासाको भी

दूरकरें। यदि कदाचित् मणि और मंत्र आदिकोंके निकट (समीप) होनेपर स्फोटकी जो अनुत्पत्ति है सो अदृष्ट नाम अतींद्रिया शक्तिका आक्षेप (सिद्धि) नही कर सकती क्योंकि जिस प्रकारसे अन्वय व्यतिरेकसे दाहके प्रति अग्निको कारणता है इसीप्रकार प्रतिबंधकाभाव भी दाहमें कारण है सो प्रतिबंधका भाव प्रतिबंधकके समवधान कालमें है नहीं इसलिये सामग्रीके न होनेसे ही वहा दाहकी अनुत्पत्ति है परंतु शक्तिके न होनेसे नहीं है ऐसा तुम कहते हो तो जैन कहते है कि यह कथन तो अयुक्त है। क्योंकि प्रतिबंधकाभाव भावसे सर्वथा अतिरिक्त है सो कूर्म (कछुए) के रोमोंकी तरह कैसे किसी भी कार्यको उत्पन्न करें अर्थात् नही करसकता।

ननु नित्यानां कर्म्मणामकरणात् प्रागभावस्वभावात्प्रत्यवाय उत्पद्यतेऽन्यथा नित्याकरणे प्रायश्चित्तानुष्ठानं न स्याद्वैयर्थ्यात्। तन्न तथ्यं नित्याकरणस्वभावात्क्रियांतरकरणादेव प्रत्यवायोत्पत्तेरभ्युपगमात् त्वन्मतस्य तद्धेतुत्वासिद्धेः। यदप्युच्यते सुखदुःखसमुत्पत्तिरभावे शत्रुमित्रयोः कंटकाभावमालक्ष्य पादः पथि निधीयते ? तत्राप्यमित्रमित्रकंटकाभावज्ञानानामेव सुखदुःखांह्रिनिधानकार्यकारित्वं नत्वभावानां। तद्ज्ञानमप्यमित्रमित्रकंटकविविक्तप्रतियोगिवस्त्वंतरसंपादितमेव नतु त्वदभिमताभावकृतं अथ भाववदभावोपि भावजननसमर्थोऽस्तु को दोपो नहि निःशेषसामर्थ्यरहितत्वमभावलक्षणमपि तु नास्तीति ज्ञानगम्यत्वं सत्प्रत्ययगम्यो हि भाव उच्यते असत्प्रत्ययगम्यस्त्वभाव इतिचेत्तदयुक्तं त्वदभ्युपगताऽभावस्य भावात् सर्वथा पार्थक्येन स्थितस्य भावोत्पादकत्वविरोधात्तथाहि विवादास्पदीभूतोऽभावो भावोत्पादको न भवति भावादेकांतव्यतिरिक्तत्वाद्यदेवं तदेवं यथा तुरंगशृंगं तथा चायं तस्मात्तथा प्रागभावप्रध्वंसाभावपरस्पराभावोऽत्यभावो वस्तुनो व्यतिरिक्तमूर्तिभावोत्पादकः परैरिष्टः सोऽत्र विवादपदशब्दितः अन्यथा जैनस्य भावाविष्वग्भूताभावैर्भावोत्पादकत्वेनांगीकृतैर्बाधा स्यात्। यौगस्य चात्यंताभावेन भावानुत्पादकेन सिद्धसाध्यता भवेत्।

नैयायिक प्रश्न करते है कि नित्यकर्म्मोंके अकरण रूप प्रागभावसे प्रत्यवाय (पाप) उत्पन्न होता है अन्यथा प्रायश्चित्तको व्यर्थ होनेसे न करना चाहिये अर्थात् अभाव भी भावकार्यको उत्पन्न कर सकता है जैन कहते है कि नैयायिकोंका यह कथन ठीक नही है क्योंकि नित्योंके अकरणसे प्रत्यवाय उत्पन्न नहीं होता किंतु नित्याकरणस्वभाव क्रियांतर करणसे ही प्रत्यवायकी उत्पत्तिका स्वीकार है इससे तुम्हारेको अभीष्ट प्रागभावको प्रत्यवायकी कारणता असिद्ध है। और जो बुद्धिमान कहते है कि सुख

और दु:खकी उत्पत्ति यथाक्रमेण शत्रु और मित्रके अभावके होनेसे होती है और कंटकके अभावको निश्चय करके बुद्धिमान पुरुष मार्गमें पांव रखते हैं। जैन कहते हैं कि यहांपर भी अमित्र और मित्र एवं कंटकाभाव इनके ज्ञानोंको ही यथाक्रमेण सुख दुःख तथा पादनिधानरूप कार्य्योंकी कारणता है परंतु अभावोंको नहीं एवं उनका ज्ञान भी अमित्र मित्र तथा कंटकरूप प्रतियोगियोंसे शून्य वस्त्वंतरसे ही उत्पन्न होता है परंतु तुमारेको अभिमत अभावसे नहीं होता। यदिकदाचित् भावकी तरह अभाव भी भावका उत्पादक रहो क्या दोष है अर्थात् तुच्छ नहीं क्योंकि सर्व सामर्थ्य रहितत्व अभावका लक्षण नहीं है किंतु नास्ति (नहीं है) इत्याकारक ज्ञानका विषयत्व ही अभावका लक्षण है सत्प्रतीतिका विषय तो भाव कहा जाता है और असत् प्रतीतिका विषय अभाव कहाता है ऐसा तुम कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि तुमने माने हुए अभावको भावसे सर्वथा पृथक्त्वेन स्थितको भावोत्पादकत्वका विरोध है। इसीको स्पष्ट करते हैं कि विवादास्पदीभूत अभाव भावसे एकांतेन भिन्न होनेसे भावका उत्पादक नहीं है जो जो पदार्थ भावसे एकांतेन विलक्षण होता है सो सो भावोत्पादक भी नहीं होता जैसे घोडेका शृंग पूर्वोक्त हेतुमान् होनेसे पूर्व साध्यवान् भी है वैसा ही तदभिमत अभाव भी है इसलिये यह भी भावोत्पादक नहीं ही है। नैयायिकोंने जो प्रागभाव प्रध्वंसाभाव और अन्योन्याभाव रूप अभाव वस्तु (भाव) से सर्वथा भिन्न भावका उत्पादक माना है सो अभाव यहां विवादपदमें हम कहते हैं। अन्यथा भावसे कथंचित् अविष्वग् (अभिन्न) भूत और भावोंके उत्पादक अभाव जैनोंने माने हैं इसलिये जैनोंको बाधा (दोष) होगी। और भावके अनुत्पादक अत्यंताभाव करके नैयायिक मतमें भी सिद्ध साधन रूप दोष होगा ॥

नन्वयं धर्म्मित्वेनोपात्तोऽभावो भवद्भिः प्रतिपन्नो नवा यदि प्रतिपन्नः किं प्रत्यक्षादनुमानाद्विकल्पाद्वा उपमानादेरत्रानुचितत्वात्। यदि प्रत्यक्षात्तदा कथमभावस्य भावोत्पादनापवादः सूपपादः स्यात्प्रत्यक्षस्यैवोत्पादितत्वात्। अनुमानात्तु तत्प्रतिपत्तौ तत्राप्यभावधर्म्मिणः प्रतीतिरनुमानांतरादेवेत्यत्रानवस्थादौस्थ्यस्थेमा। विकल्पादपि तत्प्रतीतिः प्रमाणमूला तन्मात्रादेव वा न प्रथमात् प्रमाणप्रवृत्तेस्तत्र तिरस्कृतत्वात्। विकल्पमात्रात्तु तत्प्रतीतिरसत्कल्पा ततः कस्यापि प्रतिपत्तेरनुपपत्तेरयथा प्रामाणिकानां प्रमाणपर्य्येषणमरमणीय स्यात् तथाचाश्रयासिद्धो हेतुः। अथाप्रतिपन्नस्तर्हि कथं धर्म्मितयोपादायि उपात्तेचास्मिन् हेतुराश्रयासिद्ध एव। अत्रोच्यते विकल्पमात्रादेव तत्प्रतिपत्तिं ब्रूमहे

नचाश्रयासिद्धिरवस्तुनि विकल्पात् प्रसिद्धेरवश्याश्रयणीयत्वादन्यथा वंध्यास्तनंधयादिशब्दानुच्चारणप्रसंगात् न च नोच्चार्यत एवायंमयेतिवाच्यं वांध्येयोऽस्ति नास्ति चेति पर्यनुयोगे पृथ्वीपतिपरिषद्यवश्यं विधिनिषेधान्यतराभिधायि वचनस्यावकाशात् । तूष्णीं पुष्णतोऽस्याप्रतिपित्सितं किंचिदुच्चारयतो वा पिशाचकित्वप्रसंगात् । तथाविधवचनोच्चारणे च कथमेतदिति प्रमाणगवेषणेऽनुमानमुच्चार्यमाणमाश्रयासिद्धिग्रस्तं समस्तं निःप्रमाणकं वचनमात्रं प्रेक्षावता प्रश्नकृताऽनपेक्षितमेव । नचोभयाभावोऽभिधातुं शक्यः विधिनिषेधयोर्भावाभावस्वभावत्वादेकनिषेधेनापरविधानात् । विधिप्रतिषेधो हि निषेधः निषेधप्रतिषेधश्च विधिः । अस्तुवोभयप्रतिषेधः । प्रतिज्ञाहेतोस्तु तत्रोपादीयमानस्य नाश्रयासिद्धिपरिहारः । तदुक्तं धर्म्मस्य कस्यचिदवस्तुनि मानसिद्धा बाधाविधिव्यवहृतिः किमिहास्ति नो वा अस्त्येव चेत्कथमियंति न दूषणानि नास्त्येव चेत्स्ववचनप्रतिरोधसिद्धिः ? अवस्तुनि बाधाविधिव्यवहारो नास्तीत्येतदनेनैव स्ववचनेन प्रतिरुध्यते नास्तीति प्रतिषेधस्य स्वयं कृतत्वादित्यंतपादस्यार्थः । तुरंगशृंगदृष्टांतोऽपि विकल्पादेव प्रसिद्धः स्वीकर्तव्यः तत्र च वस्त्वेकांतव्यतिरेके सति भावानुत्पादकत्वमपि प्रतीतमिति नास्य साध्यसाधनोभयवैकल्यं । ननु जैनैर्भावादभिन्नस्याभावस्यानभ्युपगमाद्वाद्यसिद्धो हेतुरितिचेत्तदसत्पराभ्युपगतस्याभावस्य धर्म्मीकृतत्वात्तस्य च भावादेकांतेन पृथग्भूततया जैनैरपि स्वीकारात् । न खलु अवस्तु वस्तुभूताद्भावादभिन्नमिति मन्यंते जैनाः । ततो नाभावो भावोत्पादक इति सिद्धं ।

प्रश्न करते है कि जो पूर्वोक्त अनुमानमें तुमने अभाव धर्म्मित्वेन कहा है सो तुमने स्वीकृत है कि नहीं यदि स्वीकृत है तो क्या प्रत्यक्षप्रमाणसे है अथवा अनुमानसे है किंवा विकल्पसे है और उपमानादिक तो यहां अनुचित ही है । यदि प्रत्यक्षसे कहोंगे तो फिर अभाव भावका उत्पादक नहीं होता यह कहना ठीक कैसे होगा अर्थात् न होगा क्योंकि अभावको प्रत्यक्षरूप भावोत्पादकता जो सिद्ध हो गयी । और अनुमानरूप प्रमाणसे यदि धर्म्मीकी सिद्धि कहोंगे तो उसमें भी धर्म्मीकी प्रतीति अनुमानांतरसे ही होगी इसीतरह आगे आगे माननेसे अनवस्थाका हटना कठिन होगा । अब यदि विकल्पसे धर्म्मीकी प्रतीति कहते हो तो भी क्या प्रमाणमूलका विकल्पसे उसकी सिद्धि है अथवा केवल विकल्पमात्रसे ही है । प्रमाणोंकी प्रवृत्तिका उसमें अभी खंडन कर चुकें है इसलिये प्रमाणमूला तो नही कह सकते । विकल्पमात्रसे उसकी प्रतीति माननी भी ठीक नही है क्योंकि विकल्पमात्रसे तो किसीकी भी सिद्धि नहीं होती अन्यथा नाम यदि विकल्पमात्रसे ही पदार्थसिद्धि हो जाय तो फिर प्रामाणिक

पुनरपि प्रमाणको इतना व्यय हो जावेगा। एव रीत्या तब धर्मी ही सिद्ध न भया तो पूर्वोक्त हेतु आश्रयासिद्ध हो गया। यदि पूर्वोक्त धर्मी प्रमाणसिद्ध है तो यह धर्मिस्वरूप कैसे कहा जब धर्मिस्वरूप कहा तो यह हेतु आश्रयासिद्ध ही भया। अब जैन इसका उत्तर कहते हैं कि केवल विकल्पसे ही धर्मीकी सिद्धि हम कहते हैं। पूर्वोक्तानुसारमें आश्रयासिद्धि दोष भी नहीं है क्योंकि धर्मकी विकल्पसे प्रसिद्धि अवश्यमाननी ही चाहिये अन्यथा वंध्यापुत्र आदि शब्दोंका उच्चारण ही न कर सकोगे हम वंध्यापुत्र शब्दका उच्चारण नहीं ही करते वैसा नहीं कहना क्योंकि जगत्में वंध्यापुत्र है या नहीं ऐसा जब किसीने पूछा तो सभामें उसके विधायक अथवा निषेधक वचनको अवश्य तुमको कहना ही पडेगा। और यदि कुछ न कहोगे अथवा अप्रासंगिक कुछ कह देवोगे तब तो तुमको पिशाचिनिकी प्राप्ति होवेगी जब उसका विधायक या निषेधक वचन उच्चारण किया तो उसमें प्रमाणकी आवश्यकता पडी सो उसमें अनुमान तो सभी आश्रयासिद्धि दोषग्रस्त ही होंगे और विना प्रमाणके कहा हुआ वचन बुद्धिमान प्रश्नकर्ताओंको उपेक्षणीय ही होता है। और उभयाभाव (वंध्यापुत्रके अस्तित्व नास्तित्व) भी कह नहीं सकते क्योंकि विधि और निषेधको भावाभावस्वरूप होनेसे एकके निषेधसे दूसरेका विधान होता है क्योंकि विधिका प्रतिषेध है निषेध और निषेधका प्रतिषेध है विधि। अथवा उभयाभावकी ही प्रतिज्ञा रहो परंतु उसमें जो हेतु कहोगे उसके आश्रयासिद्धि नामक दोषका तो परिहार न भया। ऐसा किसी आचार्यने भी कहा है कि अवस्तुमें किसी (अस्तित्वादि) धर्मकी बाधाविधिका व्यवहार मात्र (प्रमाण) सिद्ध है या नहीं यदिप्रमाणसिद्ध है तो पूर्वोक्त आश्रयासिद्ध्यादिक दोष क्यों नहीं अर्थात् है ही और यदि प्रमाणसिद्ध नहीं है कहोगे तब तो स्वकार्यके ही प्रतिरोध (रुकावट) की सिद्धि भयी अर्थात् अवस्तुमें बाधा विधिका व्यवहार भया नहीं है इस कहनेसे ही पूर्वोक्त स्ववचनका खंडन हो गया यह अन्यत्र कहा भया है। तब तुरंगशृंग का दृष्टांत भी विकल्पसे ही प्रसिद्ध स्वीकार किया है और उसमें वस्तुसे एकांत भिन्नत्व विशिष्ट भावानुत्पादकत्व भी प्रतीत ही है इसलिये इस दृष्टांतको साध्यसाधन उभय विकलता नहीं है। प्रश्न करते हैं कि जैनोंने अभावको भावसे अभिन्न (भावस्वरूप) स्वीकार किया है इसलिये पूर्वोक्त तुम्हारा हेतु बाधसिद्ध है जैन कहते हैं कि यदि तुम ऐसा कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि हमारे पर (नैयायिक) ने माने हुए अभावको ही धर्मी कहा है सो उसको तो एकांतसे भावसे भिन्न जैनोंने भी माना ही है। क्योंकि आपलोगो तुच्छ भावसे अभिन्न नहीं मानते हैं इसलिये तदभिमत अभाव भावका उत्पादक नहीं है यह सिद्ध भया॥

नचाश्रयासिद्धिरवस्तुनि विकल्पात् प्रसिद्धेरवश्याश्रयणीयत्वादन्यथा वंध्यास्तनंधयादिशब्दानुच्चारणप्रसंगात् न च नोच्चार्यत एवायंमयेतिवाच्यं वांध्येयोऽस्ति नास्ति वेति पर्यनुयोगे पृथ्वीपतिपरिषद्यवश्यं विधिनिषेधान्यतराभिधायि वचनस्यावकाशात्। तूष्णीं पुण्णतोऽस्याप्रतिपित्सितं किंचिदुच्चारयतो वा पिशाचकित्वप्रसंगात्। तथाविधवचनोच्चारणे च कथमेतदिति प्रमाणगवेषणेऽनुमानमुच्चार्यमाणमाश्रयासिद्धिग्रस्तं समस्तं निःप्रमाणकं वचनमात्रं प्रेक्षावता प्रश्नकृताऽनपेक्षितमेव। नचोभयाभावोऽभिधातुं शक्यः विधिनिषेधयोर्भावाभावस्वभावत्वादेकनिषेधेनापरविधानात्। विधिप्रतिषेधो हि निषेधः निषेधप्रतिषेधश्च विधिः। अस्तुवोभयप्रतिषेधः। प्रतिज्ञाहेतोस्तु तत्रोपादीयमानस्य नाश्रयासिद्धिपरिहारः। तदुक्तं धर्म्मस्य कस्यचिदवस्तुनि मानसिद्धा बाधाविधिव्यवहृतिः किमिहास्ति नो वा अस्त्येव चेत्कथमियंति न दूषणानि नास्त्येव चेत्स्ववचनप्रतिरोधसिद्धिः? अवस्तुनि बाधाविधिव्यवहारो नास्तीत्येतदनेनैव स्ववचनेन प्रतिरुध्यते नास्तीति प्रतिषेधस्य स्वयं कृतत्वादित्यंतपादस्यार्थः। तुरंगशृंगदृष्टांतोऽपि विकल्पादेव प्रसिद्धः स्वीकर्तव्यः तत्र च वस्त्वेकांतव्यतिरेके सति भावानुत्पादकत्वमपि प्रतीतमिति नास्य साध्यसाधनोभयवैकल्यं। ननु जैनैर्भावादभिन्नस्याभावस्यानभ्युपगमाद्वाद्यसिद्धो हेतुरितिचेत्तदसत्पराभ्युपगतस्याभावस्य धर्म्मीकृतत्वात्तस्य च भावादेकांतेन पृथग्भूततया जैनैरपि स्वीकारात्। न खलु अवस्तु वस्तुभूताद्भावादभिन्नमिति मन्यंते जैनाः। ततो नाभावो भावोत्पादक इति सिद्धं।

प्रश्न करते है कि जो पूर्वोक्त अनुमानमें तुमने अभाव धर्म्मित्वेन कहा है सो तुमने स्वीकृत हे कि नहीं यदि स्वीकृत है तो क्या प्रत्यक्षप्रमाणसे है अथवा अनुमानसे हैं किंवा विकल्पसे है और उपमानादिक तो यहां अनुचित ही है। यदि प्रत्यक्षसे कहोंगे तो फिर अभाव भावका उत्पादक नहीं होता यह कहना ठीक कैसे होगा अर्थात् न होगा क्योंकि अभावको प्रत्यक्षरूप भावोत्पादकता जो सिद्ध हो गयी। और अनुमानरूप प्रमाणसे यदि धर्म्मीकी सिद्धि कहोंगे तो उसमें भी धर्म्मीकी प्रतीति अनुमानांतरसे ही होगी इसीतरह आगे आगे माननेसे अनवस्थाका हटना कठिन होगा। अत्र यदि विकल्पसे धर्म्मीकी प्रतीति कहते हो तो भी क्या प्रमाणमूलका विकल्पसे उसकी सिद्धि है अथवा केवल विकल्पमात्रसे ही हे। प्रमाणोंकी प्रवृत्तिका उसमें अभी खंडन कर चुके है इसलिये प्रमाणमूला तो नही कह सकते। विकल्पमात्रसे उसकी प्रतीति माननी भी ठीक नही है क्योंकि विकल्पमात्रसे तो किसीकी भी सिद्धि नहीं होती अन्यथा नाम यदि विकल्पमात्रसे ही पदार्थसिद्धि हो जाय तो फिर प्रामाणिक

पुरातिा प्रमाणको दूना व्यर्थ हो जावेगा। एव रीत्या जब धर्मी ही सिद्ध न भया तो पूर्वोक्त हेतु आश्रयासिद्ध हो गया। यदि पूर्वोक्त धर्मी अस्वीकृत है तो यह धर्मित्वेन कैसे कहा जब धर्मित्वेन कहा तो यह हेतु आश्रयासिद्ध ही भया। अब जैन इसका उत्तर कहते हैं कि केवल विकल्पसे ही धर्मीकी सिद्धि हम कहते है। पूर्वोक्तानुमानमें आश्रयासिद्धि दोष भी नहीं है क्योंकि अवस्तुकी विकल्पसे प्रसिद्धि अवश्यमानी ही चाहिये अन्यथा वध्यापुत्र आदि शब्दोंका उच्चारण ही न कर सकेंगे हम वध्यापुत्र शब्दका उच्चारण नहीं ही करते ऐसा नहीं कहना क्योंकि जगत्में वध्यापुत्र है वा नहीं ऐसा जब किसीने पूछा तो राजाकी सभामें उसके विधायक अथवा निषेधक वचनको अवश्य तुमको कहना ही पडेगा। और यदि कुछ न कहोगे अथवा अप्रासंगिक तुच्छ कह देवोगे तब तो तुमको निग्रहस्थानकी प्राप्ति होवेगी जब उसका विधायक वा निषेधक वचन उच्चारण किया तो उसमें प्रमाणकी आवश्यकता पडी सो उसमें अनुमान तो सभी आश्रयासिद्धि दोषग्रस्त ही होंगे और विना प्रमाणसे कहा हुआ वचन बुद्धिमान प्रश्नकर्ताओंको उपेक्षणीय ही होता है। और उभयाभाव (वन्ध्यापुत्रके अस्तित्व नास्तित्व) भी कह नहीं सकते क्योंकि विधि और निषेधको भावाभावस्वरूप होनेसे एकके निषेधसे दूसरेका विधान होता है क्योंकि विधिका प्रतिषेध है निषेध और निषेधका प्रतिषेध है विधि। अथवा उभयाभावकी ही प्रतिज्ञा रहो परन्तु उसमें जो हेतु कहोगे उसके आश्रयासिद्धि नामक दोषका तो परिहार न भया। ऐसा किसीआचार्यने भी कहा है कि अवस्तुमें किसी (अस्तित्वादि) धर्मकी बाधाविधिका व्यवहार मान (प्रमाण) सिद्ध है वा नहीं यदिप्रमाणसिद्ध है तो पूर्वोक्त आश्रयासिद्ध्यादिक दोष क्या नहीं अर्थात् है ही और यदि प्रमाणसिद्ध नहीं है कहोगे तब तो स्ववचनके ही प्रतिरोध (रुकावट) की सिद्धि भयी अर्थात् अवस्तुमें बाधा विधिका व्यवहार सत्य नहीं है इस कहनेसे ही पूर्वोक्त स्ववचनका खंडन हो गया यह अन्तिम पदका अर्थ है। एव तुरगशृंग आदि दृष्टान्त भी विकल्पसे ही प्रसिद्ध स्वीकार किया है और उसमें वस्तुसे एकान्त भिन्नत्व विशिष्ट भावानुत्पादकत्व भी प्रतीत ही है इसलिये इसदृष्टान्तको साध्यसाधन उभय विकलता नहीं है। प्रश्न करते है कि जैनोंने अभावको भावसे अभिन्न (भावस्वरूप) स्वीकार किया है इसलिये पूर्वोक्त तुम्हारा हेतु बाधसिद्ध है जैन कहते है कि यदि तुम ऐसा कहते हो तो नहीं कहना क्योंकि हमने पर (नैयायिक) ने माने हुए अभावको ही धर्मी कहा है सो उसको तो एकान्तेन भावसे भिन्न जैनोंने भी माना ही है। क्योंकि भवस्तुको वस्तुभूत भावसे अभिन्न जैन नहीं मानते है इसलिये तदभिमत अभाव भावका उत्पादक नहीं है यह सिद्ध भया॥

किंच यदा प्रतिबंधकाभावो विभावसुस्वरूपादेकांतभिन्नोऽभ्युपागामि तदा विभावसुः प्रतिबंधकस्वभावः स्वीकृतः स्यात् प्रतिबंधकाभावाद्व्यावर्तमानत्वात् मणिमंत्रादिप्रतिबंधकस्वरूपवत् । तथा च कथं कदाचिद्दाहादिकार्य्योत्पादो भवेद्विभावसोरेव प्रतिबंधकत्वात् अथ कथं विभावसुः प्रतिबंधकः स्यात् तत्र प्रतिबंधकप्रागभावस्य विद्यमानत्वात् तदव-दातमेतावता हि तत्र वर्तमानः प्रतिबंधकप्रागभाव एव प्रतिबंधकस्वभावो माभूद्विभावसुस्वरूपं तु तद्भावाद्व्यावर्तमानं प्रतिबंधकतां कथं न कलयेत् । यथाहि प्रतिबंधकः स्वाभावाद्व्यावर्तमानः प्रतिबंधकतां दधाति तथा तनूनपादपि प्रतिबं-काभावाद्व्यावर्तमानमूर्त्तिः कथं न प्रतिबंधकरूपतां प्रतिपद्येत स्याद्वादिनां तु भावाभावोभयात्मकं वस्त्विति प्रतिबं-धकाभावात्मनः कृष्णवर्त्मनो न प्रतिबंधकरूपता । किं च प्रतिबंधकाभावस्य कारणत्वे प्रतिबंधकस्य कस्यचिन्नैकट्येऽपि प्रतिबंधकाभावांतराणामनेकेषां भावात्कथं न कार्योत्पादः नहि कुम्भकारकारणः कुम्भः कुंभकारस्यैकस्याभावेऽपि कुम्भ-कारांतरव्यापारान्न भवति नचैक एव कश्चित्प्रतिबंधकाभावः कारणं यदभावात्तदानीं कार्यं न जायते तद्वदेव तन्मतेन सर्वेषामवधूतसामर्थ्यत्वात् । अथ सर्वेपि प्रतिबंधकाभावाः समुदिता एव कारणं न पुनरेकैकशः कुम्भकारवत् तर्हि कदा-चिदपि दाहादिकार्योत्पत्तिर्न स्यात्तेषां सर्वेषां कदाचिदभावात् भुवने मणिमंत्रतंत्रादिप्रतिबंधकानां भूयसां भावात् । अथ ये प्रतिबंधकास्तं तनूनपातं प्रतिबद्धुं प्रसिद्धसामर्थ्यास्तेषामेवाभावाः सर्वे कारणं नतु सर्वेषां सर्वशब्दप्रकारकारका-त्स्येवर्तमानस्य स्वीकारादितिचेन्ननु प्रसिद्धसामर्थ्या इति सामर्थ्यशब्दस्यातींद्रिया शक्तिः स्वरूपं वा प्रतिबंधकानां वाच्यं स्यात् प्राच्यपक्षकक्षीकारे क्षीणः क्षणेनावयोः कंठशोषोऽतींद्रियाशक्तिस्वीकारात् । द्वितीयपक्षे तु त एव तं प्रतिबंधका नापरे इति कौतस्कुती नीतिः स्वरूपस्योभयेषामपि भावान्न खलु मणिमंत्रादेः कंचिदेव जातवेदसमाश्रित्य तत्स्वरूपं न पुनर्जातवेदोन्तरमिति ॥

और भी दोष कहते हैं कि यदि प्रतिबंधकाभाव विभावसु (अग्नि) से अत्यंत भिन्न ही स्वीकार करोगे तो फिर अग्नि प्रतिबंधकस्वरूप ही स्वीकार तुमने किया क्योंकि प्रतिबंधकाभावसे व्यावृत्त होनेसे । जैसेकि प्रतिबंधकाभावसे व्यावृत्त मणिमंत्र आदिक प्रतिबंधकस्वरूप होते हैं । एवं सति अग्निको ही प्रतिबंधकस्वरूप होनेसे कभी भी किसी भी जगह दाहकी उत्पत्ति न होवें । यदिकदाचित् वहां प्रतिबंधक प्रागभावको विद्यमान होनेसे अग्नि प्रतिबंधकस्वरूप कैसे हो सकता है

ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते है कि वहापर वर्तमान प्रतिबधकप्रागभाव ही
अर्थात् यह दोप नहीं आसकता ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते है कि वहापर वर्तमान प्रतिबधकरूपताको प्राप्त क्यों न होवें अर्थात् होना
प्रतिबधक स्वभाव न रहो परन्तु प्रतिबधकाभावसे व्यावर्तमान अग्नि प्रतिबधकरूपताको प्राप्त क्यों न होवें अर्थात् होना
चाहिये । उसीको स्पष्ट करते है कि जिसप्रकार प्रतिबधक अपने अभावसे व्यावर्तमान होता हुआ प्रतिबधकताको
धारणकरता है इसीप्रकार अग्नि भी प्रतिबधकाभावसे व्यावर्तमानमूर्ति प्रतिबधकरूपताको क्यों न धारण करे । और
हम स्याद्वादियोंके मतमें तो वस्तुमात्र भावाभाव उभयस्वरूप है इसलिये प्रतिबधकाभावस्वरूप होनेसे अग्निको प्रतिबधकरूपता
नहीं है । और भी दोप है कि प्रतिबधकाभावको कारण माननेसे किसी एक प्रतिबधकके निकट होनेपर भी बाकी अनेक प्रतिब
धकाभावोंके विद्यमान होनेसे भी कार्य (दाहादिक) की उत्पत्ति क्यों नहीं होती । लोकमें भी कुम्भकार (कुमार) का कार्य
घट एक किसी कुम्भकारके न होनेसे भी कुम्भकारातरसे नहीं होता है क्या अर्थात् होता ही है । और एक ही कोई प्रतिबधका-
भाव तो कारण है नहीं कि जिसके न होनेसे उस वस्तत कार्य उत्पन्न नहीं होता ऐसा कह सके किंतु प्रतिबधकाभावको कारणता
वादीके मतमें तो सपूर्ण प्रतिबधकाभावोंको कार्यजनकता स्वीकृत है । यदिकदाचित् सब प्रतिबधकाभाव समुदित (इकठे) ही
कारण हैं परतु कुभकारकी तरह एक एक कारण नहीं है ऐसा तुम कहते हो तब तो कभी भी दाहादिरूप कार्योंकी उत्पत्ति न
होनी चाहिये क्योंकि जगत्में मणिमत्र तत्र आदि अनेक प्रतिबधकोंके विद्यमान होनेसे सपूर्ण प्रतिबधकाभाव कदाचित् भी कहीं
नहीं रहते । यदिकदाचित् जो प्रतिबधक उस अग्निके प्रतिबधमें सामर्थ्य होते हैं उन्हीके सर्व अभाव कारण है परतु सर्वके नहीं
सर्व पर समुदिता कारण यहापर भी सर्व शब्द उन्हीं सभोंका वाचक है ऐसा तुम कहते हो तो हम पूछते है कि प्रसिद्ध साम
र्थ्य यहापर सामर्थ्य शब्दका अर्थ अतीन्द्रिया शक्ति है अथवा प्रतिबधकोंका स्वरूप ही है । इनमेंसे यदि प्रथम पक्ष तुम मानोगे
तब तो हमारा तुमारा विवाद समाप्त ही हो गया क्योंकि तुमने अतींद्रिया शक्तिका स्वीकार ही कर लिया । और द्वितीय पक्षमें
तो यही इसके प्रतिबधक हैं परतु और नहीं है यह निश्चय नहीं कर सकते क्योंकि प्रतिबधकोंका स्वरूप तो दोनोंकी अपेक्षया
समान ही है परतु मणिमत्रादिकोंका किसी एक अग्निको मानकर ही स्वरूप है परतु अन्यतरको मानकर नहीं है ऐसा तो नहीं है ॥

तथा न प्रतिबधकस्यात्यताभावस्तावत्कारणतया वक्तु युक्तस्तस्यासत्वादन्यथा जगति प्रतिबधककथा प्रत्यस्तमयत्व
प्रसगात् । अपरे पुन प्रतिबधकाभावा एकैकश॰ सहकारिता दधीरन् द्विना वा प्रथमपक्षे प्रागभावः प्रध्वसाभावः परस्प-

राभावो यः कश्चिद्वा सहकारी स्यात् । न प्रथमः प्रतिबंधकप्रध्वंसेऽपि पावकस्य प्लोपकार्योपलंभात् । न द्वितीयः प्रतिबंधकप्रागभावेऽपि दहनस्य दाहोत्पादकत्वात् । न तृतीयः प्रतिबंधकसंबंधबंधोरपि धनंजयस्य स्फोटघटनप्रसंगात् तस्य तदानीमपि भावात । न चतुर्थः प्ररूपयिष्यमाणानियतहेतुकत्वदोपानुषंगात् । द्वित्रप्रतिबंधकाभानभेदे तु किं प्रागभावप्रध्वंसाभावौ त्रयोऽपि वा हेतवो भवेयुः नाद्यः पक्षः उत्तंभकनैकव्ये तावंतरेणापि पावकस्य प्लोपकार्यार्जनदर्शनात् । न द्वितीयतृतीयतुरीयाः प्रतिबंधकपरस्पराभावस्य प्रागवदकारणत्वेन वर्णितत्वाद्भेदत्रयस्यापि चास्य परस्पराभावसंवलितत्वात् । अथ प्रागभावप्रध्वंसाभावोत्तंभकमणिमंत्रतंत्रादयो यथायोगं कारणमितिचेत्तदस्फुटं स्फोटादिकार्यस्यैवमनियतहेतुकत्वप्रसंगादनियतहेतुकं चाहेतुकमेव । तथाह्यन्वयव्यतिरेकावधार्यः कार्यकारणभावो भावानां धूमधूमध्वजयोरिव प्रस्तुते तु प्लोपादि यदैकदैकस्मादुत्पद्यमानमीक्षामासे तदन्यदायद्यन्यतोऽपि स्यात्तर्हि तत्कारणकमेव तन्न भवेदिति कथं नाहेतुकं स्यात् । अथ गोमयाद्वृश्चिकाच्च वृश्चिकोत्पादः प्रक्ष्यत न च तत्रानियतहेतुकत्वं स्वीकृतं त्वयापीतिचेत्तदपि त्रपापात्रं सर्वत्र हि शालूकगोमयादौ वृश्चिकडिंभारंभशक्तिरेकास्तीति यानि तच्छक्तियुक्तानि तानि तत्कार्योत्पादकानीति नागं नः कलंकः संक्रामति भवतां पुनरत्राप्ययं प्रादुर्भवन् दुष्प्रतिषेधो येषां वृश्चिकगोमयसाधारणमेकं किंचिन्नास्ति न च प्रागभावप्रध्वंसाभावोत्तंभकादीनामप्येकं किंचित्तुल्यं रूपं प्रवर्तते इति नानियतहेतुकत्वेन दुर्विधदैवेनेवामी मुच्यंते एतेन भावस्वभावोऽप्यभाव एवास्तु हेतुर्नत्वतींद्रियाशक्तिस्वीकारः सुंदर इत्युच्यमानमपास्तमुक्ताभावविकल्पानामत्राप्यविशेषात् ।

और भी दोप कहते है कि प्रतिबंधकात्यंताभाव तो कारण कह ही नहीं सकते क्योंकि अत्यंताभाव तो जगत्में है ही नहीं अन्यथा जगत्में प्रतिबंधककी कथा भी न रहेंगी (तस्य असत्वात्) और वाकीके जो अभाव हे सो भी क्या एक एक दाहादिकार्योंमें सहकारिताको धारण करते हे अथवा दो तीन करते हैं । प्रथम पक्षमें भी क्या प्रागभाव सहकारी होता है अथवा प्रध्वंसाभाव होता है किंवा परस्पराभाव अथवा इनमेंसे जो कोई सहकारी तुम कहते हो । इनमेंसे प्रागभावको कारण कहना तो ठीक नहीं है क्योंकि प्रतिबंधकके प्रध्वसकालमें भी (प्रागभावस्यासत्वादपीति भावः) अग्निका प्लोपरूप कार्य देखा जाता है । एवं प्रतिबंधकके प्रागभावकालमें भी अग्निके दाहादिकारण देखे जाते हैं इससे द्वितीय नाम प्रतिबंधकप्रध्वंसको भी कारण नहीं कह सकते । एवं तृतीय (अन्योन्याभाव) पक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि प्रतिबंधकके संबंध कालमें भी दाहादिकोंकी आपत्ति आवेगी

क्योंकि अन्योन्याभाव तो प्रतिबंधककालमें भी विद्यमान ही है। चतुर्थपक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि इसमें आगे कथनीय अनियतहेतुकत्व रूपदोष आवेगा। अब दो तीन प्रतिबंधकाभावोंको कारणता पक्षमें पूछते हैं कि क्या प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव कारण है अथवा प्रागभाव और परस्पराभावको तुम कारण कहते हो किंवा तीनोंको ही कहते हो। इनमेंसे भी प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं है क्योंकि प्रागभाव प्रध्वंसाभावके न होने पर भी उत्तेजकके निकटवृत्ति होनेसे अग्निका कार्य देखा जाता है। और द्वितीय तृतीय तथा चतुर्थ पक्षोंको परस्पराभाव गर्भित होनेसे पूर्वोक्त ही दोष है। यदिकदाचित् प्रागभाव प्रध्वंसाभाव और उत्तेजकाभावादिकोंको यथायोग नाम जहा जिसका योग है वहा उसीको कारणता है ऐसा तुम कहते हो तो यह कथन तो ठीक नहीं है क्योंकि ऐसे तो स्फोट आदिकार्योंको ही अनियत हेतुकत्व नाम अनियतहेतुजन्यत्वकी प्राप्ति आवेगी जो अनियतहेतुक होता है वह अहेतुक ही होता है अनियतहेतुक अहेतुक ही होता है इस बातको ग्रंथकार स्पष्ट करते हैं कि तथाहि भावोंका कार्यकारण भाव अन्वयव्यतिरेकसे निश्चय किया जाता है जैसे कि धूम और अग्निका कार्यकारणभाव अन्वयव्यतिरेकसे प्राप्त है। प्रकृतमें तो जब दाहादिक एक जगह एक (प्रतिबंधकाभाव) से उत्पन्न होता हुआ देखा तो और कालमें यदि दूसरे (उत्तेजक) से भी उत्पन्न हो जाय तो वह (प्रतिबंधकाभाव) उस (दाह) का कारण ही न होगा (तेन सह तस्य अन्वयव्यतिरेकाभावादिति भाव) इसलिये अनियतहेतुक अहेतुक क्यों नहीं। यदिकदाचित् कहीं गोमय (गोबर) से और कहीं वृश्चिक (विच्छूए) से वृश्चिककी उत्पत्ति देखनेमें आती है वहाँपर तुमने भी अनियत हेतुकत्व (दोषतया) नहीं माना पर यहा भी मतमानों ऐसा तुम कहते हो तो यह कथन भी काच पात्रके समान है अर्थात् ठीक नहीं है क्योंकि हमारे गोमयादिकोंमें सर्वत्र ही वृश्चिककी उत्पादिका एक ही शक्ति है इसलिये जो जो तादृशशक्तिवाले हैं वे तच्छक्तिमत्त्वेन तत्कार्यजनक हैं इसलिये हमको यह दोष नहीं आता परन्तु तुमको तो यह दोष यहा भी है ही क्योंकि तुम्हारे मतमें वृश्चिक और गोमयमें एक कोई धर्म नहीं है। प्रागभाव प्रध्वंसाभाव और उत्तेजकादिकोंका भी एक कोई तुल्यरूप नहीं है इसलिये अनियत हेतुत्वसे खोटे धर्मकी तरह वह छूटते नहीं। इस कहनेसे भावस्वभाव भी अभाव ही कार्यजनक रहो परंतु अतीन्द्रियाशक्ति नहीं ऐसा भी कहना खंडन किया गया क्योंकि उक्त विकल्पोंकी यहा भी तुल्यता ही है॥

अथ शक्तिपक्षप्रतिक्षेपदीक्षिता आक्षपादा एव साक्षेपमाचक्षते ननुभवत्पक्षे प्रतिबंधकोऽकिंचित् कर॰ किंचित्करो वा

भवेत् अकिंचित्करप्रकारे ऽतिप्रसंगः शृंगभृंगभृंगारादेरप्यकिंचित्करस्य प्रतिबंधकत्वप्रसंगात् । किंचित्करस्तु किंचिदुपचिन्वन् अपचिन्वन् वा स्यात् प्राचि पक्षे किं दाहकशक्तिप्रतिकूलां शक्तिं जनयेत् तस्या एव धर्म्मांतरं वा । न प्रथमः प्रमाणाभावात् दाहाभावस्तु प्रतिबंधकसन्निधिमात्रेणैव चरितार्थ इति न तामुपपादयितुमीश्वरः धर्म्मांतरजनने तदभावे सत्येव दाहोत्पाद इत्यभावस्य कारणत्वस्वीकारस्त्वदुक्ताशेषप्रागभावादिविकल्पावकाशश्च । अपचयपक्षे तु प्रतिबंधकस्तां शक्तिं विकुट्टयेत्तधर्म्मं वा प्रथमप्रकारे कुतस्त्यं कृपीटयोनेः पुनः स्फोटघटनपाटवं तदानीमन्यैव शक्तिः संजातेतिचेन्ननु सा संजायमाना किमुत्तंभकात्प्रतिबंधकाभावाद्देशकालादिकारकचक्रादतीन्द्रियार्थांतराद्वा जायते । आद्यभिदायामुत्तंभकाभावेऽपि प्रतिबंधकाभावमात्रात् कौतुस्कुतं कार्योर्जनं जातवेदसः । द्वितीयभेदे तत एव स्फोटोत्पत्तिसिद्धेः शक्तिकल्पनावैतथ्यं । तृतीये देशकालादिकारकचक्रस्य प्रतिबंधककालेऽपि सद्भावेन शक्त्यंतरप्रादुर्भावप्रसंगः । चतुर्थेऽतीन्द्रियार्थांतरनिमित्तकल्पने तत एव स्फोटः स्फुटं भविष्यति किमनया कार्यं तन्न शक्तिनाशः श्रेयान् । तद्वदेव तद्धर्म्मनाशपक्षोऽपि प्रतिक्षेपणीयः ।

अब शक्ति पक्षके प्रतिक्षेपमें दीक्षित नाम शक्तिके खंडनमें कटीबद्ध आक्षपाद (गौत्तमानुयायी नैयागिक) साक्षेप ऐसा प्रश्न करते है कि भाई शक्तिवादियो तुह्मारे पक्षमें प्रतिबंधक जो मणिमंत्रादिक है सो किंचित्कर (कुच्छ करनेवाले) है अथवा अकिंचित्कर है । अकिंचित्कर पक्षमें तो अतिप्रसंग दोष है क्योंकि अकिंचित्करको प्रतिबंधक माननेसे तो अकिंचित्कर शृंग भृंग तथा भृंगारादिकोंको भी प्रतिबंधकताकी प्राप्ति होवेगी । अब यदि किंचित्कर कहते हो तो भी क्या किसीको वह उत्पन्न करता हुआ प्रतिबंधक कहलाता है अथवा किसीको नाश करता हुआ कहाता है । प्रथम (उत्पादकत्व) पक्षमें भी क्या दाहकशक्तिसे प्रतिकूल शक्तिको उत्पन्न करता है अथवा उसीके धर्म्मांतरको उत्पन्न करता है । इनमें भी प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं है क्योंकि उसमें कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि दाहाभाव तो प्रतिबंधकके सन्निधानमात्रसे ही हो सकता है इसलिये वह तो पूर्वोक्त प्रतिकूला शक्तिको सिद्धकरनेमें समर्थ नहीं होता । और धर्म्मांतर जननरूप द्वितीयपक्षमें तो उस धर्म्मके न होनेपर ही दाहकी उत्पत्ति सिद्ध भयी इसलिये अभावको कारणता तुमको भी प्राप्त हो गयी और तुमने कहे हुए प्रागभावादि विकल्पोंका भी अवकाश हो जायगा। अब अपचयपक्षमें भी पूछते हैं कि क्या प्रतिबंधक जो है सो दाहक शक्तिका नाश करता है अथवा उसके धर्म्मका नाश करता

है यदि शक्तिका नाश कहोगे तो हम पूछते है कि अग्निमें पुन (प्रतिबंधकापसारणादिकालमें) दाहादिकोंको उत्पन्न करनेवाली शक्ति कहासे होती है अर्थात् एव सति प्रतिबंधकापसरणकालमें भी दाह वा स्फोटादि न होने चाहिये (शक्तेर्नाशादिति भाव । यदि उस (प्रतिबंधकापसरणादि) कालमे दूसरी ही शक्ति उत्पन्न हो जाती है वैसा तुम लोग कहते हो तो हम पूछते है कि वह उत्पन्न होनेवाली शक्ति क्या उत्तेजकसे उत्पन्न होती है अथवा प्रतिबंधकके अभावसे किंवा देशकाल आदि कारक चक्रसे अथवा अतीन्द्रिय किसी अन्यपदार्थसे होती है । इनमेंसे प्रथम पक्षमें तो उत्तेजकके अभावमें भी प्रतिबंधकके अभावमात्रसे ही अग्निसे दाहादि कार्य क्यों होते है अर्थात् न होने चाहिये । द्वितीय पक्ष माननेसे तो उसी (प्रतिबंधकाभाव) से ही स्फोट आदि अग्नि के कार्योंकी सिद्धि हो जावेगी तो फिर शक्ति माननेकी क्या ही आवश्यकता है अर्थात् कुच्छ भी नहीं है। तृतीय भेदमें देश काल आदि कारणसमुदाय तो प्रतिबंधक कालमें भी विद्यमान ही है इसलिये दूसरी शक्तिके प्रादुर्भावकी प्राप्ति आजावेगी । एव चतुर्थ पक्षमें अतीन्द्रिय पदार्थांतरको जो शक्तिका कारण कल्पना करता है तो उसीको दाहोत्पादक ही क्यों नहीं मानलेते। तो फिर शक्तिकी आवश्यकता ही क्या है । इसलिये शक्तिनाशपक्ष तो ठीक नहीं है । इसीतरह तद्धर्म्मनाशपक्षका भी बुद्धिमानोंने स्वय खडन करलेना ॥

अत्राभिदध्महे एतेषु शक्तिनाशपक्ष एव स्वीक्रियते इत्यपरविकल्पशिल्पकल्पनाजल्पाकता कण्ठशोषायैव व सबभूव । यदुक्त कुत. पुनरसावुत्पद्यतेति तत्र शक्त्यतरसहकृतात्कपीटयोनेरेवेति ब्रूमः। ननु प्रतिबंधकदशायां सा शक्तिरस्ति न वा नास्तिचेत् कुत पुनरुत्पद्येत शक्त्यतरसहकृतादग्नेरेवेतिचेत्तर्हि सापि शक्त्यतरसध्रीचस्तस्मादेवोन्मज्जेदित्यनवस्था । अथास्ति तदानीमपि स्फोटोत्पादिका शक्ति सपादयेत्ततोऽपि स्फोटः स्फुट स्यादेवेति । अत्रोच्यते प्रतिबंधकावस्थायामप्यस्त्येव शक्त्यतर घटयतिच स्फोटघटनलपटा शक्ति तदापि यस्तु तदा स्फोटानुत्पादः स प्रतिबंधकेनोत्पन्नोत्पन्नायास्त सा' प्रध्वंसात् प्रतिबंधकापगमे तु स्फोट स्फुटीभवत्येवेत्यतीन्द्रियशक्तिसिद्धिः । अत्राशङ्कान्तरपरीहारप्रकारमौक्तिकरूणप्रचयावचाय. स्याद्वादरत्नाकराचार्किकैः कर्तव्य एवच स्वाभाविकशक्तिमान्शब्दोऽर्थ बोधयतीति सिद्ध ।

अब जैन कहते है कि जो पूर्व नेयायिकोंने शक्तिको न माननेके लिये कहा है उसका अब हम उत्तर कहते है कि हे नैयायिको तुमने शक्तिके विषयमे जो विकल्प किये है उनमेसे हम केवल शक्तिनाश पक्ष ही स्वीकार करते है इसलिये बाकी विकल्प-

रूपी शिल्पकल्पनामें बोलना तो केवल तुह्मारे कंठशोसके निमित्त ही है अर्थात् अन्यविकल्प करने व्यर्थ हैं। और जो तुमने कहाथा कि वह शक्ति पुनः कहांसे उत्पन्न होती है इसमें शक्त्यंतरराहकृत अग्निसे ही हम कहते हैं। नैयायिक प्रश्न करते है कि प्रतिबंधककालमें भी वह शक्तिकी उत्पादिका शक्ति है वा नही यदि नही है तो हम पूछते है कि वह भी पुनः किससे उत्पन्न होती है यदि शक्त्यंतर सहकृत अग्निसे ही होती है कहते हो तब तो फिर वह भी शक्त्यंतरसहकृत अग्निसे ही उत्पन्न होवेगी एवं अनवस्थारूपदोष आजावेगा। और यदि कदाचित् प्रतिबंधककालमें वह शक्त्युत्पादिका शक्ति है: वैसा तुम कहतेहो तब तो भाईजैन वहशक्ति प्रतिबंधककालमें भी दाहका शक्तिको उत्पन्नकरे और उस शक्तिसे दाह आदि कार्योंकी उत्पत्ति भी अवश्यहोगी इसमें जैन उत्तर कहते है कि प्रतिबंधककालमें भी वह शक्ति विद्यमान ही है और वह दाहजनिका शक्तिको प्रतिबंधककालमें उत्पन्न भी करती ही है और जो उसकालमें स्फोट आदि कार्य नहीं उत्पन्न होते सो तो उत्पन्न उत्पन्न ही दाहक शक्तिका प्रतिबंधकसे नाश हो जानेसे नही होते और प्रतिबंधकके हट जानेसे तो स्फोट हो ही जाता है। इस रीतिसे अतीन्द्रिया शक्तिकी सिद्धि भई इसविषयमें और अनेक शंका तथा समाधान स्याद्वादरत्नाकरसे तार्किकोंने जान लेने। इसप्रकार स्वाभाविक शक्तिमान् शब्द अर्थका बोध कराता है यह सिद्ध भया।

अथ तदंगीकारे तत एवार्थसिद्धेः संकेतकल्पनाऽनर्थकैव स्यादितिचेन्नैवमस्य सहकारितया स्वीकारादंकुरोत्पत्तौ पयःपृथिव्यादिवत्। अथ स्वाभाविकसंबंधाभ्युपगमे देशभेदेन शब्दानामर्थभेदो न भवेद्भवति चायं चौरशब्दस्य दाक्षिणात्यैरोदने प्रयोगादितिचेत्तदशस्यं सर्वशब्दानां सर्वार्थप्रत्यायनशक्तियुक्तत्वात्। यत्र च देशे यदर्थप्रतिपादनशक्तिसहकारिसंकेतः स तदर्थं तत्र प्रतिपादयतीति सर्वमवदातं।

यदि कदाचित् जब शब्दमें शक्ति मान ली तो उसीसे अर्थ सिद्ध हो जाँयगा फिर संकेतकी कल्पना तो व्यर्थ ही है ऐसा तुम लोग कहते हो तो नही कहना क्योंकि अंकुरकी उत्पत्तिमें जल और पृथिव्यादिकोंकी तरह शब्दसे अर्थज्ञानमें संकेतको सहकारिता है। इसीको पुष्टकरनेके लिये प्रश्नोत्तररूपसे कहते है। यदि कदाचित् स्वाभाविक संबंधके माननेपर देशभेदसे अर्थभेद न होना चाहिये होता तो है जैसेकि दाक्षिणात्यलोग चौर शब्दका रोदनमें प्रयोग करते है ऐसा तुम कहते हो तो यह कहना तो ठीक नही है। क्योंकि सर्व शब्दोंको संपूर्ण पदार्थोंकी बोधक शक्ति युक्तता है अर्थात् सब शब्दोमे सर्वपदार्थोंकी बोधिका शक्ति-

है परन्तु जिसदेशमें जिस अर्थकी प्रतिपादिका शक्तिसे सहकृत संकेत होता है वह शब्द उसी अर्थको वहां प्रतिपादन करता है जैन ही कहते हैं कि इसप्रकार सब ठीक भया अब कुछ भी दोष नहीं है ।

सौगतास्तु प्रत्येव विधेयानुवाद्यभावो योऽयं शब्दो वर्णात्मकयोः प्रसिद्ध स स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यां कृत्वाऽर्थबोधनिबन्धनमेवेति । अथ स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यां शब्दस्यार्थे सामान्यरूपे विशेषलक्षणे तदुभयस्वभावे वा वाचकत्वं व्याकुर्येत । न प्रथमे सामान्यस्यार्थक्रियाकारित्वाभावेन नभोम्भोजादिसन्निभत्वात् । न द्वैतीयीके विशेषस्य स्वलक्षणलक्षणस्य वैकल्पिकविज्ञानागोचरत्वेन संकेतास्पदत्वासंभवात् । तत्संभवेऽपि विशेषस्य व्यवहारकालानुयायित्वेन संकेतनैरर्थक्यात् । तार्तीयीके तु स्वतन्त्रयोस्तादात्म्यापन्नयोर्वा सामान्यविशेषयोस्तद्गोचरता समीर्येत । नाद्यःपक्षः प्राचिकविकल्पोपदर्शितदोषानुषङ्गात् । न द्वितीयः सामान्यविशेषयोर्विरुद्धधर्म्माध्यासितत्वेन तादात्म्यायोगादिति नार्था वाच्यो वाचामपि तु परमार्थतः सर्वतो व्यावृत्तस्वरूपेषु स्वलक्षणेष्वेकार्थकारित्वेनैककारणत्वेन चोपजायमानैकप्रत्यवमर्शरूपविकल्पस्याकारो बाह्यत्वेनाभिमन्यमानो बुद्धिप्रतिबिम्बव्यपदेशभागपोह शब्दश्रुतौ सत्यां तादृशोल्लेखशेखरस्यैव वेदनस्योत्पादात् । अपोहत्वं चास्य स्वाकारविपरीताकारोन्मूलत्वेनावसेयं । अपोह्यते स्वाकाराद्विपरीताकारोऽनेनेत्यपोह इतिव्युत्पत्तेः । तत्त्वतस्तु न किंचिद्वाच्यं वाचकं वा विद्यते शब्दार्थतया कथिते बुद्धिप्रतिबिम्बात्मन्यपोहे कार्यकारणभावस्यैव वाच्यवाचकतया व्यवस्थापितत्वात् ।

अब सौगतों (बौद्धों) के प्रति इसप्रकार अनुवाद्यविधेयभाव कहते हैं बौद्ध और जैनमतमें शब्द वर्णात्मक प्रसिद्ध है सो शब्द स्वाभाविकसामर्थ्य और (समय) संकेतद्वारा ही पदार्थके बोधमें कारण होता है । (इसप्रकार अनुवाद्यविधेयभाव भया) बौद्ध पूछते हैं कि हे भाई जैनी तुम बताओ कि स्वाभाविक सामर्थ्य और संकेतद्वारा शब्दको सामान्यरूप अर्थकी वाचकता है अथवा विशेषकी है किंवा सामान्यविशेष उभयस्वरूपकी वाचकता है । इनमेंसे प्रथमकी तो नहीं है क्योंकि सामान्यको अर्थक्रियाकारित्वके न होनेसे आकाश कमलकी सादृश्यता है अर्थात् सामान्य है ही नहीं । न द्वितीयपक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि स्वलक्षणलक्षणविशेषको वैकल्पिकविज्ञानका अविषय होनेसे संकेत गोचरता नहीं हो सकती । अथवा यथाकथंचित् संकेत गोचरता मान भी लीजाय तो भी विशेषको व्यवहारकालतक अननुयायी होनेसे संकेतको निरर्थकता ही है । तृतीयपक्षमें भी क्या स्वतन्त्र सामान्यविशेषोंको

(तत्) संकेतगोचरता है अथवा तादात्म्यापन्न सामान्यविशेषोंको है तुम कहते हो। इनमें भी प्रथमपक्ष तो ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे तो पूर्व विकल्पोंमें कथित दोष ही प्राप्त होते है। एवं सामान्य और विशेषोंको विरुद्धधर्माध्यासित होनेसे तादात्म्यका अभाव है इसलिये द्वितीयकल्पना भी ठीक नहीं है। इसलिये पदार्थ शब्दोंका वाच्य नहीं है किंतु परमार्थरूपसे सबसे व्यावृत्त (जुदा) स्वरूप स्वलक्षणोंमें एकार्थकारी होनेसे और एककारणोंसे उत्पन्न होनेवाला एक प्रत्यवमर्शरूप विकल्पका वाच्यत्वेन अभिमन्यमान बुद्धिप्रतिबिंबनामक अपोहस्वरूप आकार है क्योंकि शब्दके सुननेसे वैसे ही उल्लेखवाले ज्ञानकी उत्पत्ति होती है (इदमन्यत्र मया स्पष्टीकृतं) इसको अपोहरूपता तो स्वाकारसे विपरीत आकारका उन्मूलक होनेसे है ऐसा बुद्धिमानोंने जाना क्योंकि हटाया जावे स्व आकारसे विपरीत आकार जिससे उसको अपोह समझना ऐसी ही इसकी व्युत्पत्ति है। तत्वतः तो न तो कोई वाच्य है और न कोई वाचक है किंतु शब्दार्थतया कथित बुद्धिमें प्रतिबिंबित अपोहरूप आत्मामें कार्यकारणभावको ही वाच्यवाचकता कही जाती है।

अथ श्रीमदनेकांतसमुद्रोपपिपासितः अपोहमापिबामि द्रागवीक्षंतां भिक्षवः क्षणमिह विकल्पानां तथा प्रतीतिपरिहृतविरुद्धधर्माध्यासकथंचित्तादात्म्यापन्नसामान्यविशेषस्वरूपवस्तुलक्षणाक्षुण्णदीक्षादीक्षितत्वं प्राक् प्राकट्यत ततस्तत्वतः शब्दानामपि तत्प्रसिद्धमेव यतो जल्पि युष्मदीयैः स एव शब्दानां विषयो यो विकल्पानामिति कथमपोहः शब्दार्थः स्यात्। अस्तुवा तथाप्यनुमानवत् किं न शब्दः प्रमाणमुच्यते। अपोहगोचरत्वेपि परंपरया पदार्थे प्रतिबंधात्प्रमाणमनुमानमिति चेत्तत एव शब्दोऽपि प्रमाणमस्तु अतीतानागतांबरसरोजादिष्वसत्स्वपि शब्दोपलंभान्नात्रार्थप्रतिबंधः इति चेत्तर्ह्यभूद्वृष्टिर्गिरिणदिनेगोपलंभान् भावी भर्ण्युदयो रेवत्युदयान्नास्ति रासभशृंगं समग्रप्रमाणैरनुपलम्भादित्यादेरर्थाभावेऽपि नार्थप्रतिबंधः स्यात्। यदि वचो वाच्यापोहोऽपि पारंपर्येण पदार्थप्रतिष्ठः स्यात्तदानीमलाबू निमज्जन्तीत्यादिविप्रतारकवाक्यापोहोऽपि तथाभवेदिति नैतदनुमेयेऽपि तुल्यमेतत्। प्रमेयत्वादिहेत्वनुमेयापोहेऽपि पदार्थप्रतिष्ठताप्रसक्तेः प्रमेयत्वं हेतुरेव न भवति विपक्षासत्वतल्लक्षणाभावादिति कुतस्त्या तदपोहस्य तन्निष्ठतेतिचेत्तर्हि विप्रतारकवाक्यमप्यागम एव न भवत्याप्तोक्तत्वतल्लक्षणाभावादित्यादि समस्तं समानं।

अब अनेकान्तरूपी समुद्रोपरो पिपासित (तृषावान्) मैं अपोहका शीघ्र ही पान करता हूं जरा क्षणमात्र बौद्ध देखें। विकल्पों

को तो वैसी (सामान्यविशेषोभयविषयणी) प्रतीतिसे हटा है विरुद्ध धर्म्मोंका अभ्यास जिनसे वैसे कथंचितादात्म्यापन्न जो सा
मान्य और विशेष तत्त्वरूप वस्तुको जाननारूप परम दीक्षामें दीक्षितत्व तो पूर्व प्रगट हो ही चुका है तब शब्दोंको भी वह सिद्ध
हो ही गया क्योंकि तुम्हारे लोगोंने ही ऐसा कहा है कि जो विकल्पोंका विषय है वही शब्दोंका भी होता है । इसलिये भाई
बौद्ध शब्दका अर्थ अपोह कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता । अथवा मान भी लो तो भी अनुमानकी तरह शब्द भी
प्रमाण क्यों नहीं कहा जायगा । यदि कदाचित् अनुमानको अपोह विषयक होनेपर भी परपरया पदार्थके साथ संबंध होनेसे
प्रमाणरूपता है ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि वैसे ही शब्द भी प्रमाण रहो । यदि कदाचित् अतीत और अनागत
तथा आकाशकमल आदि असत् पदार्थोंमें भी शब्दकी प्रवृत्ति होनेसे इसमें परपरया भी अर्थसंबंध नहीं है ऐसा तुम कहते हो तो
हम कहते हैं कि वहां अवश्य होई होगी क्योंकि गिरिनदी (पर्वतादी) का वेग प्रतीत होता है एवं रेवती नामक नक्षत्रका
उदय हुआ है इसलिये भरणीका भी उदय होगा और रासभ (गधे)का शृंग जगत्में नहीं है इत्यादि स्थलोंमें अर्थके न होनेसे भी
अनुमानकी प्रवृत्ति होती है इसलिये अनुमानका भी अर्थके साथ संबंध न होना चाहिये । यदि कदाचित् जैसे शब्दका वाच्य
अपोह भी परंपरया पदार्थके साथ संबद्ध होय तो अलाबु (तूंबे) डूबरहे हैं इत्यादिक विप्रतारक (ठग) पुरुषोंका वाच्यापोह
भी परपरया पदार्थके साथ संबद्ध ही होना चाहिये ऐसा तुम कहते हो तो हम कहते हैं कि यह तो अनुमेयापोहमें भी तुल्य ही
है क्योंकि प्रमेयत्वादि (व्यभिचारी) रूप हेतुओंके अनुमेयापोहमें भी परपरया पदार्थ प्रतिबद्धता होनी चाहिये । यदि कदाचित्
विपक्षासत्त्वरूप हेतुके लक्षणका अभाव होनेसे प्रमेयत्व तो हेतु ही नहीं होता तो उसके अपोहको संबद्धता कैसे होगी ऐसा तुम
कहते हो तो हम कहते हैं कि विप्रतारक वाक्य भी आप्तोक्त न होनेसे प्रमाण ही नहीं होता इत्यादि भाई बौद्ध यह सब
समान ही है ॥

यस्तु नाप्तोक्तत्व वचसि विवेचयितु शक्यमिति शाक्यो वक्ति स पर्यनुयोज्य. किमाप्तस्यैव कस्याप्यभावादेवमभिधीयते
भावेप्यस्य निश्चयाभावान्निश्चयेऽपि मौनव्रतिकत्वादव्रतिकत्वेप्यनाप्तवचनात्तद्वचसो विवेकावधारणाभावाद्वा सर्वमप्येतच्चार्वा-
कादिवाचां प्रपचान्मातापितृपुत्रभ्रातृगुरुसुगतादिवचसां विशेषमातिष्ठमानैरप्रकटनीयमेव । नच नास्ति विशेषस्वीकारस्त-
त्पठितानुष्ठानघटनायामेव प्रवृत्तेर्निर्निबंधनत्वापत्ते. अथानुमानिक्येवाप्तशब्दादर्थप्रतीतिः । कथ पादपार्थविवक्षावान्

पुरुषोयं प्रतीयते वृक्षशब्दप्रयोक्तृत्वात्पूर्वावस्थाखहं यथेति विवक्षामनुमाय सत्या विवक्षेयमाप्तविनक्षात्वान्मद्विवक्षावदिति वस्तुनो निर्णयादितिचेत्तदचतुरश्रमीदृशव्यवस्थाया अनंतरोक्तवैशेषिकपक्षप्रतिक्षेपेण कृतनिर्वचनत्वात् । किंच शाखादिमति पदार्थे वृक्षशब्दसंकेते सत्येतद्विवक्षानुमानमातन्येतान्यथा केनचित् कक्षे वृक्षशब्दं संकेत्य तदुच्चारणादुन्मत्तसुप्तशुकसारिकादिना गोत्रस्खलनवता चान्यथापि तत्प्रतिपादनाच्च हेतोर्व्यभिचारापत्तेः । संकेतपक्षे तु यद्येष तपस्वी शब्दस्तद्व्शाद्वस्त्वेव वदेत्तदा किं नामक्षूणं स्यान्न खल्वेषोऽर्थाद्विभेति । विशेषलाभश्चैवं सति यदेवं विधाननुभूगमानपारंपर्य्यपरित्याग इति ।

और जो शाक्य कहते है कि वचनमें आप्तोक्तत्वका निश्चय कोई भी नही कर सकता सो उन शाक्योंको हम पूछते है कि क्या किसी आप्तके न होनेसे तुम ऐसा कहते हो अथवा आप्त है तो भी उसके निश्चय न होनेसे कहते हो अथवा निश्चय भी है तो भी वह मौन व्रतिक नाम सदा ही उनकी मौन रहने की प्रतिज्ञा है इसलिये कहते हो वह बोलते भी है परंतु उनके वचनोंमें अनाप्तवचनों की अपेक्षया विवेकका निश्चय नही होता इससे कहते हो । जैन ही कहते है कि यह सव विकल्प चार्वाक आदि नास्तिक लोगोंकी वाणियोंके प्रपंचसे है सो मातापिता भ्राता गुरु और सुगत आदिकों की वाणीमें विशेष माननेवालेबौद्धोंने प्रगट ही नही करने चाहिये । मातापिता आदिकोंके वचनमें भी विशेष स्वीकार नहीं है वैसा नही कहना क्योंकि ऐसे तो सुगत आदिकोंसे कथित कार्योंमे प्रवृत्ति अकारणिका ही हो जायगी । यदि कदाचित् आप्तवचनसे जो अर्थका ज्ञान होता है सो अनुमानसे होता है किसप्रकार अनुमानसे होता है सो कहते है जिसप्रकार पूर्वावस्थामें मै पादप (वृक्ष) रुप अर्थको कहनेकी इच्छासे वृक्षशब्दका प्रयोग कियाथा इसीतरह यह पुरुष भी वृक्षशब्दका प्रयोग करता है इसलिये यह पादपरुप अर्थके कहनेकी इच्छावाला ही है इसतरह विवक्षाका अनुमान करके फिर मेरी विवक्षाकी तरह आप्तविवक्षा होनेसे यह विवक्षा भी सत्या ही है इसप्रकार वस्तुका निर्णय होता है ऐसा तुम कहते हो तो यह कहना तो ठीक नही है क्योंकि ऐसी व्यवस्थाका तो अनंतरोक्त वैशेषिकोंके पक्षके खंडनसे ही हम खंडन कर चुके है। परंतु अव हम और भी कुच्छ कहते है कि तुम वताओ कि शाखा आदिमान् पदार्थमें वृक्षशब्दके संकेत होनेसे पूर्वोक्त विवक्षाका अनुमान तुम करते हो अथवा वैसे ही करतेहो । अन्यथा नाम विना ही संकेतसे तो नही कहसकतें क्योंकि कै एक पुरुष घटादिकोंमें भी वृक्षशब्दका सकेतकरके उच्चारण करते हैं और उन्मत्त तथा सुप्त एवं शुक

सारिका तथा अथवे आदिपुरुष अन्यथा भी वृक्षशब्दका उच्चारण करते हैं इसलिये व्यभिचार आवेगा। सर्वथैव यदि यह बिचारा शब्द संकेतद्वारा पदार्थको ही कहेंद तो फिर क्या ही बाकी रहगया अर्थात् यह संकेतद्वारा अ ... ही यों न कहें। यह शब्द अ सो कुछ डरता तो नहीं। और हमारेमतमें तुमारी कही हुई अप्रामाणिक परपराका त्याग भी विशेषताभ भी है।

यदप्यपि परमार्थत. सर्वतो व्यावृत्तस्वरूपेषु स्वलक्षणेष्वेकार्थकारित्वेनेत्यादि तदप्य यतोऽर्थस्य वाहदोहादेरेकत्वम द्विरूपत्व समानत्व वा विवक्षित। न तावदाद्य. पक्ष, खडमुडादौ कुडकाडमाडादिवाहादेरर्थस्य भिन्नभिन्नस्यैव सदर्शनात्। द्वितीयपक्षेऽपि सदृशपरिणामास्पदत्वमन्यव्यावृत्त्यधिष्ठितत्व वा समानत्व स्यात् न प्राच्य' प्रकार' सदृशपरिणामस्य सौगतैरस्वीकृतत्वात्। न द्वितीय' अन्यथा वृत्तेरतात्त्विकत्वेन वांध्येयस्येव स्वलक्षणेऽधिष्ठानासंभवात्। किंचान्यतः सामान्येन विजातीयाद्वा व्यावृत्तिरन्यथाव्यावृत्तिर्भवेत् प्रथमपक्षे न किंचिदसमान स्यात्सर्वस्यापि सर्वतो व्यावृत्तत्वात्। द्वितीये तु वाजिकुजरादिकार्याणा वाहादिसजातीयत्वे सिद्धे सति स्याच्चान्यव्यावृत्तिरूपमन्येषा विजातीयत्वे सिद्धे सतीति स्पष्ट परस्पराश्रयत्वमिति। एतच्च कारणैक्य प्रत्यनमशक्य च विकल्प्य दूषणीयम्। अपिच यदि बुद्धिप्रतिबिम्बात्मा शब्दार्थ' स्यात्तदा कथमतो बहिरर्थे प्रवृत्तिः स्यात् स्वप्रतिभासेऽनर्थेऽर्थाध्यवसायाच्चेत् ननु कोऽयमर्थाध्यवसायो नाम अर्थसमारोप इतिचेत्तर्हि सोऽयमर्थानर्थयोरग्निमाणवकयोरिव तद्विकल्पविषयभावे सत्येव समुत्पत्तुमर्हति। न च समारोपविकल्पस्य स्वलक्षण कदाचन गोचरतामचति। यदि चानर्थेऽर्थसमारोप स्यात् तदा वाहदोहाद्यर्थक्रियार्थिनः सुत रा प्रवृत्तिर्न स्यात्। नहि दाहपाकाद्यर्थी समारोपितपावकत्वे माणवके कदाचित् प्रवर्तते रजतरूपतावभासमानशुक्तिकायामिव रजतार्थिन.। अर्थक्रियार्थिनो विकल्पात्तु प्रवृत्तिरितिचेत् भ्रांतिरूपस्तर्ह्ययं समारोपस्तथा च कथ तत' प्रवृत्तोऽर्थक्रियार्थी कृतार्थ' स्यात् यथा शुक्तिकायां प्रवृत्तो रजतार्थक्रियार्थीति। यदपि प्रोक्त कार्यकारणभावस्यैव वाच्यवाचकतया व्यवस्थापितत्वादिति तदप्ययुक्त यतो यदि कार्यकारणभाव एव वाच्यवाचकभाव स्यात्तदा श्रोत्रज्ञाने प्रतिभासमान. शब्दः स्वप्रतिभासस्य भवत्येव कारणमिति तस्याप्यसौ वाचकः स्यात् तथाच विकल्पस्य शब्दः कारणमेव पर-

परया स्वलक्षणमप्यतस्तदपि वाचकं भवेदिति प्रतिनियतवाच्यवाचकभावव्यवस्थानं प्रलयपद्धतिमनुधावेत्ततः शब्दः सामान्यविशेषात्मकार्थावबोधनिबंधनमेवेति स्थितं ।

और जो तुम (बौद्ध) ने कहा है कि परमार्थसे सर्वतो व्यावृत्त स्वरूप स्वलक्षणोंमें एकार्थकारी होनेसे इत्यादि सो तो कहने लायक नही है क्योंकि उसमें हम पूछने है कि एकत्व क्या तुमको अद्विरूपत्व विवक्षित है अथवा समानत्वरूप एकत्व विवक्षित है । इनमेंसे प्रथम प्रकार (भेद) तो ठीक नही है क्योंकि खंडमुंड आदि पदार्थोंमें वाह आदि भिन्न भिन्न ही अर्थक्रिया देखी जाती हैं । द्वितीयपक्षमें भी समानत्व क्या सदृश परिणामरूप है अथवा अन्यव्यावृत्त्यधिष्ठितत्वरूप है इनमेंसे भी प्रथम विकल्प तो ठीक नही है क्योंकि सदृशपरिणामको तो सौगतोंने माना ही नहीं है । एवं द्वितीयविकल्प भी ठीक नहीं क्योंकि अन्यव्यावृत्तिको अतात्विक होतेसे वांध्येय (वंध्यापुत्र)की तरह स्वलक्षणमें अधिष्ठानका असंभव है । और आप कहोकि अन्यव्यावृत्ति सामान्येन अन्यसे व्यावृत्तिरूप तुम कहते हो अथवा विजातीयसे कहते हो प्रथम पक्ष माननेसे तो कोई भी किसीके समान न होवे क्योंकि सबसे सबको व्यावृत्तता है । और द्वितीयपक्षमें तो वाजि कुंजर आदि कार्योंको विजातीयता तब सिद्ध होय जब पहिले बाहादि सजातीयता सिद्ध हो जाय-और सजातीयता तब सिद्ध होय जब अन्योंको विजातीयता सिद्ध होवे इसतरह परस्पराश्रयरूप दोष स्पष्ट ही है । जैन ही कहते है कि इसीतरह कारणैक्य और प्रत्यवमर्शैक्योंमें विकल्प उठाकर दूषण बुद्धिमानोंने स्वयं जानलेने । और भी वार्ता है कि यदि बुद्धि प्रतिबिंव आत्मा शब्दार्थ होय तो शब्दसे वाह्य अर्थमें प्रवृत्ति कैसे हो सके अर्थात् आत्मामें ही होनी चाहिये । यदि कदाचित् स्वप्रतिभास अनर्थमें अर्थाध्यवसायसे प्रवृत्ति कहते हो तो हम पूछते है कि अर्थाध्यवसाय तुम किसको कहते हो यदि अर्थ समारोपस्वरूप कहते हो तो यह तो अग्नि और माणवककी तरह अर्थ और अनर्थके विकल्पविषयके होनेसे ही उत्पन्न हो सकता है समारोपविकल्पका स्वलक्षण कवी भी विषयताको प्राप्त नहीं होता । और यदि अनर्थमें अर्थसमारोप होय तब तो वाहदोह आदि अर्थक्रियार्थी पुरुषकी सुतरां प्रवृत्ति न होनी चाहिये क्योंकि जगत्में दाह पाक आदि कार्योंकी इच्छावाला कोई भी पुरुष समारोपित अग्नित्व धर्म्मवाले देवदत्तादिकोंमें कवी भी प्रवृत्त नही होता । यदिकदाचित् रजतरूपतासे प्रतीत हो रही शुक्तिकामें रजतार्थी पुरुषकी प्रवृत्ति होती है इसी तरह अर्थक्रियार्थी पुरुषकी भी विकल्पसे ही प्रवृत्ति होती है ऐसा तुम लोग कहते हो तब तो यह समारोप भ्रांतिरूप ही भया एवं सति उससे प्रवृत्त अर्थक्रियार्थी पुरुष कृतार्थ कैसे

हो सकता है अर्थात् नहीं होसकता जेसेकि शुक्तिकामें प्रवृत्त रजतार्थी पुरुष कृतार्थ नहीं होता। और जो कि कार्यकारणभाव ही वाच्यवाचकभावतया व्यवस्थापित है इत्यादिक तुमने कहा है सो भी ठीक नहीं क्योंकि यदिकदाचित् कार्यकारणभाव ही वाच्यवाचकभाव होय तब तो श्रोत्रज्ञानमें प्रतिभासमान शब्द स्वप्रतिभास (ज्ञान) का कारण होता ही है इसलिये उस (ज्ञान) का भी वह (शब्द) वाचक होना चाहिये। ओर विकल्पका शब्द कारण है एव परपरया स्वलक्षण (विषय) भी कारण है इसलिये वह (विषय) विकल्पका वाचक होगा तब प्रतिनियतवाच्यवाचकभाव यवस्था नाम अमुक शब्द ही अमुक अर्थका वाचक है इत्याकारिका व्यवस्था तो प्रलय मार्गको ही चली जावेगी अर्थात् यह व्यवस्था न वन सकी। इसलिये सामान्य और विशेषरूप अर्थके बोधका कारण शब्द ही है यह बात सिद्ध भयी।

स्वाभाविकसामर्थ्यसमयाभ्यामर्थबोधनिबधन शब्द इत्युक्तमथ किमस्य शब्दस्य स्वाभाविक रूप किंच परापेक्षमिति विवेचयति ॥

स्वाभाविक सामर्थ्य और सकेत इन दोनोंसे अर्थज्ञानका कारण शब्द है ऐसा पूर्व सूत्रमें कहाथा सो अब शब्दका स्वाभाविक कोन रूप है और परापेक्ष कोनसा है इसका सूत्रकार विवेचन करते है।

अर्थप्रकाशकत्वमस्य स्वाभाविक रूप प्रदीपवत् यथार्थत्वायथार्थत्वे पुनः पुरुषगुणदोषावनुसरत इति।

जिसप्रकार दीपकका अर्थप्रकाशकत्व स्वाभाविक रूप है इसीतरह शब्दका भी अर्थप्रकाशकत्व स्वाभाविक रूप है और यथार्थत्व तथा अयथार्थत्व तो वक्ताके यथाक्रमेण गुण तथा दोषोंके अधीन है।

अर्थप्रकाशकत्वमर्थावबोधसामर्थ्यमस्य शब्दस्य स्वाभाविक परानपेक्ष प्रदीपवत्। यथा हि प्रदीपः प्रकाशमानः शुभमशुभ वा यथा सन्निहित भावमवभासयति तथा शब्दोऽपि वक्त्रा प्रयुज्यमान श्रुतिवर्तनीमवतीर्णः सत्येऽनृते वा समन्वितेऽसमन्विते वा सफले निष्फले वा सिद्धे साध्ये वा वस्तुनि प्रतिपत्तिमुत्पादयतीति तावदेवास्य स्वाभाविक रूप। अय पुनः प्रदीपात् शब्दस्य विशेषो यदसौ सकेतव्युत्पत्तिमपेक्षमाणः पदार्थे प्रतीतिमुपजनयति प्रदीपस्तु तन्निरपेक्षः।

यथार्थत्वायथार्थत्वे सत्यार्थत्वासत्यार्थत्वे पुनः प्रतिपादकनराधिकरणशुद्धत्वाशुद्धत्वे अनुसरतः पुरुषगुणदोषापेक्ष इत्यर्थः। तथाहि सम्यग्दर्शिनि शुचौ पुरुषे वक्तरि यथार्था शाब्दी प्रतीतिरन्यथा तु मिथ्यार्थेति। स्वाभाविके तु याथार्थ्ये मिथ्यार्थत्वे वास्याः स्वीक्रियमाणे विप्रतारकेतरपुरुषप्रयुक्तवाक्येषु व्यभिचाराव्यभिचारनियमो न भवेत्। पुरुषस्य च करुणादयो गुणा द्वेषादयो दोषाः प्रतीता एव तत्र यदि पुरुषगुणानां प्रामाण्यहेतुत्वं नाभिमन्यते जैमनीयैः तर्हि दोषाणामप्यप्रामाण्यनिमित्तता माभूत्। दोषप्रशमनचरितार्था एव पुरुषगुणाः प्रामाण्यहेतवस्तु न भवंतीत्यत्र च कोशपानमेव शरणं श्रोत्रियाणामिति ॥

सूत्रमें जो अर्थप्रकाशकत्व है उसका अर्थ कहते हैं कि अर्थप्रकाशकत्वं नाम अर्थके ज्ञानमें सामर्थ्य सो सामर्थ्य इस नाम शब्दका स्वाभाविक नाम दूसरे किसीकी भी अपेक्षा न रखनेवाला धर्म्म है जैसे कि दीपकका धर्म्म अर्थप्रकाशकत्व स्वाभाविक सर्व संमत है। (इसीको स्पष्ट करते है) जिसप्रकार प्रदीप प्रकाश करता हुआ शुभ वा अशुभ जो जैसे नजदीकमें है पदार्थ उसको प्रकाश करता है वैसे ही वक्तासे प्रयुक्त शब्द भी श्रोत्रमार्गमे प्रविष्ट होकर सत्य वा असत्य समन्वित वा असमन्वित एवं सफल वा निष्फल तथा सिद्ध वा साध्य वस्तुविषयक ज्ञानको उत्पन्न कर देता है वही इसका स्वाभाविकरूप है। प्रदीपसे शब्दका इतनाक विशेष भी है जो कि शब्द तो संकेतकी अपेक्षा रखकर पदार्थज्ञान उत्पन्न करता है और प्रदीप संकेत निरपेक्ष ही कर देता है। और शब्दमें जो यथार्थत्व और अयथार्थत्व है सो तो वक्ता पुरुषमें रहनेवाले शुद्धत्व और अशुद्धत्वके अधीन है अर्थात् पुरुषके गुण और दोषकी अपेक्षासे होते हैं। अब ग्रंथकार इसीको स्पष्ट करते है। तथाहि सम्यग्दर्शनवाले शुद्धपुरुषके वक्ता होनेसे तो यथार्थ शाब्दबोध होता है और सम्यग्दर्शनसे शून्य अशुद्ध पुरुषके वक्ता होनेसे मिथ्यार्थ होता है। यदिकदाचित् शाब्दबोधमें याथार्थ्य और मिथ्यार्थत्व स्वाभाविक ही स्वीकार करलिया जायँ तब तो विप्रतारक (ठग) तथा अन्य (सच्चे) पुरुषोंने प्रयुक्तवाक्योंमें व्यभिचार और अव्यभिचारका जो नियम है सो न होना चाहिये। और पुरुषके करुणा (दया) आदिक गुण हैं और द्वेषआदिक दोष है सो तो प्रतीत ही हैं। सो इनमेंसे यदि पुरुषगुणोंको जैमनीय (मीमांसक) लोग प्रामाण्यका कारण नही मानते है तब दोषोंको भी अप्रामाण्यकी कारणता सिद्ध न हो सकेगी। पुरुषके गुण दोषोंके नाशमें ही चरितार्थ है परंतु प्रामाण्यके कारण नहीं है इसमें तो श्रोत्रियों (मीमांसकों) को कोशपान ही शरण है अर्थात् इसमें प्रमाण कुछ नही है।

इह यथैवांतरबहिर्वा भावराशि स्वरूपमाविभर्ति तथैव त शब्देन प्रकाशयतां प्रयोक्तृणां प्रावीण्यमुपजायते तच्च तथाभूत सप्तभंगीसमनुगत एव शब्दः प्रतिपादयितु पटीयानित्याहु ।

इस जगत्में पदार्थमात्रका जो जो स्वरूप है उसको उसी स्वरूपसे शब्दसे प्रगट करते वक्ताओंको प्रामाण्य प्राप्त होता है सो पदार्थको यथार्थरूपसे कहनेके लिये समर्थ सप्तभंगीका अनुसरण करनेवाला ही शब्द होता है इसवार्ताको अब सूत्रकार कहते है ।

सर्वत्रायं ध्वनिर्विधिप्रतिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधानः सप्तभंगीमनुगच्छतीति ।

सब जगह विधि और प्रतिषेध करके अपने अर्थको कहता शब्द सप्तभंगका ही अनुसरण करता है ।

सदसन्नित्यानित्यादिसकलैकांतप्रतिपक्षलक्षणानेकांतात्मके वस्तुनि विधिनिषेधविकल्पाभ्यां प्रवर्तमान शब्द सप्तभंगीमंगीकुर्वाण एव प्रवर्तते इति भाव ।

सत् और असत् एव नित्य और अनित्य आदि संपूर्ण जो एकांत उसका प्रतिपक्ष जो अनेकांत तदात्मक वस्तुमें विधि और निषेध विकल्पोंसे प्रवर्तमान शब्द सप्तभंगीको अंगीकार करता हुआ ही प्रवृत्त होता है यह इससूत्रका भाव है ।

अथ सप्तभंगीमेव स्वरूपतो निरूपयति ।

अब सूत्रकार सप्तभंगीके ही स्वरूपको कहते है ।

एकत्र वस्तुन्येकैकधर्म्मपर्यनुयोगवशादविरोधेन व्यस्तयो समस्तयोश्च विधिनिषेधयो कल्पनया स्यात्काराङ्कित सप्तधा वाक् प्रयोगः सप्तभंगीति ।

एक जीव आदि वस्तुमें एक एक सत्त्वादिधर्म्मोके प्रश्नवशसे अविरोधसे व्यस्तनाम पृथग्भूत और समस्तनाम समुदित जो विधि और निषेध उनकी कल्पना करके स्यात्कारसे अंकित (चिह्नित) जो सात प्रकारका वचनप्रयोग है सो सप्तभंगी इस नामसे कहा जाता है ।

एकत्र जीवादौ वस्तुन्येकैकसत्त्वादिधर्म्मप्रश्नवशादविरोधेन प्रत्यक्षादिबाधापरिहारेण पृथग्भूतयोः समुदितयोश्च विधिनिषेधयो पर्य्यालोचनया कृत्वा स्याच्छब्दलाञ्छितो वक्ष्यमाणै सप्तभिः प्रकारै वचनविन्यासः सप्तभंगी विज्ञेया ।

भज्यंते भिद्यंतेऽर्था यैस्ते भंगा वचनप्रकारास्ततः सप्तभंगाः समाहृताः सप्तभंगीति कथ्यते । नानावस्त्वाश्रयविधिनिषेधकल्पनया शतभंगीप्रसंगनिवर्त्तनार्थमेकत्र वस्तुनीत्युपन्यस्तं । एकत्रापि जीवादिवस्तुनि विधीयमाननिषिध्यमानानंतधर्म्मपर्यालोचनया ऽनंतभंगीप्रसक्तिव्यावर्तनार्थमेकैकधर्म्मपर्यनुयोगवशादित्युपात्तं । अनंतेष्वपि हि धर्म्मेषु प्रतिधर्म्मं पर्यनुयोगस्य सप्तधैव प्रवर्तमानत्वात्तत्प्रतिवचनस्यापि सप्तविधत्वमेवोपपन्नमित्येकैकस्मिन् धर्म्मे एकैकैव सप्तभंगी साधीयसी । एवं चानंतधर्म्मापेक्षया सप्तभंगीनामानंत्यं यदायाति तदभिमतमेव । एतच्चाग्रे सूत्रत एव निर्णेष्यते । प्रत्यक्षादिविरुद्धसदाद्येकांतविधिप्रतिषेधकल्पनयापि प्रवृत्तस्य वचनप्रयोगस्य सप्तभंगीत्वानुषंगभंगार्थमविरोधेनेत्यभिहितं अवोचाम च या प्रश्नाद्विधिपर्युदासभिदया बाधच्युता सप्तधा धर्म्मंधर्ममपेक्ष्य वाक्यरचनानेकात्मके वस्तुनि निर्दोषा निरदेशि देव भवता सा सप्तभंगी यया जल्पन् जल्परणांगणे विजयते वादी विपक्षं क्षणात् । इदं च सप्तभंगीलक्षणं प्रमाणनयसप्तभंग्योः साधारणमवधारधीयं विशेषलक्षणं पुनरनयोरग्रे वक्ष्यते ॥

एकत्र जीव आदि वस्तुमें एक एक सत्वादिधर्म्म विषयक प्रश्नवशसे अविरोधेन नाम प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंकी बाधाका परिहार करके पृथग्भूत अथवा समुदित विधि और निषेधकी पर्यालोचना (कल्पना) करके स्यात् शब्द लांछित जो वक्ष्यमाण रीतिसे सात प्रकारोंसे वचनविन्यास (शब्दप्रयोग) सो बुद्धिमानोंने सप्तभंगी समजनी । अक्षरोंका भी यही अर्थ है सो कहते है । भज्यंते भेदे जाँय अर्थनाम पदार्थ जिनसे उनको कहिये भंग नाम वचनप्रकार फिर सप्त और भंगका समाहार होनेसे सप्तभंगी ऐसा कहा गया । अब सप्तभंगीके लक्षणमें प्रविष्ट विशेषणोंका सार्थक्य ग्रंथकार कहते है । नाना वस्तुओंमें रहनेवाले विधि और निषेधकी कल्पनासे शत अर्थात् अनंतभंगी प्राप्तिकी निवृत्तिके लिये लक्षणकुक्षिमें एकत्र वस्तुनि इस पदका प्रवेश किया गया है । एवं एक भी जीव आदि वस्तुमें विधीयमान और निषिध्यमान अनंतधर्म्मोंकी पर्यालोचनासे अनंत भंगीकी प्राप्तिके हटानेके लिये लक्षणमें एकैकधर्म्मपर्यनुयोगवशात् पदका प्रवेश किया है ऐसा जानना । अनंतधर्म्मोंमेंसे भी एक एक धर्ममें पर्यनुयोगकी सात तरह ही प्रवृत्ति होती है इसलिये उस धर्म्मका वचन भी सात प्रकारसे ही युक्तियुक्त होता है इसलिये एक एक धर्म्ममें एक एक ही सप्तभंगी सिद्ध भयी । तब इसतरह अनंत धर्म्मोंकी अपेक्षासे अनतभगी यदि प्राप्त होती है तब यह तो हम जैनोंका अभीष्ट ही है इस वार्ताका आगे सूत्रकार सूत्रसे ही निर्णय करेगे । प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे विरुद्ध सत् आदि एकांतकी विधि

और प्रतिषेधकी कल्पनासे भी प्रवृत्त शब्दको सप्तभंगित्व प्राप्त न होय इसलिये लक्षणमें अविरोधेन इसपदका भी प्रवेश किया है। इसी बातको हम कहेंगे भी कि हे देव जो तुमने प्रश्नवशसे विधि और निषेधरूप भेदोंसे अनेकांतात्मक वस्तुमें धर्मधर्मकी अपेक्षया बाधारहित सात प्रकारकी वचन रचनाका उपदेश किया है सो सप्तभंगी है। जिस सप्तभंगीसे जल्प (शास्त्रार्थ) रूप युद्धके अग्रमें बोल रहा वादी क्षणमात्रसे विपक्षको जीत लेता है। यह जो सप्तभंगीका लक्षण है सो प्रमाणसप्तभंगी और नयसप्तभंगी इन दोनोंका साधारण है इनके विशेष लक्षणोंको तो सूत्रकार आगे कहेंगे।

अथास्यां प्रथमभंगोल्लेखं तावद्दर्शयति।

अब सूत्रकार पहिले सप्तभंगीमेंसे प्रथम भंगके उल्लेख नाम प्रयोगको दिखाते हैं।

स्यादस्त्येव सर्वमिति विधिकल्पनया प्रथमो भंग इति।

अनेक धर्मात्मक जीवादि सब वस्तु कथंचित् विद्यमान ही हैं यह प्रथम भंग जानना।

स्यादित्यव्ययमनेकांतावद्योतकं स्यात् कथंचित् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावस्वरूपेणास्त्येव सर्वं कुम्भादि न पुनः परद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण। तथाहि कुंभो द्रव्यतः पार्थिवत्वेनास्ति न जलादिरूपत्वेन क्षेत्रतः पाटलीपुत्रकत्वेन न कान्यकुब्जादित्वेन कालतः शैशिरत्वेन न वासंतिकादित्वेन भावतः श्यामत्वेन न रक्तत्वादिनान्यथेतररूपापत्त्या स्वरूपहानिप्रसंग इति। अवधारणं चात्रभंगे अनभिमतार्थव्यावृत्त्यर्थमुक्तमितरथानभिहिततुल्यतमेवास्य वाक्यस्य प्रसज्येत प्रतिनियतस्वार्थानभिधानात्। तदुक्तं वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये कर्तव्यमन्यथानुक्तसमत्वात्तस्य कुत्रचित्। तथाप्यस्त्येव कुंभ इत्येतावन्मात्रोपादाने कुंभस्य स्तंभाद्यस्तित्वेनापि सर्वप्रकारेणास्तित्वप्रसक्तेः प्रतिनियतस्वरूपानुपपत्तिः स्यात् तत्प्रतिपत्तये स्यादिति प्रयुज्यते। स्यात्कथंचित्स्वद्रव्यादिभिरेवायमस्ति न परद्रव्यादिभिरपीत्यर्थः। यत्रापि चासौ न प्रयुज्यते तत्रापि व्यवच्छेदफलैवकारवद्बुद्धिमद्भिः प्रतीयत एव यदुक्तं सोऽप्रयुक्तोऽपि वा तज्ज्ञैः सर्वत्रार्थात् प्रतीयते यथैवकारो योगादिव्यवच्छेदप्रयोजनः।

स्यात् यह जो अव्यय है सो अनेकांतद्योतक है स्यात् नाम कथंचित् स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावसे कुंभादि सब पदार्थ

विद्यमान ही हैं परंतु परद्रव्य परक्षेत्र परकाल और परभावसे नहीं है। तथाहि कुंभ पार्थिवत्वेन तो द्रव्यतः विद्यमान है परंतु जलादिरूपेण नहीं है एव क्षेत्रतः पाटलीपुत्रकत्वेन है परंतु कान्यकुब्जत्वेन नही है एवं कालतः शैशरत्वेन है परंतु वासंतिकादित्वेन नही है और भावतः श्यामत्वेन है परंतु रक्तत्वादिना नही है अन्यथा नाम यदि पररूपादिना भी अस्तित्व ही मानलिया जायगा तो पररूपकी प्राप्ति होनेसे स्वरूप हानिकी आपत्ति आवेगी। इस भंगमें जो एवकार है सो अनभिमतधर्म्मकी निवृत्तिके लिये है अन्यथा नाम यदि अवधारणका वाचक एवकार न कहेंगे तब तो प्रतिनियत अपने अर्थको न कहनेसे यह वाक्य न कहेके सदृश ही हो जायगा। इसी बातको किसी आचार्यने भी कहा है कि वाक्य (भंग) में अवधारण (एवकार) अनिष्ट अर्थकी निवृत्तिके लिये अवश्य करना चाहिये अन्यथा नाम यदि न कहेंगे तो यह वाक्य कहीं न कहेके सदृश ही हो जायगा। अब यदि अस्त्येव कुंभः इतना ही कहेंगे अर्थात् स्यात् पदका निवेश न करेंगे तो कुंभको स्तंभादि अस्तित्वेन भी अस्तित्वकी प्राप्ति होवेगी अर्थात्कुंभको सर्व प्रकारसे अस्तित्व प्राप्त होगा तब प्रतिनियतस्वरूपकी प्रतिपत्ति (बोध) न हो सकेंगी सो उसकी प्रतिपत्तिके लिये स्यात् पदका भी भंगमें प्रयोग है ऐसा बुद्धिमानोंने जानना। स्यात् नाम कथंचित् अर्थात् स्वद्रव्यादिकोंसे ही घटादि पदार्थ है परंतु परद्रव्यादिकोंसे भी नही है। और जो कही किसी भंगमें स्यात् शब्दका प्रयोग न होय वहां भी बुद्धिमान पुरुष स्वयं जान लेते है। ऐसा किसीने कहा भी है कि जिसप्रकार अयोगादिव्यवच्छेदक एवकार अनुक्त भी जान लिया जाता है इसीतरह अप्रयुक्त भी स्यात्शब्द बुद्धिमानोंसे अर्थात् जान लिया जाता है।

अथ द्वितीयभंगोल्लेखं ख्यापयंति।

अब सूत्रकार द्वितीयभंगके उल्लेखको कहते है।

स्यान्नास्त्येव सर्वमिति निषेधकल्पनया द्वितीय इति।

अनंतधर्म्मात्मक जगत्के सर्व पदार्थ कथंचित् नही ही है इसप्रकार निषेध कल्पनासे द्वितीयभंग जानना।

स्व द्रव्यादिभिरिव परद्रव्यादिभिरपि वस्तुनोऽसत्वानिष्टौ हि प्रतिनियतस्वरूपाभावाद्वस्तुप्रतिनियमविरोधः। नचास्तित्वैकांतवादिभिरत्रनास्तित्वमसिद्धमित्यभिधानीयं कथंचित्तस्य वस्तुनि युक्तिसिद्धत्वात्साधनवत्। नहि क्वचिदनि-

त्यादौ साध्ये सत्वादिसाधनस्यास्तित्वं विपक्षे नास्तित्वमन्तरेणोपपन्नं तस्य साधनाभासत्वप्रसंगात् । अथ यदेव नियत साध्यसद्भावेऽस्तित्वं तदेव साध्याभावे साधनस्य नास्तित्वमभिधीयते तत्कथं प्रतिषेध्यं स्वरूपस्य प्रतिषेधत्वानुपपत्तेः । साध्यसद्भावे नास्तित्वं तु यत्तत्प्रतिषेध्यं तेनाविनाभावित्वे साध्यसद्भावास्तित्वस्य व्याघातात्तेनैव स्वरूपेणास्ति नास्ति-चेति प्रतीत्यभावादितिचेत्तदसदेव हेतोस्त्रिरूपत्वविरोधात् विपक्षासत्वस्य तात्विकस्य अभावात् । यदि चाय भावाभाव-योरेकत्वमाचक्षीत तदा सर्वथा न कश्चित्प्रवर्त्तते नापि कुतश्चिन्निवर्त्तते प्रवृत्तिनिवृत्तिविषयस्य भावस्याभावपरिहारेणास-भवादभावस्य च भावपरिहारेणेति वस्तुनोऽस्तित्वनास्तित्वयोरूपांतरत्वमेष्टव्यं । तथा चास्तित्वं नास्तित्वेन प्रतिषेध्येना-विनाभावि सिद्धं यथा च प्रतिषेध्यमस्तित्वस्य नास्तित्वं तथा प्रधानभावतः क्रमार्पितोभयत्वादिधर्मपंचकमपि वक्ष्यमाण लक्षणीयम् ।

जिसप्रकार स्वद्रव्यादिकों करके वस्तुको असत्व नहीं है इसी तरह यदि परद्रव्यादिकों करके भी न मानोगे तो प्रतिनियतस्वरूपके न होनेसे वस्तुके प्रतिनियमका विरोध आ जावेगा। अस्तित्व एकांत वादियोंने भी वस्तुमें नास्तित्व असिद्ध है ऐसा नहीं कहा। क्योंकि वस्तुमें साधन (हेतु)की तरह कथंचित् नास्तित्व भी युक्तिसे सिद्ध है । साधनमें नास्तित्व विशिष्ट ही अस्तित्व है इस बातको स्पष्ट करते हैं । किसी अनित्यत्वादिरूपसाध्यमें सत्वादिसाधनको अस्तित्व विपक्षमें नास्तित्वसे विना उपपन्न नाम युक्ति सिद्ध नहीं होता अन्यथा सत्वादिरूपहेतुको हेत्वाभासताकी प्राप्ति आ जावेगी । यदि कदाचित् साध्यके होनेपर जो साधनका नियमेन अस्तित्व है वही साध्यके न होनेपर साधनका नास्तित्व कहा जाता है सो वह प्रतिषेध्य कैसे हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता क्योंकि स्वरूपको प्रतिषेधत्वकी अनुपपत्ति है और साध्यके सद्भावमें जो नास्तित्व है सो तो प्रतिषेध्य है । उसके साथ अविनाभाव होनेसे साध्यसद्भावके अस्तित्वका व्याघात हो जायगा क्योंकि तेनैव रूपेण अस्ति और नास्ति ऐसी किसीको भी प्रतीति नहीं होती ऐसा तुम कहते हो तो यह कहना तो असत् है क्योंकि हेतुकी त्रिरूपताम विरोध आवेगा क्योंकि वैसे विपक्षासत्व कोई तात्विक पदार्थ ही न भया । और भी बात है कि यदि यह भावाभावको एक स्वरूप कहेंगे तब तो कोई भी सर्वथा न तो कहीं प्रवृत्त होगा और न कहींसे निवृत्त होगा क्योंकि प्रवृत्ति और निवृत्तिके विषय भावको तो अभाव परिहारेण और अभावको भावपरिहारेण कहीं भी असंभव है । इसलिये वस्तुका अस्तित्व और नास्तित्व रूपांतर ही मानने चाहिये

अर्थात् अस्तित्वसे नास्तित्व और नास्तित्वसे अस्तित्व भिन्न २ मानने चाहिये। एवं सति प्रतिषेध्य नास्तित्वके साथ अस्तित्व अविनाभावि सिद्ध भया जिसप्रकार अस्तित्वका प्रतिषेध्य नास्तित्व है इसी तरह प्रधानभावसे क्रमार्पित उभयत्वादिरूप वक्ष्यमाण धर्मपंचक भी बुद्धि मानोंने जानने।

अथ तृतीयं भंगमुल्लेखतो व्यक्तीकुर्वन्ति।

अब सूत्रकार तृतीय भंगको उल्लेखद्वारा प्रगट करते हैं॥

स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमतो विधिनिषेधकल्पनया तृतीय इति।

अनेक धर्म्मात्मक सब घटादि पदार्थ कथंचित् है ही और कथंचित् नहीं ही है इसप्रकार क्रमतः विधि और निषेधकी कल्पनासे तृतीय भंग होता है ऐसा बुद्धिमानोंने जानना।

सर्वमिति पूर्वसूत्रादिहोत्तरत्र चानुवर्तनीयं ततोयमर्थः क्रमार्पितस्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया क्रमार्पिताभ्यामस्तित्वनास्तित्वाभ्यां विशेषितं सर्वं कुम्भादिवस्तु स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेत्युल्लेखेन वक्तव्यमिति।

पूर्वसूत्रसे सर्व यह पद इससूत्रमें और भंगप्रतिपादक अगाड़ीके सूत्रोंमें अनुवृत्त कर लेना तब यह (वक्ष्यमाण) अर्थ भया क्या कि क्रमार्पित स्वपरद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षया क्रमार्पित अस्तित्व और नास्तित्व धर्म्मोंसे वेशेषित सब कुंभआदि पदार्थ स्यादस्त्येव और स्यान्नास्त्येव इस उल्लेखसे कहने चाहिये।

इदानीं चतुर्थभंगोल्लेखमाविर्भावयन्ति।

अब सूत्रकार चतुर्थभंगके उल्लेखको प्रगट करते हैं।

स्यादवक्तव्यमेवेति युगपद्विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थ इति।

युगपद्विधि और निषेधकी कल्पनासे स्यादवक्तव्यमेव सर्व ऐसा चतुर्थभंग जानना।

द्वाभ्यामस्तित्वनास्तित्वाख्यधर्म्माभ्यां युगपत्प्रधानतयार्पिताभ्यामेकस्य वस्तुनोऽभिधित्सायां तादृशस्य शब्दस्यासंभवादवक्तव्यं जीवादिवस्त्विति। तथाहि सदसत्वगुणद्वयं युगपदेकत्र सदित्यभिधानेन वक्तुमशक्यं तस्यासत्वप्रतिपाद-

नासमर्थत्वात्तथैवासदित्यभिधानेन न तद्वक्तुं शक्यं तस्य सत्वप्रत्यायने सामर्थ्याभावात् । सांकेतिकमेकं पदं तदभिधातुं समर्थमित्यपि न सत्यं तस्यापि क्रमेणार्थद्वयप्रत्यायने सामर्थ्योपपत्तेः शतृशानचौ सदिति शतृशानचो संकेतितसच्छब्दवत् । द्वंद्ववृत्तिपदं तयोः सकृदभिधायकमित्यप्यनेनापास्तं सदसत्वे इत्यादिपदस्य क्रमेण धर्म्मद्वयप्रत्यायने समर्थत्वात् । कर्म्मधारयादिवृत्तिपदमपि न तयोरभिधायकं तत एव वाक्यं तयोरभिधायकमनेनैवापास्तमिति सकलवाचकरहितत्वादवक्तव्यं वस्तु युगपत्सदसत्त्वाभ्यां प्रधानभावार्पिताभ्यामाक्रांतं व्यवतिष्ठते । अयं च भंगः कैश्चित् तृतीयभंगस्थाने पठ्यते तृतीयश्चैतस्य स्थाने न चैवमपि कश्चिद्दोषोऽर्थविशेषस्याभावात् ।

युगपत् (एकवार) प्रधानतया अर्पित अस्तित्व नास्तित्व नामक धर्म्म द्वय करके एकवस्तुके कथनकी इच्छा होनेपर ऐसा कोई शब्द नहीं है जो पूर्वोक्त धर्म्मद्वयपुरस्कारेण एक वस्तुको कह सके इसलिये जीवादि सब वस्तु अवक्तव्य ही है यह भंग भया इसका वाचक एक शब्द नहीं है इसको स्पष्ट करते हैं कि सत्व और असत्वरूप गुणद्वय युगपत् एक स्थानमें सत् इस शब्दसे नहीं कहा जा सकता क्योंकि सत् शब्दको असत्व प्रतिपादनमें असमर्थता है । एव असत् शब्दको सत्वप्रतिपादनकी सामर्थ्य न होनेसे असत् शब्द भी धर्म्मद्वयको नहीं कह सकता । सांकेतित कोई एक शब्द उन दोनोंको कह सकेगा ऐसा भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि शतृशानचौ सत् इस सूत्रसे शतृ और शानचको सांकेतित सत् शब्दकी तरह सांकेतित भी कोई शब्द इन दोनोंको क्रमसे ही कह सकेगा । द्वंद्वसमासघटित पद एककालमें इन दोनोंको कह सकेगा यह भी कथन इस पूर्वकथनसे अपास्त (खंडित) भया क्योंकि सदसत्वे इत्यादि पदको भी क्रमसे ही धर्म्मद्वयके प्रत्यायन (बोध) में सामर्थ्य है । इसी वास्ते कर्म्मधारयसमासघटितपद भी उन दोनोंका एक कालमें बोधक नहीं हो सकता । और वाक्य उनका बोधक है यह भी इसीसे अपास्त भया । इसलिये सब वाचकोंसे रहित होनेसे युगपत् प्रधानभावतया अर्पित सत्व और असत्वसे आक्रांत वस्तु अवक्तव्य ही स्थित होता है । कै एक आचार्य इस (चतुर्थ) भंगको तृतीयभंगके स्थान और तृतीयको चतुर्थके स्थान पढ़ते हैं सो ऐसे भी कुच्छ अर्थका फरक नहीं है इसलिये कुच्छ दोष नहीं अर्थात् इसमें इच्छा ही नियामिका है ।

अथ पंचमभंगोल्लेखमुपदर्शयति ।

अब सूत्रकार पंचमभंगके उल्लेखको कहते हैं ।

स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिकल्पनया युगपद्विधिनिषेधकल्पनया च पंचम इति ।

केवल विधि और युगपद्विधि और निषेधकी कल्पनासे स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेव इत्याकारक पंचम भंग बुद्धिमानोंने जानना ।

स्वद्रव्यादि चतुष्टयापेक्षया अस्तित्वे सत्यस्तित्वनास्तित्वाभ्यां सह वक्तुमशक्यं सर्वं वस्तु ततः स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेत्येवं पंचमभंगेनोपदर्श्यत इति ।

सब वस्तु स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे अस्तित्व विशिष्ट अस्तित्व और नास्तित्वरूप धर्म्मोंके साथ कहा नहीं जासकता इसलिये स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेव इत्याकारक पंचम भङ्गसे बुद्धिमानोंने दिखाया है ।

अथ षष्टमङ्गोल्लेखं प्रकटयन्ति ।

अब सूत्रकार षष्ठभंगके उल्लेखको प्रगट करते हैं ।

स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति निषेधकल्पनया युगपद्विधिनिषेधकल्पनया च षष्ठ इति ।

केवल निषेध तथा युगपद्विधि और निषेधकी कल्पनासे स्यान्नास्त्येव और स्यादवक्तव्यमेव इत्याकारक बुद्धिमानोंने षष्ठ भंग जानना ।

परद्रव्यादि चतुष्टयापेक्षया नास्तित्वे सत्यस्तित्वनास्तित्वाभ्यांयौगपद्येन प्रतिपादयितुमशक्यं समस्तं वस्तु ततः स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति षष्ठभङ्गेन प्रकाश्यते ।

परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे नास्तित्वविशिष्ट अस्तित्व नास्तित्वरूप धर्म्मोंसे युगपत् किसी भी वस्तुको कह नहीं सकते इसलिये स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव ऐसा षष्ठभंगसे प्रकाशित किया जाता है ।

संप्रति सप्तमभंगमुल्लिखंति ।

अब सूत्रकार सप्तभंगका उल्लेख करते हैं।

स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति क्रमतो विधिनिषेधकल्पनया युगपद्विधिनिषेधकल्पनया च सप्तम इति।

क्रमसे विधि और निषेधकी कल्पनासे और युगपद्विधिनिषेधकी कल्पनासे स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव इत्याकारक सप्तम भंग बुद्धिमानोंने जानना।

इतिशब्दः सप्तभंगी समाप्त्यर्थः स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया अस्तित्वनास्तित्वयोः सतोरस्तित्व नास्तित्वाभ्यां समसमयमभिधातुमशक्यमखिलं वस्तु तत एवमनेन भंगेनोपदर्श्यते।

सूत्रमें जो इति शब्द है सो सप्तभंगीकी समाप्तिका बोधक है। स्वपरपरद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे अस्तित्व और नास्तित्व विशिष्ट अस्तित्व नास्तित्वधर्मोंसे विशिष्ट किसी भी वस्तुको नहीं कहसकते इसलिये सप्तभंगसे दिखाया जाता है।

अथास्यामेव सप्तभंग्यामेकांतविकल्पान्निराचिकीर्षवः सूत्राण्याहुः।

अब सूत्रकार इसी सप्तभंगीमें एकांत विकल्पोंके खंडनार्थ आगेके सूत्रोंको कहते है।

विधिप्रधान एव ध्वनिरिति न साध्विति।

ध्वनि जो शब्द है सो विधिप्रधान नाम प्रधानतया विधिको ही कहता है जैनकहते है कि यह कथन ठीक नहीं है।

प्राधान्येन विधिमेव शब्दोऽभिधत्ते इति न युक्तं।

प्राधान्येन विधिको ही शब्द कहता हे यह कथन युक्ति युक्त नही है।

अत्र हेतुमाहुः।

अबसूत्रकार इसमें हेतु कहते हैं।

निषेधस्य तस्मादप्रतिपत्तिप्रसक्तेरिति।

क्योंकि यदि ध्वनि विधिप्रधान ही मान लिया जायँगा तो फिर शब्दसे निषेधका बोध ही न होगा ।

तस्मादिति शब्दात्

सूत्रमें जो तस्मात् शब्द है उससे शब्द समजना ।

आशंकांतरं निरस्यन्ति ।

अबसूत्रकार आशंकांतरका निषेध करते हैं ।

अप्राधान्येनैव ध्वनिस्तमभिधत्त इत्यप्यसारमिति ।

निषेधको ध्वनि (शब्द) अप्राधान्येन ही कहता है यह कहना भी ठीक नहीं है ।

तमिति निषेधं । (भा०) सूत्रमें जो तं शब्द है सो निषेधका वाचक है ।

अत्र हेतुमाहुः ।

अब इसमें हेतुकहते हैं ।

क्वचित्कदाचित् कथंचित्प्राधान्येनाप्रतिपन्नस्य तस्याप्राधान्यानुपपत्तेरिति ।

किसी जगह किसीवखत कथंचित् प्राधान्येन अप्रतिपन्न निषेधको अप्राधान्य नहीं होसकता ।

न खलु मुख्यतः स्वरूपेणाप्रतिपन्नं वस्तु क्वचित्प्रधानभावमनुभवतीति ।

मुख्यस्वरूपसे अज्ञात कोई भी पदार्थ कहीं भी प्रधानभावसें प्रतीत नहीं होसकता ।

इत्थं प्रथमभंगैकांतं निरस्येदानीं द्वितीयभङ्गैकांतनिरासायातिदिशंति ।

पूर्वोक्त रीतिसे प्रथमभंगके एकांतका खंडन करके अब सूत्रकार द्वितीयभंगके एकांतका खंडन करते हैं ।

निषेधप्रधान एव शब्द इत्यपि प्रागुक्तन्यायादपास्तमिति ।

निषेधप्रधान ही शब्द है यह कथन भी प्रागुक्त न्यायसे ही खंडन किया गया बुद्धिमानोंने समझना ।

अथ तृतीय भगैकांत पराकुर्वंति ।
अब सूत्रकार तृतीयभगैकातका खडन करते हैं ।

क्रमादुभय प्रधान एवायमित्यपि न साधीय इति ।

क्रमसे उभयप्रधान ही शब्द है ऐसा कहना भी ठीक नहीं है ।
अयमिति शब्दः ।
सूत्रमें जो अय शब्द है उससे शब्द समझना ।
एतदुपपादयति ।
अबसूत्रकार इसका उपपादन करते हैं ।

अस्य विधिनिषेधान्यतरप्रधानत्वानुभवस्याप्यबाध्यमानत्वादिति ।

विधि और निषेधमेंसे एक एकको भी प्रधानता जो शब्दको प्रतीत होती है सो अबाध्यमाना है इसलिये तृतीयभगैकात भी ठीक नहीं है ।

प्रथमद्वितीयभंगगतैकैकप्रधानत्वप्रतीतेरप्यबाधितत्वान्न तृतीयभगैकाताभ्युपगमः श्रेयान् ।

प्रथम तथा द्वितीय भग गत जो एकएक (विधिनिषेध) प्रधानत्वेन प्रतीत है उसको भी अबाधित होनेसे तृतीयभगैकातता नाम केवल तृतीयभगको ही मानना भी अच्छा नहीं है इति ।

अथ चतुर्थभगैकातपराभवाय प्राहुः ।
अब सूत्रकार चतुर्थ भगकी एकातताके पराभव (खडन) के लिये अगाडीका सूत्र कहते हैं ।

युगपद्विधिनिषेधात्मनोऽर्थस्यावाचक एवासाविति च न चतुरस्रमिति

युगपद्विधि और निषेधस्वरूप अर्थका अवाचक ही शब्द है केवल यही मानना भी ठीक नहीं है ।

स्यादवक्तव्यमेवेति चतुर्थभंगैकांतोऽपि न श्रेयानित्यर्थः ।
स्यात् अवक्तव्यं एव वस्तु यह चतुर्थभंगैकांत भी ठीक नही है
कुत इत्याहुः ।
क्यों ठीक नही सो कहते है ।

तस्यावक्तव्यशब्देनाप्यवाच्यत्वप्रसंगादिति ।

क्योकि यदि विधि और निषेध स्वरूप अर्थका शब्द अवाचक ही मान लिया जायगा तो फिर अवक्तव्यत्व शब्दसे भी अवाच्यत्वका प्रसग हो जावेगा ।

अथ पंचमभंगैकांतमपास्यन्ति ।
अब सूत्रकार पंचमभंगैकांतका खंडन करते हैं

विध्यात्मनोऽर्थस्य वाचकः सन्नुभयात्मनो युगपदवाचक एव स इत्यैकांतोऽपि न कांत इति ।

विधिस्वरूप अर्थका वाचक होकर उभयस्वरूपका युगपत् अवाचक ही शब्द है यही एकांतसे मानना भी ठीक नहीं है ।
अत्र निमित्तमाहुः ।
अब सूत्रकार इसमें कारण कहते हैं ।

निषेधात्मनः सह द्वयात्मनश्चार्थस्य वाचकत्वावाचकत्वाभ्यामपि शब्दस्य प्रतीयमानत्वादिति ।

षष्टभंगमें निषेधस्वरूप होकर उभयस्वरूप अर्थका वाचक तथा अवाचक भी शब्द प्रतीत होता है इसलिये पंचम भंगैकांत भी ठीक नहीं है ।

निषेधात्मनोऽर्थस्य वाचकत्वेन सह विधिनिषेधात्मनोऽर्थस्यावाचकत्वेन च शब्द षष्ठभग प्रतीयते यतस्तत' पचम भगैकांतो ऽपि न श्रेयान् ।

जिस वास्ते निषेधस्वरूप अर्थका वाचक होकर उभयस्वरूप अर्थका अवाचक भी शब्द प्रतीत होता है इसलिये पचमभगेकात भी ठीक नहीं है ।

षष्ठभगैकांतमपाकुर्वंति ।

अब सूत्रकार षष्ठभगेकातका खडन करते हैं ।

निषेधात्मनोऽर्थस्य वाचक सन्नुभयात्मनो युगपत् अवाचक एवायमित्यप्यवधारण न रमणीयमिति ।

निषेधस्वरूप अर्थका वाचक होकर उभयस्वरूपका युगपत् अवाचक ही शब्द है यह भी एकातेन कहना ठीक नहीं है ।

अत्र हेतुमुपदर्शयन्ति ।

अब सूत्रकार इसमे हेतु दिखाते है ।

इतरथापि संवेदनादिति ।

केवल विधि या निषेधादि प्रधानतया भी शब्द प्रतीत होता है इसलिये षष्ठभगेकात भी ठीक नहीं ।

आद्यभगादिषु विध्यादिप्रधानतयापि शब्दस्य प्रतीयमानत्वादित्यर्थः ।

आद्य भगादिकोंमें विध्यादि प्रधानतया भी शब्द प्रतीत होता है यह इससूत्रका अर्थ है ।

अथ सप्तमभगैकांतमपाकुर्वन्ति ।

अनसूत्रकार सप्तमभगेकातका खडन करते हैं ।

क्रमाक्रमाभ्यामुभयस्वभावस्य भावस्य वाचकश्चावाचकश्च ध्वनिर्नान्यथेत्यपि मिथ्येति ।

क्रम और अक्रमसे उभयस्वभाववाले भावपदार्थका वाचक और अवाचक ही शब्द है परंतु केवल वाचक वा अवाचक नहीं ऐसा कहना भी असत्य है ।

अत्र बीजमाख्यांति ।

अब सूत्रकार इसमें बीज (निमित्त) कहते है

विधिमात्रादिप्रधानतयापि तस्य प्रसिद्धेरिति ।

केवल विधि आदि प्रधानतया भी शब्द प्रतीत होता है इसलिये सप्तभंगैकांत भी ठीक नहीं है ।

नन्वेकस्मिन् जीवादौ वस्तुन्यनंतानां विधीयमाननिषिध्यमानानामंगीकरणादनंत एव वचनमार्गाः स्याद्वादिनां भवेयुर्वाच्येयत्तायत्तत्वाद्वाचकेयत्तायास्ततो विरुद्धैव सप्तभंगीति ब्रुवाणं निरस्यन्ति ।

अब वादी प्रश्न करते है कि एक जीवादि पदार्थमें विधीयमान और निषिध्यमान अनंत धर्म्मोंको अंगीकारकरनेसे अनंत ही वचनमार्ग स्याद्वादियोंको प्राप्त होगें क्योंकि वाचककी जो इयत्तानाम मर्यादा है सो वाच्यकी इयत्ताके अधीन होती है । इसलिये सप्तभंगी मानना न्यायविरुद्ध है ऐसा कहरहे वादीका सूत्रकार खंडन करते हैं ।

एकत्र वस्तुनि विधीयमाननिषिध्यमानानंतधर्म्माभ्युपगमेनानंतभंगीप्रसंगादसंगतैव सप्तभङ्गीति न चेतसि निधेयमिति ।

एक जीव आदि वस्तुमें विधीयमान और निषिध्यमान अनंत धर्म्मोंके स्वीकारसे अनंतभंगीका प्रसंग होगा इसलिये सप्तभंगी असंगत ही है जैन कहते हैं कि ऐसा तो मनमें नहीं विचारकरना ।

अत्र हेतुमाहुः ।

अब सूत्रकार इसमें हेतु कहते हैं।

विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनंतानामपि सप्तभंगीनामेव संभवादिति।

प्रतिपर्याय नाम पर्याय पर्यायप्रति वस्तुमें विधि और निषेध प्रकारकी अपेक्षासे अनंत भी सप्तभंगियोंका ही संभव है इसलिये सप्तभंगी असंगत नहीं है इत्यर्थः।

एकैक पर्यायमाश्रित्य वस्तुनि विधिनिषेधविकल्पाभ्यां व्यस्तसमस्ताभ्यां सप्तैव भंगाः संभवति न पुनरनंतास्तत्कथमनंतभंगीप्रसंगादसंगतत्वं सप्तभंग्याः समुद्भाव्यते।

एक २ पर्यायको आश्रयकरके व्यस्त (भिन्न २) समस्त (इकठे) विधि और निषेधकरके सात ही भंग होते है परंतु अनंत नहीं होसकते इसलिये अनंत भंगीके होनेसे सप्तभंगीको असंगतत्व कैसे कह सकते हैं अर्थात् नहीं कहसकते।

कुतः सप्तैव भंगाः संभवन्तीत्याहुः।

अब सात ही भंग क्यों होते हैं इसवार्ताको सूत्रकार कहते है।

प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां सप्तानामेवसंभवादिति।

पर्याय २ प्रति प्रतिपाद्य पुरुषोंके पर्यनुयोगों (प्रश्नों) को सात प्रकारका ही होनेसे सात ही भंग होते है।

एतदपि कुत इत्याहुः।

पर्यनुयोग भी सात प्रकारके ही क्यों होते हैं सो कहनेके लिये सूत्रकहते है।

तेषामपि सप्तविधत्वं सप्तविधतज्जिज्ञासानियमादिति।

पर्यनुयोगोंको सप्तविधत्व भी प्रतिपाद्यगत जिज्ञासाओंको सात प्रकारका ही होनेसे है ऐसा बुद्धिमानोंने जानना।

अथ सप्तविधतज्जिज्ञासानियमे निमित्तमाहुः।

अब सूत्रकार प्रतिपाद्यजिज्ञासाओंके सप्तविध नियममें निमित्त कहते है।

तस्या अपि सप्तविधत्वं सप्तविधैव तत्संदेहसमुत्पादादिति ।

प्रतिपाद्य पुरुषको सात प्रकारके ही संदेह उत्पन्न होते हैं इसलिये उसकी जिज्ञासा भी सात ही प्रकारकी होती है ।

तस्या इति प्रतिपाद्यजिज्ञासायास्तत्संदेहसमुत्पादादिति प्रतिपाद्यसंशयसमुत्पत्तेः ।

सूत्रमें जो तस्याः पद है उसका प्रतिपाद्यजिज्ञासा ऐसा अर्थ समझना । तत्संदेहसमुत्पादात्का प्रतिपाद्यसंशयकी उत्पत्ति होनेसे ऐसा अर्थ समजना ।

संदेहस्यापि सप्तधात्वे नियममाहुः ।

संदेह भी सात ही प्रकारका क्यों होता है इसमें भी सूत्रकार कारण कहते है ।

तस्यापि सप्तप्रकारत्वनियमः स्वगोचरवस्तुधर्म्माणां सप्तविधत्वस्यैवोपपत्तेरिति ।

प्रतिपाद्यसंशयको भी सप्तप्रकारत्वका जो नियम है सो संशयके विषयीभूत वस्तुधर्म्मोंको सातप्रकारका ही होनेसे है ।

तस्य प्रतिपाद्यगतसंदेहस्य स्वगोचरवस्तुधर्म्माणां संदेहविषयीकृतानामस्तित्वादिवस्तुपर्यायाणाम् ।

सूत्रमें जो तस्य शब्द है उसका प्रतिपाद्यगत संदेह ऐसा अर्थ जानना और स्वगोचरवस्तुधर्म्माणांका संदेह विषयीकृत अस्तित्वादि वस्तुपर्यायाणां ऐसा अर्थ जानना ।

इयं सप्तभंगी किं सकलादेशस्वरूपा विकलादेशस्वरूपा वेत्याशंकां पराकुर्वंति ।

अव यह सप्तभंगी क्या सकलादेशस्वरूपा है अथवा विकलादेशस्वरूपा है इस आशंकाको दूरकरनेके लिये आचार्य सूत्र कहते है

इयं सप्तभंगी प्रतिभंगं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा चेति ।

इस सप्तभंगीका एक २ भंग सकलादेशस्वभाव है और विकलादेशस्वभाव भी है ।

एकैको भंगोऽस्याः संबंधी सकलादेशस्वभावो विकलादेशस्वभावश्चेत्यर्थः ।

इस सप्तभंगीका संबंधी एक २ भंग सकलादेश और विकलादेशस्वभाव है यह इससूत्रका अर्थ है

अथ सकलादेश लक्षयन्ति ।

अबसूत्रकार पहिले सकलादेशका लक्षण कहते हैं

प्रमाणप्रतिपन्नानन्तधर्म्मात्मकवस्तुनः कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्याद्भेदोपचाराद्वा यौगपद्येन प्रतिपादकं वचः सकलादेश इति ।

प्रमाणसिद्ध अनंतधर्म्मात्मक वस्तुका काल आदिकोंकरके अभेदवृत्ति प्राधान्यसे अथवा अभेदोपचारसे यौगपद्येन प्रतिपादक जो वचन सो सकलादेश कहा जाता है अर्थात् कालादिरूप ही एक संबंध है उनकरके पर्यायोंके वास्तविक अभेदसे अथवा कल्पित अभेदसे यौगपद्येन प्रतिपादक जो वचन है सो सकलादेश कहा जाता है ।

कालादिभिरष्टभि' कृत्वा यदभेदवृत्तेर्धर्म्मधर्मिणोरपृथग्भावस्य प्राधान्य तस्मात्कालादिभिर्भिन्नात्मनामपि धर्म्मधर्मिणामभेदाध्यारोपाद्वा समकालमभिधायकं वाक्यं सकलादेशः प्रमाणवाक्यमित्यर्थः । अयमर्थः यौगपद्येनाशेषधर्म्मात्मकं वस्तु कालादिभिरभेदवृत्त्याऽभेदोपचारेण वा प्रतिपादयति सकलादेशस्तस्य प्रमाणाधीनत्वात् ।

काल आदि आठों करके जो अभेदवृत्ति नाम धर्म्म धर्मीके अपृथग्भाव (ऐक्य) के प्राधान्यसे अथवा काल आदिकों करके भिन्नस्वरूप भी धर्म्मधर्मियोंके अभेदाध्यारोपसे समकालमें अभिधायक जो वचन सो सकलादेश नाम प्रमाणवाक्य कहलाता है । अर्थात् यौगपद्येन अशेष (यावत्) धर्म्मात्मक वस्तुको प्रतिपादनकरता है सकलादेश क्योंकि यह वाक्य प्रमाणाधीन होता है ।

विकलादेशस्तु क्रमेण भेदोपचाराद्भेदप्राधान्याद्वा तदभिधत्ते तस्य नयायत्तत्वात् । कः पुन' क्रमः किंवा यौगपद्यं यदास्तित्वादिधर्म्माणां कालादिभिर्भेदविवक्षा तदैकस्य शब्दस्यानेकार्थप्रत्यायने शक्त्यभावात्क्रमः । यदा तु तेषामेव धर्म्माणां कालादिभिरभेदवृत्तमात्मरूपमुच्यते तदैकेनापि शब्देनैकधर्म्मप्रत्यायनमुखेन तदात्मकतामापन्नस्यानेकाशेषरूपवस्तुनः प्रतिपादनमुखेन यौगपद्यं ।

और विकलादेश तो क्रमसे भेदोपचारसे वा भेदप्राधान्यसे अशेष धर्म्मात्मक वस्तुको प्रतिपादन करता है क्योंकि उसको न्या-

धीनता है। क्रम कौन है और अक्रम क्या है सो कहते है कि जब अस्तित्वादि धर्म्मोंकी काल आदिकों करके भेदकी विवक्षा होय तो एक पदार्थको कहनेमें उन्मुख एक शब्दको अनेक अर्थको कहनेमें समर्थ न होनेसे तो क्रम है। और जब उहीं अस्तित्वादि धर्म्मोंका काल आदिकों करके अभेदको प्राप्त आत्मरूप कहा जाता है तव एकधर्म्मके कहनेमें उन्मुख एक भी शब्दसे तदात्मकता नाम धर्मिस्वरूपताको प्राप्त वाकीके सव धर्म्मस्वरूप वस्तुका कथन होसकता है तव यौगपद्य नाम अक्रम होता है।

के पुनः कालादयः कालः आत्मरूपं अर्थः संबंधः उपकारः गुणिदेशः संसर्गः शब्दः इत्यष्टौ। तत्र स्याज्जीवादिवस्त्वस्त्येवेत्यत्र यत्कालमस्तित्वं तत्कालाशेषानंतधर्म्मा वस्तुन्येकत्रेति तेषां कालेनाभेदवृत्तिः। यदेवचास्तित्वस्य तद्गुणत्वमात्मरूपं तदेवान्यानंतगुणानामपीत्यात्मरूपेणाभेदवृत्तिः। य एव चाधारार्थो द्रव्याख्योऽस्तित्वस्य स एवान्यपर्यायाणामित्यर्थेनाभेदवृत्तिः। य एव चाविष्वग्भावः कथंचित्तादात्म्यलक्षणः संबंधोऽस्तित्वस्य स एवाशेषविशेषाणामिति संबंधेनाभेदवृत्तिः। य एव चोपकारोऽस्तित्वेन स्वानुरक्तत्वकरणं स एव शेषैरपि गुणैरित्युपकारेणाभेदवृत्तिः। य एव गुणिनः संबंधी देशः क्षेत्रलक्षणोऽस्तित्वस्य स एवान्यगुणानामिति गुणिदेशेनाभेदवृत्तिः य एव चैकवस्त्वात्मनास्तित्वस्य संसर्गः स एवाशेषधर्म्माणामिति संसर्गेणाभेदवृत्तिः। ननु प्रागुक्तसंबंधादस्य कः प्रतिविशेष उच्यते अभेदप्राधान्येन भेदगुणभावेन च प्रागुक्तः संबंधः भेदप्राधान्येनाभेदगुणभावेन चैषसंसर्गः इति। य एवास्तीति शब्दोऽस्तित्वधर्म्मात्मकस्य वस्तुनो वाचकः स एव शेषानंतधर्म्मात्मकस्यापीति शब्देनाभेदवृत्तिः।

काल आदिक कौन है सो कहते है कि काल १ आत्मरूप २ अर्थ ३ संबंध ४ उपकार ५ गुणिदेश ६ संसर्ग ७ शब्द ८ यह आठ कालादि है अब इनमेंसे क्रमप्राप्त कालेन अभेदवृत्तिको दिखाते हैं। स्याज्जीवादिवस्तुरस्त्येव यहाँपर जिसकालमें अस्तित्व है उसीकालमें वाकी सव धर्म्म वस्तुमें हैं इसलिये यह कालेन अभेदवृत्ति कही जाती है। एवं जो अस्तित्वका गुणत्व है आत्मरूप वही वाकी अनंत गुणोंका भी है इसतरह आत्मरूपेण अभेदवृत्ति भयी। एवं जो द्रव्यनामक अर्थ अस्तित्वका आधार है वही वाकी सव पर्यायोंका भी है इसरीतिसे अर्थेन अभेदवृत्ति होती है। एवं कथंचित् अभेदस्वरूप जो अविष्यग्भावरूप अस्तित्वका संबध है वही वाकी सब विशेषोंका है इसलिये वह संबंधेन अभेदवृत्ति भयी। एवं जो स्वानुरक्तत्वकरणरूप अस्तित्वकरके उपकार होता है वही वाकी सव गुणोंकरके भी होता है इससे वह उपकारेण अभेदवृत्ति कही जाती है। एवं जो अस्तिके गुणिका

संबधी क्षेत्ररूप देश है वही अन्य गुणोंके गुणिका भी है इसतरह गुणिदेशेन अभेदवृत्ति भयी। प्रश्नकरते हैं कि प्रागुक्त संबधसे संसर्गका क्या विशेष है उत्तर कहते हैं कि अभेदके प्राधान्यहोनेपर और भेदके गौण होनेसे तो प्रागुक्त संबध होता है और भेदके प्राधान्य होनेसे और अभेदके गौण होनेसे संसर्ग होता है अत एव इनका भेद है। एवं जो अस्ति यह शब्द अस्तित्वधर्मात्मकवस्तुका वाचक है वही अनतधर्म्मात्मक वस्तुका भी वाचक है इसतरह शब्देन अभेदवृत्ति भयी।

पर्यायार्थिकनयगुणभावे द्रव्यार्थिकनयप्राधान्यादुपपद्यते द्रव्यार्थिकगुणभावे पर्यायार्थिकप्राधान्ये तु न गुणानामभेदवृत्तिः संभवति समकालमेकत्र नानागुणानामसंभवात्। संभवे वा तदाश्रयस्य तावद्धा भेदप्रसंगात्। नानागुणानां संबंधिआत्मरूपस्य च भिन्नत्वात् आत्मरूपाभेदे तेषां भेदस्य विरोधात्। स्वाश्रयस्यार्थस्यापि नानात्वादन्यथा नाना गुणाश्रयत्वविरोधात्। संबंधस्य च संबंधिभेदेन भेददर्शनान्नानासंबंधिभिरेकत्रैकसंबंधाघटनात्। तैः क्रियमाणस्योपकारस्य च प्रतिनियतरूपस्यानेकत्वात् अनेकैरुपकारिभिः क्रियमाणस्योपकारस्य एकस्य विरोधात्। गुणिदेशस्य च प्रतिगुणभेदात्तदभेदे भिन्नार्थगुणानामपि गुणिदेशाभेदप्रसंगात्। संसर्गस्य च प्रतिसंसर्गिभेदात्तदभेदे संसर्गिभेदविरोधात्। शब्दस्य च प्रतिविषयं नानात्वात् सर्वगुणानामेकशब्दवाच्यतायां सर्वार्थानामेकशब्दवाच्यतापत्तेः शब्दांतरवैफल्यापत्तेः। तत्वतोऽस्तित्वादीनामेकत्र वस्तुन्येवं भेदवृत्तेरसंभवे कालादिभिर्भिन्नात्मनामभेदोपचारः क्रियते तदेवाभ्याम् भेदवृत्त्यभेदोपचाराभ्यां कृत्वा प्रमाणप्रतिपन्नानंतधर्म्मात्मकस्य वस्तुनः समगमयं यदभिधायकं वाक्यं स॰ सकलादेशः प्रमाणवाक्यापरपर्याय इति स्थितं। कालात्मरूपसंबंधः संसर्गोपक्रिये तथा गुणिदेशार्थशब्दाश्चेत्यष्टौ कालादयः स्मृताः।

यह पूर्वोक्त गुणोंकी अभेदवृत्ति पर्यायार्थिक नयके गौण और द्रव्यार्थिक नयके प्राधान्यहोनेपर होती है परंतु द्रव्यार्थिक नयके गौण और पर्यायार्थिक नयके प्राधान्यसे तो गुणोंकी अभेदवृत्ति नहीं होसकती। समकाल एक स्थानमें नाना गुणोंका असंभव है यदि संभवमानेंगे तो उनके आश्रयका भी तेनरूपेण भेद प्राप्तहोगा। एवं नानागुणोंके संबंधि आत्मरूपका भेद होनेसे आत्मरूपके भेद न होनेसे उनके भेदका विरोध है। एवं स्वाश्रय अर्थको भी नाना होनेसे अन्यथा नानागुणाश्रयत्वका विरोध है। एवं संबंधका भी संबंधि भेदसे भेद देखाजाता है क्योंकि नाना संबंधियोंका एक जगह एकसंबंध नहीं होसकता। एवं उनसे क्रियमाण जो अस्तित्वादिकोंसे जो किया जाता है प्रतिनियतरूप उपकार उसको अनेकरूपता है क्योंकि अनेक उपकारियोंसे एक उप-

कारका विरोध है । एवं गुणिदेशका भी प्रतिगुण भेद है यदि उसका भेद न मानेंगे तो भिन्नार्थगुणोंके गुणिदेशका भी अभेद होगा । एवं संसर्गका भी प्रतिसंसर्गि भेदसे भेद है अन्यथा संसर्गि भेदका विरोध है । एवं शब्द भी प्रति विषयमें नाना है क्योंकि यदि सब गुणोंको एक ही शब्दका वाच्य मानलिया जायगा तो सब पदार्थोंको एक शब्द वाच्यताकी प्राप्ति होवेगी इसलिये शब्दांतरको विफलता प्राप्त होगी । तत्त्वतः अस्तित्वादिकोंकी एकवस्तुमें ही भेदवृत्ति नही होसकती इसलिये काल आदिकों करके भिन्नस्वरूपोंको अभेदोपचार किया जाता है । इसप्रकार इन अभेदवृत्ति और अभेदोपचार करके प्रमाणसिद्ध अनंत धर्म्मात्मक वस्तुको सम समयमें कहनेवाला जो वाक्य सो प्रमाणवाक्य है दूसरा नाम जिसका वैसा सकलादेश कहलाता है यह सिद्ध भया । काल १ आत्मरूप २ संबंध ३ संसर्ग ४ उपकार ५ गुणिदेश ६ अर्थ ७ और शब्द ८ यह आठ बुद्धिमानोंने कालादि कहे हैं ।

अधुना नयवाक्यस्वभावत्वेन नयविचारावसर एव लक्षणीयस्वरूपमपि विकलादेशं सकलादेशस्वरूपनिरूपणप्रसंगेनात्रैव लक्षयन्ति ।

अब नयवाक्यस्वभावहोनेसे नय विचारके समयमें ही लक्षणीयस्वरूप भी विकलादेशका सकलादेशके प्रसंगसे सूत्रकार यहां ही लक्षण करते है ।

तद्विपरीतस्तु विकलादेश इति ।

पूर्वोक्त सकलादेशसे विपरीत विकलादेश समजना ।

नयविषयीकृतस्य वस्तुधर्म्मस्य भेदवृत्तिप्राधान्याद्भेदोपचाराद्वा क्रमेण यदभिधायकं वाक्यं स विकलादेशः। एतदुल्लेखस्तु नयस्वरूपानभिज्ञश्रोतॄणां दुरवगाह इति नयविचारावसर एव प्रदर्शयिष्यते ।

नयसे विषयीकृत वस्तुधर्म्मको भेदवृत्तिप्राधान्य वा भेदोपचारसे क्रमेण कहनेवाला जो वाक्य सो विकलादेश कहा जाता है । इसका उल्लेख तो नयवाक्यके (अनभिज्ञ) न जाननेवाले फुरुषोंको दुरवगाह नाम नयवाक्यको न जाननेवाले पुरुष इसके उल्लेखको जान नही सकते इससे वह तो ग्रंथकार उसीवखत कहेंगे ।

प्रमाण नीर्णायाथ यतः कारणात् प्रतिनियतमर्थमेतद्व्यवस्थापयति तत्कथयन्ति ।

प्रमाणका निर्णयकरके अब जिसकारणसे यह प्रमाण प्रतिनियत अर्थका व्यवस्थापन (ठराव) करता है वह सूत्रकार कहते हैं ।

तद्विभेदमपि प्रमाणमात्मीयप्रतिबंधकापगमविशेषस्वरूपसामर्थ्यतः प्रतिनियतमर्थमवद्योतयतीति ।

प्रत्यक्ष और परोक्ष इनभेदोंसे दोप्रकारका भी प्रमाण अपनेप्रतिबधके अपगमविशेष स्वरूप सामर्थ्यसे प्रतिनियत अर्थका प्रकाश कराता है ।

प्रत्यक्षपरोक्षरूपतया द्विप्रकारमपि प्रागुपवर्णितस्वरूप प्रमाण स्वकीयज्ञानावरणाद्यदृष्टविशेषक्षयक्षयोपशमलक्षण-योग्यतावशात् प्रतिनियत नीलादिकमर्थ व्यवस्थापयति ।

प्रत्यक्ष ओर परोक्ष रूपसे दो प्रकारका भी प्राक् प्रदर्शितस्वरूप प्रमाण स्वकीय ज्ञानावरणादिरूप अदृष्ट विशेषके क्षयोपशमरूप योग्यताके वशसे प्रतिनियत नील आदिकोंका व्यवस्थापन करता है ।

एतद्व्यवच्छेद्यमाहुः ।

अब सूत्रकार प्रमाणका व्यवच्छेद्य कहते हैं ।

न तदुत्पत्तितदाकारताभ्या तयोः पार्थक्येन सामस्त्येन च व्यभि-चारोपलभादिति ।

तदुत्पत्ति ओर तदाकारता करके तो प्रमाणको प्रतिनियतार्थप्रकाशकत्व नही कहसकते क्योंकि उनका पार्थक्येन नाम एक २ का और सामस्त्येन नाम दोनोंका व्यभिचारप्रतीत होता है ।

तथाहि ज्ञानस्य तदुत्पत्तितदाकारताभ्या व्यस्ताभ्या समस्ताभ्यां वा प्रतिनियतार्थप्रकाशकत्व स्यात् । यदि प्राच्य

पक्षस्तदा कपालक्षणः कलशांत्यक्षणस्य व्यवस्थापकः स्यात् तदुत्पत्तेः केवलायाः सद्भावात् । स्तंभः स्तंभांतरस्य च व्यवस्थापकः स्यात्तदाकारतायास्तदुत्पत्तिरहितायाः संभवात् । अथ द्वितीयस्तदा कलशस्योत्तरक्षणः पूर्वक्षणस्य व्यवस्थापको भवेत् समुदितयोस्तदुत्पत्तितदाकारतयोर्विद्यमानत्वात् । अथ विद्यमानयोरप्यनयोर्ज्ञानमेवार्थस्य व्यवस्थापकं नार्थस्तस्य जड़त्वादिति मतं तदपि न न्यायानुगतं समानार्थसमनंतरप्रत्ययोत्पन्नज्ञानैर्व्यभिचारात्तानि हि यथोक्तार्थव्यवस्थापकत्वलक्षणस्य समग्रस्य सद्भावे ऽपि प्राच्यं ज्ञानक्षणं न गृह्णन्ति ।

अब ग्रंथकार सूत्रोक्त व्यभिचारको स्पष्टकरते हैं कि ज्ञानको तदुत्पत्ति और तदाकारतामेंसे एक २ करके प्रतिनियतार्थप्रकाशकत्व तुम कहते हो अथवा इकट्ठे दोनोंसे ही कहते हो । इनभेदोंमेंसे प्रथमभेद तो ठीक नही है क्योंकि ऐसामाननेसे तो कपालक्षण कलशांत्यक्षणका और स्तंभस्तंभांरका व्यवस्थापक होना चाहिये क्योंकि केवल तदुत्पत्ति और तदाकारता क्रमेण पूर्वोक्त स्थलोंमें विद्यमान है । अब यदि द्वितीय पक्ष मानोंगे तो कलशका उत्तरक्षण पूर्वक्षणका व्यवस्थापक होना चाहिये क्योंकि समुदित-तदुपत्ति और तदाकार विद्यमान है । यदिकदाचित् यह विद्यमान है तो भी ज्ञान ही अर्थका व्यवस्थापक होता है परंतु जड़ होनेसे अर्थ नहीं होता ऐसा तुम कहते हो तो यह भी कथन न्यायसिद्ध नहीं है क्योंकि इसका तो समानार्थसमनंतर प्रत्ययोत्पन्न नाम एक ही अर्थको विषयकरनेवाले धारावाहिज्ञानमें व्यभिचार है क्योंकि उनमें यथोक्त अर्थ व्यवस्थापकत्वरूप समग्रलक्षण है तो भी वह उत्तरकालीन समानाकार ज्ञान पूर्वज्ञानको विषय नही करता जैन ही कहते हैं कि इसलिये समुदित भी तदुत्पत्ति और तदाकारतासे प्रतिनियतार्थप्रकाशकत्व नहीं कहसकते किंतु हमारा ही कहना ठीक है ।

अपिच किमिदमर्थाकारत्वं वेदनानां यद्वशात्प्रतिनियतार्थपरिच्छेदः स्यात् । किमर्थाकारोल्लेखित्वमर्थाकारधारित्वं वा प्रथमप्रकारे अर्थाकारोल्लेखोऽर्थाकारपरिच्छेद एव ततश्च ज्ञानं प्रतिनियतार्थपरिच्छेदात्प्रतिनियतमर्थमवद्योतयतीति साध्याविशिष्टत्वं स्पष्टमुपढौकते । द्वितीयप्रकारे पुनरर्थाकारधारित्वं ज्ञानस्य सर्वात्मना देशेन वा प्रथमपक्षे जडत्वादर्थस्य ज्ञानमपि जडं भवेदुत्तरार्थक्षणवत् । प्रमाणरूपत्वाभावश्चोत्तरार्थक्षणवदेवास्य प्रसज्येत सर्वात्मना प्रमेयरूपतानुकरणात् । अथ देशेन नीलत्वादिना अर्थाकारधारित्वमिष्यते ज्ञानस्य तर्हि तेनाजडाकारेण जडताप्रतिपत्तेरसंभवात्कथं तद्विशिष्टत्वमर्थस्य प्रतीयेत नहि रूपज्ञानेनाप्रतिपन्नरसेन तद्विशिष्टता सहकारफलादौ प्रतीयते । किंच देशेनार्थाकारधारि-

त्वान्नीलार्थवन्निःशेषार्थानामपि ज्ञानेन ग्रहणापत्तिः सत्वादिमात्रेण तस्य सर्वत्रार्थाकारधारित्वाविशेषात् । अथ तद्-विशेषेऽपि नीलाद्याकारवैलक्षण्यान्निखिलार्थानामग्रहणं तर्हि समानाकाराणां समस्तानां ग्रहणप्राप्तिः । अथ यत एव ज्ञानमुत्पद्यते तस्यैवाकारानुकरणद्वारेण ग्राहकं इत्येवमपि समानार्थसमनन्तरप्रत्ययस्य तद्ग्राहकं स्यादित्युक्तं ततो न तदु-त्पत्तितदाकारताभ्यां ज्ञानस्य प्रतिनियतार्थावभासः किंतु प्रतिबंधकापगमविशेषादिति सिद्धं ॥ इति प्रमाणनयतत्वालोका लंकारे श्रीरत्नप्रभाचार्यविरचितायां रत्नाकरावतारिकाख्यलघुटीकायामागमस्वरूपनिर्णयो नाम चतुर्थः परिच्छेदः ॥

तदुत्पत्ति और तदाकारतासे प्रमाणको प्रतिनियतार्थप्रकाशकत्व माननेमें एक दोष कहकर अब प्रकार और भी कहते हैं कि भाई ज्ञानोंको तदाकारता क्या पदार्थ है कि जिससे तुम उसको प्रतिनियतार्थप्रकाशकत्व कहते हो क्या अर्थाकारोल्लेखित्वरूप है अथवा अर्थाकारधारित्व है । इनमेंसे प्रथम प्रकारमें तो साध्याविशिष्टत्व नाम आत्माश्रयरूप दोष स्पष्ट प्राप्त होगा क्योंकि अर्थाकारोल्लेख अथ परिच्छेदरूप ही है तब नाम प्रतिनियतार्थपरिच्छेदसे प्रतिनियतार्थका प्रकाशक होता है ऐसा ही कहना भया तब पूर्वोक्त दोष स्पष्ट है । एवं अर्थाकारधारित्वरूप द्वितीयपक्षमें भी ज्ञानको अर्थाकारधारित्व क्या सर्वात्मना है अथवा देशेन है । इनमेंसे प्रथम पक्षमें तो अर्थको जड़ होनेसे ज्ञान भी जड़ ही होवे जैसे कि उत्तर अर्थक्षण सर्वात्मना पूर्वार्थ क्षणाकारको धारण करनेसे जड़ ही होता है । और सर्वात्मना प्रमेयरूपताको धारणकरनेसे उत्तरार्थ क्षणकी तरह ही ज्ञानको प्रमाणरूपताके अभावकी भी प्राप्ति होगी । अब यदि देशेन नाम नीलत्वादिना अर्थाकारधारित्व ज्ञानको तुम कहतेहो तो हम पूछते हैं कि अज डाकार जो ज्ञान है सो तो जडताको प्राप्त नहीं होता इसलिये तद्विशिष्टत्व अर्थको कैसे प्रतीत होसकेगा अर्थात् न होगा क्योंकि नहीं निषयक्रिया है रसनिरूपे जैसे रूपज्ञानसे रसविशिष्टता आम्रफलादिकोंमें प्रतीत होती है क्या अर्थात् नहीं होती । और भी दोष है कि देशेन अर्थाकारधारि होनेसे नील अर्थकी तरह सभी पदार्थोंकी ज्ञानसे ज्ञानकी आपत्ति आवेगी क्योंकि सत्वादि रूपेण ज्ञानको अर्थाकारधारित्वका सब जगह अविशेष नाम तुल्यता है । यदिकदाचित् सत्वादिना अर्थाकारधारित्वका अविशेष है तो

भी नीलादि आकारको विलक्षण होनेसे सब पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता वैसा कहतेहो तो हमकहते हैं कि ऐसे भी समान आकारवाले ही सब पदार्थोंके ग्रहणकी प्राप्ति तो है ही । यदिकदाचित् जिससे ज्ञान उत्पन्न होता है उसीके आकारानुकरणद्वारा ग्राहक होता है ऐसाकहतेहो तो भाई उसका उत्तर तो हमकह ही चुके हैं कि समान अर्थको विषय करनेवाले उत्तर ज्ञानको पूर्वज्ञानके ग्राहकत्वकी प्राप्ति होगी । जैन ही कहते हैं कि इसलिये तदुत्पत्ति और तदाकारता करके ज्ञानको प्रतिनियतार्थप्रकाशकत्व नहीं है किंतु प्रतिबंधका अपगमसे ही है यह सिद्ध भया ॥ श्रीरस्तु । इति प्रमाण नयतत्त्वालोकालंकारे रत्नप्रभाचार्यविरचितायां रत्नाकरावतारि काख्यलघुटीकाया पं० वंशीधरशर्म्मणा विरचितायां भाषाटीकाया चतुर्थः परिच्छेदः ।

जयतु देवः ।

यह पुस्तक नीचे लिखी हुई जगहपर रोकड मूल्यसे
अगर व्ह्याल्युपेएबल पोष्टसे मिलेगा

शेठ नगीनदास छगनलाल वैद्य,

मुकाम उंझा (गुजरात)

श्रीवादिदेवसूरिविरचितः

प्रमाणनयतत्वालोकालङ्कारः

समाप्तः ॥
